लेख-सूची

पृष्ठ

१. आशीर्वाद (कविता)—[लेखक, श्रीयुत जगमोहन 'विकसित' १०५
२. माधुरी—[लेखक, हिंदी-भूषण बाबू शिवपूजनसहाय, संपादक 'मारवाड़ी-सुधार' १०६
३. सम्राट् चंद्रगुप्त—[लेखक, पं० बालमुकुंद वाजपेयी, संपादक 'अवधवासी' ... १०८
४. अधिकार-चिंता (कहानी)—[लेखक, श्रीयुत "प्रेमचंद" ११९
५. छलिया (कविता)—[लेखक, श्रीयुत "सनेही" १२२
६. पुराने लखनऊ की एक झलक—[लेखक, पं० पद्मसिंह शर्मा ... १२२
७. संपत्ति, व्यक्ति और समाज—[लेखक, पं० श्यामविहारी मिश्र एम्० ए० और पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए० ... १२५
८. मथुरा—[लेखक, लाला सीताराम बी०ए० १३४
९. मयंक-महिमा (कविता)—[लेखक, पं० बदरीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन' ... १३६
१०. स्वामी श्रद्धानंद (जीवनी)—[लेखक, एक 'भक्त' १३७
११. महाकवि वृंद—[लेखक, पं० किशोरीलाल गोस्वामी १४८
१२. बिहारी-बोधिनी (समालोचना)—[लेखक, पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी० ... ... १५१
१३. सूर्य और चंद्र (गद्य-काव्य)—[लेखक, श्रीयुत ज़हूरबख़्श १५८
१४. तेरी छवि (कविता)—[लेखक, पं० रामनरेश त्रिपाठी १६२
१५. हँसी (कविता)—[लेखक, पं० शिवाधार पांडेय एम्० ए०, एल्-एल्० बी० ... १६३
१६. गर्म देश और सभ्यता—[लेखक, बाबू गोवर्द्धनलाल एम्० ए०, बी० एल्० १६४
१७. उदयन—[लेखक, बाबू जयशंकर "प्रसाद" १६८
१८. प्रेत-प्रसंग—[लेखक, लाला संतराम बी० ए० ... ... १७३
१९. नाम-माहात्म्य (कविता)—[लेखक, पं० कामताप्रसाद गुरु १७८
२०. कला—[लेखक, श्रीयुत जंगबहादुरसिंह १७९
२१. विज्ञान-वाटिका—[लेखक, श्रीयुत रमेशप्रसाद बी० एस्-सी० ... ... १८२
२२. सुमन-संचय—[लेखक, पं० कृष्णविहारी मिश्र बी०ए०, एल्-एल्०बी०, पांडेय मुकुटधर शर्मा, पं० गिरिधर शर्मा "नवरत्न", पं० भगवतीप्रसाद वाजपेयी, श्रीयुत "रसिकेंद्र" १८७
२३. महिला-मनोरंजन—[लेखिका, श्रीमती कृष्णकुमारी १९३
२४. विविध विषय १९७
२५. पुस्तक-परिचय २०६
२६. साहित्य-सूचना २०८
२७. चित्र-चर्चा २०८

चित्र-सूची

१. केश-रचना (रंगीन) ... १०५
२. महात्मा मुंशीराम ... १३७
३. स्वामी श्रद्धानंद १३७
४. तांबूल-दान (रंगीन) ... १६९
५. हिसाब करनेवाली मशीन ... १८३
६. हेनरी फ़ोर्ड, टॉमस एडीसन, प्रे० हार्डिंज १८४
७-८. मोटर-कार में रोक-संबंधी २ चित्र १८५
९. मिस इलिन शोपर ... १९६
१०. लड़की १९६
११. बेड़ा नहीं, घर १९६
१२. सरदार ख़ानसामा १९६
१३. स्वर्गीय भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र ... १९८
१४-१९. चलते-फिरते घर-संबंधी ६ चित्र २००-२०२
२०. बड़ोदा-नरेश महाराज सयाजीराव गायकवाड़ २०३

माधुरी के लेखकों से प्रार्थना

चौथी संख्या के लिये लेख १५ सितंबर तक आ जाने चाहिए। अन्यथा वे उस संख्या में नहीं जा सकेंगे।

माधुरी-संपादक

गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ

माधुरी के नियम

मूल्य

माधुरी का डाक-व्यय-सहित वार्षिक मूल्य ६॥), छः मास का ३।) और प्रति संख्या का ॥।) है। वी० पी० से मँगाने में ≈) रजिस्ट्री के और देने पड़ेंगे। इसलिये ग्राहकों को मनीआर्डर से ही चंदा भेज देना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ८), छः महीने का ४॥) और प्रति संख्या का ॥।≈) है। वर्षारंभ श्रावण से होता है। और प्रति मास-शुक्ल-पक्ष की सप्तमी को पत्रिका प्रकाशित हो जाती है। लेकिन ग्राहक चाहे जिस संख्या से ग्राहक बन सकते हैं।

अप्राप्य संख्या

अगर कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे, तो उसी महीने की पूर्णमासी तक कार्यालय को सूचना मिलनी चाहिए। लेकिन हमें सूचना देने के पहले स्थानीय पोस्ट ऑफ़िस में उसकी जाँच करके डाकख़ाने का दिया हुआ उत्तर सूचना के साथ आना चाहिए। उनको उस संख्या की दूसरी प्रति भेज दी जायगी। लेकिन पूर्णमासी के बाद सूचना मिलने से उस पर ध्यान नहीं दिया जायगा और उस संख्या को ग्राहक ॥।)॥ के टिकट भेजने पर ही पा सकेंगे।

पत्र-व्यवहार

उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिए। अन्यथा पत्र का उत्तर नहीं दिया जा सकेगा। पत्र के साथ ग्राहक-नंबर का भी उल्लेख होना चाहिए। मूल्य या ग्राहक होने की सूचना संचालक गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ या मैनेजर नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ के पते से आनी चाहिए।

पता

ग्राहक होते समय अपना नाम और पता बहुत साफ़ अक्षरों में लिखना चाहिए। दो-एक महीने के लिये पता बदलवाना हो, तो उसका प्रबंध डाक-घर से ही कर लेना ठीक होगा। अधिक दिन के लिये बदलवाना हो, तो संख्या निकलने के १ महीने पेश्तर उसकी सूचना देनी चाहिए।

लेख आदि

लेख या कविता स्पष्ट अक्षरों में काग़ज़ की एक ओर, संशोधन के लिये इधर-उधर जगह छोड़कर लिखी होनी चाहिए। क्रमशः प्रकाशित होने लायक़ बड़े लेख संपूर्ण आने चाहिए। किसी लेख अथवा कविता के प्रकाश करने या न करने का, उसे घटाने-बढ़ाने का तथा उसे लौटाने या न लौटाने का सारा अधिकार संपादक को है। जिन्हें यदि लेख संपादक लौटाना मंज़ूर करें, वे टिकट भेजने पर ही वापिस किए जा सकते हैं। यदि लेखक लेना स्वीकार करते हैं, तो उपयोगी और उत्तम लेखों पर पुरस्कार भी दिया जाता है। इस पत्रिका में ऐसे राजनीतिक या धर्म-संबंधी लेख न छापे जायँगे, जिनका संबंध वर्तमान काल से होगा। सचित्र लेखों के चित्रों का प्रबंध लेखकों को करना चाहिए। चित्र प्राप्त करने के लिये आवश्यक ख़र्च प्रकाशक देंगे।

लेख, कविता, समालोचना के लिये पुस्तकें और बदले के पत्र इस पते से भेजने चाहिए—

संपादक माधुरी
गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय
३०, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ

विज्ञापन

किसी महीने में विज्ञापन बंद कराना या बदलवाना हो तो एक महीने पहले सूचना देनी चाहिए।

अश्लील विज्ञापन नहीं छपते। छपाई पेशगी ली जाती है। विज्ञापन की दर नीचे प्रकाशित है—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई	… …	१६)	प्रति मास
½ ,, या १ ,, ,, ,,	… …	९)	,, ,,
¼ ,, या ½ ,, ,, ,,	… …	५)	,, ,,
⅛ ,, या ¼ ,, ,, ,,	… …	३)	,, ,,

कम-से-कम आधा कालम विज्ञापन छपानेवालों को माधुरी मुफ़्त मिलती है। साल-भर के विज्ञापनों पर ≈) रुपया कमीशन दे दिया जाता है।

माधुरी में विज्ञापन छपानेवालों को बड़ा लाभ रहता है। कारण, इसका प्रत्येक विज्ञापन कम-से-कम ५० हज़ार पढ़े-लिखे, धनी-मानी और सभ्य स्त्री-पुरुषों की नज़रों से गुज़र जाता है। सब बातों में हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका होने के कारण इसका प्रचार ख़ूब हो गया है और उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। फिर प्रत्येक ग्राहक से माधुरी ले-लेकर पढ़नेवालों की संख्या २०-२० तक पहुँच जाती है।

यह सब होने पर भी विज्ञापन-छपाई की दर अन्य अच्छी पत्रिकाओं से हमने कम ही रक्खी है। कृपया शीघ्र अपना विज्ञापन माधुरी में छपाकर लाभ उठाइए। कम-से-कम एक बार तो परीक्षा लीजिए।

पत्र-व्यवहार का पता—मैनेजर माधुरी, लखनऊ

लखनऊ के सुप्रसिद्ध नवलकिशोर प्रेस

की

संस्कृत और हिन्दी-भाषा की पुस्तकों का

सूचीपत्र

वेदज्ञ मैक्समूलर

संस्कृत-साहित्य-संसार के स्तंभ और पश्चिम में वेदों के प्रथम प्रचारक मैक्समूलर महोदय उन थोड़े महानुभावों में से एक हैं जिनका जीवनचरित्र जगत्प्राणीमात्र के लिये आदर्श हो सकता है। आपके चरित अध्ययन से दृढ़-संकल्प, अविश्रांत परिश्रम, जीवनोद्देश्य की पूर्ति में विघ्नबाधाओं के सामना करने की सहनशीलता, धैर्य, उत्साह, प्रेम, उदारता, आदर्श बालक, पति, पिता आदि की शिक्षाएँ मिलती हैं। आप एक निर्धन विद्यार्थी की हैसियत से उन्नति कर प्रीवी कौंसिल के पद तक पहुँचे थे। अतः पंडित और राजसमाज दोनों के सम्मान की वस्तु थे।

आपका जीवनचरित्र हिंदी-संसार के लिये बिलकुल नया है। पुस्तक की भाषा सरल और शुद्ध तथा हृदयग्राही है जिसके विषय में कतिपय प्रसिद्ध कवियों और लेखकों ने अपनी बहुत उत्तम अनुमतियाँ दी हैं। पुस्तक का कलेवर नवीन ढंग से सुसज्जित किया गया है। प्रत्येक विद्यार्थी तथा नवयुवक को एक बार अवश्य अध्ययन करना चाहिए। इसके लेखक हिंदी के होनहार कवि पं० सुरेंद्रनाथ तिवारी हैं। पृष्ठ-संख्या ६३; मू० ।≈)

अष्टावक्रगीता

राजा जनक के प्रार्थना करने पर श्रीअष्टावक्र मुनि ने इस गीता को कहा है। आत्मज्ञान कैसे प्राप्त होता है? संसार-बंधन से कैसे छुटकारा मिल सकता है? वैराग्य की प्राप्ति किस प्रकार होती है? आत्मज्ञान के प्राप्त होने पर धनादि संग्रह करने में कुछ दोष है या नहीं? जो मनुष्य संसार में फँसा हुआ है वह ज्ञानी होने पर भी अज्ञानी के तुल्य है या नहीं? ईश्वर न्यायी है, तब फिर इस संसार में कोई दरिद्री, कोई धनी, कोई सुखी और कोई दुःखी क्यों है? इसी प्रकार के सैकड़ों प्रश्नों के उत्तर विस्तारपूर्वक इसमें दिए गए हैं। इसकी टीका बाबू ज़ालिमसिंह, पोस्टमास्टर जनरल ग्वालियर, ने बड़े परिश्रम से की है। इसमें पहिले मूल, फिर पदच्छेद, तदनंतर अन्वय और प्रत्येक शब्द का अर्थ और अंत में अति सरल भाषा में भावार्थ दिया गया है। ऐसी अच्छी 'अष्टावक्रगीता' आज तक कहीं नहीं छपी। अक्षर खूब मोटे बंबइया हैं। पृष्ठ-संख्या ५६४; मूल्य १॥−)

भगवद्गीता सटीक

इस गीता के आरम्भ में 'भारतसार' दिया गया है ताकि गीता का प्रयोजन और भरतवंशी राजर्षियों का चरित्र मालूम हो; क्योंकि पूरे महाभारत का पढ़ना और समझना सर्वसाधारण लोगों के लिये महा कठिन है। जो

लोग संस्कृत जानते हैं, उनके लिये हरएक श्लोक पर अन्वयाङ्क दे दिए गए हैं; गानेवालों के लिये पद्यात्मक (लावनी छंद में) अनुवाद दिया गया है और श्लोकों का अर्थ समझने के लिये वही मूलाङ्क भाषा में दे दिए गए हैं। गीता का भावार्थ श्लोकों के साथ न देकर, स्वतंत्ररूप से पुस्तक के अंत में दिया गया है। इसकी टीका अनेक पुस्तकों के रचयिता प्रसिद्ध विद्वान् पं० सूर्यदीनजी सुकुल ने, अति सरल भाषा में की है। पुस्तक हरएक मनुष्य के देखने-योग्य है। छपाई-सफ़ाई अति उत्तम। पृष्ठ-संख्या ४००; मू० १।=)

भगवद्गीता सटीक

इसका भाषानुवाद, श्रीस्वामी परमानंदजी की सहायता से, बाबू ज़ालिमसिंह साहब, पोस्टमास्टर जनरल ग्वालियर, ने किया है। इसमें पहिले मूल श्लोक, फिर पदच्छेद, तदनंतर वाम हस्त की ओर संस्कृत-अन्वय दिया है और दक्षिण हस्त की ओर शब्दों का अर्थ लिखा है जिसके पढ़ने से श्लोक का पूरा अर्थ मध्यदेशीय भाषा में मिलेगा। सब से पीछे भावार्थ सविस्तार लिखा है। जो लोग संस्कृत नहीं जानते, उनके लिये यह टीका अति उत्तम और लाभदायक है; क्योंकि इसके पढ़ने से संस्कृत में भी उन्हें अनायास ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है। पृष्ठ-संख्या ८७५; सजिल्द, मूल्य ३॥)

बीजक कबीरदास

इस पुस्तक में महात्मा कबीरदासजी की वाणी का संग्रह किया गया है। क्या हिंदू, क्या मुसलमान सभी उक्त महात्माजी को आदर की दृष्टि से देखते थे। इसकी टीका स्वर्गवासी महाराजाधिराज १०८ श्रीविश्वनाथसिंहजी ने की है। भाषा बड़ी सरल और सबके समझने योग्य है। जो मनुष्य इस पुस्तक को ध्यान लगाकर पढ़ेंगे उन्हें जीवात्मा और परमात्मा के विषय में पूर्ण रीति से सहज ही में ज्ञान प्राप्त हो जायगा और अंत में उन्हें निर्वाण-पद की प्राप्ति भी हो सकती है। श्रीरामचंद्रजी के स्वरूप का ज्ञान और अनन्य भक्ति का निरूपण भी इसमें किया गया है। कागज़, छपाई आदि अति उत्तम। पृष्ठ-संख्या ६६०; मूल्य १॥)

भक्तिसागर

श्रीस्वामी चरणदासजी कृत। इसमें भगवान् कृष्णचंद्रजी की जन्मभूमि—व्रज—की प्रशंसा व चरित्र, अमरलोक अखंडधाम की यथोचित प्रशंसा, धर्म-जहाज़, अष्टांग योग व प्रत्येक आसनों के पृथक् पृथक् नियम, ज्ञान-स्वरोदय, पंच उपनिषद्, भक्ति-पदार्थ-वर्णन, ब्रह्मज्ञान-सागर वर्णन, शब्द-वर्णन और भक्तिसागर-वर्णन आदि कितने ही विषय हैं। जो लोग इस पुस्तक को ध्यानपूर्वक पढ़ते हैं, उन्हें काम, क्रोध, लोभ, मोह और मदादि की तुच्छता का ज्ञान सहज ही में हो जाता है और प्राणी इस असार संसार के बंधनों से छूटकर, भगवान् में लीन हो, मोक्ष को प्राप्त होता है। पुस्तक का आकार इस बार पहले से बढ़ गया है, क्योंकि इसमें नासकेत आदि कितनी ही लीलाएँ और भी बढ़ा दी गई हैं। कागज़ भी इस बार अति उत्तम लगाया गया है। पृष्ठ-संख्या ६४६; सजिल्द, मूल्य ३)

भक्तमाल

भाषा वार्तिक—राजा प्रतापसिंहजी कृत। इसमें गुरु की महिमा, भगवद्भक्ति का स्वरूप, भगवद्भक्तों की महिमा और भक्तमाल की महिमा का वर्णन तो किया ही गया है। इनके सिवा इसमें चौबीस निष्ठाएँ भी हैं जिनमें राजा

हरिश्चंद्र, दशरथ महाराज, रामानुज स्वामी, वल्लभाचार्य, रामदासजी, तुलसीदासजी, सूरदासजी, राघवदासजी, साखीगोपाल, रामराय, अजामिल, विश्वामित्र, वशिष्ठजी, परशुराम, कृष्णदास, कर्माबाई, कुंती, द्रौपदी, अर्जुन, सुदामा आदि सैकड़ों भक्तों की कथाएँ भगवद्भक्तों के उपकारार्थ विस्तारपूर्वक दी गई हैं। जो मनुष्य इस अपूर्व ग्रंथ को सदैव पढ़ते रहते हैं उनका मन निस्संदेह भगवान् की भक्ति में लीन हो जाता है। जिन्हें अध्यात्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिये बड़े-बड़े ग्रंथों के पढ़ने का अवकाश न मिलता हो, उनके लिये यह ग्रंथ अति लाभदायक है। भगवद्भक्तों ने इसे इतना पसंद किया है कि इसकी हज़ारों कापियाँ आज तक बिक चुकी हैं। पृष्ठ-संख्या ४८४; मूल्य २॥)

योगवाशिष्ठ

भाषा वार्तिक—इसमें महर्षि वशिष्ठजी ने, रामचंद्रजी को, लोकोपकारार्थ, वैराग्य, मुमुक्षु, उत्पत्ति, स्थिति, उपशम और निर्वाण नाम छः प्रकरणों में आत्मयोग, ब्रह्मज्ञान समझाकर, उनके अनेक संदेह दूर किए हैं। इन छः प्रकरणों में सैकड़ों विषय हैं, जिनका ज्ञान केवल इस पुस्तक के अवलोकन से ही हो सकता है। जो मनुष्य बड़े-बड़े संस्कृत के ग्रंथ पढ़ नहीं सकते हैं अथवा जो योग-जैसे कठिन विषय को सहज ही में जानना चाहते हैं, उनके लिये यह पुस्तक बड़े काम की है। इस पुस्तक के पढ़ने में, वृद्ध मनुष्यों को कुछ भी कष्ट न हो, इसी मतलब से यह पुस्तक खूब मोटे बंबइया टाइप में बड़ी सुंदरता से छापी गई है। महात्माओं, साधुओं एवं ज्ञानियों को चाहिए कि इसे अवश्य पढ़ें। पृष्ठ-संख्या १२८४; जिल्द बँधी हुई पुस्तक का मूल्य केवल ८) रक्खा गया है।

मनुस्मृति

भाषानुवाद-सहित—धर्मशास्त्रों में यह प्रसिद्ध पुस्तक है। जगत् की उत्पत्ति; संस्कारों की विधि; द्रव्यशुद्धि; गृहस्थ, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ आदि आश्रमों के धर्म; राजाओं के सम्पूर्ण धर्म; स्त्री पुरुषों के धर्म; वर्णसंकरों की उत्पत्ति; मोक्ष का स्वरूप और पाखंडियों के कर्म आदि का वर्णन भगवान् मनु ने स्वयं इस शास्त्र में कहा है। जो धार्मिक पुरुष हैं अथवा जिन्हें स्थान-स्थान पर 'मनुस्मृति' के श्लोकों का हवाला देना पड़ता है, उनके लिये यह पुस्तक बड़े ही काम की है। नवलकिशोर-विद्यालय के हेड पंडित पं० गिरिजाप्रसादजी द्विवेदी ने बड़े परिश्रम से इसका भाषानुवाद किया है। पृष्ठ-संख्या ६४८; मूल्य २॥)

प्रेमसागर

श्रीलल्लूलालजी कवि कृत। इसमें कृष्णजन्मोत्सव, पूतना-वध, विश्व-दर्शन, बकासुर-अघासुर-वध, चीर-हरण, गोवर्द्धन-पूजन, कंसासुर-वध, रुक्मिणी-हरण और जरासंध-वध आदि अनेक आख्यान हैं। जो भगवान् श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद, व्रजचंद्र वृंदावनविहारी और वृषभानुनंदिनी राधेरानी की संपूर्ण लीलाओं के विषय में जानना चाहते हैं, वे इसे अवश्य पढ़ें। स्थान-स्थान पर लीला-संबंधी सुंदर चित्र भी लगाए गए हैं। पृष्ठ-संख्या ४६२; मूल्य १)

सुखसागर

यह श्रीमद्भागवत के बारहों स्कंध का भाषानुवाद है। इसमें परमेश्वर के चौबीस अवतारों की कथा, शृंगीऋषि का राजा परीक्षित को शाप देना, दक्षप्रजापति के यज्ञ में सती का देह त्यागना, पुनः पार्वती नाम से हिमाचल के

यहाँ जन्म लेकर महादेवजी से विवाह करना, अजामिल नामक ब्राह्मण का बुरे कर्म करने पर भी 'नारायण' के नाम लेने से स्वर्ग प्राप्त करना, नृसिंह अवतार का होना, श्रीकृष्ण भगवान् का चरित्र और तक्षक साँप का राजा परीक्षित को काटना इत्यादि सैकड़ों कथाओं का वर्णन अति मधुर और सरल भाषा में किया गया है। भारतवर्ष में इस पुस्तक का इतना प्रचार हो गया है कि आज यह पुस्तक रामायण की नाईं घर-घर में पाई जाती है। पुस्तक बंबई के अति सुंदर मोटे-मोटे अक्षरों में छापी गई है; अतएव बूढ़े मनुष्य भी, बिना चश्मा लगाए ही, बड़े मज़े से पढ़ सकते हैं। काग़ज़ भी अति उत्तम लगाया गया है। बड़े साइज़ के १५०४ पृष्ठों की सुंदर मनमोहिनी विलायती कपड़े की जिल्द बँधी पुस्तक का मूल्य केवल ८) रक्खा गया है।

तुलसीकृत रामायण सटीक

चित्रों-सहित—पं० सूर्यदीनजी शुक्ल ने इस रामायण की टीका बड़ी उत्तम भाषा में किया है। टीका इतनी सरल है कि थोड़ी-सी हिंदी जाननेवाला मनुष्य भी रामायण के गूढ़ अर्थों को अनायास ही समझ सकता है। स्थान-स्थान पर कितने ही सुंदर चित्र लगाए गए हैं। हिंदू-मात्र को यह रामायण हमारे यहाँ से मँगाकर अपने गृह की शोभा अवश्य बढ़ानी चाहिए। पृष्ठ-संख्या ६००; मूल्य ५)

कवितावली सटीक

श्रीगोस्वामि तुलसीदासजी कृत। मानपुर-निवासी बाबू बैजनाथजी ने इसका भाषानुवाद अति सरल भाषा में किया है। इसमें भगवान् रामचंद्र का समस्त जीवनचरित्र अर्थात् रामायण के सातों कांडों की कथा अति मनोहर कवित्तों में वर्णन की गई है। जो लोग तुलसीदास कृत 'मूल कवितावली' को न समझ सकते हों उन्हें चाहिए कि इस 'सटीक कवितावली' को अवश्य ख़रीदें। पृष्ठ-संख्या ४२४; मूल्य १=)

गीतावली सटीक

श्रीगोस्वामि तुलसीदास कृत। भगवान् रामचंद्र का जन्मोत्सव, बाललीला, विश्वामित्र-यज्ञरक्षण, जानकी-स्वयंवर, धनुर्भंग, परशुराम-संवाद, वन-गमन, जानकी-हरण, रावण-वध, भरत-मिलाप और राज्याभिषेक आदि की पवित्र कथाएँ यदि आप अनेक प्रकार की मनोहर राग-रागिनियों में पढ़ना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को अवश्य देखिए। इसका भाषानुवाद मानपुर-निवासी बाबू बैजनाथजी ने किया है। पृष्ठ-संख्या ४५८; मूल्य १)

तुलसी-सतसई मूल

इसमें सात सौ दोहे हैं, जिनमें गोस्वामि महातमा तुलसीदासजी ने, भक्ति, ज्ञान और नीति की सैकड़ों अमूल्य शिक्षाप्रद बातें, कूट-कूटकर भरी हैं। ऐसी उत्तम पुस्तक आज तक कहीं नहीं छपी। जो तुलसीकृत रामायण या विनय-पत्रिका को पढ़ चुके हों, उन्हें तुलसीदासजी के अन्यान्य ग्रंथ भी अवश्य देखने चाहिएँ। पृष्ठ-संख्या १००; मूल्य ≈)

तुलसी-सतसई सटीक

उपरोक्त अलंकारोंसहित। टीकाकार बाबू बैजनाथजी। जिनमें 'मूल' सतसई के समझने की योग्यता न हो, उन्हें चाहिए कि वे इस 'सटीक सतसई' को ख़रीदें। सर्वसाधारण ने इसे इतना पसंद किया है कि इसकी हज़ारों कापियाँ आज तक बिक चुकी हैं। पृष्ठ-संख्या ४६२; मूल्य १)

तुलसी-हितोपदेश

अनेक पुस्तकों के रचयिता पं० द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी द्वारा संगृहीत । गोस्वामि तुलसीदासजी ने अनेक पुस्तकें रची हैं; किंतु इन सब में 'रामचरित मानस' सब से श्रेष्ठ है । इस पुस्तक में जितने भी उपदेश हैं, वे सब तुलसीदासजी की 'रामचरित मानस' से चुनकर एकत्र किए गए हैं । इसमें जीव और ब्रह्म, कर्मगति, परोपकार, कुसंगति का फल, दुष्ट मनुष्य, कपटी मित्र, लोभी, संतोष, मोक्ष के साधन, नारी-धर्म, स्त्री-स्वभाव, सेवक और स्वामी, पुत्र का धर्म और पराधीनता आदि सैकड़ों अपूर्व अमूल्य उपदेश हैं । क्या बालक, क्या युवा, क्या वृद्ध सब ही के मतलब की यह पुस्तक है । प्रत्येक दोहा व चौपाई के नीचे उसका अर्थ विशदरूप से समझाया गया है और अँगरेज़ी अनुवाद भी उसके नीचे दे दिया गया है । हिंदी-साहित्य में यह पुस्तक अपने ढंग की निराली है । पृष्ठ-संख्या १४२; जिल्द बँधी हुई पुस्तक का मूल्य केवल ॥)

विनयपत्रिका

सटीक—गोस्वामि तुलसीदासजी कृत । इसमें गणेशजी, सूर्यनारायण, शिवजी, गंगाजी व हनुमान्‌जी आदि देवताओं की महिमा का निरूपण तो किया ही गया है; किंतु मुख्य करके परब्रह्म परमात्मा रामचंद्र के प्रति सैकड़ों विनय के पद हैं । रामायण की भाषा सरल है किंतु विनयपत्रिका की भाषा रामायण से कठिन है, अतएव सर्व साधारण इसे समझ नहीं सकते—यही समझकर बाबू बैजनाथजी ने अति सरल भाषा में इसकी टीका विशदरूप से की है । रामायण-प्रेमियों को चाहिए कि इसे अवश्य खरीदें । पृष्ठ-संख्या ५१६; मूल्य २॥)

विनयपत्रिका

सटीक—इसमें भी वही विषय हैं जो हम ऊपर लिख चुके हैं । इसकी टीका अनेक पुस्तकों के रचयिता पं० सूर्यदीनजी शुक्ल ने की है । इसमें मूल कविता के थोड़े-थोड़े शब्द खड़ी पंक्ति में देकर, उसके सामने प्रत्येक शब्द का अर्थ दिया गया है । पदच्छेद, शब्दार्थ जान लेने के साथ ही टीका भी क्रम से पढ़ी जा सकती है। इसके सिवा वेदांत व भक्ति के ग्रंथों का आशय लेकर, प्रमाण के साथ, हरएक भजन का तात्पर्य (मतलब) दिया गया है । अब यह पुस्तक, सर्वसाधारण के समझने लायक़, बड़े मतलब की हो गई है । काग़ज़, छपाई-सफ़ाई अति उत्तम । पृष्ठ-संख्या २०८; मूल्य १॥)

चित्तविलास प्रथम व द्वितीय भाग

लेखक—रायबहादुर बाबू ज़ालिमसिंह, पोस्टमास्टर जनरल, ग्वालियर । यह कोई मामूली दिल खुश करनेवाला उपन्यास नहीं है; किंतु यह वह उपन्यास है जिसके पढ़ने और मनन करने से विवेक, वैराग्य, ज्ञान, ब्रह्मतेज आदि अनेकानेक धर्म-संबंधी उपदेशों का ज्ञान प्राप्त होता है । जो धार्मिक पुरुष हैं, जो वाहियात उपन्यास पढ़ अपना अमूल्य समय बिताना नहीं चाहते उन्हें यह उपन्यास अवश्य देखना चाहिए । दोनों भागों का मूल्य ॥)॥

ब्रह्मदर्पण

विषय नाम ही से प्रकट है । इसके पढ़ने से माया और ब्रह्म, स्वामी और सेवक, राजा और प्रजा एवं स्त्री और पुरुष के धर्मों का उपदेश मिलता है । जो मनुष्य इस उपन्यास को पढ़ेंगे, उनके बिगड़े हुए चरित्र सुधर जायँगे । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों

का क्या धर्म है—क्या कर्तव्य है—यह भी इसी के पढ़ने से मालूम होगा। संक्षेप में मतलब यह है कि बड़े-बड़े धर्मशास्त्रों एवं वेदांत के ग्रन्थों का सारांश इसमें ठूस-ठूस कर भरा गया है। हिंदी-संसार में इस ढंग के उपन्यास बहुत ही कम देखने में आते हैं। पृष्ठ-संख्या १५६; मूल्य ॥|)

रामप्रताप

यह कोई तिलस्मी, अय्यारी, ऐतिहासिक या गार्हस्थ्य उपन्यास नहीं है किंतु यह वह उपन्यास है, जिसके पढ़ने से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। यद्यपि इस उपन्यास में दो-तीन कथाएँ हैं मगर उनमें इस क़दर उपदेश भरे हुए हैं कि कुछ लिख नहीं सकते। इसके पढ़ने से वैराग्य, शुभ कर्म, अनन्य भक्ति, राज-धर्म और प्रजा-धर्म संबंधी अनेकानेक उपदेशों का ज्ञान प्राप्त होता है। जो धार्मिक पुरुष हैं, जो ईश्वर के चरणों में अपना ध्यान लगाकर मोक्ष चाहते हैं, वे इस उपन्यास को अवश्य पढ़ें। रायबहादुर बाबू ज़ालिमसिंहजी पोस्टमास्टर जनरल रियासत ग्वालियर ने इस उपन्यास की रचना की है। मूल्य ॥)

मेघदूत

संस्कृत के प्रसिद्ध कवि कालिदास का रचा हुआ यह प्रसिद्ध संस्कृत-काव्य है। हिमालय शिखरस्थ अलकापुरी के एक यक्ष को, कुबेर के शाप देने के कारण, अपनी प्रिय स्त्री के वियोग में परम दुःख भोगना पड़ा। वहाँ किसी सजीव प्राणी के न मिलने के कारण, उसने मेघ (बादल) को ही अपना दूत मानकर उससे बोलना प्रारंभ किया। उसने रामगिरि से ले अलका पर्यंत मार्ग में आनेवाले पर्वतों और नदी इत्यादि का वर्णन मेघ को सुनाया। यह भाग पूर्वमेघ के नाम से प्रसिद्ध है। उत्तरमेघ में यक्ष ने अपने घर तथा स्त्री का अनेक अलंकारों में वर्णन किया है। यह काव्य विद्यार्थियों, अध्यापकों एवं संस्कृतज्ञ पंडितों के लिये बड़ा ही उत्तम है। यह मल्लिनाथकृत संजीविनी टीका-सहित है और अनेक पुस्तकों के रचयिता पं० गिरिजाप्रसादजी द्विवेदी ने अन्वय-वाच्यांतरादि संवलित (मिला हुआ) हिंदी-भाषानुवाद किया है। पृष्ठ-संख्या २१२; मूल्य ॥=)

नवीनसंग्रह

हफ़ीजुल्लाहख़ाँ संगृहीत। इसमें अनेक कवियों के रचे हुए देवी-देवताओं की स्तुति के कवित्त, वीरता व शूरता के कवित्त, शृंगाररस के कवित्त, फाग व होली समय के कवित्त, गिरिधर की कुंडलियाँ और सुंदर चटपटे कवित्त व सवैए एवं अनेक प्रकार के समयोपयोगी छंदों का संग्रह किया गया है। संग्रह अच्छे होने ही के कारण आज तक इस पुस्तक के अठारह संस्करण हो चुके हैं। जो एक ही पुस्तक द्वारा अनेक रसों का आस्वादन लेना चाहते हैं, उन्हें यह पुस्तक अवश्य संग्रह करनी चाहिए। पृष्ठ-संख्या १२४; मूल्य |=)

बिहारी-सतसई सटीक

कवि बिहारीलालजी कृत। सतसई की भाषा विशेषतः ब्रजभाषा और बुँदेलखंडी का मिश्रण है। उक्त कवि ने एक-एक दोहे में इतने अधिक भाव भर दिए हैं कि पढ़नेवालों को बहुधा बड़ा आश्चर्य होता है। प्रकृति-निरीक्षण, भाषा-प्रौढ़ता, भाव-गंभीरता, इबारत-आराई, स्वाभाविक-वर्णन, अतिशयोक्ति की पराकाष्ठता, मानुषी प्रकृति के सच्चे और हृदयग्राही वर्णन इनकी कविता में भरे पड़े

हैं। पुस्तक विद्वानों के देखने-योग्य है। पृष्ठ-संख्या २०० ; मूल्य १)

षट्ऋतुकाव्य-संग्रह

हफ़ीज़ुल्लाहखाँ द्वारा संगृहीत। इसमें वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमंत और शिशिर—इन छहों ऋतुओं से संबंध रखनेवाले अनेक कवित्त व सवैए, शौक़ीन मनुष्यों के लिये, रंगीली व रसीली भाषा में छाँट-छाँट कर दिए गए हैं। जो सज्जन इस पुस्तक में लिखी हुई कविताओं को पढ़ेंगे वे निस्संदेह बड़े खुश होंगे। पृष्ठ-संख्या १६२; मूल्य ।-)॥

षट्ऋतुहज़ारा

बाबू परमानंद सुहाने कृत। इस पुस्तक में छः ऋतुओं के अंतर्गत १२५३ कवित्त व सवैए हैं, जिनकी रचना कालिदास, केशव, ग्वाल, गंग, तुलसी, पद्माकर व सेनापति इत्यादि प्राचीन व अर्वाचीन दो सौ इक्कीस कवियों द्वारा अति उत्तम सुललित भाषा में की गई है। जो सज्जन काव्यानुरागी हैं, जिन्हें पद्य-रचना करने का शौक़ है, वे एक बार इस अपूर्व काव्य को अवश्य देखें। पृष्ठ-संख्या ४१४ ; मूल्य १)

सूरदास का दृष्टिकूट सटीक

इसमें कविशिरोमणि सूरदासजी के दृष्टिकूट छंदों का समावेश किया गया है। उक्त कवि के बनाए हुए छंद प्रत्येक मनुष्य की समझ में आ नहीं सकते थे, इसीलिये सरदार कवि ने इनकी टीका अति सरल भाषा में कर दी है। कृष्ण-प्रेमियों को अब इन छंदों के समझने में कुछ भी कठिनता न पड़ेगी। पृष्ठ-संख्या १२० ; मूल्य ।-)

हफ़ीज़ुल्लाहखाँ का हज़ारा

इसके प्रथम भाग में गणेश, शिव, गंगाजी आदि अनेक देवी-देवताओं की स्तुति के कवित्त और रसिक-शिरोमणि श्रीकृष्णचंद्र व महारानी राधिकाजी के लीला-विषयक नाना प्रकार के चटपटे, चटकीले व रसीले कवित्तों का संग्रह किया गया है। द्वितीय भाग में, विशेष रस के चुहचुहाते हुए कवित्त, विरह-विषय के कवित्त, षट्ऋतु-संबंधी कवित्त व सवैए और इनके सिवा सैकड़ों तरह के फुटकर कवित्त व सवैए दिए गए हैं। स्थान-स्थान पर भगवान् कृष्ण की लीला-संबंधी सुंदर चित्र भी दिए गए हैं। जो सज्जन एक ही पुस्तक द्वारा अनेक रसों का आस्वादन लेना चाहते हैं, उन्हें उचित है कि लोभ त्यागकर इस पुस्तक को अवश्य ख़रीदें। हज़ारे के संग्रहकर्ता हैं मुंशी हफ़ीज़ुल्लाहखाँ साहब। पृष्ठ-संख्या ५८४; मूल्य १।≈)

हारमोनियम-मास्टर

आजकल प्रायः सभी लोग हारमोनियम बाजे को पसंद करते हैं; किंतु आज तक किसीने भी ऐसी पुस्तक नहीं बनाई कि जिससे हारमोनियम के प्रेमियों का उपकार होता। यद्यपि इस विषय की दो-चार पुस्तकें इधर-उधर प्रकाशित हुई हैं किंतु वे सब अधूरी हैं—उनसे पूरी तरह पर ज्ञान प्राप्त हो नहीं सकता। यही समझकर, स्वर्गवासी मुंशी प्रयागनारायणजी ने श्रीयुत राय सोतीकृष्ण साहब क़मर देहलवी (जो कि एक चतुर हारमोनिस्ट हैं) से उर्दू में 'हारमोनियम गाइड' नामक पुस्तक बनवाई। सर्व साधारण ने इसे इतना पसंद किया कि हज़ारों कापियाँ हाथों-हाथ बिक गईं। हिंदी-प्रेमी भी इस पुस्तक से लाभ उठावें—यही सोचकर इसका उल्था पं० शुकदेवप्रसादजी वाजपेयी से कराया गया है। यह पुस्तक पंद्रह भागों में छापी गई है। इसमें कोई बात छिपाकर रक्खी नहीं गई है। थोड़ी-सी हिंदी जाननेवाला बालक भी इसके द्वारा, थोड़े

दिनों में हारमोनियम बजाना एवं मरम्मत करना सीख सकता है। प्रायः ६७५ सफ़े की पुस्तक का मूल्य केवल ३)

अभिज्ञानशकुंतलानाटक

महाकवि कालिदासकृत मूल और पं० लक्ष्मीनारायणजीकृत भाषा-टीका सहित। कविशिरोमणि कालिदास के 'शकुंतला' नाटक का नाम किसने नहीं सुना? यह नाटक कालिदास के सब नाटकों से अति उत्तम है। ऋषिआश्रम में, राजा दुष्यंत का शकुंतला से भेंट होना, शकुंतला का काम-पीड़ा से आतुर हो गांधर्व विवाह करना, दुर्वासा ऋषि का शाप, शकुंतला का हस्तिनापुर को बिदा होना, राजा का शाप-वश शकुंतला को न पहिचानना, अँगूठी मिलने पर शकुंतला के वियोग में राजा का व्याकुल होना और फिर पुत्र-सहित शकुंतला से संयोग होना आदि विषय बड़ी उत्तमता से नाटकरूप में वर्णन किए गए हैं। नाटक पढ़ने-योग्य है। पृष्ठ-संख्या २६२; मूल्य ॥)

स्त्री-उपदेश

स्वर्गवासी माधवप्रसाद साहब एक्स्ट्रा असिस्टैंट कमिश्नर लिखित। स्त्रियों के लिये अनेक मनोरंजन शिक्षाप्रद उपदेश इसमें दिए गए हैं। भाषा भी इसकी इतनी सीधी-सादी और शुद्ध है कि साधारण पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ इसे सहज ही में समझ सकती हैं। पुस्तक आर्य-ललनाओं के देखने-योग्य है। पृष्ठ-संख्या १३०; मूल्य ।=)

स्त्री-दर्पण

स्वर्गवासी माधवप्रसाद साहब लिखित। इसमें विद्यानुरागिनी लड़कियों और स्त्रियों का परमार्थ-साधन; गृह-कार्य की प्रवीणता व निपुणता और अनेक प्रकार की अमूल्य शिक्षाएँ अति सरलतापूर्वक वर्णन की गई हैं। पुस्तक लड़कियों के पढ़ने-योग्य है। पृष्ठ-संख्या १६५; मूल्य ॥)

स्त्री-सुबोधिनी

लेखक, मथुरा-निवासी बाबू सन्नूलाल गुप्त गिर्दावर। इस पुस्तक में पाँच भाग हैं। पहले भाग में गृहस्थ-धर्म, गृहकार्य और व्यय आदि का प्रबंध एवं अनेक अमूल्य शिक्षाएँ हैं। दूसरे भाग में अनेक प्रकार के स्वादिष्ट भोजन बनाने की विधि, शिल्प-विद्या, चित्रकारी और सीना-पिरोना आदि कितने ही विषय हैं। तीसरे भाग में गर्भ-रक्षा, धात्री-शिक्षा, स्त्री-रोग की अनेक अनुभूत औषधियाँ और स्वास्थ्य-रक्षा-संबंधी अनेक उपदेश हैं। चौथे भाग में बालकों का पोषण, बाल-रोग-चिकित्सा एवं बालक-संबंधी शिक्षाओं का समावेश किया गया है। पाँचवें अर्थात् अंतिम भाग में धर्मोपदेश व अनेक प्रकार की रीति-नीति और व्रत, त्योहारों का वर्णन है। सर्व प्रकार के अलंकारों से विभूषित, स्त्रियों के पढ़ने-योग्य पुस्तक यदि संसार में कोई है, तो यही है। इससे उत्तम पुस्तक आज तक कहीं नहीं छपी। काग़ज़, टाइप, छपाई, सफ़ाई अति उत्तम। पृष्ठ-संख्या ८६२; मूल्य सजिल्द २॥)

अँगरेज़ी राज्य के सुख

पृथ्वी के समस्त राज्यों में केवल अँगरेज़ी राज्य ही ऐसा है कि जिसमें सूर्यनारायण अस्त नहीं होते। परंतु ब्रिटिश राज्य के शासन-मुकुट में सब से प्रकाशमान मणि भारत ही है। आज हम इस राज्य में कितने सुखी हैं, यही इसमें दिखलाया गया है। इसमें डाक, तार, रेलगाड़ी आदि का विवरण; सेना और पुलिस से लाभ तथा न्याय-शासन-प्रणाली; कृषि, बैंक, नहरें, वन-रक्षा, म्युनि-

सिपैल्टी व डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और राज्य-भक्ति की आवश्यकता आदि सैकड़ों विषयों का विस्तार-पूर्वक वर्णन है। इसके लेखक हैं, अँगरेज़ी और हिंदी के धुरंधर विद्वान् लाला कन्नोमलजी एम्० ए०। पृष्ठ-संख्या ७२; मूल्य ॥)

विदेश-यात्रा

इस पुस्तक के मूल लेखक हैं स्वर्गीय पं० बिशननारायणजी दर, बैरिस्टर-एट-लॉ और अनुवादक हैं हिंदी-अँगरेज़ी व उर्दू के धुरंधर विद्वान् पं० मुकुटबिहारीलालजी भार्गव, बी० ए०, लेट सुपरिंटेंडेंट, अवध अख़बार, लखनऊ। इसमें दर महाशय की जीवनी भी है। आपने जो कुछ इस पुस्तक में लिखा है वह अपने अनुभव द्वारा बड़ी योग्यता से संग्रह किया है। शिल्प-कला-कौशल की उन्नति कर हम किस प्रकार अपना भोजन विदेशियों के हाथों से बचा सकते हैं, विलायत जाना हमारे लिये क्यों ज़रूरी है, इत्यादि सैकड़ों बातों का उल्लेख इस पुस्तक में किया गया है। जो देश-प्रेमी हैं, जो देश को सोते से जगाना चाहते हैं, उन्हें ऐसी पुस्तकें अवश्य पढ़नी चाहिएँ। पृष्ठ-संख्या ८८; मूल्य ।≠)

विश्व की विचित्रता

लेखक पं० द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी। ईश्वर की माया विचित्र है; उसकी कारीगरी का कोई ठिकाना नहीं। हज़ारों चीज़ें संसार में ऐसी हैं, जिनके विषय में आज तक हमने कभी सुना भी नहीं। उसी परमात्मा की रची हुई कुछ चीज़ों का वर्णन इस पुस्तक में दिया गया है। इसमें मछली-नुमा औरतों का हाल, उड़नेवाली और गानेवाली मछलियों का हाल; सामुद्रिक साँप; बौने आदमी; बड़ी उम्र के मनुष्य, नर-मांस-भोजी मनुष्य, जुड़े हुए बालक, पूँछधारी मनुष्य, डाढ़ी और मूँछ-वाली औरतें, दूध और मक्खन के पेड़ और बालू के खंभे आदि अनेक अद्भुत वस्तुओं का वर्णन दिया गया है, जिन्हें पढ़ आप दंग रह जायँगे। स्थान-स्थान पर सुंदर चित्र भी दिए गए हैं। पृष्ठ-संख्या १४०; मूल्य ॥।)

नारीचरितमाला

संग्रहकर्ता हैं पं० द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी। इसमें सती, गांधारी, सुकन्या और लीलावती आदि पंद्रह पौराणिक काल की और कृष्णाकुमारी, दुर्गावती व जीजाबाई आदि दस ऐतिहासिक काल की उन पतिव्रता स्त्रियों का पवित्र जीवन-चरित्र है, जो आज देवी-रूप मानी जाती हैं। यदि आपको अपने देश की सुचरित्रा, आदर्शस्वरूपा स्त्रियों के चरित्रों से अपनी प्यारी स्त्रियों, बहनों या कन्याओं को उत्तमोत्तम उपदेश देने हों, तो आप इसे अवश्य ख़रीदें। पुस्तक की भाषा अति उत्तम और सरल है। पृष्ठ-संख्या २००; मूल्य ॥≠)

पतिव्रता स्त्रियों का जीवनचरित्र

पेशावर नगर-निवासी स्वामी परमानंदजी द्वारा संगृहीत। इसमें मदालसा, दमयंती, कैकेयी, अहल्या, मीराबाई, देवीभवानी, संयोगिता और तारा आदि कोई तीस पतिव्रता स्त्रियों का पवित्र जीवन-चरित्र है। यदि आप चाहते हैं कि हमारी स्त्रियाँ वीर संतान उत्पन्न करें, यदि आप चाहते हैं कि हमारी बहनें एवं कन्याएँ सुचरित्रा एवं सुशीला बनें, तो एक बार इस अमूल्य पुस्तक को उनके हाथों में अवश्य दीजिए। पृष्ठ-संख्या ३५८; मूल्य १≈)

भार्याहित

अनुवादक, चौबे रघुनाथदास। यह अँगरेज़ी पुस्तक "Advice to a wife" का हिंदी-अनुवाद है। इसमें मासिक रज अर्थात् मासिक धर्म, गर्भाधान, प्रसव-वेदना और बच्चे को दूध पिलाना

इत्यादि अनेक विषय बड़ी उत्तमता से वर्णन किए गए हैं। स्त्रियों की देह-रक्षा के निमित्त, इससे बढ़कर और पुस्तक नहीं है। पृष्ठ-संख्या ३३०; मूल्य १)

मयंकमंजरी नाटक

संपादक, श्रीकिशोरीलाल गोस्वामी। शृंगाररस से भरा हुआ यह अपूर्व नाटक है। इसमें वीरेंद्र का सच्चा प्रेम, मयंकमंजरी का अपने सतीत्व-धर्म की रक्षा करना, दुर्जनवंधु को अपने पाप का फल मिलना, आनंदवल्लभ और अनुरागवल्लभ जैसे सच्चे मित्रों का होना और अंत में वीरेंद्र से मयंक का, आनंदवल्लभ से कामिनी का और अनुरागवल्लभ से सौदामिनी का विवाह होना आदि अनेक मनोहर विषय नाटकरूप में दिए गए हैं। पृष्ठ-संख्या १६०; मूल्य ।=)

गुरु गोविंदसिंहजी का जीवनचरित्र

जिस महात्मा ने मुसलमानों के साथ युद्ध कर हिंदू-धर्म की रक्षा की थी, जिस महापुरुष ने सनातन धर्म को इस्लाम के ज़ुल्मों से बचाया था, जिस वीर ने खालसा पंथ की नींव डाली थी, उन्हीं गुरु गोविंदसिंहजी का पवित्र जीवन-चरित्र इस पुस्तक में छापा गया है। हिंदू-मात्र को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। पृष्ठ-संख्या ६०; मूल्य =)

महात्माओं का जीवनचरित्र

स्वामी परमानंदजी रचित। इसमें दत्तात्रेयजी, शुकदेवजी, बुद्ध भगवान्, भरथरी, हरिश्चंद्र, गुरु नानक, सुकरात, अफ़लातून और फ़ैलकस आदि तेईस महात्माओं का जीवन-चरित्र है। यह ग्रंथ सर्वसाधारण को तो संग्रह करना ही चाहिए किंतु विशेषकर साधु, महात्माओं, वेदांतियों एवं भगवद्भक्तों के लिये बड़ा ही उपयोगी है। पृष्ठ-संख्या ३२४; मूल्य ॥=)

महात्मा साक्रटीज़

संपादक, चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा। इसमें महात्मा सुकरात की जीवनी के अतिरिक्त उसके प्रसिद्ध शिष्य अफ़लातून (प्लेटो) की लिखी अपॉलोजी, क्रीटो और फ़ीडो नामक तीन पुस्तकों का मर्मानुवाद भी है। पुस्तक के देखने से योरोपीय दर्शन के भीतरी रहस्य विदित होते हैं। वेदांत-ज्ञान से भरी हुई इस जीवनी को एक बार अवश्य पढ़िए। कागज़, छपाई, सफ़ाई अति उत्तम। पृष्ठ-संख्या २४६, मूल्य ॥)

शिवाजी का जीवनचरित्र

स्वामी परमानंदजी लिखित। इसमें वीर-शिरोमणि शिवाजी का जीवन-चरित्र है। शिवाजी ने किस प्रकार से दुष्ट औरंगज़ेब के दाँत खट्टे किए थे, किस प्रकार से दक्षिण में हिंदू-धर्म की रक्षा की थी, औरंगज़ेब की लड़की रोशनआरा को शिवाजी किस प्रकार से छीनकर ले गए थे, शाही फ़ौज को किस प्रकार से मारकर भगा दिया था आदि प्रश्नों के उत्तर इस वीर की जीवनी के पढ़ने से मिलेंगे। विद्यार्थियों और युवकों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। पृष्ठ-संख्या ६४; मूल्य =)

भारतीय चरिताम्बुधि

अँगरेज़ी में इसका नाम है A Dictionary of Indian Classical Characters. इसमें वैदिक-पौराणिक ऋषि, मुनि, राजा, रानी, स्थान तथा ऐतिहासिक पुरुषों एवं कवियों आदि का हिंदी-भाषा में संक्षिप्त विवरण है। हिंदी-संसार में यह एकदम नई चीज़ है। हिंदी-भाषा-भाषियों, लेखकों एवं विद्वानों के लिये यह कोष परम उपयोगी है। संग्रहकर्ता हैं चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा। बड़े साइज़ के प्रायः ७२२ पृष्ठों की सुंदर जिल्द बँधी हुई पुस्तक का मूल्य केवल ५॥)

श्रीधरभाषाकोष

इसमें संस्कृत भाषा के शब्द, शब्दार्थ, अनेकार्थ,

धातु, धात्वर्थ, शब्द-लक्षण और उनके प्रामाणिक उदाहरण सर्व-साधारण के उपकारार्थ दिए गए हैं। यह कोष सब कोषों से बड़ा और अति उत्तम है। इसकी हज़ारों कापियाँ आज तक बिक चुकी हैं। काग़ज़, छपाई आदि अति उत्तम। पृष्ठ-संख्या ७७०; मूल्य २॥); सजिल्द ३)

प्रताप

राय बहादुर वंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय के 'चंद्र-शेखर' नामक बँगला उपन्यास का हिंदी-अनुवाद। वंकिम बाबू के लिखे हुए उपन्यासों का लोग कितना आदर करते हैं—यह लिखने की हमें आवश्यकता नहीं। प्रताप का डूबना, चंद्रशेखर का शैवलिनी पर मोहित होना और उससे विवाह करना, लारेंस फ़ास्टर नामक एक अँगरेज़ का शैवलिनी को देखकर उस पर मोहित होना, मौक़ा देखकर उस अँगरेज़ का उसे उड़ा ले जाना, प्रताप की बहादुरी से शैवलिनी का छुटकारा पाना, शैवलिनी और प्रताप का गुप्त प्रेम, मुसल्मानों और अँगरेज़ों का घोर युद्ध और शैवलिनी के प्रेम में प्रताप का प्राण त्याग करना आदि कितनी ही अद्‌भुत चकरा देनेवाली घटनाओं से पूर्ण यह रोचक उपन्यास है। अनुवादक हैं पं० शुकदेव-प्रसादजी वाजपेयी। पृष्ठ-संख्या २३०; मूल्य ॥।)

बंगाली दुलहिन

वंगभाषा के सुप्रसिद्ध लेखक बाबू वंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय के "देवी चौधरानी" का हिंदी-अनुवाद। प्रफुल्ल की दीन अवस्था, अपने ससुर—हरिवल्लभ—द्वारा प्रफुल्ल का ससुराल से निकाला जाना, यकायक उसके भाग्य का पलटा खाना, डाकू होकर भी भवानी पाठक की ईमानदारी और सचाई, कुछ समय बाद प्रफुल्ल का रानी बनना, अपनी बुद्धिमानी और चतुराई से अपने दुष्ट ससुर की जान बचाना, ब्रजेश्वर का अपनी स्त्री—प्रफुल्ल—को रानीरूप में न पहिचानना, बिना खून-ख़राबी के ही अपनी चालाकी से रानी का अँगरेज़ी फ़ौज पर विजय प्राप्त करना और अंत में अनेक गुप्त रहस्यों का प्रकट होना आदि अनेक अद्भुत चकरा देनेवाली घटनाओं से भरा हुआ यह शिक्षाप्रद गार्हस्थ्य उपन्यास है। एक बार आरंभ कर, बिना समाप्त किए छोड़ने को जी नहीं चाहता। अनुवादक हैं पं० शुकदेवप्रसादजी वाजपेयी। पृष्ठ-संख्या १६८; मूल्य ॥।)

मृणालिनी

वंगदेश में रायबहादुर वंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय सी. आई. ई., एक बड़े मशहूर कवि और उपन्यास-लेखक हो गए हैं। उन्हीं के 'मृणालिनी' नामक ग्रंथ का यह हिंदी-अनुवाद है। बंगाल में इस उपन्यास का बड़ा आदर है और इसकी घटनाएँ बड़ी ही महत्त्व-पूर्ण हैं। हेमचंद्र की वीरता, मृणालिनी का सच्चा प्रेम, वामकेश की दुष्टता, पशुपति का अपने स्वामी—राजा—को धोखा देना व यवन-सेनापति से मिलना, बुरे कर्मों का बुरा परिणाम, पति के दुष्ट होने पर भी मनोरमा का सती होना और अंत में हेमचंद्र और मृणालिनी का मिलाप—ऐसी-ऐसी अनेक चकरा देनेवाली अपूर्व घटनाओं का समावेश इसमें किया गया है। यह उपन्यास इतना रोचक और चित्ताकर्षक है कि जब तक आप इसे आख़िर तक न पढ़ लेंगे तब तक आप खाना-पीना भूल जायँगे। अनुवादक हैं पं० शुकदेवप्रसादजी वाजपेयी। पृष्ठ-संख्या १३०; मूल्य ॥=)

मार आस्तीन

बाबू वंकिमचंद्र चटरजी के मशहूर नाविल 'विषवृक्ष' का हिंदी-अनुवाद। यह गार्हस्थ्य

उपन्यास है। इसके पढ़ने से मालूम होता है कि जो मनुष्य अपनी विवाहिता स्त्री को छोड़ किसी दूसरी स्त्री से प्रेम करने लगता है उसका नतीजा कितना बुरा होता है। नगेंद्र से कुंदन की भेंट, ताराचरण से कुंदन का विवाह होना, दुर्भाग्यवश कुंदन का विधवा होना, नगेंद्र की कुंदन पर नज़र पड़ना और उससे विवाह करना, सूरजमुखी का दुःखी होकर घर छोड़ना, नगेंद्र का उसके विरह में पागल होना और अंत में सूरजमुखी से पुनः मिलाप होना आदि कितनी ही विचित्र घटनाओं का समावेश किया गया है। यह उपन्यास इतना रोचक है कि एक बार आरंभ करने पर छोड़ने को जी नहीं चाहता। पृष्ठ-संख्या ३४५; दोनों भागों का मूल्य १॥)

अयोध्याविंशतिका

पं० उमापतिजी रचित। इसमें उक्त पंडितजी ने भगवान् रामचंद्र की जन्मभूमि—अयोध्या—की स्तुति बीस सुललित श्लोकों में लिखी है। पृष्ठ-संख्या २२; मूल्य)॥

कथा सरित्सागर भाषा

पं० कालीचरण व पं० क्षमापति द्वारा अनुवादित। मूलग्रंथ संस्कृत में है। हिंदी-भाषा-भाषी भी इस ग्रंथ की कथाओं को पढ़ लाभ उठावें, यही समझकर इसका अनुवाद हिंदी-भाषा में कराया गया है। इसमें जितनी भी कथाएँ हैं उन सब से अनायास ही अपूर्व शिक्षा प्राप्त होती है। यह ग्रंथ बहुत ही सुंदर अक्षरों में हमारे यहाँ छपकर तैयार है। पृष्ठ-संख्या ७४०; मूल्य ३॥)

पद्मावत भाषा

छंदबद्ध। मूल पुस्तक उर्दू में है, जिसे शेरशाह बादशाह के समय में मुहम्मद जायसी ने लिखा था। इसमें प्रसिद्ध कहानी राजा रत्नसेन और पद्मावत की है। यह कहने को कहानी है किंतु इसमें दिखलाया गया है यह संसार असत्य है; केवल परमेश्वर का नाम ही सच्चा है। प्रत्येक पृष्ठ के चरण में कठिन-कठिन शब्दों के अर्थ भी दे दिए गए हैं। सर्व-साधारण ने इस पुस्तक को इतना पसंद किया है कि हाल ही में इसका छठा संस्करण हुआ है। इसका उलथा उर्दू से हिंदी में लाला रघुवरदयालजी ने किया है। पृष्ठ-संख्या ३१४; मूल्य ॥=)

सहस्ररजनीचरित्र (अलिफ़लैला)

वैकुंठवासी पं० प्यारेलालजी द्वारा अनुवादित। यह प्रसिद्ध पुस्तक है। इसमें कितने ही अच्छे-अच्छे क़िस्से हैं मगर शहरयार और शाहज़माँ, सिंदबाद जहाज़ी, अलादीन और विचित्र दीपक एवं अलीबाबा और चालीस चोर आदि के क़िस्से बड़े ही मज़ेदार और दिलचस्प हैं। स्थान-स्थान पर सुंदर चित्र भी दिए गए हैं। पृष्ठ-संख्या ६१०; मूल्य ४)

चतुर्वेदी संस्कृत-हिंदी कोष

संग्रहकर्ता हैं हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक पं० द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी। इसमें अकारादिक्रम से शब्द लिखे हैं और पुंलिंग, स्त्रीलिंग व नपुंसकलिंग लिखने के बाद हिंदी के कितने ही पर्यायशब्द दिए गए हैं अर्थात् एक-एक संस्कृत शब्द के जितने भी अर्थ होते हैं वे सब हिंदी में दिए हुए हैं। यह कोष संस्कृत की परीक्षा पास करनेवालों, पंडितों, विद्वानों, काव्यानुरागियों एवं लेखकों के लिये बड़ा ही उपयोगी है। सुंदर मनमोहिनी जिल्दवाली पुस्तक का मूल्य केवल ३)

सामुद्रिकशास्त्र सटीक

पं० शक्तिधरजी रचित। भाषाटीका-सहित। भविष्यपुराण, गरुड़पुराण, स्कंदपुराण, वाल्मीकीय रामायण तथा अँगरेज़ी, फ़ारसी, बँगला व

मरहठी आदि भाषाओं की पुस्तकों की सहायता लेकर, यह अपूर्व 'सामुद्रिकशास्त्र' तैयार किया गया है। यह ग्रंथ चार अंकों में विभक्त है। प्रथम अंक में नख से लेकर शिखा पर्यंत नर-नारीगणों के लक्षण, छायाविचार और आयु आदि का विचार सविस्तार वर्णन किया गया है। द्वितीयांक में करतलों के बावन उदाहरण वर्णित हैं। तृतीयांक में भालरेखा के अनेकानेक उदाहरण आदर्शित किए गए हैं और चतुर्थांक में स्वप्नाध्याय, मृत्युसूचक शकुनाध्याय और शिवस्वरोदय आदि कितने ही विषय हैं। जो मनुष्य भविष्यत् की बातें जानना चाहते हैं, जो घर बैठे अनायास ही बहुत-सा रुपया पैदा करना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि इस अमूल्य, अद्वितीय पुस्तक को अवश्य देखें। पृष्ठ-संख्या ४७८; मूल्य २॥)

अर्कप्रकाश सटीक

रावणाचार्य कृत। भाषाटीका-सहित। इसमें संपूर्ण ओषधियों के अर्क निकालने की विधि और अनुपान के साथ समस्त रोगों पर उनका प्रयोग और धातुओं की मारण-शोधन-विधि आदि कितने ही विषय बड़ी उत्तमता से दिए गए हैं। पृष्ठ-संख्या १७२; मूल्य ।≈)

चरकसंहिता

सचित्र-भाषाटीका-सहित। यह वही चरकसंहिता है जो वैद्यक-ग्रंथों में अतीव प्रसिद्ध है। जो अच्छे वैद्य हैं, उन सब के पास यह प्रसिद्ध ग्रंथ अवश्य पाया जाता है। चरक के आठों स्थान एक से एक उत्तम हैं, किंतु चिकित्सा-स्थान सब से श्रेष्ठ है। इसमें ऐसी-ऐसी उत्तम ओषधियाँ हैं, जिनके सेवन करने से मनुष्य निस्संदेह दुष्ट रोगों से, सहज ही में, छुटकारा पा जाता है। इस ग्रंथ में दो भाग हैं। एक में सूत्रस्थान, निदानस्थान, विमानस्थान, शारीरकस्थान और इंद्रियस्थान और दूसरे में चिकित्सास्थान, कल्पस्थान और सिद्धिस्थान हैं। प्रत्येक भाग के आरंभ में सर्व-साधारण के सुभीते के लिये विषय-सूची भी लगा दी गई है। वैद्यमात्र को यह ग्रंथ अवश्य संग्रह करना चाहिए। बड़े साइज़ के १५२० पृष्ठों की सुंदर जिल्द बँधी हुई पुस्तक का मूल्य, सर्व-साधारण के सुभीते के लिये, केवल ७॥) रक्खा गया है।

नयनानंदबोधिनी सटीक

पं० कालीचरण वैद्य कृत। भाषाटीका-सहित। चरक, सुश्रुत, वाग्भट, हारीत, धन्वंतरि और वैद्यरत्नाकर आदि ग्रंथों का सार लेकर, समस्त प्रकार के आँखों के रोग दूर करने के उपाय और सैकड़ों आज़माए हुए अचूक लटके दिए गए हैं; जिन्हें प्रायः चक्षुरोग होता रहता है, उन्हें चाहिए कि इस अपूर्व पुस्तक को अवश्य देखें और लाभ उठावें। पृष्ठ-संख्या २२२; मूल्य ॥।)

भावप्रकाश सटीक

तीन खंडों में। वैद्यवर भावमिश्र संगृहीत तथा पं० कालीचरणजीकृत भाषाटीका-सहित। सृष्टि का क्रम; अन्न, जल, दूध, दही आदि के गुण; पारा, हरताल, मैनसिल आदि शोधने की विधि; शूल, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रमेह, गलगंड, वमन, प्यास और मूर्च्छा आदि संपूर्ण रोगों की अति उत्तम ओषधियाँ इसमें छाँट-छाँटकर दी गई हैं। संस्कृतज्ञ विद्वानों एवं सद्वैद्यों को इसे अवश्य संग्रह करना चाहिए। काग़ज़ भी खूब ही चिकना और उम्दा लगाया गया है। छपाई सफ़ाई अति उत्तम। बड़े साइज़ के १२२८ पृष्ठों के पोथे का मूल्य केवल ७॥) रक्खा गया है।

भैषज्यरत्नावली भाषा

वैद्यक में यह प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसमें ज्वर, पांडुरोग, आमाशयरोग, रक्तपित्त, संग्रहणी, कृमिरोग, राजयक्ष्मा, खाँसी, हिचकी, प्रमेह, कुष्ठ, उन्माद, नेत्ररोग, मुखरोग, स्त्रीरोग, बालरोग और मूत्रकृच्छ्र आदि अनेक रोगों की चिकित्सा एवं अनेक प्रकार के लेप, काढ़, तेल व घृत आदि बनाने की विधि, अति उत्तमता से विस्तार-पूर्वक सरल भाषा में दी गई हैं। संसार में कोई ऐसा रोग नहीं, जिसकी फलप्रद, अचूक औषधि इसमें न हो। मनुष्य इस एक ही ग्रंथ के मनन करने से अच्छा वैद्य बन सकता है। सर्व-साधारण ने इसे इतना पसंद किया है कि आज तक इसकी हज़ारों कापियाँ बिक चुकी हैं। पृष्ठ-संख्या ४३२; मूल्य २)

माधवनिदान सटीक

पं० महेशदत्तकृत भाषाटीका-सहित। इसमें ज्वर, कास, श्वास और मूत्रकृच्छ्र आदि समस्त रोगों के लक्षण, कारण, उत्पत्ति व संप्राप्ति इत्यादि का वर्णन भली प्रकार किया गया है। निदान-ग्रंथों में माधवनिदान सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है; अतएव हरएक वैद्य को यह अपूर्व ग्रंथ अवश्य संग्रह करना चाहिए। इस बार इसका नूतन संस्करण छपा है। प्रत्येक विषय अलग-अलग कर दिए हैं और मूल तथा टीका का संशोधन भी किया गया है। मूल्य १।)

वंगसेनसंहिता सटीक

श्रीमद्भिषग्वर्य वंगसेन रचित। वैद्यक-ग्रंथों में यह ग्रंथ सब से श्रेष्ठ है। इस एक ही ग्रंथ के पढ़ने से आप निस्संदेह वैद्यराज बन सकते हैं। इसमें ज्वर, अतिसार, ग्रहणी, बवासीर, अजीर्ण, कृमि, पांडु, रक्तपित्त, मूत्राघात, कुष्ठ, नेत्ररोग, बालरोग और स्त्रीरोग आदि रोगों की चिकित्सा, निदान और लक्षण विस्तार-पूर्वक दिए गए हैं। इसमें एक-एक रोग की कई-कई अचूक औषधियाँ दी गई हैं। इसके सिवा ऋतु-चर्या; स्वास्थ्य-संबंधी नियम; चौलाई, सरसों, लहसुन व मूली आदि शाकों के गुण; दही, दूध, मट्ठा आदि पानीय द्रव्यों के गुण; कालज्ञान एवं मूत्रपरीक्षा आदि अनेक विषय हैं। पुस्तक प्रत्येक मनुष्य के देखने-योग्य है। कागज़, छपाई, सफ़ाई अति उत्तम। बड़े साइज़ के १००२ पृष्ठोंवाली सुंदर जिल्द बँधी हुई पुस्तक का मूल्य सर्व-साधारण के सुभीते के लिये केवल ६) रक्खा गया है।

बृहत्पाकावली सटीक

राजवैद्य पं० गंगाप्रसादजी द्वारा संगृहीत। इसमें सुपारीपाक, विजयापाक, सौभाग्यशुंठी-पाक, गोक्षुरपाक, सालिमपाक, आम्रपाक, मुसली-पाक और जातीफल आदि अनेक पाकों के बनाने की विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन है। कौन-सा पाक किस रोग में खाया जाता है—यह भी इसमें अच्छी तरह बतलाया गया है। जो मनुष्य वैद्यों की खुशामद करना नहीं चाहते, अथवा हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ होकर संसार में बड़े-बड़े काम कर, धन और यश के भागी होना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि इस पुस्तक को अवश्य खरीदें। पृष्ठ-संख्या ६८; मूल्य केवल ॥)

शार्ङ्गधरसंहिता

श्रीशार्ङ्गधरकृत भाषाटीका-सहित। यह प्रसिद्ध ग्रंथ है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि अनेक वैद्यक-ग्रंथों के मत से सर्व प्रकार के रोगों की उत्पत्ति, लक्षण व प्रतीकार एवं बहुत-से आज़माए हुए नुसखे इसमें लिखे गए हैं। हमारे यहाँ यह ग्रंथ बड़ी शुद्धतापूर्वक छपा गया है; और सर्व-

साधारण के सुभीते के लिये, हमने इसका दाम बहुत ही कम रक्खा है । पृष्ठ-संख्या ३३४; मूल्य ॥।≈)

हंसराजनिदान

कविवर हंसराजजी रचित । इसमें ज्वर, संग्रहणी, बवासीर, भगंदर, राजयक्ष्मा, तृष्णा और मूर्च्छा आदि अनेक रोगों के निदान और लक्षण; नाड़ीपरीक्षा एवं साध्यासाध्य का ज्ञान इत्यादि अनेक विषय वर्णित हैं । भाषाटीकाकार हैं माथुर दत्तरामजी । इसका भी संशोधन कराकर नूतन संस्करण प्रकाशित किया गया है । पृष्ठ-संख्या १६०; मूल्य ॥)

अमृतसागर भाषा

स्वर्गवासी जयपुराधीश सवाई प्रतापसिंहजी की आज्ञानुसार चरक, सुश्रुत, वाग्भट, भावप्रकाश आदि अनेक प्रसिद्ध वैद्यक-ग्रंथों का सारांश लेकर, सद्वैद्यों द्वारा यह ग्रंथ रचा गया है । इसमें यंत्र, मंत्र, तंत्र के सिवा, संपूर्ण रोगों की उत्पत्ति, लक्षण और उनके उपाय एवं अनेक प्रकार के रस, चूर्ण, क्वाथ, अवलेह, तैल व घृत आदि के बनाने की विधि दी गई है । छोटे-छोटे गाँवों में जहाँ हकीम डॉक्टर नहीं हैं वहाँ के निवासियों को इसे अवश्य अपने पास रखना चाहिए । सर्व-साधारण ने इसे इतना पसंद किया है कि आज-तक इसकी हज़ारों कापियाँ बिक चुकी हैं । इस बार इसको संशोधन कराकर बहुत ही उपयोगी बना दिया है । छपाई-सफ़ाई अति उत्तम । पृष्ठ-संख्या ७३०; मूल्य २।); सजिल्द ३)

इलाजुलगुरबा भाषा

इसमें यूनानी हिकमत और वैद्यक की रीति से संपूर्ण रोगों के निदान, लक्षण और उपाय सुगम और सरल रीति से वर्णन किए गए हैं । पुस्तक में खासकर ग़रीब आदमियों के लिये वह नुसखे छाँट-छाँटकर लिखे गए हैं जो कौड़ियों में आवें और रुपयों का काम दें । अनुवादक हैं स्वर्गवासी पं० प्यारेलालजी, जिन्होंने उर्दू से हिंदी-भाषा में अनुवाद किया है । पृष्ठ-संख्या ३८६; मूल्य १≈)

गदतिमिरभास्कर

आजतक जितने वैद्यक-ग्रंथ नवीन छपे हैं, उन सबमें यह शिरोमणि है । चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि अनेक छोटे-मोटे ग्रंथों को मथकर एवं अनेक यूनानी तथा डॉक्टरी ग्रंथों की सहायता लेकर, पं० गौरीशंकर शर्मा राजवैद्य ने, हिंदी भाषा में, इस अपूर्व ग्रंथ की रचना की है । यदि आप सदैव स्वस्थ रहना चाहते हैं, यदि आप डॉक्टरों, हकीमों और वैद्यों का वारंवार मुँह देखना नहीं चाहते हैं, यदि आप स्वयं एक सद्वैद्य बन-कर अपने पड़ोसियों की प्राण-रक्षा करना चाहते हैं, तो थोड़ा-सा लोभ त्यागकर इस ग्रंथ को अवश्य ख़रीदें । आयुर्वेद की उत्पत्ति, दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या, पंचकषाय, चूर्ण, गुटी, अव-लेह, घृत, तैल, अरिष्ट, आसव, धातु, उपधातु, विष, उपविष आदि शोधने की विधि एवं मंजन और नेत्रप्रसादनादि कितने ही लेप यह सब प्रथम खंड में हैं । मनुष्य-शरीर में जितने भी रोग होते हैं, उन सब के लक्षण, समयानुसार चिकित्सा, विस्फोटकादिरोग, विषचिकित्सा, रसायन और कल्प आदि दूसरे, तीसरे और चतुर्थ खंड में विस्तारपूर्वक दिए गए हैं । काग़ज़, छपाई आदि अति उत्तम । बड़े साइज़ के ११६६ पृष्ठों के पोथे का मूल्य केवल ६) रक्खा गया है ।

माधुरी, महिला-माला, बाल-विनोद-वाटिका, चवन्नी-चरितावली,

भार्गव-पत्रिका आदि के संपादक,

हिंदी के सुलेखक और सुकवि,

पं० दुलारेलाल भार्गव

द्वारा संपादित

गंगा-पुस्तकमाला के दो नए उत्कृष्ट ग्रंथ

इँगलैंड का इतिहास

[लेखक—सुप्रसिद्ध हिंदी-लेखक प्रोफ़ेसर प्राणनाथ विद्यालंकार]

इँगलैंड-जैसे उन्नत देश का इतिहास हम पराधीन भारत-निवासियों के लिये कितना शिक्षाप्रद, कितना उपकारक और कितना सच्चा मार्ग-दर्शक हो सकता है, यह कहना अनावश्यक है। कारण, आर्थिक स्वतंत्रता प्राप्त करके ही समस्त स्वतंत्रताएँ प्राप्त की जा सकती हैं और इस रहस्य का उद्घाटन यदि कोई देश कर सकता है, तो वह एकमात्र इँगलैंड ही है।

दासता की विकट बेड़ियों में जकड़ी हुई—परदेशियों के प्रबल पैरों से कुचली हुई जातियों के लिये इस "आर्थिक स्वतंत्रता"-रूपी हथियार का एकमात्र आविष्कारकर्ता इँगलैंड ही है। अतः स्वतंत्रता-प्रिय आर्य-जाति के लिये यह "इँगलैंड का इतिहास" बहुत कुछ लाभदायक हो सकता है। अँगरेज़ी की ढेरों प्रसिद्ध-प्रसिद्ध पुस्तकों को पढ़कर और उनका अवलंब लेकर इस ग्रंथ-रत्न की रचना की गई है। भारतवासियों के उपयोग की दृष्टि से तो इसके जोड़ का इँगलैंड का इतिहास किसी भी भाषा में नहीं मिल सकता।

यह ग्रंथ दो भागों में विभक्त है। पहला भाग छप चुका है। यह ग्रंथ हिंदी-साहित्य के गौरव को बढ़ानेवाला है। प्रत्येक लाइब्रेरी और पुस्तकालय में इसकी एक-एक प्रति रहनी चाहिए। कॉलेज के विद्यार्थियों के लिये तो यह ग्रंथ अमूल्य ही है।

हर्ष का विषय है कि इस उत्कृष्ट और अपूर्व ग्रंथ को हिंदी-साहित्य-सम्मेलन, प्रयाग ने अपनी मध्यमा-परीक्षा के कोर्स में नियत किया है। काग़ज़ बढ़िया। छपाई मनोहारिणी। मूल्य लगभग २)

पूर्व भारत

[लेखक—हिंदी के प्रसिद्ध विद्वान्, कवि-श्रेष्ठ पं० श्यामविहारी मिश्र और पं० शुकदेवविहारी मिश्र]

यह एक नाटक है। पौराणिक है। महाभारत के कथानक को लेकर इसकी रचना हुई है। उत्तरा-विवाह तक की कथा इसमें आ गई है। यह किसी बँगला-पुस्तक का अनुवाद नहीं, एकदम मौलिक है। मिश्र-बंधु-विनोद, हिंदी-नवरत्न आदि बीसों उत्कृष्ट ग्रंथों के रचयिता, हिंदी के मौलिक लेखक मिश्र-बंधुओं ने इसकी भी रचना की है। मिश्र-बंधु एक साथ हिंदी के कवि, काव्य-मर्मज्ञ, इतिहास-लेखक, समालोचक, नाट्यकार, दार्शनिक और प्रबंध-लेखक हैं। विद्वान् लेखकद्वय ने नाटक के मुख्य पात्रों के चरित्रों को उज्ज्वल बनाने में बड़ा प्रयास किया है। मानव-प्रकृति के विश्लेषण में जो निपुणता प्रकट की है, उससे भिन्न-भिन्न स्वभाववाले पात्रों के चरित्र एक-दूसरे की रगड़ से अत्यंत स्पष्ट हो उठे हैं। विशुद्ध कल्पना की भी इस नाटक में कमी नहीं है। कई चरित्र काव्य के हिसाब से कल्पित किए गए हैं। यह पुस्तक कवित्व से कमनीय, नाटकत्व से निर्मल, सद्भावों से सुंदर और मौलिकता से मंडित है। काग़ज़ बढ़िया और छपाई भी बहुत ही सुंदर। मूल्य सादी ॥।=), सजिल्द १।)

कवि-सम्राट् पं० श्रीधर पाठक का भारत-गीत, सुलेखक पं० चंडीप्रसाद बी० ए० का नंदन-निकुंज और इँगलैंड के इतिहास का दूसरा भाग ये तीन पुस्तकें आगामी मास में प्रकाशित होंगी।

मिलने का पता—संचालक गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ

गंगा-पुस्तकमाला के कुछ अन्य उत्कृष्ट ग्रंथ

१—मूर्ख-मंडली

(रचयिता—कविरत्न पं० रूपनारायणजी पांडेय)

स्वर्गीय सुप्रसिद्ध नाटककार श्रीद्विजेंद्रलालराय एम्० ए० के अत्यंत मनोरंजक और सभ्य हास्य-रस-पूर्ण प्रहसन के आधार पर इसकी रचना की गई है। इसका आदर हिंदी-संसार ने उनके सभी नाटकों से अधिक किया है। इसे पढ़कर मारे हँसी के आप लोट-पोट हो जायँगे! हम दावे के साथ कहते हैं कि इससे बढ़कर मनोरंजक प्रहसन आपने हिंदी में न पढ़ा होगा। सभी हिंदी-पत्रों और विद्वानों ने इसकी मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। थोड़े ही समय में इसके तीन संस्करण बिक चुके हैं। चतुर्थावृत्ति छपकर तैयार है। छपाई-सफ़ाई बहुत उम्दा है। सजिल्द का मूल्य १), सादी का ॥=)

२—देव और विहारी

(लेखक—काव्य-मर्मज्ञ पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०)

देव और विहारी दोनों कवियों की तुलनात्मक समालोचना इस ग्रंथ में की गई है। इस पुस्तक के विषय में हिंदी-संसार में जितनी हलचल हुई है, उतनी किसी भी काव्य-ग्रंथ पर नहीं हुई। भाषा बड़ी सजीव और लेख-प्रणाली परम मनोरंजिनी है। पुस्तक क्या है, कविता की करामात और सभा-चातुरी की शिक्षा की कुंजी है। मूल्य सजिल्द २), सादी १॥=)

३—वंकिमचंद्र चटर्जी

(लेखक—सुप्रसिद्ध कवि पं० रूपनारायण पांडेय)

इस पुस्तक में भारत के सुप्रसिद्ध उपन्यास-लेखक स्वर्गीय राय वंकिमचंद्र चटर्जी बहादुर सी० आई० ई० का जीवन-वृत्तांत है। इसके लिये सभी साहित्य-प्रेमी वर्षों से लालायित हो रहे थे। इस पुस्तक के संबंध में केवल इतना ही कह देना पर्याप्त है कि इसके मुक़ाबिले के बहुत कम जीवन-चरित निकलेंगे। अनेक हिंदी-समाचार-पत्रों ने इस पुस्तक की मुक्त कंठ से प्रशंसा की है। मूल्य १≋)

४—देवी द्रौपदी

(लेखक—कविवर पं० रामचरित उपाध्याय)

यह पुस्तक देवी द्रौपदी का जीवन-चरित है। आख्यायिका के ढंग पर लिखा गया है, जिससे इसके पाठ में उपन्यास, प्राचीन इतिहास और जीवन-चरित्र तीनों के पढ़ने का आनंद आता है। यों तो यह पुस्तक समान रूप से सब के लिये शिक्षाप्रद है, पर स्त्रियों के लिये यह पुस्तक अमूल्य रत्न है। मूल्य सजिल्द ॥=), सादी ।=)

५—ख़ाँजहाँ

(लेखक—कविश्रेष्ठ पं० रूपनारायणजी पांडेय)

यह एक ऐतिहासिक नाटक है और इसके संबंध में हम अधिक न कहकर केवल इतना ही कहना पर्याप्त समझते हैं कि हिंदी-प्रेमियों ने इस पुस्तक को यहाँ तक अपनाया है कि थोड़े ही समय में इसके दो संस्करण हाथों हाथ बिक गए और अब तृतीयावृत्ति छप रही है। मूल्य सजिल्द १=), सादी ॥।=)

६—केशवचंद्र सेन

(लेखक—सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी "एक भारतीय हृदय")

यह पुस्तक एक महापुरुष, सुप्रसिद्ध समाज-सुधारक और ब्राह्म-धर्म के धुरंधर प्रचारक महात्मा केशवचंद्र सेन की जीवनी है। 'प्रवासी भारतवासी' नामक उत्कृष्ट ग्रंथ के रचयिता, हिंदी के सुलेखक "एक भारतीय हृदय" ने इसकी भी रचना की है। इस पुस्तक की लेखन-शैली और भाषा इतनी उत्कृष्ट है कि हिंदी-साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान्, प्रतिभाशाली लेखक और धुरंधर समालोचक पं० पद्मसिंहजी शर्मा ने प्रांतीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन में अपने सभापति की हैसियत से दिए हुए भाषण में इसकी बड़ी तारीफ़ की थी। छपाई उत्कृष्ट। मूल्य सजिल्द १॥) सादी १≋)

७—कृष्णकुमारी

(अनुवादकर्ता—कविवर पं० रूपनारायणजी पांडेय)

यह बँगला के सर्वश्रेष्ठ काव्य "मेघनाद-वध" के रचयिता महाकवि माइकेल मधुसूदनदत्त के सब से बढ़िया ऐतिहासिक नाटक "कृष्णाकुमारी" का अनुवाद है। इसलिये इसके बारे में अधिक लिखने की ज़रूरत नहीं। लेखक और अनुवादक के नाम ही इसके अच्छे होने के स्पष्ट प्रमाण हैं। मूल्य सादी ॥।), सजिल्द १)

और पुस्तकों के लिये ~) का टिकट भेजकर बड़ा सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइए!

सुप्रसिद्ध

गंगा-पुस्तकमाला

सर्वश्रेष्ठता और विशेषताएँ !

सुप्रसिद्ध समालोचकों और दिग्गज विद्वानों द्वारा प्रशंसित, हिंदी-माता के गले का हार, हिंदी-भाषा-भाषियों की लाड़िली, हिंदी-संसार में अद्वितीय "गंगा-पुस्तकमाला" में सर्वोत्कृष्ट पुस्तकें निकली हैं। इसकी सर्वश्रेष्ठता का कारण इसकी नीचे-लिखी विशेषताएँ हैं—

(क) इस माला के लिये ग्रंथ बहुत सावधानी से और विचार-पूर्वक चुने जाते हैं। जो ग्रंथ भाषा और भाव दोनों में उच्च श्रेणी के, उदार भावों से परिपूर्ण, मानव-चरित्र को उन्नत करनेवाले और वृद्ध, युवक और वनिता सभी के लिये उपयोगी होते हैं, वही इसमें प्रकाशित किए जाते हैं। इसमें गंदे ग्रंथों की गुज़र नहीं होने पाती।

(ख) हिंदी में जिन विषयों के ग्रंथों की कमी है, इसमें प्रधानतः उन्हीं विषयों के ग्रंथ लिखवाकर निकाले जाते हैं।

(ग) इसके लेखक प्रतिभा-संपन्न, सिद्ध-हस्त और अपने-अपने विषय के पूर्ण ज्ञाता हैं। वे हिंदी-संसार में प्रायः अच्छी प्रसिद्धि भी प्राप्त कर चुके हैं।

(घ) छपने से पहले इसके ग्रंथों की भाषा खूब देख-रेख के साथ सरल, सरस, मधुर और मुहाविरेदार कर दी जाती है। ग्रंथ बहुत शुद्ध छपते हैं। संशोधन और संपादन का कार्य बड़ी योग्यता और परिश्रम के साथ किया जाता है।

(ङ) इसकी पुस्तकें टाइप, काग़ज़, छपाई-सफ़ाई और जिल्द-बंदी आदि सभी बातों में अनुपम होती हैं। फिर भी मूल्य अपेक्षाकृत कम रक्खा जाता है।

(च) वर्तमान पुस्तक-मालाओं में इसका प्रचार भी सब से अधिक है। थोड़े ही समय में इसके अधिकांश ग्रंथों के ३-३, ४-४ और ५-५ संस्करण हो चुके हैं।

(छ) इसके स्थायी ग्राहकों को जितने सुभीते हैं, उतने और किसी भी माला के स्थायी ग्राहकों को नहीं हैं। स्थायी ग्राहकों के लिये नियम देखिए, जो आगे दिए जायँगे।

स्थायी ग्राहक बनिए !

यों तो इस 'माला' के स्थायी ग्राहकों की तादाद इस समय कम नहीं है—यह तादाद १००० से कहीं ऊपर पहुँच चुकी है—इतने स्थायी ग्राहक और किसी भी पुस्तकमाला के नहीं हैं, तो भी अभी इसके अधिक प्रचार की ज़रूरत है—सुचारु-रूप से 'माला' को चलाते रहने के लिये **हमें कम-से-कम १००० ही स्थायी ग्राहक और चाहिए।** अतएव हिंदी-प्रेमी सज्जनों को चाहिए कि अपना और अपने इष्ट-मित्रों का नाम इस माला के स्थायी ग्राहकों में लिखाएँ और इस प्रकार इस पुनीत कार्य में हमारा हाथ बँटाएँ। यदि हमें पर्याप्त सहायता मिली, जैसी कि, आशा है, अवश्य ही मिलेगी, तो आप देखेंगे कि हम कितनी जल्द और कितने उत्तमोत्तम ग्रंथ-रत्न आपकी सेवा में उपस्थित करते हैं। हमें पूरा विश्वास है कि हिंदी-प्रेमी सज्जन हमारे इस नम्र निवेदन पर अवश्य ही पूर्ण सहानुभूति के साथ दृष्टि-पात करेंगे।

हमारे पास इस वक़्त ८० से ऊपर उत्कृष्ट, अपूर्व और अमूल्य ग्रंथ-रत्न प्रकाशनार्थ पड़े हुए हैं। कई अद्वितीय, मार्मिक और अपने ढंग की अनोखी पुस्तकें हम लिखवा भी रहे हैं। हम भरसक कोशिश कर रहे हैं कि शीघ्र-शीघ्र ही पुस्तकें प्रकाशित करें। हमारा आदर्श—हमारी हार्दिक इच्छा तो यह है कि गंगा-पुस्तकमाला में प्रतिवर्ष ५० पुस्तकें प्रकाशित हों। परंतु हमारी सफलता एक-मात्र पुस्तकों की खपत पर ही निर्भर है। यदि हिंदी-हितैषी, गुणज्ञ, सहृदय सज्जन ज़रा-सी कोशिश करें, तो उनके लिये गंगा-पुस्तकमाला के १००० स्थायी ग्राहक और जुटा देना कुछ कठिन नहीं। आप स्वयं स्थायी ग्राहक बनिए और अपने इष्ट-मित्रों को भी आग्रह-पूर्वक स्थायी ग्राहक बनने के लिये प्रेरित कीजिए। आगे के पृष्ठ में दिया हुआ "स्थायी ग्राहक बनने का प्रार्थना-पत्र" भरकर भेजिए और भिजवाइए। आपकी इस भारी सहायता की हम उत्सुकता के साथ प्रतीक्षा कर रहे हैं।

छोटेलाल भार्गव बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी०

गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ

स्थायी ग्राहकों के लिये नियम

(क) स्थायी ग्राहक बनने की प्रवेश-फ़ी सिर्फ़ ॥) है।

(ख) पुस्तकें प्रकाशित होते ही—१० दिन पहले दाम आदि की सूचना दे देने के बाद—स्थायी ग्राहकों को २०) सैकड़ा कमीशन काटकर वी० पी० द्वारा भेज दी जाती हैं। यथा-संभव ३-४ पुस्तकें एक साथ भेजी जाती हैं, जिसमें डाक-ख़र्च में बचत रहे।

(ग) जो पुस्तकें माला से अलग निकलती हैं, उन पर भी स्थायी ग्राहकों को २०) सैकड़ा कमीशन दिया जाता है।

(घ) स्थायी ग्राहक जिस पुस्तक को चाहें लें, जिस पुस्तक को न चाहें न लें। यह उनकी इच्छा पर निर्भर है। वे चाहे जिस पुस्तक की चाहे जितनी प्रतियाँ और चाहे जब ऊपर-लिखे कमीशन पर मँगा सकते हैं।

(ङ) बाहर की सब पुस्तकें स्थायी ग्राहकों को ‐) रुपया कमीशन पर मिलती हैं।

(च) जो मनुष्य हमारे १२ स्थायी ग्राहक बनाते हैं और उनके प्रवेश-शुल्क के ६) हमारे पास भेज देते हैं, वे हमारे क्षमा-ग्राहक हो जाते हैं और उनके पास हम माला की प्रत्येक पुस्तक तब तक मुफ़्त भेजते रहते हैं, जब तक उक्त १२ सज्जन हमारे स्थायी ग्राहक बने रहते हैं।

(छ) जो सज्जन संवत् १९७९ और १९८० के अंदर ही हमारे कम-से-कम २५ स्थायी ग्राहक बनाएँगे, वे हमारे क्षमा-ग्राहक हो जाने के अतिरिक्त एक रजत-पदक के अधिकारी होंगे और उनमें से जो सज्जन सब से अधिक बनाएँगे, उन्हें रजत-पदक के स्थान पर स्वर्ण-पदक प्रदान किया जायगा।

स्थायी ग्राहक बनने का प्रार्थना-पत्र

प्रिय महाशय,

मैंने गंगा-पुस्तकमाला के नियम पढ़ लिए हैं। कृपया मेरा नाम इसके स्थायी ग्राहकों में लिख लीजिए और नीचे-लिखी पुस्तकें वी० पी० भेजकर अनुगृहीत कीजिए। प्रवेश-फ़ी के ॥) भी उसी में वसूल कर लीजिएगा—

१. ख़ाँजहाँ	॥।=)	२. केशवचंद्र सेन	१≶)	३. इँगलैंड का इतिहास (प्र०भा०)	२)
४. मूर्ख-मंडली	॥=)	५. देव और बिहारी	१॥=)	६. पूर्व भारत	॥।≶)
७. वंकिमचंद्र चटर्जी	१≶)	८. मंजरी	१≶)	९. कृष्णाकुमारी	॥।)
१०. देवी द्रौपदी	।=)	११. सुख तथा सफलता	≶)	१२. भगिनी-भूषण	=)

[जो पुस्तकें न मँगाना हों, कृपया उनके नाम काट दीजिए]

भवदीय—

[हस्ताक्षर कीजिए]—

हमारा पता—

....

....

[कृपया उपाधि-सहित अपना नाम और पता लिखिए]

हिंदुस्थान-भर में हिंदी-पुस्तकों की

सब से बड़ी दूकान

लखनऊ के सुप्रसिद्ध गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय के नाम से हिंदी-प्रेमी मात्र भली भाँति परिचित हैं। हिंदी-प्रचार के उच्च उद्देश से एवम् हिंदी-प्रेमियों के बहुत सुभीते के लिये इसमें माला की पुस्तकों के अतिरिक्त हिंदुस्थान-भर के हिंदी के सभी उत्कृष्ट पुस्तक-प्रकाशकों की सुंदर, उत्तमोत्तम पुस्तकों का संग्रह है। इतना बड़ा संग्रह आज तक किसी भी बुकसेलर ने नहीं किया। इसमें सभी प्रकार की राजनीतिक और राष्ट्रीय पुस्तकें, पौराणिक, ऐतिहासिक, सामाजिक और थिएट्रिकल नाटक, वंग-भाषा के सुप्रसिद्ध लेखक वंकिमचंद्र चटर्जी के उपन्यासों का हिंदी-अनुवाद, प्रसिद्ध लेखकों के मनोरंजक, शिक्षाप्रद, ऐतिहासिक, पौराणिक, राजनीतिक और सामाजिक उपन्यास तथा गल्पें, ऐयारी, तिलिस्मी, जादूगरी, जासूसी और डकैती आदि के मनोहर और उपदेश-पूर्ण उपन्यास, प्राचीन तथा वर्तमान कवियों के काव्य, समालोचना, कोष, छंद, अलंकार, रस, व्यंग्य, प्रहसन, हास्य, भ्रमण, इतिहास, स्त्रियोपयोगी, नवयुवकोपयोगी, बालकोपयोगी पुस्तकें, महात्माओं तथा श्रेष्ठ पुरुषों के जीवन-चरित्र, अध्यात्म, दर्शन, विज्ञान, अर्थ-शास्त्र, व्यापार, खेती, पशु-पालन, आरोग्य-चिकित्सा, वैद्यक तथा हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की परीक्षाओं के कोर्स इत्यादि की—सभी तरह की—पुस्तकें मौजूद हैं।

इस कार्यालय में २०० से ऊपर हिंदी-पुस्तक-प्रकाशकों के ग्रंथ बिक्री के लिये रहते हैं। उनमें से कुछ के नाम नीचे लिखे जाते हैं—

प्रकाशकों के नाम

१. गंगा-पुस्तकमाला
२. नवलकिशोर-प्रेस
३. हिंदी-ग्रंथ-रत्नाकर
४. हिंदी-पुस्तक-एजेंसी
५. बर्मन-कंपनी
६. इंडियन-प्रेस
७. काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा
८. श्रीवेंकटेश्वर-प्रेस
९. उपन्यास-बहार-आफ़िस
१०. लहरी-प्रेस
११. ज्ञान-मंडल
१२. विज्ञान-परिषद
१३. निर्णय-सागर-प्रेस
१४. लक्ष्मण-साहित्य-भंडार
१५. श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव
१६. गाँधी-हिंदी-पुस्तक-भंडार
१७. भारतीय पुस्तक-एजेंसी
१८. प्रताप-प्रेस
१९. बा० मैथिलीशरण गुप्त
२०. मध्यभारत-हिंदी-साहित्य-समिति
२१. सरस्वती-सदन
२२. साहित्योदय
२३. पं० बदरीनाथ भट्ट
२४. डॉक्टर महेशचरण सिंह
२५. पं० श्रीधर पाठक
२६. लाला रामनारायणलाल
२७. राधेश्याम-पुस्तकालय
२८. श्रीसुदर्शन-प्रेस
२९. राजपूत ए० ओ० प्रेस
३०. मनमोहन-पुस्तकालय
३१. हिंदी-साहित्य-मंदिर
३२. पं० नर्मदाप्रसाद मिश्र
३३. लालारामदयालअग्रवाल
३४. सुलभ-ग्रंथ-प्रचारक
३५. हिंदी-ग्रंथ-भंडार
३६. जासूस-कार्यालय
३७. हिंदी-मंदिर
३८. ग्रंथ-भंडार
३९. आर० डी० बाहिती
४०. नागरी-हितचिंतक-कार्यालय
४१. भीष्म-ब्रॉदर्स
४२. सरस्वती-भांडार
४३. भारत-गौरव-ग्रंथमाला
४४. तरुण भारत-ग्रंथावली
४५. खड्गविलास-प्रेस
४६. साहित्य-भवन
४७. ग्रंथ-माला-कार्यालय
४८. हिंदी-साहित्य-प्रचारक
४९. साहित्य-रत्न-भांडार
५०. हिंदी-साहित्य-भांडार
५१. हिंदी-पुस्तक-भांडार
५२. विज्ञान-हुनर-आफ़िस
५३. भारतीय ग्रंथ-माला
५४. श्रीमाधवप्रसाद
५५. गुजरात-आयुर्वेदिक औषधालय
५६. अभ्युदय-प्रेस
५७. गृहलक्ष्मी-कार्यालय
५८. जयदेव-ब्रॉदर्स
५९. साहित्य-सम्मेलन
६०. निहालचंद कंपनी
६१. हरप्रसाद-भागीरथ

उक्त सूची से पाठकों को ज्ञात हो गया होगा कि गंगा-पुस्तकमाला-कार्यालय ही देश-भर में एक ऐसी दूकान है, जहाँ सभी प्रकार की, सभी विषयों की, हिंदी-पुस्तकें मिल सकती हैं। इस कारण यहीं से हिंदी-पुस्तकें मँगाने में सबको सुबिधा तथा समय और रुपए की बचत हो सकती है और होती है। नीचे-लिखा पता नोट कर लीजिए—

डाक-व्यय के लिये ‐) का टिकट भेजकर बड़ा सूचीपत्र मुफ़्त मँगाइए!

संचालक गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, ३० अमीनाबाद पार्क, लखनऊ

केश-रचना

करत केस-रचना रुचिर पिय-स्वागत के काज ;
बेनी बाँधेहू बिना बाँधत रसिक-समाज ।

N. K. Press, Lucknow.

श्रीः

माधुरी

[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र, मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, सुधा, तिय-अधर-माधुरी धन्य ।
पै नव-रस-साहित्य की यह माधुरी अनन्य !

वर्ष १ खंड १ | भाद्रपद-शुक्ल ७, २९९ तुलसी-संवत् (१९७९ वि०)— २९ अगस्त, १९२२ ई० | संख्या २ पूर्ण संख्या २

आशीर्वाद

माधुरी भर दे मोद, उछाह; भुवन में भर दे० ।

[१]

बन मोहिनी बीन मोहन की छेड़ अलौकिक तान;
हृत्तंत्री के तार-तार में भर जावे उत्साह ॥
चतुर्दिक् भर दे० ॥

[२]

साज वृद्ध की मनोमोहिनी वाणी का वर वेष ।
बरस पड़े माधुर्य; लीन हो दीन-हीन की आह ॥
जगत् में भर दे० ॥

[३]

तेरे बल मन के बल जावें; रूठे, बिगड़े बंधु
पर-वशता के लिये स्वयं ही और न बनें सनाह ॥
हृदय में भर दे० ॥

[४]

जीवन-नभ में शांति-चाँदनी फिर छिटके; हो दूर
दबके, दबे, दहलते, दुर्बल, दीन देश का दाह ॥
देश में भर दे० ॥

[५]

बिखर-बिखरकर तंतु द्वेष के होवें तेरह-तीन ।
प्रेम-सहित हम सबकी प्रति-मति प्रण को सके निबाह ॥
लोक में भर दे० ॥

[६]

भारत पर हम भारत-वासी वारें तन, मन, प्राण;
'विकसित' मधुर भावनाओं का कर दे प्रबल प्रवाह ॥
माधुरी भर दे० ॥

जगमोहन (विकसित)

माधुरी
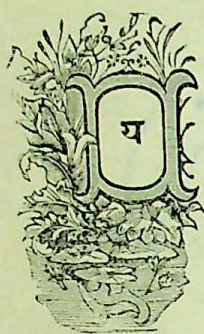
यह संसार असार है ; ऐसा वेदांतियों का विचार है । उनके लिये ईश्वर भी निराकार है ; किंतु हमारे साहित्य-संसार का ईश्वर साकार है । ज्ञानियों का संसार माया का बाज़ार है : हम साहित्यिकों का संसार अमृत का भांडार है । उनके लिये संसार कारागार है : हम लोगों के लिये करुणावतार का लीलागार है । उनके लिये श्रृंगार दुराचार है : हम लोगों के लिये वह गले का हार है—अलंकार है । उधर ओंकार का आधार है ; इधर नंद-कुमार का अधिकार है । बड़ा ही विचित्र व्यापार है ।

उनके ईश्वर के अकल, अनीह, अनामय, अखंड, ज्योतिस्स्वरूप, सच्चिदानंद आदि नाना नाम हैं : हम लोगों के ईश्वर इंदीवर-दल-श्याम, लोक-ललाम, सकल-सुषमा-धाम, विश्व-लोचनाभिराम हैं । उन-का हृदय आलोकमय शून्य-लोक की तरह एक अजीब खुदाई नूर से भरपूर है ; हम लोगों का हृदय सघन-स्निग्ध सजल-जलद-कांति घन-श्याम का मयूर है । उनके लिये त्रिकुटी ही त्रिवेणी और तल्लीनता ही तीर्थ है : हम लोगों के लिये ब्रज-रज ही पारिजात-पराग और वंशी-वट तथा कदंब-पुंज का छाया-कुंज ही पुण्य तीर्थ है । उनके लिये सांसारिक स्नेह-संबंध मकड़ी का जाला, ज़हर का प्याला और अग्नि की ज्वाला है ; किंतु हम लोगों के लिये सुख और सौभाग्य का निराला मसाला है ।

हम लोगों के लिये दुनिया की माधुरी में सुर-पुर की झलक है ; उनके लिये दुनिया की माधुरी में माहुर की छलक है । इसलिये हम दुनियादारों को उनकी बातें छोड़कर अपनी बातों की ओर देखना चाहिए ।

हम लोग, जो साहित्यानुरागी हैं, दुनिया में हर जगह माधुरी ही पाते हैं । वह कैसी माधुरी है, यह कहने से कहा नहीं जा सकता । उस माधुरी की प्राप्ति से कभी कंठ गद्गद हो आता है, कभी पुल-कावली छा जाती है, कभी स्नेह और कभी करुणा के आँसू छलछला उठते हैं, कभी मानस-स्थल दयार्द्र हो जाता है, कभी मंद मुसकान की रुचिर रेखा खिंच जाने से वदनांबुज विकसित हो उठता है, कभी विस्मयानंदोत्फुल्ल निर्निमेष लोचन मुस-किराते ही रह जाते हैं, कभी सहृदयता और सहा-नुभूति से हृदय द्रवीभूत हो जाता है, कभी अंग-प्रत्यंग में शैथिल्य आ जाता है, कभी इंद्रियाँ जड़ीभूत हो जाती हैं, कभी आत्मा तन्मय हो जाती है, कभी कल्पना-कानन में वसंत आ जाता है, कभी भव्य भावों की भागीरथी एकाएक तरं-गित हो उठती है, कभी चोट खाकर चित्त चंचल हो जाता है, कभी लालायित मन व्यग्र होते-होते अधीर हो जाता है, कभी लालसा-लता लहलहा उठती है, कभी आशा का आकाश-चुंबी महल भूमि-सात् हो जाता है, कभी धैर्य-धराधर का उत्तुंग श्रृंग विना बादल के वज्र-पात से चूर्ण हो जाता है, और कभी प्रेम-पयोधर की अजस्र वारि-धारा तर्क-शिलाओं को तोड़-फोड़कर निर्मल निर्झरिणी निकाल देती है ।

माधुरी सब जगह है ; पर सर्वसाधारण के इन चर्म-चक्षुओं से देख नहीं पड़ती । हिए की आँखें ही उसे देख सकती हैं । जिसका हृदय विशुद्ध साहित्य की सरसता से ओत-प्रोत है, जिसका

अनुभव गहरा और बारीक है, जिसकी मानसिक शक्ति अमोघ है, जिसका मस्तिष्क-बल अक्लांत है, जिसके विवेक-विलोचनों ने उस अपार सौंदर्य-सागर के एक-एक कण से बने हुए विविध-रंग-रंजित इंद्र-चाप, भुवन-मोहन ऋतुराज, राका-रजनीश सुधाधर और जगदानंदकर जलधर में उसी नारायण के रूप की माधुरी देखी है, वही—केवल वही—इस विलक्षण विश्व-संसार के प्रत्येक पदार्थ में माधुरी का पता पा सकता है। उसे चाहे कवि कहिए, ज्योतिर्विद् कहिए, साहित्यिक कहिए, अनुभव-शील कहिए, तत्त्व-वेत्ता कहिए, या रसराज-रसिक कहिए। उसके लिये तो अतसी-कुसुम-श्याम आकाश में भी माधुरी है, और चितानि-ज्वाला-प्रदीप्त मसान में भी माधुरी है। दोनों को देखकर वह एक-सा प्रसन्न होता है। उसके लिये गोधूलि-धूसर संध्या और विहंग-दल-कल-कूजित प्रभात में जो माधुरी है, वही माधुरी प्रचंड मार्तंड-तप्त ग्रीष्म और तड़िल्लता-वेष्टित, घन-पटल-पूरित बरसात में भी है। वह प्रत्येक वस्तु को कल्पना के चूड़ांत शिखर पर ले जाकर मलय-मारुत से आंदोलित और आनंदित करता है। उसके लिये हिमानी-संपात-सिक्त हेमंत में जो माधुरी है, वही माधुरी रसाल-मंजरी-मंडित वसंत में भी है।

वह चराचरमात्र में माधुरी की कल्पना—तारीफ़ यह कि युक्ति-युक्त और मनोमोहिनी कल्पना—कर सकता है। शिशिर के सीत्कार में, पावस की बौछार में, अमावस के अंधकार में, पूर्णिमा के सोलह शृंगार में, मलार पर छिड़े सितार में, युद्ध की ललकार में, वीर की तलवार में, जंगल के शिकार में, विनयी के उद्गार में, अभ्यागत के सत्कार में, सद्गृहस्थ के परिवार में, पराए के उपकार में, जातीयता के त्यौहार में, ससुराल की ज्यौनार में, प्रेम-पात्र की यादगार में, हृदय-हारिणी के मुक्ता-हार में, मानिनी की फटकार में, माता के प्यार में, ग़रीब की पुकार में, समाज-सुधार के विचार में, यश के विस्तार में, प्रजा-रंजक राजा के दरबार में, साधु-संत के व्यवहार में, क्षमा-शील के हथियार में, रसिकों की रार में, अधीनस्थ की जुहार में, श्रद्धा के आहार में, प्रेम के उपहार में, अन्यायी के अत्याचार में, परवर-दिगार के एतबार में, दंत-द्युति के उपमान अनार में, स्वच्छंद विहार में, स्वदेशी व्यापार में, स्वतंत्र रोज़गार में, ईमानदार दूकानदार में और उदार ख़रीदार में—जहाँ कहीं देखिए—सूक्ष्मदर्शी साहित्यज्ञ की पैनी दृष्टि के लिये सर्वत्र ही माधुरी है।

वह चाहे नैपाल में रहे, नैनीताल में रहे, भूपाल में रहे, बंगाल में रहे, पानीपत-करनाल में रहे या फ़िज़ी-ट्रांसवाल में रहे, हर जगह माधुरी को निरखकर निहाल रहता है। सारी खुदाई का जितना कुछ जलवा-जमाल है, उसकी टकसाल का वह पक्का दलाल है। उसका ख़याल विशाल विश्व-विटपी का आलवाल है, और संसार-कासार का मंजुल मराल है। वह जब रसाल के लाल-लाल पल्लवांतराल से सायंकाल के सूर्य को झाँकते हुए देखता है, तब उसके मानस-मंदिर में माधुरी की मनोमोहिनी मूर्ति प्रकट हो जाती है। जब वह गगनांगण-विहारी अंजन-वर्ण मेघों के सघन अंक में विक्षिप्त विद्युल्लता को देख लेता है, तब कादंबिनी और सौदामिनी के गाढ़ालिंगन में माधुरी के दर्शन पाकर कल्पना-कूट के गगना-रोही शिखर पर अनायास आरूढ़ हो जाता है। जब वह किसी धवल धाम के गवाक्ष-रंध्र से

कटाक्ष का विलास देख लेता है, या किसी विल्लौर-विजटित मिलन-मंदिर को मधुर-मधुर पाद-मंजीर-शिंजन से मुखरित होते सुन लेता है, तब उसका हृदय माधुरी की मदिरा पीकर अपनी सुध-बुध बिसार देता है।

तीनों लोक में ऐसी कोई जगह नहीं, जहाँ उसे माधुरी न मिले। जब संतान-वत्सला माता के निष्कलंक चुंबन में और सती साध्वी रमणी के पति-चितारोहण में उसे एक-सी माधुरी नज़र आती है, तब भला उसे सर्वत्र पवित्र माधुरी क्यों न मिले? बाण-विद्ध मृग-शावक की करुण कातर दृष्टि, असहाय रोगी की सेवा-शुश्रूषा, आदर्श स्वेच्छा-सेवक की सेवा-प्रणाली, देश-भक्त की यंत्रणा, पापी की पीड़ा, क्षुधित भिक्षुक की दीनता, युवती सुंदरी की विरह-वेदना, विजयी वीर की अंग-प्रफुल्लता, सुहृद्-सखाओं की पारस्परिक मैत्री और अभिमानी अधिकारी की भीति-जनक भर्त्सना, सब कुछ उसकी दृष्टि में माधुरी-मिश्रित है।

अहंकारी रावण ने विभीषण को पाद-प्रहार किया—उस पाद-प्रहार में भी माधुरी है। ध्रुव की विमाता ने उन्हें अपनी गोद से उतार दिया—उस तिरस्कार में भी माधुरी है। मर्कटानन नारद का दिया हुआ शाप-संताप रमा-रमण ने अंगीकार किया—उस सहर्ष स्वीकृति में भी माधुरी है। माधुरी कहाँ नहीं है? लेकिन उसका मिलना ही मुशकिल है! आसान भी है, मगर सिर्फ़ उसी के लिये, जो बड़ी ख़ूबी के साथ इतना ही जानता है कि—

"या गोविंदरसप्रमोदमधुरा सा माधुरी माधुरी।"

शिवपूजनसहाय

सम्राट् चंद्रगुप्त

[ई० पू० ३२१ से ई० पू० २०७ तक]

अवतरणिका
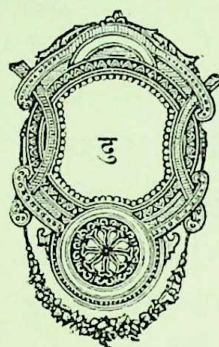
दुर्भाग्य से भारत का प्राचीन इतिहास, जो आलोचना की कसौटी पर खरा उतर सके, एक प्रकार से नहीं मिलता। प्राचीन इतिहास से हमारा प्रयोजन मुसलिम-पूर्व हिंदू-काल से है। मुसलमानी समय का इतिहास मुसलमान-लेखकों का लिखा हुआ प्राप्त है। हिंदू-काल का इतिहास संग्रह करने के लिये पाश्चात्य पुरातत्त्वानुरागियों ने, गत सौ वर्षों में, बड़ा परिश्रम किया, और अब भी कर रहे हैं। फल-स्वरूप अब बौद्ध और अनुवर्ती हिंदू-काल के सिलसिले-वार इतिहास की पुस्तकें प्रकाशित होने लगी हैं। किंतु अब भी ई० पू० ३२५ से पहले का क्रमबद्ध निर्विवाद ऐतिहासिक वृत्तांत भूतकाल-रूपी भूधर की कंदराओं में छिपा हुआ है। ई० पू० ३२५ से ई० पू० ६०० तक के भी कुछ वृत्तांत का उद्धार हुआ है अवश्य, पर यथाक्रम नहीं। कुछ यहाँ का और कुछ वहाँ का, कुछ अब का और कुछ तब का, अनुसंधान हमें इन तीन सदियों का केवल टूटा-फूटा हाल बतलाने में समर्थ होता है। जगज्जयी सिकंदर की भारतीय चढ़ाई के समय पर पैर रखते ही हमारी ऐतिहासिक खोज दृढ़ और सपाट भूमि पर आ जाती है। यद्यपि इस चौरस धरती में भी मुसलिम-चढ़ाई की चट्टी तक कहीं-कहीं बीहड़ वन, गड्ढे, टीले और दल-दल मिलते हैं, किंतु वे ऐसे नहीं हैं कि किसी प्रवीण पथिक को निरुद्देश करने में समर्थ हो सकें, अथवा ऐतिहासिक घटनावली के जुलूस का मज़ा कौतुकी की आँखों के लिये किरकिरा बना देते हों।

इस संक्षिप्त अवतरणिका के साथ चंद्रगुप्त और उसके समय के भारत का संक्षिप्त इतिहास लिखा जाता है।

लगभग ई० पू० ६०० से लगभग ई० पू० ४१७ तक

पूर्व-वृत्तांत

शिशुनाग-कुल का मगध—आधुनिक बिहार—प्रांत पर राज्य था। इस कुल का संस्थापक शिशुनाग छोटा-सा राजा था। संभवतः

उसका राज्य आधुनिक पटना और गया-ज़िलों में ही परिमित था। शिशुनाग के शासन-काल का प्रारंभ ऐतिहासिकों ने ई०पू० ६०० मान लिया है। हमारे पुराणों में भी शिशुनाग और उसके उत्तराधिकारियों की सूची मिलती है। शिशुनाग की राजधानी राजगृह (राजगिरि)-नगरी पटना से दक्षिण-पूर्व और पुण्य-धाम गया से उत्तर-पूर्व निकटवर्ती पहाड़ पर थी। कहा जाता है कि यह अति प्राचीन नगर बृहद्रथ के पुत्र और कंस के ससुर पौराणिक जरासंध ने, जिसे पांडव भीम ने द्वंद्व-युद्ध में मारा, बसाया था। शिशुनाग-कुल के दूसरे, तीसरे और चौथे शाकवर्ण, क्षेमधर्म और क्षत्रौजस राजों का हाल कुछ भी नहीं मालूम। वायु-पुराण में इन चार राजों का राज्य-काल १३६ वर्ष दिया है, और मि० विंसेंट ए० स्मिथ ने ७२ वर्ष अनुमान किया है।

शिशुनाग-वंश

इस कुल के पंचम राजा का नाम बिंबसार या श्रेणिक था। अटकल से ई० पू० ५२८ में इसने राज-दंड हाथ में लिया, और २८ वर्ष राज्य किया। यह जैन और बौद्ध-धर्मों के प्रवर्तक श्रीमहावीर और गौतम बुद्ध का समकालीन था। कहा जाता है, इसने नया राजगिरि-नगर पहाड़ी की तलहटी में बसाया, और अंग (वर्तमान भागलपुर और मुंगेर-ज़िले)-प्रांत को जीतकर अपना राज्य बढ़ाया। पड़ोसी प्रतापी राजघरानों में वैवाहिक संबंध करके भी इसने अपने कुल और राज्य का मस्तक ऊँचा किया। कोशल-देश का राजघराना प्रतिष्ठा में सर्व-श्रेष्ठ था। इस कुल की भी एक राजकुमारी के साथ इसने ब्याह किया, और विशाली * के प्रतापी लिच्छविवंश † का भी दामाद बनने में समर्थ हुआ। यहीं से मगध-राज्य की महत्ता और श्रेष्ठता का सूत्रपात होता है। बुढ़ापे में राज-काज का भार अपने दुलारे पुत्र अजातशत्रु पर छोड़कर बिंबसार कदाचित् चौथेपन के योग्य कार्यों में लगा, और कुछ काल के बाद चल बसा।

महिमा की वृद्धि

अजातशत्रु ने भी अपने राज्य और कुल का गौरव बढ़ाया। इसने ई० पू० ५०० से ई० पू० ४७५ तक २५ वर्ष राज्य किया। पहले तो इसने कोशल-प्रदेश को लड़ाई में हराकर शायद अपना सामंत-राज्य बनाकर छोड़ा, और फिर तिर्हुत-प्रदेश पर चढ़कर लिच्छवि-वंश को अवनत किया। विशाली पर राजगिरि की पताका फहराने लगी। लिच्छवियों को दबाए रखने के लिये अजातशत्रु ने गंगा-तट पर, पाटलि-ग्राम में, एक क़िला बनवाया। अजातशत्रु के मरने पर पुराणों के अनुसार उसका पुत्र दर्शक या हर्षक गद्दी पर बैठा। दर्शक के बाद उसके पुत्र उदय की पारी आई। उदय के राज्य-काल का प्रारंभ लगभग ई० पू० ४५० से और अंत ई० पू० ४१७ में मानना पड़ता है। किंवदंतियों, बौद्ध-ग्रंथों और पुराणों के अनुसार पाटलि-ग्राम में अजातशत्रु के बनवाए हुए दुर्ग की शरण में पाटलिपुत्र (आधुनिक पटना) नाम का नगर, जो काल पाकर बहुत दिनों तक केवल उत्तर-भारत की ही नहीं, बल्कि संपूर्ण भारत की राजधानी रहा, इसी उदय ने बसाया। *

पाटलिपुत्र का शिलान्यास

उदय के उत्तराधिकारियों, नंदिवर्धन और महानंदिन्, से शिशुनाग-वंश की इतिश्री होती है। वायु और मत्स्य-पुराण, इन दोनों का संयुक्त राज्य-काल यथाक्रम ८५ और ८३ वर्ष बताते हैं। किंतु मि० स्मिथ ने अपने मान्य 'भारत का पुराकालीन इतिहास' ग्रंथ में कारण दिखाते हुए केवल ४६ वर्ष माना है। इस प्रकार दस पीढ़ियों के बाद, मि०वी०ए० स्मिथ के मत से, २२६ वर्ष तक राज्य करके ई० पू० ३७१ में शिशुनाग-वंश का लोप होता है। †

शिशुनाग-वंश का अंत

* प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्वर्गीय मि० वी० ए० स्मिथ साहब का मत है कि मुज़फ़्फ़रपुर ज़िले के बसाढ़ और बखीरा-ग्राम विशाली के ध्वंसावशेष हैं। अध्यापक ह्रीस डेविड महोदय के मत से विशाली का ठीक स्थान अज्ञात है।

† बौद्धों के धर्म-ग्रंथों में इस वंश की चर्चा बहुत अधिक है।

* पाटलिपुत्र के बसने के संबंध में और भी कितनी ही किंवदंतियाँ प्रचलित हैं।

† वायु और विष्णु-पुराणों में शिशुनाग-वंश का राज्य-काल यथाक्रम ३६२ और ३३२ वर्ष लिखा है। मि० वी० ए० स्मिथ के मत से इतना समय बहुत अधिक है। उन्होंने इस वंश को २२० वर्ष देना उचित समझा है। उनका युक्ति-क्रम यह है। वह चंद्रगुप्त मौर्य के सिंहासन पर बैठने के वर्ष (ई०

नंद-वंश

शिशुनाग-वंश के अंतिम राजा महानंदिन् का, शूद्रा स्त्री से उत्पन्न, महापद्म नंद-नामक पुत्र ई० पू० ३७१ के लगभग राज्याधिकारी बन बैठा। कहा जाता है, महापद्म नंद के नव पुत्र थे : आठ सजातीय रानी सुनंदा से और एक, जिसका नाम चंद्रगुप्त था, मुरा नाम की नाइन—अंततः शूद्रा—स्त्री से। किसी प्राचीन लेखक ने सुमाल्य को महापद्म का सबसे बड़ा लड़का लिखा है, तो किसी ने सर्वार्थसिद्धि को मुख्य बताया है, और कोई चंद्रगुप्त को ज्येष्ठ ठहराता है। विष्णु-पुराण में वर्णित है कि महापद्म नंद के राज्याधिकारी होने से क्षत्रिय-वंश की राज-सत्ता उठ गई, और शूद्रों का सितारा चमका। पुराणों, बौद्ध-ग्रंथों और जैन-पुस्तकों में दिए हुए नंद-कुल के इतिहास में भेद है। फिर भी सबका निचोड़ यह अवश्य निकलता है कि नंद-वंश संकर-वर्ण था। वायु-पुराण के अनुसार नव नंदों—महापद्म और उसके आठ पुत्र—ने सौ वर्ष, और जैन-लेखकों के अनुसार १५५ वर्ष, राज्य किया। मि० स्मिथ ने इस काल को घटाकर ५५ वर्ष माना है।

भारत पर सम्राट् सिकंदर की चढ़ाई के समय (ई० पू० ३२६ में) मगध-देश का नंद राजा—वह सर्वार्थसिद्धि या धन या सुमाल्य कोई भी नंद हो—बड़ा पराक्रमी था। अलक्षेंद्र (सिकंदर) को भगेलू नाम के किसी पंजाबी सरदार से सूचना मिली थी कि गंगोदर (गंगारिदेइ) * और पालाशी या प्राच्य (प्रस्सी) के नंद-नरेश (ज़ंद्रमेस या अंद्रमेस) की सेना में बीस हज़ार घुड़सवार, दो लाख पैदल, दो हज़ार रथ और तीन या चार हज़ार हाथी हैं। इस सूचना की पुष्टि झेलम और चिनाब-नदियों के मध्यस्थ प्रदेश के पराजित पंजाबी राजा पुरु (पोरस) ने भी की थी। पाटलिपुत्र इस समय मगध-राज्य की राजधानी हो चुका था।

चंद्रगुप्त का उदय

नंदों के कोप से जान बचाकर चंद्रगुप्त मगध से भाग निकला था, और सिकंदर की चढ़ाई के समय वह पंजाब में था। संभवतः सिकंदर को मगध पर आक्रमण करने के लिये उसने उत्तेजित भी किया था। यह निश्चित है कि सिकंदर पंजाब से आगे बढ़ने को उत्सुक था, परंतु उसकी थकी-माँदी सेना राज़ी नहीं हुई। इसलिये उसे बे-मन (ई० पू० ३२६ की अंतिम तिमाही में) स्वदेश को लौटना पड़ा।

पृ० ३२१) को अपना ध्रुव मानकर पीछे लौटे हैं। दूसरे सिरे का ध्रुव गौतम बुद्ध का मृत्यु-वर्ष ई० पू० ४८७ मान लिया गया है। गौतम बुद्ध के मृत्यु-वर्ष को दूसरे सिरे का ध्रुव मानने का कारण यह है कि शिशुनाग-वंश के छठे राजा अजातशत्रु के समय में उनकी मृत्यु होना कई युक्तियों से सिद्ध मान लिया गया है। पुराणों में मौर्य-वंश के पूर्ववर्ती नंद-वंश की दोनों पीढ़ियों का राज्य-काल सौ वर्ष या (वायु-पुराण में) अधिक लिखा गया है। स्मिथ महोदय ने इसे घटाकर पचास वर्ष कर लिया है। इसी प्रकार बुद्ध के मृत्यु-वर्ष में अजातशत्रु का समय लाने के लिये शिशुनाग-वंश के अंतिम दोनों राजों का राज्य-काल वायु-पुराण के ८५ वर्ष के बदले ४६ वर्ष माना गया है। अजातशत्रु और उसके पिता के राज्य-काल, वायु-पुराण के अनुसार, २५ और २८ वर्ष स्वीकृत हुए हैं। इनसे पहले के शिशुनाग-राजा की चार पीढ़ियों का राज्य-काल वायु-पुराण में १३६ वर्ष दिया है। इसे घटाकर ७२ वर्ष किया गया है। मि० स्मिथ इन चार पुश्तों के काल-संहार का कोई युक्ति-संगत कारण नहीं देते। वे १३६ वर्षों को चार राजों के लिये केवल बहुत अधिक बताते हैं। किंतु यह कल्पना विश्वासोत्पादक नहीं है। मुग़ल-काल में चार मुग़ल-सम्राटों के १५१ वर्ष राज्य करने की निर्विवाद साक्षी इतिहास दे रहा है। अकबर ई० १५५६ में राजगद्दी पर बैठा था, और ई० १७०७ में यमलोक सिधारकर औरंगज़ेब ने सिंहासन ख़ाली किया। अतएव वायु-पुराण के साक्ष्य को असत्य सिद्ध करने के लिये हमारे इतिहास-कार को कोई अन्य पुष्ट युक्ति ढूँढ़नी चाहिए थी।

* गंगारिदेइ या गंगारिदेस सिकंदर के साथी लेखकों ने उस प्रदेश को कहा है, जिसे अब स्थूल-रूप से निचला बंग (लोवर बंगाल) कहते हैं। गंगारिदेइ या गंगारिदेस कलिंग का एक विभाग जान पड़ता है। त्रि-कलिंग का उल्लेख कुछ शिला-लेखों में भी मिलता है। तीन कलिंगों में से शायद एक कलिंग गंगोदर-कलिंग कहा जाता होगा, और उसी को सिकंदर के साथी लेखकों ने गंगारिदेइ या गंगारिदेस लिखा है। एम्० डी० सेंट मार्टिन का मत है कि दक्षिण-विहार के गोंध्री लोग गंगारिदेइ के ही निवासी हैं। गोंध्री अपनी परंपरागत दंत-कथा के अनुसार तिरहुत के आदि-निवासी हैं। वर्तमान बर्दवान उनकी राजधानी था।

ई० पू० ३२३ के जून-मास में सिकंदर की बाबुल (बैबिलन) में मृत्यु हुई। यह बात सुनते ही पंजाब और सीमांत-प्रदेश के उसके सामंत भारतीय राजों ने स्वाधीनता की पताका उड़ाई, और सिकंदर के पंजाब में रहनेवाले प्रतिनिधि-शासक की सेना को छिन्न-भिन्न कर दिया। कहा जाता है, विद्रोहियों का नेता चंद्रगुप्त ही था। इस प्रकार उत्तर-पश्चिम-भारत में बल प्राप्त करने के बाद चंद्रगुप्त मगध-राज्य पर चढ़ गया और सफलता प्राप्त की।* ई० पू० ३२३ के जून-मास में सम्राट् सिकंदर ने संसार से "ख़ाली हाथ" कूच किया, और ई० पू० ३२२ के प्रारंभ में ही पंजाब में मक़दूनिया की महिमा का मार्तंड भी अस्त हो गया। स्वाधीनता-प्रेमियों के साहसी नेता चंद्रगुप्त मौर्य की अवस्था इस समय २५ वर्ष से अधिक न थी। माता मुरा के नाम पर वह मौर्य कहलाया।

स्वाधीनता के लिये युद्ध

सुदूर पंजाब में विदेशी प्राधान्य नष्ट करने के बाद चंद्रगुप्त मौर्य ने मगध की ओर ध्यान दिया, और कूटनीति-निपुण मंत्रिवर चाणक्य तथा पंजाबी मित्र-राजों की सहायता से मगध के नंद राजा और उसके भावी उत्तराधिकारियों का ध्वंस करने में समर्थ हुआ। चाणक्य—जिसके विष्णुगुप्त, द्रोमिल, द्रोहिण, अंशुल, कौटिल्य आदि अनेक नाम पाए जाते हैं—अपूर्व नीतिज्ञ † था। इस नीतिज्ञ ब्राह्मण के कौशल से सीमांत-प्रदेश के पर्वतक आदि कई राजा चंद्रगुप्त की सहायता के लिये मगध आए, और नंदों का समूल नाश हुआ।

मगध पर अधिकार

चाणक्य का कौशल

इस प्रकार ई० पू० ३२२-३२१ में चंद्रगुप्त मौर्य ने मगध का राज्य हस्तगत किया। नंद राजा की विराट् सेना, जिसका वर्णन किया जा चुका है, उसके अधीन हुई। इस विपुल वाहिनी को बढ़ाते-बढ़ाते उसने अंत में तीस हज़ार घुड़सवार, नौ हज़ार हाथी, छः लाख पैदल और बहु-संख्यक रथों तक बढ़ा दिया। ऐसी दुर्जेय सेना की सहायता से उसने नर्मदा तक उत्तर-भारत के सभी राजों को जीत लिया। चंद्रगुप्त मौर्य के साम्राज्य का विस्तार बंगाल की खाड़ी से अरब-समुद्र तक हो गया, और वह सर्वथा भारत का प्रथम ऐतिहासिक चक्रवर्ती सम्राट् कहलाने का अधिकारी हुआ।

राज्य-प्राप्ति

राज्य-वृद्धि

इधर भारत में चंद्रगुप्त अपने साम्राज्य को बढ़ाने और पुष्ट करने में लगा हुआ था, उधर मध्य और पश्चिम-एशिया में सिकंदर का एक सेनापति अपनी शक्ति बढ़ाकर सिकंदर के जीते हुए भारतीय प्रांतों को चंद्रगुप्त से फेर लेने की तैयारी कर रहा था। सिकंदर के सेनापतियों में परस्पर मार-काट के बाद अंत में सेल्यूकस पर विजय-लक्ष्मी प्रसन्न हुई, और वह 'निकेटर' (विजयी) की पदवी से विभूषित हुआ। ई० पू० ३१२ में सेल्यूकस का बाबुल (बैबिलन) पर अधिकार हुआ। छः वर्ष बाद उसने राजकीय पदवी और मान-मर्यादा धारण करना उचित समझा। उसके राज्य का विस्तार भारत के सीमांत तक था। सिकंदर के जीते हुए भारतीय प्रदेशों पर फिर अधिकार जमाने के अभिप्राय से सेल्यूकस ने ई० पू० ३०५ में सिंधु (इंडस)-नदी पार की। यह तो ठीक-ठीक विदित नहीं कि वह कहाँ तक अग्रसर हो सका, परंतु समरानल ने किसे झुलसाया, यह निश्चित है। पहली ही मुठभेड़ में सेल्यूकस चंद्रगुप्त की सेना का धक्का न सँभाल सका, और उसे दबकर संधि करनी पड़ी। सिकंदर के अधिकृत प्रदेशों पर अधिकार की तो चर्चा ही व्यर्थ है, सेल्यूकस के "उलटे नमाज़ गले पड़ी"। वह अपने साम्राज्य के काबुल, क़ंधार, हिरात और अधिकांश मकरान-प्रदेश देकर चंद्रगुप्त से पीछा छुड़ाने को विवश हुआ। उसे इन मूल्यवान् प्रदेशों के बदले में पाँच सौ हाथी लेकर संतोष करना पड़ा। इतना ही नहीं, वह विजयी मौर्य भूपति को अपनी बेटी भी ब्याह देने के लिये बाध्य हुआ। सेल्यूकस निकेटर ने संभवतः ई० पू० ३०३ में

सेल्यूकस की चढ़ाई और हार

संधि

---

* कुछ ग्रंथकारों का मत है कि चंद्रगुप्त ने पहले मगध हस्तगत किया, तदुपरांत पंजाब और सीमांत के देशी राजों को उभाड़कर सिकंदर की सेना को नीचा दिखाया।

† नीति-दक्ष चाणक्य की राजनीतिज्ञता और अपूर्व कौशल का परिचय पाने के लिये स्वयं चाणक्य-कृत अर्थ-शास्त्र (अँगरेज़ी में अनुवाद भी हो चुका है) और श्रीविशाख-दत्त-कृत मुद्राराक्षस नाटक (संस्कृत) पढ़ना चाहिए। इसका भारतेंदु श्रीहरिश्चंद्र-कृत हिंदी उल्था भी है। रैप्सन साहब के मत से यह सातवीं सदी में बना था।

यह अपमान-जनक संधि की थी। इस प्रकार दो सहस्र वर्ष पूर्व से भी पहले भारतीय सम्राट् चंद्रगुप्त मौर्य उन काबुल, क़ंधार आदि प्रदेशों पर भारतीय पताका उड़ाने में समर्थ हुआ था, जिन पर न कभी दिल्ली के मुग़ल-सम्राटों की विजय-वैजयंती पूरी तरह से फहराई, और न हमारे महामान्य सम्राट् पंचम जार्ज को ही ऐसा सौभाग्य प्राप्त है।

१८ वर्ष की कृति

ई० पू० ३२१ में चंद्रगुप्त मौर्य मगध के सिंहासन पर विराजमान हुआ था। ई० पू० ३०३ तक, अर्थात् १८ वर्षों में, वह संपूर्ण उत्तर-भारत का निर्विवाद सर्वमान्य महाराजाधिराज बन गया, और उसने सिकंदर के उत्तराधिकारी सेल्यूकस निकेटर को हिंदू-लोहे की चाशनी चखाकर भारत में विदेशी नरेश की सत्ता के लेश की इतिश्री कर दी। इसके अतिरिक्त उसके बाहु-बल से काबुल, क़ंधार और हिरात (अरियाना) आदि में भी हिंदुओं का प्राधान्य स्थापित हुआ। ये कृतियाँ उच्च स्वर से घोषित कर रही हैं कि मौर्य-कुल का संस्थापक बड़ा ही वीर, कर्मठ और उद्योगी नरपति था। निस्संदेह वह प्रबंध-प्रवीण भी था, नहीं तो इतने बड़े साम्राज्य में उसकी सींक कैसे खड़ी रहती।

चंद्रगुप्त की मृत्यु

सेल्यूकस पर विजय प्राप्त करने के छः वर्ष बाद (ई० पू० २९७ में) अपने पुत्र अमित्रघात पर विशाल साम्राज्य का भार छोड़कर चंद्रगुप्त ने उस महासाम्राज्य की यात्रा की, जहाँ राजा और रंक, सबको एक दिन आगे या पीछे जाना ही पड़ता है।

राजदूत मेगास्थिनीज़

चंद्रगुप्त से संधि हो जाने के बाद सीरिया के महाराज सेल्यूकस ने सम्राट् चंद्रगुप्त के दरबार में रहने के लिये मेगास्थिनीज़ को राजदूत नियुक्त करके भेजा। यह ई० पू० ३०२ की बात है। उक्त राजदूत भारतीय साम्राज्य की राजधानी पाटलिपुत्र में बहुत समय तक रहा। वह विद्यानुरागी था, और भारत

मेगास्थिनीज़-लिखित भारत-वृत्तांत

के भूगोल, उपज तथा शासन-प्रणाली आदि के अति सुंदर वृत्तांत लिखने में उसने अपने अवकाश का सदुपयोग किया। मेगास्थिनीज़ के लिखे हुए वृत्तांत से तत्कालीन भारत के इतिहास पर अच्छा प्रकाश पड़ता है। प्राप्त समाचारों के आधार पर उसने जो बातें लिखी हैं, उनमें स्वभावतः भूलें हुई हैं; परंतु चंद्रगुप्त की सैनिक और मुल्की शासन-प्रणाली का, जिसे स्वयं देखने का उसे अवसर प्राप्त हुआ था, वह बड़ा ही मनोरंजक, विशद और विश्वसनीय वर्णन छोड़ गया है। खेद है कि उसकी लिखी हुई पुस्तक अप्राप्य है। उसकी पुस्तक के केवल उन्हीं अंशों के संग्रह सुलभ हैं, जिनका उपयोग परवर्ती यहूदी और रोमन लेखकों ने अपने ग्रंथों में किया है। मेगास्थिनीज़ की पुस्तक का यह अवशिष्ट अंश भी इतना पूर्ण और उपयोगी है कि पुरातत्त्वानुरागी के ध्यान-नयनों के सामने सम्राट् चंद्रगुप्त की शासन-प्रणाली और उसके समय के भारत का सुंदर चित्र अंकित कर देता है।

अन्य लेखक

मेगास्थिनीज़ के सिवा एरियन आदि अन्य लेखकों के लेखांशों से भी इस कार्य में कुछ सहायता मिलती है।

पाटलिपुत्र की स्थिति

चंद्रगुप्त के समय में पाटलिपुत्र, सोन और गंगा के संगम के बीच की भूमि में, सोन के उत्तरी तट पर स्थित था। परंतु अब तो उक्त नदियों का संगम पटने से १२ मील पश्चिम दानापुर-छावनी के निकट होता है, * और पटना श्रीगंगा-जी के दक्षिण-तट पर स्थित है। प्राचीन पाटलिपुत्र आधुनिक पटने के नीचे तुपा पड़ा है। बंबई के सुप्रसिद्ध व्यापारी स्वर्गवासी धन-कुबेर रतनलाल की बीस हज़ार रुपए की वार्षिक सहायता से बाँकीपुर के अति निकट, उसके दक्षिण ओर के कुम्हरार-ग्राम में, पुरातत्त्व-विभाग

चंद्रगुप्त के प्रासाद का ध्वंसावशेष

के डा० स्पूनर की अध्यक्षता में, ६ जनवरी, १९१३ को, खुदाई का कार्य आरंभ हुआ था। परिणाम में चंद्रगुप्त के प्रासाद का कुछ अंश † निकला है।

* ई० १३७९ तक सोन और गंगा का संगम पटने के निकट होता था।

† जो अंश निकला है वह बारहदरी-सा है। डी० बी० स्पूनर साहब अपने विवरण में लिखते हैं—कार्यारंभ के एक ही महीने के बाद (७ फ़रवरी, सन् १९१३ को) एक विराट् खंभेदार दालान का निर्देश हम कर सके थे। इमारत के विस्तार का निश्चय टेढ़ी खीर है, क्योंकि वह नष्ट हो गई है। लकड़ी के अंश, छत, भूमि-तल या तो जल गए हैं, या नष्ट हो गए हैं, और राज-प्रासाद की कहानी कहने को केवल उसके कुछ विध्वस्त और छिन्न-भिन्न अंश वर्तमान हैं। समान-अंतर पर स्थित पंक्ति-बद्ध खंभों के टुकड़ों के ढेर मिले

आकार-प्रकार

पाटलिपुत्र वर्तमान पटने की भाँति लंबा, संकीर्ण, समांतर-चतुर्भुजाकार था। इसकी लंबाई लगभग नव मील और चौड़ाई डेढ़ मील थी। लकड़ी के भीमकाय कटहरे से, जिसमें ६४ फाटक और ५७० मीनार थे, नगर सुरक्षित था। कटहरे के बाद २०० गज़ चौड़ी और १५ गज़ गहरी खाँई थी, जो सोन के जल से भरी रहती थी। कटहरे की कुछ छड़ें और खंभे पाए गए हैं। *

राज-भवन

राज-प्रासाद यद्यपि मुख्य-रूप से लकड़ी का ही बना हुआ था, तथापि भव्यता और वैभव में संसार में अपनी जोड़ नहीं रखता था। इसके मुलम्मेदार खंभे सुनहली अंगूरी बेल और रुपहली चिड़ियों से सुरचित थे। महल के चारों ओर विशाल वाटिका थी, जिसमें स्थान-स्थान पर सुरम्य सरोवर, वापियाँ, पुष्करिणियाँ और हौज़ दर्शक के मन को मोहते थे। साँचे के-से ढले कटे-छटे वृक्ष, रमणीय कुंज और झाड़ियाँ नेत्रों को हरा करती थीं। जलाशयों में कलोल करती हुई रंग-बिरंगी मछलियाँ जल-तल पर चलता-फिरता मीना बनाने में लखनऊ और काशी के चतुर मीना बनानेवाले कारीगरों को मात करती थीं।

सजधज और ऐश्वर्य

नक़्क़ाशीदार सोने के थालों, कटोरों और बहुमूल्य जवाहरों से जड़े ताँबे के पात्रों की चमचमाहट से जगमगे राज-भवन को भगवान् भास्कर की ज्योति की अपेक्षा न थी। विशेष अवसरों के लिये दो-दो गज़ तक की चौड़ाई के थाल और परातें थीं। काम-काजों और उत्सवों के समय नक़्क़ाशीदार चौकियों और राजकीय कुर्सियों की छटा, ज़रदोज़ी के काम के सुंदर वस्त्रों की बहुलता राज-द्वार के ऐश्वर्य का परिचय देती थीं। सार्वजनिक उत्सवों अथवा राजकीय अवसरों पर तनज़ेबी कमख़्वाब या ज़र-बफ़्त की पोशाक से सुसज्जित महाराजाधिराज चंद्रगुप्त की सवारी मोतियों के गुच्छों से अलंकृत सोने की पालकी पर निकलती थी।

राजकीय सवारी

निकट की यात्राओं में सम्राट् घोड़े पर सवार होते थे, और दूर की यात्राओं में सुवर्णालंकारों और कलाबत्तू की झूलों से मंडित हाथियों से काम लेते थे।

मनोरंजन, पशुओं की लड़ाई

पशुओं की लड़ाई राजद्वार में मनोरंजन की एक प्रिय सामग्री थी। स्वयं सम्राट् को साँड़ों, मेढ़ों, हाथियों और गैंडों की लड़ाई देखने में बड़ा मज़ा आता था।

हैं। पत्थरों के टुकड़ों के इन ढेरों के तले नीचे की ओर उतरे हुए नली के-से सूराख़ हैं। ये ऊपर से भर गए हैं। ये सब-के-सब गोल, एक नाप के, और समान-अंतर पर स्थित हैं। इससे स्पष्ट है कि मूल में इन विशेष स्थलों पर खंभों की पंक्तियाँ थीं।......पहली ऋतु का अंत होते-होते हमने घुटे हुए पत्थर के खंभों की ८ श्रेणियों का ठीक पता लगा लिया था, और हर श्रेणी में अंततः १० खंभे थे। एक खंभा नष्ट होने से बच गया था और इसका उद्धार किया गया है। यह विराट् बारहदरी संभवतः चौकोर थी, और ५-५ गज़ के अंतर पर खंभे थे। इतने ही से प्रकट हो गया कि यह एक अद्भुत इमारत थी।

* मेगास्थिनीज़ के खंडांशों के संग्रह के अँगरेज़ी अनुवादक मि० जे० डब्लू० मैक-क्रंडिल लिखते हैं—पाटलिपुत्र में हाल में एक तड़ाग खोदा जा रहा था। जब ४-५ गज़ गहरी खुदाई हो चुकी, तब कुछ ऐसे भग्नांश मिले, जो निस्संदेह मेगास्थिनीज़ के लिखे हुए कटहरे के जान पड़े। एक मित्र ने निरीक्षण करके यह ब्यौरा भेजा है—"ई० १८७६ की शीत-ऋतु में शेख़-मिठिया-गढ़ी में तड़ाग के लिये खुदाई हो रही थी। खुदैयों को १२ या १५ फ़ीट गहरे में लंबी ईंट की दीवाल के भग्नांश मिले। इसकी दौड़ उत्तर-पश्चिम से दक्षिण-पूर्व को थी। खुदाई की हद से (सौ गज़ से अधिक) कितनी दूर अधिक यह दौड़ी हुई थी, यह कहना असंभव है। दीवाल से अधिक दूर नहीं, और प्रायः इसके बराबर-बराबर लकड़ी के कटहरे की छड़ों की एक पंक्ति मिली थी। कटहरा कुछ-कुछ दीवाल की ओर झुका हुआ था। एक जगह पर एक तरह का निकास जान पड़ता था; क्योंकि लकड़ी के दो खंभे, जो उस जगह की सतह से ८ या ९ फ़ीट ऊँचे थे, और जिनके बीच में छड़ों का कोई चिह्न नहीं मिला, सब प्रकार से दरवाज़े या फाटक के चौकठे के बाज़ू जान पड़ते थे। कई कुँए और छेद भी मिले। मट्टी के टूटे-फूटे बर्तनों के टुकड़ों के ढेरों से इनके मुँहों का पता चलता था। बर्तनों के कम टूटे-फूटे टुकड़ों से जान पड़ता है कि बर्तनों की बनावट आजकल से भिन्न थी। एक कूप साफ़ किया गया तो बड़ा ही मीठा जल निकला, और जो कूड़ा निकाला गया था, उसमें लोहे के भालों की कई मुनियाँ और एक बड़े बर्तन का एक खंड था।

आजकल की घुड़दौड़ की भाँति बाज़ी लगाकर बैलों

बैलों की दौड़

की दौड़ होने का चलन भी था, और महाराज बड़े चाव से इसे देखते थे। बैल-दौड़ का चक्कर लगभग साढ़े तीन मील का था। बैल घोड़ों के साथ रथों में जोतकर दौड़ाए जाते थे। बीच में एक घोड़ा जोता जाता था और इधर-उधर एक-एक बैल।

राजकीय मनोरंजन का मुख्य साधन शिकार था। यह

शिकार

बड़े साज-सामान से होता था। महाराज एक मचान पर बैठते और घिरे हुए सुरक्षित वन के पशुओं का, अपनी ओर हँकाए जाने पर, बाणों से शिकार करते थे। अरक्षित जंगल में शिकार के लिये जाने पर महाराज हाथी पर सवार होते थे। शिकार के समय हथियारबंद स्त्रियाँ शरीर-रक्षा के लिये महाराज के साथ रहती थीं। महा-

राज-मार्गों का बंदी

राज की सवारी निकलने के मार्ग दोनों ओर रस्सियाँ बाँधकर रोक दिए जाते थे।

महाराज चंद्रगुप्त को देह दबवाने का बड़ा व्यसन था।

देह दबवाने का शौक़

राज-सभा में भी, जब वे अभियोगों का विचार करते थे, चार परिचारक आबनूस के बेलनों से यह सेवा करते रहते थे।

साधारणतः महाराज रनिवास में ही रहते थे। प्रजा

न्याय और राज-दर्शन

की प्रार्थनाएँ सुनने, धार्मिक क्रियाएँ करने तथा सैनिक अभियानों आदि के लिये वे बाहर निकलते थे। दिन में एक बार राज-सभा में उपस्थित होकर प्रजा के प्रार्थना-पत्र लेना और उन पर विचार करना तथा सर्वसाधारण को दर्शन देना महाराज का प्रायः नित्य का कर्तव्य

चंद्रगुप्त की वर्ष-गाँठ

समझा जाता था। राजा की वर्षगाँठ बड़ी धूमधाम से मनाई जाती थी। उस दिन अमीर-उमरा सम्राट् को यथायोग्य बहु-मूल्य उपहार भेंट करते थे।

सेना की संख्या का उल्लेख पहले किया जा चुका है।

चतुरंगिणी

हरएक घुड़सवार दो बर्छे बाँधता था। पैदलों का मुख्य अस्त्र खाँड़ा होता था। इसके अतिरिक्त वे धनुष-बाण अथवा भाला भी धारण करते थे। रथों में दो या चार घोड़े जोते जाते थे। सारथी के सिवा, हरएक रथ पर दो सूरमा बैठते थे। हाथी पर महावत के अतिरिक्त तीन धनुर्धर रहते थे।

इस प्रकार नव हज़ार हाथियों में छत्तीस हज़ार, और

गणना और साज-सज्जा

दस-बारह हज़ार रथों में भी तीस-बत्तीस हज़ार मनुष्यों की आवश्यकता होती थी। पाठकों को याद होगा ही कि छः लाख पैदल और तीस हज़ार घुड़सवार स्थायी सैनिक थे। अतएव ढोलिए-बजनिए और नौकर-चाकर छोड़कर कोई सात लाख शूर-वीर चंद्रगुप्त की सेना में थे।

चंद्रगुप्त की विराट् सेना का प्रबंध एक समर-परिषद्

प्रबंध

के अधीन था। तीस सदस्यों की प्रबंध-कारिणी परिषद् छः समितियों में विभक्त थी। प्रत्येक समिति में पाँच-पाँच सदस्य थे। प्रत्येक के सिपुर्द एक-एक विभाग था। प्रथम उपसमिति के सिपुर्द नौ-सेना का कार्य था। यह नौ-सेनाध्यक्ष से मिल-कर काम करती थी। दूसरी उपसमिति पर ढुआई, खाद्य-सामग्री, शस्त्रास्त्र की आयोजना और परिचारकों की पुरौती का भार था। ढोलिए-बजनिए, कारीगर, साईस और घसियारे भी परिचारक-वर्ग के अंतर्गत थे। तीसरी उपसमिति पैदलों, चौथी घुड़सवारों, पाँचवीं रथों और छठीं गजों की व्यवस्था के लिये थी। इस व्यवस्था से स्पष्ट है कि चंद्रगुप्त का सैनिक प्रबंध सर्वांग-पूर्ण और सराहनीय था। ऐसा न होता, तो वह संपूर्ण उत्तर-भारत को जीतकर अपने अधीन कैसे रख सकता, और सेल्यूकस निकेटर को नीचा दिखाने और मक़दूनिया की सेना को भारत से निकाल बाहर करने में कैसे समर्थ होता?

चंद्रगुप्त की शासन-प्रणाली यद्यपि सर्वथा प्रजासत्ता-

मुल्की शासन-प्रणाली

त्मक न थी, जैसी कि उससे कुछ काल पूर्व अनेक राज्यों में प्रचलित थी, तथापि निरी निरंकुश भी न थी। राजधानी पाटलि-

पौर-सभा

पुत्र के शासन के लिये तीस सदस्यों की एक परिषद् (म्यूनीसिपल बोर्ड) की व्यवस्था थी। सैनिक-प्रबंध-कारिणी परिषद् की भाँति यह परिषद् भी पाँच-पाँच सदस्यों की छः समितियों में विभक्त थी। प्रथम समिति पर उद्योग-धंधे से संबंध

पहली समिति का कर्तव्य

रखनेवाले प्रत्येक विषय के निरीक्षण का भार और मजूरी की दर नियत करने का उत्तरदायित्व था। इसके सिवा इस बात पर दृष्टि रखना भी इस समिति का काम था कि केवल विशुद्ध पदार्थों की ख़रीद-फ़रोख़्त हो।

दूसरी समिति नगर के विदेशी निवासियों और परि-

दूसरी समिति

दर्शकों की चेष्टाओं की देखरेख करती थी। विदेशीमात्र पर अधिकारियों की अविरल दृष्टि रहती थी। विदेशियों की सहायता के लिये राज्य की ओर से नियुक्त लोगों से यह काम लिया जाता था। उनके ठहरने के लिये उपयुक्त स्थान का प्रबंध, यात्रा में रखवाली और माँदगी में शुश्रूषा और चिकित्सा की व्यवस्था करना भी अधिकारियों का कार्य था। मृतक परदेशियों का अंतिम संस्कार उत्तम रीति से करवाया जाता था। अधिकारीगण उनकी संपत्ति का सुप्रबंध रखते थे, और उसे उनके हक़दारों के पास भेज देते थे। इन विशेष प्रबंधों से तत्कालीन भारतीय सभ्यता और विदेशी राज्यों से घनिष्ट संसर्ग की सूचना मिलती है। साथ ही यह भी स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय राजधानी में विदेशियों का गमनागमन बहुतायत से होता था।

जन्म-मृत्यु का नियम-पूर्वक हिसाब रखना तीसरी

तीसरी समिति

समिति का काम था। दो हज़ार वर्ष पूर्व ऊँची और नीची सभी स्थितियों के समस्त परिवारों के प्रत्येक व्यक्ति की गणना की यह राजकीय व्यवस्था भारत की शासन-संबंधी अयोग्यता का ढोल पीटनेवालों के नेत्र खोलनेवाली है। यह व्यवस्था साफ़ बतला रही है कि भारतीय शासन-प्रतिभा दो सहस्र वर्ष पूर्व जो कुछ कर गई है, आज उससे अधिक कुछ भी नहीं हो रहा है। वाणिज्य-व्यापार का महत्त्व-पूर्ण विभाग चौथी समिति का कार्य-क्षेत्र था।

चौथी समिति

यह समिति क्रय-विक्रय का नियमन करती थी, और राजकीय छापदार बटखरों और नापों के व्यवहार की ओर दृष्टि रखती थी। व्यापारियों और वणिकों को व्यापार-वाणिज्य करने के अधिकार-पत्र (लैसंस) प्राप्त करने के लिये शुल्क देना पड़ता था। एक से अधिक वस्तु के व्यापारी से दूना शुल्क लिया जाता था।

पाँचवीं समिति पर, इसी तरह, व्यापार की वस्तुओं

पाँचवीं समिति

की तैयारी के निरीक्षण का भार था। नए और पुराने पदार्थों के अलगाव का भी नियम था। इस नियम की अवज्ञा करनेवाले को अर्थ-दंड होता था। इस व्यवस्था का कारण नई और पुरानी चीज़ों पर कर में भेद था।

छठी और अंतिम समिति का कार्य था, बिके माल

अंतिम समिति

के मूल्य का दशमांश संग्रह करना। यह दशमांश देने से मुँह चुरानेवाले को प्राण-दंड दिया जाता था।

मेगास्थिनीज़ के लेखांशों से हमें केवल पाटलिपुत्र के शासन की व्यवस्था का ऐसा ब्यौरेवार वृत्तांत प्राप्त होता है। परंतु यह अनुमान करना अनुचित न होगा कि साम्राज्य के अन्यान्य नगरों के शासन और प्रबंध में भी राजधानी के आदर्श का अनुकरण होता होगा। पूर्वोक्त विशेष कार्यों के साथ-साथ पौर-सभा (म्यूनी-

समितियों का संयुक्त कार्य

सिपल बोर्ड) की समितियाँ मिलकर नगर-संबंधी सभी मामलों का प्रबंध करती थीं। हाट-बाज़ारों, देवालयों, बंदरगाहों (सोन और गंगा के) आदि सभी सार्वजनिक स्थानों को अच्छी हालत में रखना उनका सम्मिलित कर्तव्य था। *

---

* हमारे प्राचीन साहित्य से पता चलता है कि राज्य के शासन में सहायता करने के लिये प्रजा के प्रतिनिधियों की दो सभाएँ होती थीं, 'पौर' और 'जानपद'। नागरिक प्रतिनिधियों की सभा को 'पौर' कहते थे, और ग्रामों के प्रतिनिधियों की सभा 'जानपद' कहलाती थी। 'पौर' का सभापति 'श्रेष्ठिन्' कहलाता था। रामायण से विदित होता है कि 'पौर' के दो भाग होते थे— 'आभ्यंतर' और 'बाह्य'। 'आभ्यंतर' संभवतः कार्यकारिणी समिति को और 'बाह्य' साधारण-सभा को कहते होंगे। इसके सिवा 'नगर-वृद्धों' या 'पौर-मुख्यों' का भी उल्लेख पाया जाता है। 'नगर-वृद्ध' या 'पौर-मुख्य' और 'पौर' का 'आभ्यंतर' भाग पर्यायवाची हों तो आश्चर्य नहीं। 'पौर' के सदस्य लोक-निर्वाचित होते थे। सम्राट् चंद्रगुप्त की राजधानी के नगर-शासक-संघ के सदस्य भी लोक-निर्वाचित थे या नहीं, इसकी सूचना मेगास्थिनीज़

दूरस्थ प्रदेशों का शासन सम्राट् के प्रतिनिधि करते थे ।

दूरस्थ प्रदेशों का शासन

प्रधान प्रांतीय शासक का पद अधिकतर राजघराने के ही लोगों को दिया जाता था । प्रजा और कर्मचारियों की गति-विधि पर दृष्टि रखने के लिये विशिष्ट संवाददाताओं, अर्थात् गुप्त-चरों, की व्यवस्था थी । नगरों और प्रांतों की समस्त घटनाओं पर दृष्टि रखना और महाराज अथवा अधिकारिवर्ग को गुप्त रीति से उनकी सूचना देना इनका कार्य था । अशोक की आज्ञाओं में इन्हें 'सम्राट् के

गुप्त-चर

मनुष्य' ('पुलिसानां', स्तंभ-आज्ञा ६) या 'संवाददाता' ('पतिवेदक', शिला-आज्ञा ६) कहा गया है । एरियन के अनुसार ये जासूस नगरों और ग्रामों की सब कारखाइयों पर दृष्टि रखते और महाराज को उनकी सूचना देते थे । और, लोकसत्ताक राज्यों में प्रतिनिधि-शासक को—'अधिकारिन्' (मैजिस्ट्रेट)—समाचार देते थे । * मेगास्थिनीज़ लिखता है कि इन गुप्त-चरों पर कोई मिथ्या समाचार देने का दोषारोपण कभी नहीं हुआ ; क्योंकि किसी भी

गुप्त-चरों की प्रामाणिकता

भारतीय से यह अपराध कभी नहीं बन पड़ा । प्रसिद्ध ऐतिहासिक स्वर्गवासी मि० वी० ए० स्मिथ लिखते हैं कि इस कथन पर पूरा विश्वास तो नहीं किया जा सकता, परंतु प्राचीन भारत के निवासी सचाई और ईमानदारी के लिये बहुत ही विख्यात थे ।

अपराधियों को भीषण दंड दिया जाता था । यदि

अपराधियों को दंड

कोई किसी को अंग-हीन कर देता, तो दंड-स्वरूप वह भी उसी अंग से हीन किया जाता था ; और हाथ घाते में काट लिया जाता था । आहत मनुष्य यदि कारीगर हुआ, तो अपराधी को प्राण-दंड मिलता था । झूठी गवाही देनेवाले के नाक-कान काट लिए जाते थे । किसी-किसी अपराध के लिये सिर के बाल मूड़ दिए जाते थे, और यह दंड बहुत ही लज्जाजनक समझा जाता था । पवित्र वृक्षों को हानि पहुँचानेवाला भी दंड पाता था । चोरी का तो शायद कभी नाम भी नहीं सुनने में आता था । मेगास्थिनीज़ बड़े संतोष के साथ लिखता है कि चंद्रगुप्त के साथ पड़ाव में रहने के दिनों में—और पड़ाव में चार लाख मनुष्य थे—किसी दिन मैंने लगभग १२५) रु० से अधिक की चोरी की बात नहीं सुनी । जिस समाज में झूठी गवाही देनेवाले के नाक-कान काट लिए जाते थे, उसमें चोर के लिये स्थान कहाँ ? क्योंकि उसके लिये प्राण-दंड से कम की व्यवस्था क्यों होने लगी !

प्रधान सरकार स्थानीय कर्मचारियों के द्वारा सब

कठोर नियमन

श्रेणियों और जातियों के अधिवासियों का कठोर नियंत्रण और सूक्ष्म निरीक्षण करती थी । ज्योतिषी, भविष्यद्वक्ता और पाधा-पुरोहित भी इस कृपा से वंचित नहीं थे । फलों और कथनों के सत्यासत्य होने के अनुरूप उन्हें इनाम या दंड मिलता था । राज्य के वेतनभोगी कारीगर, जहाज़ और शस्त्रास्त्र बनानेवाले सर्वसाधारण का काम नहीं करने पाते थे ।

कृषकों के सुबीते के लिये राज्य की ओर से सिंचाई

प्रजा-हित

के निमित्त नहरों आदि का भी प्रबंध था । इसके आयोजन के लिये स्वतंत्र विभाग था । भूमि की नाप का भी काम इसी विभाग

सिंचाई का प्रबंध

के अधीन था । यह विभाग इस बात का ध्यान रखता था कि हरएक को

नहीं देता । किंतु पाँच-पाँच 'वृद्धों' या 'मुख्यों' की समितियों की व्यवस्था धर्म-परिषदों, बौद्ध-संघों और पातंजलि के 'पंचक', 'दशक', 'विंशक' संघों का अनुकरण-मात्र होने के कारण, पाटलिपुत्र की 'पौर'-सभा, लोक-निर्वाचित सदस्यों से संगठित होने की छाप अपने मस्तक पर धारण किए प्रतीत होती है । 'पौर' के सिवा नगर के व्यापारियों के प्रतिनिधियों की 'नैगम' सभा का भी वर्णन पाया जाता है । राजनीतिक और शासन-पद्धति-संबंधी मामलों पर 'पौर' और 'जानपद' सभाएँ मिलकर विचार करती थीं । चाणक्य के 'अर्थ-शास्त्र' में नियत समय पर 'पौर-जानपद' की कार्यकारिणी या स्थायी समिति—'समवाय'—और सम्राट् के नित्यप्रति समागम की आज्ञा है । इससे यह अनुमान असंगत न होगा कि चंद्रगुप्त उक्त लौकिक संस्थाओं के परामर्श के अनुसार शासन करता था । (हिंदू-राजनीति पर पटने के श्रीयुत काशीप्रसाद जायसवाल की एक पुस्तक प्रकाशित होनेवाली है । उसी का कुछ अंश 'माडर्न रिव्यू' में प्रकाशित हुआ है । इस टिप्पणी की सामग्री उसी लेख से ली गई है । ले०)

* एरियन-कृत 'इंडिका', प्रथम भाग, अध्याय १२ देखो ।

जल का उचित अंश प्राप्त हो। विधिवत् नाले और नालियाँ थीं, जिनसे खेतों में पानी पहुँचता था। दूर के प्रांतों के कृषकों के लिये भी इस सुबीते का ध्यान रक्खा जाता था। कहाँ काठियावार का गिरनार पर्वत और कहाँ पाटलिपुत्र! परंतु वहाँ के किसानों की आवश्यकताएँ भी सम्राट् के द्वारा उपेक्षित नहीं होती थीं। वैश्य पुष्यगुप्त पश्चिमी प्रांतों का राज-प्रतिनिधि शासक था। उसने उक्त पहाड़ के पूर्व ओर 'सुदर्शन' नाम की झील सिंचाई के सुबीते के लिये बनवाई थी।*

गिरनार पर झील

काठियावार-सरीखे सुदूर प्रांत में भी सिंचाई के साधनों के लिये इस चिंता और प्रचुर व्यय से स्पष्ट है कि सिंचाई के लिये जल का प्रबंध करना परम कर्तव्य माना जाता था।

राज्य की ओर से सड़कों को सुगम और सुरक्षित रखने का भी प्रबंध था। प्रायः आध-आध कोस पर आजकल की तरह अंतर-सूचक पटियाएँ राजमार्गों पर लगी थीं, जिन पर उपमार्गों का भी उल्लेख रहता था। राजधानी पाटलिपुत्र से एक सड़क सीधी पश्चिमोत्तर-सीमांत तक गई थी। यह लगभग पाँच हज़ार मील की थी।

राजमार्गों का सुप्रबंध

पाँच हज़ार मील की सड़क

विदेश से आनेवाले पदार्थों पर सात तरह की विभिन्न चुंगियों का उल्लेख चाणक्य के 'अर्थ-शास्त्र' में पाया जाता है। इन सब की रक़म मिलकर लगभग बीस प्रति सैकड़ा होती है। अतएव चंद्रगुप्त के काल में विदेश से आए हुए माल पर चुंगी की व्यवस्था अवश्य थी। स्वदेशी पण्यों पर भी राजस्व लिया जाता था। विदेशी मद्य पर चुंगी की विशेष व्यवस्था थी।

चुंगी

मद्य पर अधिक

* इसमें जो कमियाँ रह गई थीं, उनकी पूर्ति चंद्रगुप्त के पौत्र सम्राट् अशोक के समय में हुई। चार सौ वर्ष बाद ई० १५० में एक असाधारण-रूप के भयंकर तूफ़ान से इस झील का बाँध टूट गया और झील नष्ट हो गई। शकक्षत्रप रुद्रदमन ने इस बाँध को 'तिगुना पुष्ट' बनवाया। किंतु यह भी न टिका। ई० ४५८ में सम्राट् स्कंदगुप्त के प्रतिनिधि शासक ने पुनः इसकी मरम्मत करवाई। फिर यह झील कब नष्ट हुई, पता नहीं।

मेगास्थिनीज़ के आधार पर डायोडोरस लिखता है—

"पोषण के बहुल साधनों के कारण (भारत के) निवासियों का डील साधारण से बड़ा है। वे आत्मसम्मान-पूर्ण ढंगों के लिये विख्यात हैं। वे कलाओं में भी ख़ूब ही निपुण हैं, जैसी कि शुद्ध वायु और अति उत्तम जल पानेवाले मनुष्यों से आशा की जा सकती है। भूमि सब प्रकार के फल उत्पन्न करती है, और भू-गर्भ में सब तरह की धातुओं की अनेक खानें हैं। सोना और चाँदी बहुत है। ताँबे और लोहे की मात्रा भी कम नहीं। टीन तथा अन्य धातुएँ भी हैं, जिनसे व्यवहार की चीज़ें, गहने, हथियार और युद्ध-कवच बनाए जाते हैं। गेहूँ, चना, जुआर आदि के सिवा संपूर्ण भारत में बाजरा पैदा होता है। नदियों की अधिकता के कारण खेती ख़ूब सिंची रहती है। अनेक प्रकार की दालें और चावल भी पैदा होता है। और भी बहुत तरह के खाद्योपयोगी पौदे हैं, जिनमें अधिकांश आप-ही-आप उपजते हैं। भूमि और भी बहुतेरी पशुओं के खाने के योग्य वस्तुएँ पैदा करती है, जिनका वर्णन कहाँ तक किया जाय। अतएव, पक्की तौर से कहा जाता है कि **भारत में अकाल कभी नहीं पड़ा और पोषक खाद्यों की व्यापक कमी कभी नहीं हुई।** वर्ष में दो बार वर्षा होने के कारण भारतवासी प्रायः सदा साल में दो फ़सलें काटते हैं। और, यदि एक फ़सल न हुई, तो दूसरी का निश्चय तो उन्हें रहता ही है। इसके सिवा स्वतः फलनेवाले फल और मधुर कंद-मूल अधिकता से मिलनेवाले पदार्थ हैं, जिनसे मनुष्य का पोषण होता है।..........

देश और देशवासी

जनता

फल-फूल

खानें

नाज

अकाल कभी नहीं

कंद-मूल

और भी, भारतवासी ऐसी रीतियों का पालन करते हैं, जिनके कारण उनके देश में दुर्भिक्ष नहीं पड़ने पाता। समर-काल में भूमि को उजाड़कर बेज़ुर्ता पड़ती बना देना अन्य जातियों में साधारण बात है। इसके विपरीत, भारतवासियों में, जो कृषक-वर्ग को पवित्र और अवध्य मानते हैं, उस समय भी किसानों में किसी

रीतियों की उपयोगिता

प्रकार की अरक्षा के भाव और उद्वेग की उत्पत्ति नहीं होती, जब उनके समीप ही समर होता रहता है। प्रांत के एक ही भाग में एक ओर भीषण संग्राम के प्रताप से तलवारों की झनझनाहट सुनाई पड़ती और रक्त की नदियाँ बहती हैं, और दूसरी ओर किसान निश्चिंत-भाव से खेती करते दिखाई पड़ते हैं। बात यह है कि यद्यपि दोनों पक्षों के सूरमा एक दूसरे का संहार करते हैं, तथापि किसानी में लगे हुए लोगों को कहने-सुनने को भी नहीं छेड़ते। इसके अतिरिक्त वे शत्रु की भूमि को न तो आग लगाकर राख करते और न पेड़ काटकर उजाड़ते हैं।"

सामरिकों का सौजन्य

सभी देशवासी स्वाधीन थे। गुलामी की प्रथा भारत में नहीं थी। विदेशियों को भी गुलाम नहीं बनाया जाता था। रहन-सहन की विधि सीधी-सादी थी। मतलब यह कि सभी सुखी और संपन्न थे।* मेगास्थिनीज़ के आधार पर स्ट्रेबो लिखता है—"भारतवासी सिवा यज्ञों के अवसरों पर मद्य कभी नहीं पीते। सत्य-परायणता और वचन-पालन (भारतीय) जनता का व्यापक गुण है। हमारे चंद्रगुप्त-कालीन पूर्वजों में व्यापार-व्यवहार के नाम पर मुक़द्दमेबाज़ी नाम को भी नहीं होती थी। कोई अपना वचन भंग करना जानता ही न था। लेन-देन में लिखा-पढ़ी और गवाहों की ज़रूरत नहीं पड़ती थी, न ज़मानत ही ली जाती थी। भूलकर ही कभी कोई क़ानून की शरण लेता था। यहाँ तक ईमानदारी बढ़ी हुई थी कि किसी तरह के ज़बानी सौदे या निश्चय अथवा धरोहर के लिये लिखा-पढ़ी मोहर-छाप या गवाहों की आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। एक दूसरे पर पूर्ण विश्वास करते थे। चोरी और बटमारी का यह हाल था कि लोग अपने घर या माल-ताल को अरक्षित अवस्था में बिना पहरे या कुंजी-ताले के छोड़ देते थे।† मिथ्यावादी के नाक-कान काट लिए जाते थे। ब्याज पर रुपए उधार देने की चाल नहीं थी। शायद ही कभी कोई ऋण लेता था। न कोई किसी पर अन्याय करता था, न कोई अन्याय ही सहता था। विवेक भारतीय सम्राटों को विदेशों पर आक्रमण करने से रोकता था। सत्य और धार्मिकता का बड़ा आदर था।

सदाचार

चंद्रगुप्त के समय में भारत-वासियों में असवर्ण-विवाह करने की रीति नहीं थी।* अपना पुश्तैनी व्यवसाय छोड़कर दूसरा व्यवसाय कोई नहीं करता था। बिना श्रेष्ठ बुद्धि के बूढ़ों को किसी प्रकार के विशेष अधिकार नहीं प्राप्त थे। स्वदेश छोड़कर विदेश में जाकर बसना उनके स्वभाव के विरुद्ध था। प्लिनी (Pliny) अपनी 'नैचुरल हिस्ट्री' (प्राकृतिक इतिहास) में लिखता है कि "केवल भारत-वासियों ही की एक ऐसी जाति है, जो विदेशों में जाकर कभी नहीं बसी।" भारतीय मानते थे कि फ़ादर बक्कस के समय से सिकंदर के समय तक हमारे १५४ राजा ६४५१ वर्ष ३ महीने तक राज्य कर चुके हैं।

सामाजिक रीति-नीति

प्राचीनता

चंद्रगुप्त के शासन के पूर्वोक्त वृत्तांत से स्पष्ट है कि वह बड़ा ही कर्मठ और तत्पर पुरुष था। अत्यंत हीन अवस्था से उठकर उसने मगध के राज्य को हस्तगत किया। उसने बाहु-बल से विदेशी विजेता सिकंदर के प्रतिनिधियों की जड़ स्वदेश से उखाड़ दी। सिकंदर के उत्तराधिकारी सेल्यूकस ने जब भारत पर चढ़ाई की, तो चंद्रगुप्त का लोहा मानकर उसे बहुत दबकर संधि करनी पड़ी, और फिर भारत पर आक्रमण करने के लिये किसी विदेशी का साहस नहीं पड़ा। उसने संपूर्ण उत्तर-भारत को जीतकर एक सूत्र में बाँध दिया, और ऐसे विशाल साम्राज्य में जीते-जी सींक खड़ी रक्खी। उसका शासन बहुलांश में प्रजासत्ताक और न्याय-पूर्ण था। प्रजा सब प्रकार से सुखी थी; देश अन्न-धन से परिपूर्ण था। धर्म और नीति की सत्ता अटल थी। विदेशियों से बहुतायत से व्यापार होता था, और भारत-वासी विदेशियों तथा विदेशी वणिकों पर किसी प्रकार का अन्याय-अत्याचार नहीं होने पाता था। इसके विपरीत उन्हें सब प्रकार से सहायता दी जाती थी, और उनकी सेवा-शुश्रूषा का सुंदर आयोजन था। निश्चय-पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि दक्षिण-भारत और सुदूर मद्रास-प्रांत को भी चंद्रगुप्त ही अपने अधीन कर गया था, या उसके उत्तराधिकारी और पुत्र

उपसंहार

* एरियन-कृत 'इंडिका', प्रथम भाग, देखो।

† ताले के लिये संस्कृत शब्द, जहाँ तक हम जानते हैं, नहीं मिलता।

* एरियन-कृत 'इंडिका', प्रथम भाग, अध्याय १२ देखो।

बिंदुसार ने इन्हें अपने साम्राज्य का अंग बनाया। परंतु यह मालूम है कि चंद्रगुप्त का पौत्र अशोक जब सिंहासन पर बैठा, तब ये प्रांत उसके साम्राज्य में शामिल थे। यदि यह करतूत बिंदुसार की हो, तो भी चंद्रगुप्त ने अपने २४ वर्ष के शासन में बड़ा काम कर दिखलाया। संपूर्ण उत्तर-भारत पर विजय प्राप्तकर उसे व्यवस्थित भाव से एक सूत्र में बाँध देना भी सामान्य बात नहीं है। इससे बड़ी ही तेजस्विता, तत्परता और बुद्धिमत्ता का परिचय मिलता है। भारत के प्रामाणिक इतिहास में इस सम्राट् का नाम सदा सुवर्णाक्षरों में चमकता रहेगा।

चंद्रगुप्त के समय के सदाचार का वृत्तांत पढ़कर तो जान पड़ता है कि कोई हमें चिढ़ा रहा है, व्यंग्य कर रहा है। देशवासियो, एक बार इस चित्र को सामने रक्खो, और विचारो कि किन महापुरुषों का रक्त तुम्हारी नसों में दौड़ रहा है। विचारो, और जगद्वरेण्य पूर्वजों के जगद्वरेण्य वंशधर बनने का प्रयत्न करो।

बालमुकुंद वाजपेयी

अधिकार-चिंता

(१)

मी यों देखने में तो बहुत तगड़ा था। भूँकता तो सुननेवालों के कानों के परदे फट जाते। डील-डौल भी ऐसा कि अँधेरी रात में उस पर गधे का भ्रम हो जाता। लेकिन उसकी श्वानोचित वीरता किसी संग्राम-क्षेत्र में प्रमाणित न होती थी। दो-चार दफ़े जब बाज़ार के लेंडियों ने उसे चुनौती दी, तो वह उनका गर्व-मर्दन करने के लिये मैदान में आया, और देखनेवालों का कहना है कि जब तक लड़ा जीवट से लड़ा; नखों और दाँतों से ज़्यादा चोटें उसकी दुम ने कीं। निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि मैदान किसके हाथ रहता, किंतु जब उस दल को और कुमक मँगानी पड़ी, तो रण-शास्त्र के नियमों के अनुसार विजय का श्रेय टामी ही को देना उचित और [illegible] नुकूल जान पड़ता है। टामी ने उस अवसर पर कौशल से काम लिया और दाँत निकाल दिए; जो संधि की याचना थी। किंतु तब से उसने ऐसे सन्नीति-विहीन प्रतिद्वंद्वियों के मुँह लगना उचित न समझा।

इतना शांति-प्रिय होने पर भी टामी के शत्रुओं की संख्या दिनों-दिन बढ़ती जाती थी। उसके बराबरवाले तो उससे इसलिये जलते कि वह इतना मोटा-ताज़ा होकर इतना भीरु क्यों है। बाज़ारी दल इसलिये जलता था कि टामी के मारे घूरों पर की हड्डियाँ भी न बचने पाती थीं। वह घड़ी-रात रहे उठता और हलवाइयों की दूकानों के सामने के दोने और पत्तल, क़साईख़ाने के सामने की हड्डियाँ और छीछड़े चबा डालता। अतएव इतने शत्रुओं के बीच में रहकर टामी का जीवन संकटमय होता जाता था। महीनों बीत जाते और पेट-भर भोजन न मिलता। दो-तीन बार उसे मन-माने भोजन करने की ऐसी प्रबल उत्कंठा हुई कि उसने संदिग्ध साधनों द्वारा उसको पूरा करने की चेष्टा की; पर जब परिणाम आशा के प्रतिकूल हुआ और स्वादिष्ट पदार्थों के बदले अरुचिकर, दुर्ग्राह्य वस्तुएँ भर-पेट खाने को मिलीं—जिससे पेट के बदले कई दिनों तक पीठ में विषम वेदना होती रही—तो उसने विवश होकर फिर सन्मार्ग का आश्रय लिया। पर डंडों से पेट चाहे भर गया हो, वह उत्कंठा शांत न हुई। वह किसी ऐसी जगह जाना चाहता था, जहाँ ख़ूब शिकार मिले; ख़रगोश, हिरन, भेड़ों के बच्चे मैदानों में विचर रहे हों, और उनका कोई मालिक न हो; जहाँ किसी प्रतिद्वंद्वी की गंध तक न हो; आराम करने को सघन वृक्षों की छाया हो, पीने को नदी का पवित्र जल। वहाँ मन-माना शिकार करूँ, खाऊँ और

मीठी नींद सोऊँ। वहाँ चारों ओर मेरी धाक बैठ जाय ; जिधर से निकल जाऊँ, जंगल के जीवों में हलचल पड़ जाय ; सब पर ऐसा रोब छा जाय कि मुझीको अपना राजा समझने लगें और धीरे-धीरे मेरा ऐसा सिक्का बैठ जाय कि किसी द्वेषी को वहाँ पैर रखने का साहस ही न हो।

संयोग-वश एक दिन वह इन्हीं कल्पनाओं के सुख-स्वप्न देखता हुआ सिर झुकाए सड़क छोड़कर गलियों से चला जा रहा था कि सहसा एक सज्जन से उसकी मुठभेड़ हो गई। टामी ने चाहा कि बचकर निकल जाऊँ ; पर वह दुष्ट इतना शांति-प्रिय न था। उसने तुरंत झपटकर टामी का टेटुआ लिया। टामी ने बहुत अनुनय-विनय की ; गिड़गिड़ाकर कहा—ईश्वर के लिये मुझे यहाँ से चले जाने दो ; क़सम ले लो, जो इधर पैर रक्खूँ। मेरी शामत आई थी कि तुम्हारे अधिकार-क्षेत्र में चला आया। पर उस मदांध और निर्दय प्राणी ने ज़रा भी रिआयत न की। अंत में हारकर टामी ने गर्दभ-स्वर में फ़रियाद करनी शुरू की। यह कोलाहल सुनकर मोहल्ले के दो-चार नेतालोग एकत्र हो गए ; पर उन्होंने भी दीन पर दया करने के बदले उलटे उसी पर दंत-प्रहार करना शुरू किया। इस अन्याय-पूर्ण व्यवहार ने टामी का दिल तोड़ दिया। वह जान छोड़कर भागा। उन अत्याचारी पशुओं ने बहुत दूर तक उसका पीछा किया ; यहाँ तक कि मार्ग में एक नदी पड़ गई और टामी ने उसमें कूदकर अपनी जान बचाई।

कहते हैं, एक दिन सबके दिन फिरते हैं। टामी के दिन भी नदी में कूदते ही फिर गए। कूदा था जान बचाने के लिये, हाथ लग गए मोती। तैरता हुआ उस पार पहुँचा, तो वहाँ उसकी चिर-संचित अभिलाषाएँ मूर्तिमती हो रही थीं।

(२)

यह एक विस्तृत मैदान था। जहाँ तक निगाह जाती थी, हरियाली की छटा दिखाई देती थी। कहीं नालों का मधुर कल-रव था, कहीं झरनों का मंद गान ; कहीं वृक्षों के सुखद पुंज थे, कहीं रेत के सपाट मैदान। बड़ा सुरम्य मनोहर दृश्य था।

यहाँ बड़े तेज़ नखोंवाले पशु थे, जिनकी सूरत देखकर टामी का कलेजा दहल उठता था। पर उन्होंने टामी की कुछ परवा न की। वे आपस में नित्य लड़ा करते थे ; नित्य खून की नदी बहती रहती थी। टामी ने देखा, यहाँ इन भयंकर जंतुओं से पेश न पा सकूँगा। उसने कौशल से काम लेना शुरू किया। जब दो लड़नेवाले पशुओं में एक घायल और मुरदा होकर गिर पड़ता, तो टामी लपककर मांस का कोई टुकड़ा ले भागता और एकांत में बैठकर खाता। विजयी पशु विजय के उन्माद में उसे तुच्छ समझकर कुछ न बोलता।

अब क्या था, टामी के पौ-बारह हो गए। सदा दिवाली रहने लगी। न गुड़ की कमी थी, न गेहूँ की। नित नए पदार्थ उड़ाता और वृक्षों के नीचे आनंद से सोता। उसने ऐसे सुख-स्वर्ग की कल्पना भी न की थी। वह मरकर नहीं, जीते जी स्वर्ग पा गया।

थोड़े ही दिनों में पौष्टिक पदार्थों के सेवन से टामी की चेष्टा ही कुछ और हो गई। उसका स्वरूप तेजस्वी और शरीर सुसंगठित हो गया। अब वह छोटे-मोटे जीवों पर स्वयं हाथ साफ़ करने लगा। जंगल के जंतु अब चौंके, और उसे वहाँ से भगा देने का यत्न करने लगे। टामी ने तब एक नई चाल चली। वह कभी किसी पशु से कहता कि तुम्हारा फ़लाँ शत्रु तुम्हें मार डालने की तैयारी कर रहा है ; किसीसे कहता कि फ़लाँ तुझको

गाली देता था। जंगल के जंतु उसके चकमे में आकर आपस में लड़ जाते, और टामी की चाँदी हो जाती। अंत में यहाँ तक नौबत पहुँची कि बड़े-बड़े जंतुओं का नाश हो गया। छोटे पशुओं को उससे मुक़ाबला करने का साहस न होता था। उसकी उन्नति और शक्ति देखकर उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा, मानो यह विचित्र जीव आकाश से हमारे ऊपर शासन करने के लिये भेजा गया है। टामी भी अब अपनी शिकारबाज़ी के जौहर दिखाकर उनकी इस भ्रांति को पुष्ट किया करता था। बड़े गर्व से कहता—"परमात्मा ने मुझे तुम्हारे ऊपर राज्य करने के लिये भेजा है। यह ईश्वर की इच्छा है। तुम आराम से अपने घरों में पड़े रहो। मैं तुमसे कुछ न बोलूँगा, केवल तुम्हारी सेवा करने के पुरस्कार-स्वरूप तुममें से एकाध का शिकार कर लिया करूँगा। आखिर मेरे भी तो पेट है; बिना आहार के कैसे जीवित रहूँगा और कैसे तुम्हारी रक्षा करूँगा?" वह अब बड़ी शान से जंगल में चारों ओर गौरवान्वित दृष्टि से ताकता हुआ विचरा करता।

टामी को अब कोई चिंता थी तो यह कि इस देश में मेरा कोई मुद्दई न उठ खड़ा हो। वह नित्य सजग और सशस्त्र रहने लगा। ज्यों-ज्यों दिन गुज़रते थे और उसके सुख-भोग का चसका बढ़ता जाता था, त्यों-त्यों उसकी चिंता भी बढ़ती जाती थी। वह अब बहुधा रात को चौंक पड़ता और किसी अज्ञात शत्रु के पीछे दौड़ता। अक्सर "अंधा कूकुर बतासे भूँके"-वाली लोकोक्ति को चरितार्थ करता। वन के पशुओं से कहता—"ईश्वर न करे कि तुम किसी दूसरे शासक के पंजे में फँस जाओ। वह तुम्हें पीस डालेगा। मैं तुम्हारा हितैषी हूँ; सदैव तुम्हारी शुभ-कामना में मग्न रहता हूँ। किसी दूसरे से यह आशा मत रक्खो।" पशु एक-स्वर से कहते—"हम जब तक जिएँगे, आप ही के अधीन रहेंगे।"

आखिर को यह हाल हुआ कि टामी को क्षण-भर भी शांति से बैठना दुर्लभ हो गया। वह रात-रात और दिन-दिन-भर नदी के किनारे इधर-से-उधर चक्कर लगाया करता। दौड़ते-दौड़ते हाँफने लगता, बेदम हो जाता; मगर चित्त को शांति न मिलती। कहीं कोई शत्रु न घुस आए।

लेकिन क्वाँर का महीना आया तो टामी का चित्त एक बार फिर अपने पुराने सहचरों से मिलने के लिये लालायित होने लगा। वह अपने मन को किसी भाँति रोक न सका। वह दिन याद आया, जब वह दो-चार मित्रों के साथ किसी प्रेमिका के पीछे गली-गली और कूचे-कूचे के चक्कर लगाता था। दो-चार दिन तो उसने सब्र किया, पर अंत में आवेग इतना प्रबल हुआ कि वह तक़दीर ठोंककर चल खड़ा हुआ। उसे अब अपने तेज और बल पर अभिमान भी था। दो-चार को तो वहीं मज़ा चखा सकता था।

किंतु नदी के इस पार आते ही उसका आत्म-विश्वास प्रातःकाल के तम के समान फटने लगा। उसकी चाल मंद पड़ गई, आप-ही-आप सिर झुक गया, दुम सिकुड़ गई। मगर एक प्रेमिका को आते देखकर वह विह्वल हो उठा; उसके पीछे हो लिया। प्रेमिका को उसकी यह कुचेष्टा अप्रिय लगी। उसने तीव्र स्वर से उसकी अवहेलना की। उसकी आवाज़ सुनते ही उसके कई प्रेमी आ पहुँचे, और टामी को वहाँ देखते ही जामे से बाहर हो गए। टामी सिटपिटा गया। अभी निश्चय न कर सका था कि क्या करूँ कि चारों ओर से उस पर दाँतों और नखों की वर्षा होने लगी। भागते भी

न बन पड़ा। देह लहू-लुहान हो गई। भागा भी, तो शैतानों का एक दल पीछे था।

उस दिन से उसके दिल में एक शंका-सी समा गई। हर घड़ी यह भय लगा रहता कि आक्रमणकारियों का दल मेरे सुख और शांति में बाधा डालने के लिये, मेरे स्वर्ग को विध्वंस करने के लिये, आ रहा है। यह शंका पहले भी कम न थी; अब और भी बढ़ गई।

एक दिन उसका चित्त भय से इतना व्याकुल हुआ कि उसे जान पड़ा, शत्रु-दल आ पहुँचा। वह बड़े वेग से नदी के किनारे आया और इधर-से-उधर दौड़ने लगा।

दिन बीत गया, रात बीत गई; पर उसने विश्राम न लिया। दूसरा दिन आया और गया, पर टामी निराहार, निर्जल नदी के किनारे चक्कर लगाता रहा।

इस तरह पाँच दिन बीत गए। टामी के पैर लड़खड़ाने लगे, आँखों-तले अँधेरा छाने लगा। क्षुधा से व्याकुल होकर वह गिर-गिर पड़ता, पर वह शंका किसी भाँति शांत न हुई।

अंत में सातवें दिन अभागा टामी अधिकार-चिंता से ग्रस्त, जर्जर और शिथिल होकर परलोक सिधारा। वन का कोई पशु उसके निकट न गया। किसी ने उसकी चर्चा तक न की; किसी ने उसकी लाश पर आँसू तक न बहाए। कई दिनों तक उस पर गिद्ध और कौए मँडलाते रहे; अंत में अस्थि-पंजरों के सिवा और कुछ न रह गया।

"प्रेमचंद"

छलिया

हम तुझे समझे हुए थे, है गुलाब;
मस्त होगा मन-मधुप मधु-पान से।
जी जलाने को बना अंगार तू;
हाय, क्यों चाहा तुझे जी-जान से? १॥

मुग्ध मन-मृग बीन-वाणी पर हुआ;
स्वर लगे प्यारे हृदय को प्राण-से।
बाँध ले यों ही बधिक, बँधुआ बना
मारता है किसलिये विष-बाण से? २॥

प्यास! हाँ, थी प्यास मृग-तृष्णा मुझे;
है यहाँ लाई दिखाकर मानसर।
होश उड़ते हैं मरु-स्थल देखकर;
जल कहाँ है? जल रहे हैं, हाय, पर॥ ३॥

आह! अब वह रस-भरी चितवन कहाँ?
है कहाँ जाता रहा वह प्रेम भाव?
पार करना था अभी कुछ दिन तुझे;
क्यों डुबो दी बीच ही में, हाय, नाव! ४॥

वंचना क्यों? ठग गया हूँ आप मैं;
यह कपट किससे कि मैं तेरा हुआ।
बाँधता है किसलिये यों हाथ-पाँव?
बिक गया, बेदाम का चेरा हुआ॥ ५॥

थी बड़ी उम्मेद करुणा-कोर की;
किंतु मुझसे तू रहा आँखें बदल।
गुड़ दिखाकर मारता है ईंट यों;
प्रेम-फंदे में फँसाकर, हाय, छल! ६॥

इस तरह विश्वास में विश्वास-घात;
बिजलियाँ दिल पर यहाँ गिर-गिर गईं।
आँख लगते आँखों से ओझल हुआ;
और फिर बस, तेरी आँखें फिर गईं॥ ७॥

"सनेही"

पुराने लखनऊ की एक झलक

द्यपि प्राचीनता की दृष्टि से देहली का दर्जा ऊँचा है, परंतु शाही में लखनऊ पर भी एक ऐसा रंग आया है, जिसकी नज़ीर आसमान की आँखों ने कम देखी है। अपने ध्यान को गत शताब्दी के मध्य की ओर ले आइए, और एक उच्च-कुलोत्पन्न अँगरेज़-रमणी

के आँखों देखे दृश्य की कहानी, उसकी एक सहेली की ज़बानी, सुनिए। हाय, क्या-क्या लोग थे, और क्या-क्या सूरतें थीं, जो खाक में मिल गईं! जहाँ आज लखनऊ का सबसे सुंदर 'पार्क' है, वहीं किसी ज़माने में शाही महल थे, और उनमें आए-दिन जो धूम-धाम और जलूस नज़र आते थे, उनमें से एक का वर्णन यहाँ पर किया जाता है। आज वहाँ हरी-हरी घास, सुर्ख-सुर्ख सड़कें, छोटे-छोटे मनोहर पौदे और कहीं-कहीं तरह-तरह के फूल बहार दे रहे हैं; पर—

"सब कहाँ कुछ लालओ-गुल में नुमायाँ हो गईं।
ख़ाक में क्या सूरतें होंगी कि पिनहाँ हो गईं॥"

उक्त अँगरेज़-रमणी का कहना है कि मेरी एक माननीय सखी, जो आजकल लखनऊ में हैं, बादशाह की तख़्त-नशीनी के उत्सव की कैफ़ियत इस तरह लिखती हैं—

१८ ऑक्टोबर सन् १८२८ ई० को बादशाह की तख़्तनशीनी की साल-गिरह (वर्ष-गाँठ) थी, और मैं भी इस उत्सव में शरीक हुई थी। इस उत्सव की समाप्ति पर हम सब बादशाह की माता के महल में गए, जहाँ सब बेगमें और शाहज़ादियाँ आज निमंत्रित थीं। महरियाँ हमारा तामझाम उठाकर महल में ले गईं। दरवाज़े के क़रीब अर्दाबेगियों और मुग़लानियों की एक छोटी-सी पल्टन मर्दाना लिबास पहने, हाथों में सोने और चाँदी के बल्लम लिए, हमारी अभ्यर्थना के लिये पंक्ति बाँधे खड़ी हुई थी। बादशाह-बेगम (नसीर-उद्दीन-हैदर की माता) बहुत सादी पोशाक पहने थीं; और किसी क़िस्म का ज़ेवर भी उनके शरीर पर न था। स्वर्गीय शाह की एक और बेगम, जो बहुत थोड़ी उम्र की और खूबसूरत थी, उनके पास बैठी हुई थीं। लिबास उसका भी बहुत सादा था, क्योंकि यहाँ के रिवाज के मुताबिक़ विधवाएँ तकल्लुफ़ की पोशाक और ज़ेवरों से परहेज़ करती हैं। मौजूदा बादशाह की बेगमें निहायत क़ीमती और रंग-बिरंगी पोशाकें पहने हुए और बहुमूल्य जड़ाऊ ज़ेवरों से लदी हुई थीं। इनमें से एक बेगम ख़ास तौर पर ऐसी सुंदरी थी कि मैंने अपनी याद में हिंदोस्तान या इँगलिस्तान में कहीं उससे अधिक सुंदरी रमणी नहीं देखी। बादशाह आज तक उस पर बहुत लट्टू हैं, और उसका ब्याह भी हाल ही में हुआ है। उसकी आयु क़रीब चौदह वर्ष के होगी। हाथ-पाँव बहुत छोटे-छोटे और नाज़ुक हैं। शरीर की गढ़न और आकृति ऐसी सुडौल है कि मैंने इससे अधिक मनोहर मुख कभी नहीं देखा। उसे देखकर बार-बार मेरा ध्यान 'मूर' कवि की प्रसिद्ध नायिका 'लालारुख़' की ओर जाता था। उसकी चेष्टा, हाव-भाव और बैठने के ढंग से हद दर्जे का भोलापन और लज्जा के भाव टपकते थे। पोशाक सुर्ख़ कमख़ाब की और बाल-बाल में मोती पिरोए हुए थे। केश कंधों पर बिखरे हुए थे। माथे पर एक छोटी-सी झूमर लटक रही थी, जिसमें बड़े-बड़े मोती और ज़मुर्रुद जड़े हुए थे। कानों में बहुत-सी बालियाँ थीं, जिनमें बेशुमार लाल, ज़मुर्रुद और मोती जड़े हुए थे। गले में मोतियों की बहुत-सी मालाओं के सिवा हार और कंठे थे, जो उसके सौंदर्य को दूना कर रहे थे। नथ में दो बड़े-बड़े मोती और उनके बीच में एक बहुमूल्य ज़मुर्रुद लटक रहा था। पिशवाज़ इस क़दर भारी थी कि दासियाँ उसे सँभाले हुए थीं। जिस कौंच पर बेगम साहबा बैठी थीं, उसके दोनों ओर कई दासियाँ इसलिये खड़ी थीं कि दुपट्टे को दुरुस्त करती रहें; क्योंकि ज़रा हिलने

से मोती कमख़ाब के भारी दुपट्टे में उलझ जाते थे। उनसे दूसरी बेगमें बहुत डाह करती हैं, जिसका कारण यह है कि बादशाह और उनकी माता, दोनों उन पर बहुत मेहरबान हैं। बादशाह ने उन्हें 'नवाब ताजमहल-बेगम' का ख़िताब दिया है, और इसमें संदेह नहीं कि नूरजहाँ भी इससे अधिक सुंदरी न होगी।

एक और नई ब्याही हुई बेगम भी उनके पास ही बैठी हुई थी। यह एक अँगरेज़-सौदागर की बेटी है। इसकी शकल-सूरत बहुत मामूली है, पर यहाँ की स्त्रियाँ इसे बहुत ख़ूबसूरत ख़याल करती हैं। इसकी पोशाक ताजमहल की पोशाक से भी ज़्यादह पुर-तकल्लुफ़ थी। इसके माथे पर भी एक बहुमूल्य हीरे की जड़ाऊ झूमर झूम रही थी। इस ज़ेवर की सूरत दूज के चाँद से बहुत मिलती-जुलती है। यह बेगम * ख़ूब पढ़ी-लिखी है। अपनी मातृ-भाषा अँगरेज़ी के अलावा उर्दू-फ़ारसी भी अच्छी तरह लिख-पढ़ लेती है। पर जब हमने इससे अँगरेज़ी में बात-चीत करनी चाही, तो इसने जवाब दिया कि मैं अब अँगरेज़ी भूल गई हूँ। सुना जाता है, बादशाह इससे अँगरेज़ी पढ़ते हैं। ताज-महल के साथ ब्याह होने से पहले बादशाह इसे नहीं चाहते थे। यद्यपि ये दोनों बेगमें बराबर एक ही कौंच पर बैठी हुई थीं, पर इन दोनों में परस्पर इतनी डाह बढ़ी हुई है कि आपस में बिलकुल बोल-चाल नहीं हुई।

'नव्वाब मलका ज़मानी बेगम,' जो पुत्रवती होने के कारण बहुत प्रतिष्ठित समझी जाती हैं, इस जलसे में शरीक न थीं। हम ख़ुद उनके महल में मुलाक़ात के लिये गए।

मुग़लिया ख़ानदान की शाहज़ादी, जिससे स्वर्गीय बादशाह ने मौजूदा बादशाह के बचपन में शादी की थी, बेचारी अपने महल में नज़रबंद है। बादशाह उससे बहुत अप्रसन्न हैं। सुना जाता है, उसके सौंदर्य को इनमें से कोई बेगम नहीं पहुँचती।

नव्वाब वज़ीर-अवध के बादशाह होने की वास्तविक घटना यह है कि नव्वाब सआदत अली ख़ाँ की मृत्यु के बाद उनके बेटे मिरज़ा ग़ाज़ीउद्दीन हैदर ने, अपने नायब 'आग़ा मीर' के सलाह-मशवरे से, दिल्ली के बादशाह की अधीनता से इनकार कर दिया, और बृटिश सरकार की आज्ञा लेकर अपने मुल्क में सोने और चाँदी का सिक्का, अपने नाम से, जारी किया।

असल में ग़ाज़ीउद्दीन हैदर के कोई लड़का न था: सिर्फ़ एक बेटी थी, जो अपने चचेरे भाई से ब्याही गई। उसके लड़के का नाम 'मोहसनुद्दौला' है, और वही तख़्त और ताज का असल मालिक है। बादशाह ने अपने नवासे को अपना उत्तराधिकारी बनाने की वजह यह ज़ाहिर की कि नसीरउद्दीन हैदर (जो एक लौंडी का लड़का था) उनका असली लड़का है। यही आजकल बादशाह है। अँगरेज़ी हुक्काम इसके कुल-गोत्र से अच्छी

* यह बेगम वास्तव में एक अँगरेज़-अफ़सर की बेटी, एक दोगली औरत के पेट से, थी। बाद को इसकी मा ने एक धनाढ्य महाजन से संबंध जोड़ लिया। इसकी एक और बहन भी है। ये दोनों बहनें जब अपनी मा के पास रहती थीं, तो अपने गुज़ारे के लिये अमीर लोगों के घोड़ों के ज़ीन-पोश काढ़ा करती थीं। शकल-सूरत दोनों की मामूली थी। पर इनमें से एक ने अपनी तसवीर बादशाह को भेजी, जिस पर रीझकर बादशाह ने उससे ब्याह कर लिया। फिर तो रुपयों की रेल-पेल हो गई। इस नई बेगम ने अपने सौतेले बाप, यानी उस महाजन, को ख़ज़ांची मुक़र्रर कर लिया, और अपनी मा और बहन की मनमानी पेंशन मुक़र्रर कर दी।

तरह परिचित हैं। वर्तमान शाह की मृत्यु होने पर उत्तराधिकार का झगड़ा ज़रूर उठेगा, क्योंकि असली वारिस फ़रीदूँबख़्त मुन्नाजान की जगह बादशाह एक और लड़के को, जिसे 'केवानजाह' का ख़िताब दिया है, वारिस बनाना चाहता है।

नव्वाब मुंतज़िमुद्दौला हकीम मेहदी अली ख़ाँ आजकल प्रधान मंत्री (वज़ीर आज़म) हैं। हाज़िरी के वक़्त भी उनके हाथ में तसबीह थी। हाज़िरी के बाद बादशाह का पेचवान नव्वाब के सामने लाया गया। यह बड़ी प्रतिष्ठा की बात समझी जाती है। कारण, कोई प्रजा बादशाह के सामने हुक्क़ा नहीं पी सकती। हाज़िरी के बाद बादशाह दूसरे कमरे में गए। यहाँ पर रेज़ीडेंट ने दस्तूर के मुताबिक़ बादशाह की दस्तार (पगड़ी) उतारकर उनके सिर पर राजमुकुट रक्खा, और बादशाह राज-सिंहासन पर विराजमान हुए। आज साल-गिरह (वर्ष-गाँठ) के उत्सव की तिथि है। केवानजाह बड़ा लड़का, जिसकी उम्र चौदह वर्ष की है, एक बदसूरत नीच क़ौम का लड़का मालूम होता है। इसके हाव-भाव और चेष्टा से भी अकुलीनता प्रकट होती है। इसने सबसे पहले बादशाह को नज़र दी और चार-पाँच ख़िलअ़तें—जवाहर, जड़ाऊ तलवार, ढाल और खच्चर, हाथी, पालकी आदि—उसे राज-प्रसाद के रूप में मिलीं। इसके पश्चात् फ़रीदूँबख़्त, जो एक सुंदर, बुद्धिमान्, होनहार लड़का मालूम होता है, नज़र (भेंट) लेकर गया। इसको भी इसी तरह का सामान ख़िलअ़त में मिला। अब नव्वाब मेहदी सामने आए। इन्हें जड़ाऊ सरपेंच, पगड़ी और शाल ख़िलअ़त में मिला। इन्होंने निहायत अदब से झुककर तस-लीमात अर्ज़ (अभिवादन) की। जब असली वारिस मोहसनुद्दौला नज़र देने के लिये आगे बढ़े, तो बादशाह अप्रसन्न प्रतीत होता था। उसके चेहरे पर अप्रसन्नता के भाव झलक रहे थे। मोहसनुद्दौला बहुत सुंदर जवान है। वह अत्यंत बुद्धिमान है। मुझे यह बात बहुत बुरी मालूम हुई कि असली वारिस, एक अनुचित रिवाज की पाबंदी के सबब, एक अनधिकारी व्यक्ति को भेंट दे, और अपना बादशाह स्वीकार करे। इस रस्म की समाप्ति पर जवाहरात (रत्नों) की बौछार हुई। रेज़ीडेंट की और मेरी आस्तीन पर कई जवाहरात आ पड़े थे। मैंने रेज़ीडेंट को आस्तीन झटकते हुए देखकर उसका अनुकरण किया, और जवाहरात ज़मीन पर फेंक दिए। शाही लौंडियों और नौकरों ने सब जवाहरात बटोरकर आपस में बाँट लिए। इस बौछार में ज़मुर्रुद, पुखराज, नीलम और हीरे थे।

पद्मसिंह शर्मा

संपत्ति, व्यक्ति और समाज

ना व्यक्तियों के समाज नहीं हो सकता, और सभ्य व्यक्ति समाज ही में रह सकते हैं; उससे अलग नहीं। कहा जा सकता है कि योगी, तपस्वी आदि समाज से दूर भागते हैं। किंतु मानना ही पड़ेगा कि अंत में वे भी समाज के ही सहारे हैं। क्योंकि शरीर के निर्वाह के लिये भोजना-च्छादन आवश्यक है; और इसका जुटना बिना समाज की सहायता के हो नहीं सकता। ऐसे योगी भी बहुत ही थोड़े होंगे, जो केवल वन की वस्तुओं से अपना काल-क्षेप करते हों, और वह भी केवल ऐसे वनों से, जिनका अस्तित्व समाज की कृपा और उदारता पर निर्भर न हो। इसलिये मानना पड़ेगा कि प्रायः सभी व्यक्ति समाज के सहारे हैं। उधर बिना व्यक्तियों के समाज हो ही नहीं सकता। अतएव इन दोनों का बड़ा ही घनिष्ठ संबंध है।

हम लोग चाहें या न चाहें, किंतु समाज और व्यक्ति

का यह संबंध सदा से स्थिर है और रहेगा। इस संबंध से बहुत-से अधिकार और भार उत्पन्न होते हैं, जिनके बारे में भी समय-समय पर विचार और नियम-निर्माण होता आया है। इन्हीं नियमों को न्याय कहकर पुकारते हैं। किंतु सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर ज्ञात होगा, और पहले से ज्ञात होता आया है, कि न्याय की मात्रा विविध नियमों में समान नहीं होती। यहाँ तक कि बहुतेरे नियम न्याय के स्थापन की जगह अन्याय-पोषक माने जा सकते हैं। नियमों के बनानेवाले भी विविध दशाओं में एक-दूसरे से बहुत भिन्न होते आए हैं। कहीं यह भार शिष्टों पर पड़ा है, कहीं ऋषियों पर, कहीं पंडितों पर, कहीं धर्म-प्रचारकों पर, कहीं विजेताओं पर, कहीं राजों पर, कहीं मंत्रियों पर, कहीं कुलीनों पर, कहीं शक्तिमान् पुरुषों पर, कहीं वृद्धों पर, कहीं पंचों पर, कहीं प्रतिनिधियों पर, कहीं प्राचीनता पर, कहीं देशाचार-कुलाचार आदि पर, कहीं धनाढ्यों पर, कहीं ऐसे-ही-ऐसे अन्य लोगों या समूहों पर। इन सबके नियम अपने बनानेवालों की न्याय-प्रियता, उदारता, पांडित्य, धार्मिक सिद्धांत, स्वार्थांधता आदि के अनुसार अच्छे और बुरे होते आए हैं। समय-समय पर देशों, समाजों आदि की दशाओं के उलट-फेरों से भी नियम-परिवर्तन होता आया है।

आजकल अधिकार-हरण और मान-मर्दन की प्रथा केवल भारत में ही नहीं, बल्कि सारे संसार में ज़ोर पकड़ रही है। यह मानना पड़ेगा कि मनुष्य केवल अनुयायी होने के लिये नहीं बनाया गया। यदि ईश्वर ने उसे आँखें बंद करके दूसरे के पीछे चलने के लिये ही उत्पन्न किया होता, तो उसने सौ में निन्नानवे लोगों को आँखें और मस्तिष्क देने की उदारता न दिखलाई होती। फिर भी समझना चाहिए कि संसार में ज्ञान की स्थापना और वृद्धि केवल अनुभव से है। बिना अनुभव के मनुष्य को यह भी नहीं ज्ञान हो सकता कि साँप काटता और आग जलती है। इसलिये स्वतंत्र विचारों के साथ ज्ञान-वर्द्धन के लिये इतना और आवश्यक है कि प्राचीन अनुभवों के समूह को, जो हमारे पास मौजूद है, और जिससे आज तक हमारे ज्ञान की वृद्धि हुई है, हम बिल्कुल तुच्छ न मानें। सभी जगह उन्नति के लिये साम्य का उचित प्रयोग होना अनिवार्य है। प्राचीन अनुभवों का इतना आदर करना और समझना कि हमारे लिये अब सोचने की आवश्यकता ही नहीं, हम लोगों को बैल बनना है। गुरुओं, नेताओं आदि के विचारों का उचित से अधिक सम्मान करने में भी यही दशा प्राप्त होती है। इसी भाँति प्राची अथवा अन्यों के अनुभवों को बिलकुल तुच्छ मान से—हम चाहे जितने ज्ञानी हों, किंतु केवल स्वानुभ पर ही संपूर्ण निर्भर रहने से—हम बहुत ओछे ज्ञा के आगे कभी न बढ़ सकेंगे। संसार में ज्ञान-वृ की यही एक प्रणाली चली आई है कि जहाँ से पिछ ज्ञानी छोड़ता है, वहीं से आगे आनेवाला आरंभ कर है। हमारे यहाँ भारतीय समाज में प्राचीनता इतना मान रहा है कि बहुत-सी दशाओं में नवीन सोचना ही छोड़ दिया। इसीलिये इस निबंध के लेख सदा से नवीन विचारों के उत्पन्न करने पर, विच संशोधन पर, ज़ोर देते आए हैं! किंतु आजकल दो- बरसों से नवीन विचारों के उत्पादन, संशोधन अ स्वावलंबन की मात्रा ऐसी भयानक शीघ्रता से ब रही है कि इन संशोधन-समर्थकों को भी आज य आवश्यक समझ पड़ा कि आप लोगों के सम्मुख इ सम्मति के साथ उपस्थित हों कि भाइयो, ज़रा ठह कर देखो तो सही कि बिजली की-सी तेज़ी के सा आप किधर जा रहे हैं। ज़रा रास कसकर अप उछलता हुआ टट्टू कुछ धीमा कीजिए। कहीं ऐ न हो कि आगे बढ़ने की धुन में इस जल्दी चल पड़िए कि गिरकर हड्डियाँ तक चूर-चूर हो जायँ। आइए, आज व्यक्ति और समाज पर ही विचार हो। इन दोनों के अधिकारों तथा भारों में समय ने क उलट-फेर उपस्थित कर दिया है। इन विचारों फलाफल कई बातों की ओर जा सकता है; किंतु आ हम संपत्ति-शास्त्र से संबंध रखनेवाले समाज अ व्यक्ति-गत भाराधिकार पर विचार करेंगे। यह प्रकट है कि जैसे व्यक्ति होंगे वैसा ही समाज होगा। फिर भी समा का प्रभाव व्यक्तियों पर कम नहीं पड़ता। बहुत दशा में ऐसा भी होता है कि जैसा समाज होगा, उसमें प्रा वैसे ही भावी व्यक्ति भी होंगे। अलौकिक चरित्रवा पुरुषों पर यह नियम घटित नहीं होता; किंतु साधार मनुष्यों पर बीसों-बिस्वे घटित होता है। संपत्ति उत्पादन देखने में तो व्यक्ति पर निर्भर है, किंतु इस

भी समाज का कम प्रभाव नहीं पड़ता। समाज व्यक्तियों के लिये जैसे मौक़े देता है, चतुर व्यक्ति उन्हीं से लाभ उठाकर धनोपार्जन करते हैं। यदि समाज का संगठन एक प्रकार का न होकर दूसरे प्रकार का हो, तो दूसरे प्रकार से धनोपार्जन भले ही हो किंतु वैसा नहीं हो सकता, जैसा कि पहली दशा में था।

उदाहरण के लिये मान लीजिए कि समाज कृषि-जीवी है। ऐसी दशा में बहुत बड़ी खेती करके, कृषि-संबंधी उन्नति करके, कृषकों को उधार देकर, नई भूमि जोतू बनाकर तथा ऐसे-ही-ऐसे अन्य उपायों से धनोपार्जन होगा। कृषि-जीवी समाज में मिलों, कलों आदि के उपायों से कोई व्यक्ति धनोपार्जन नहीं कर सकता। यदि वही समाज समय के उलट-फेर से मिलों को बहुतायत से स्थापित कर दे, तो मिलें स्थापित करने में कुछ भी योग न देनेवाले व्यक्तियों को भी धनोपार्जन के नवीन मार्ग प्राप्त हो जायँगे। इसे समाज की कृपा का ही फल कहना होगा। इसी भाँति उपार्जित धन की रक्षा में भी व्यक्ति समाज का ऋणी है। यदि समाज रक्षा करना छोड़ दे, तो धनी-से-धनी व्यक्ति भी दो ही दिनों में कंगाल हो जाय, गुंडे लोग उसका सारा धन दो दिनों में लूटकर खा जायँ। इसी भाँति यदि समाज में कृषक न हों, कोई व्यक्ति कहीं खेती न करे, तो करोड़ों रुपए पास रखनेवाला व्यक्ति भी भूखों मर जाय। यदि कपड़ा बनानेवाले न हों, तो करोड़पती भी जाड़ों के मारे ठिठुरकर मर जायँ। यदि नौकर न हों, तो लखपती के हाथों में भी पानी भरने और बर्तन माँजने के घट्टे पड़े हुए देखने को मिलें। अतएव प्रकट है कि संपत्ति के उत्पादन में समाज की कुछ सहायता अवश्य ही आवश्यक है, उसकी रक्षा करना सोलहो आने समाज की उदारता पर निर्भर है और उसका उपयोग भी समाज के ही अस्तित्व और दशा से कुछ आनंद दे सकता है।

इसलिये प्रकट है कि संपत्ति यद्यपि व्यक्ति की है, तथापि उसके उपार्जन, रक्षा और मूल्य सभी समाज पर अवलंबित हैं। यही कारण है कि व्यक्तियों के सामर्थ्यानुसार समाज अपने रक्षणार्थ उन पर टैक्स लगाता और प्रकारांतर से उन पर शासन-भार रखता है। समय पड़ने पर समाज यहाँ तक आशा रखता है कि उसके मंगल के लिये व्यक्ति अपना शरीर तक अर्पण कर दें। समाज ऐसी आशा ही नहीं रखता, बल्कि लाखों व्यक्ति युद्ध आदि में समाज-रक्षा के लिये अपने प्राण तक देकर इस कथन को चरितार्थ भी करते हैं। इन कारणों से ऐसा समझना भारी भूल है कि प्रत्येक व्यक्ति को अपनी संपत्ति पर पूर्ण अधिकार है, चाहे वह उसे कुएँ में डाले और चाहे समुद्र में। संपत्ति के भावी उपयोगों पर व्यक्ति वसीयत, दान, हिबा आदि के द्वारा जो अपनी इच्छाएँ प्रकट करता है, उनके बारे में भी समाज ने बहुत-से नियम बना रक्खे हैं कि अमुक सीमा तक व्यक्ति की इच्छाओं का पालन होगा, आगे नहीं। ध्यान रखना चाहिए कि इस प्रबंध में गवर्नमेंट समाज का एक अंग-मात्र मानी गई है।

अब हम इस लेख के मुख्य विषय पर आते हैं। पाश्चात्य देशों में बहुत दिनों से श्रम-जीवी लोगों का गौरव उचित ही बढ़ता आया है। बिना संपत्ति के मनुष्य को सुख नहीं मिल सकता; बल्कि यों कहो कि उसकी शरीर-यात्रा भी नहीं चल सकती। संपत्ति को पैदा करना श्रम-जीवी लोगों पर निर्भर है। अतएव एक प्रकार से श्रम-जीवी लोग ही संसार के संचालक हैं। जो लोग आज धनी हैं, वे या तो स्वयं श्रम-जीवी हैं, अथवा किसी प्राचीन श्रम-जीवी की कृपा से उनको धन मिला है। लूट-पाट, चोरी-चंडाली से भी धन प्राप्त होता है, और हुआ है। बहुतों का विचार या अनुभव है कि बिना इन युक्तियों के यथेष्ट धन की प्राप्ति सदा से कठिन ही रही है। बाप-दादे की कमाई संपत्ति पानेवाले पुरुषों के बारे में लोग कहते ही हैं कि उन्होंने बिना हने-धुने धन पाया है। यहाँ हनना लूट-पाट आदि से संबंध रखता है, और धुनना श्रम से। ये तो साधारण बोलचाल की बातें हुईं। दार्शनिक सिद्धांतों से भी हनना और धुनना पृथक् नहीं, एक ही हैं। ये दोनों शब्द श्रम से संबंध रखते हैं। एक का श्रम बेईमानी पर निर्भर है और दूसरे का ईमानदारी पर, किंतु हैं दोनों श्रम ही। अतः प्रत्येक धनी पुरुष का धन या तो उसी के श्रम से संबंध रखता है, या उसके किसी दाता के श्रम से। जो धन उत्तराधिकार में हमें मिलता है, वह भी एक प्रकार का प्रतिग्रह है। दार्शनिक दृष्टि से यही मानना पड़ेगा कि जिसका धन हमें उत्तराधिकार में मिला है,

उसने मानों हमें धन दिया है। अतएव यह प्रकट है कि धन की उत्पत्ति श्रम से है। बिना श्रम-जीवी के संसार का परिचालन नहीं हो सकता।

वास्तव में जब श्रम का गौरव इतना बढ़ा-चढ़ा है, तब यदि पाश्चात्य प्रदेशों में श्रम-जीवी लोगों ने अपना महत्त्व बढ़ा रक्खा है, और दिनों-दिन बढ़ाते जाते हैं, तो इसमें अनुचित ही क्या है? श्रम-जीवियों का गौरव बढ़ाना उचित ही है। श्रम का माहात्म्य अपार है। इसीलिये पाश्चात्य लेखक कारलाइल ने कहा है कि श्रम करना ही पूजन है। श्रम के लिये यह भी उचित है कि संसार में पूरी होड़ हो। बिना होड़ (Competition) के श्रम उचित उन्नति नहीं कर सकता। यदि बिना पूरा श्रम किए ही मनुष्य आराम से रह सके, तो वह काहे को श्रम का कष्ट उठावेगा? संसार में जितने ही अधिक श्रम-जीवी बढ़ते जाते हैं, उतनी ही होड़ की भी मात्रा प्रबल वेग से बढ़ती जाती है। उधर जितनी ही होड़ बढ़ती जाती है, उतना ही श्रम उन्नत होता जाता है। हम ऊपर देख आए हैं कि श्रम ही भगवान् विष्णु का प्रतिरूप है, क्योंकि संसार के परिचालन और उसके स्थिरीकरण में श्रम वही काम करता है, जो भगवान् विष्णु को हमारे आचार्यों ने सौंपा है। शायद इसीलिये कहा गया है कि लक्ष्मी उनकी स्त्री हैं। वास्तव में लक्ष्मी श्रम के ही अधीन रहती हैं।

हमने ऊपर दिखलाया है कि उचित प्रकार से अधिक-से-अधिक होड़ सब उन्नतियों की जननी है। प्रकृति देवी भी हमें यही शिक्षा देती है। बकरा और मृग, दोनों जाति में एक ही हैं। किंतु होड़ के कारण मृग की चाल बढ़ी और उसने सब बातों में बकरे से कहीं अधिक उन्नति की। कुत्ता और भेड़िया भी जाति में एक हैं; किंतु होड़ के प्रसाद से भेड़िए का प्रताप बहुत अधिक बढ़ गया। डारविन साहब ने तो यहाँ तक सिद्ध करके दिखलाया है कि होड़ ही की बदौलत संसार के सारे देह-धारी धीरे-धीरे उन्नति करते हुए केंचुए से इस दशा को पहुँचे हैं। उनका मत है कि पहले संसार में केवल केंचुए थे। होड़ के कारण धीरे-धीरे उन्नति करते-करते केंचुओं से सारा संसार बन गया। यह सिद्धांत केवल डींग नहीं, बल्कि पूर्ण रूप से सिद्ध हो चुका है। फिर भी इसको मानना या न मानना हमारे इस निबं[ध] से कोई संबंध नहीं रखता। यहाँ प्रयोजन केवल इतना ही है कि होड़ ही सारी उन्नतियों की जननी है।

पाश्चात्य देशों में, विशेषकर रूस में, बहुत सम[य] से ऐसे विचार परिपक्व हो रहे थे कि समाजगत व्यक्ति[यों] में जो आज भारी असमानता देखी जाती है, उसका मूल-कारण धनी व्यक्तियों की स्वार्थांधता ही है। उनकी विचार-शैली इस प्रकार है कि माना आपके पूर्व-पुरु[ष] ने किसी समय में उचित अथवा अनुचित श्रम कर[के] बहुत-सा धन एकत्र कर लिया। आप सौ-दो सौ वर्षों [से] बिना कुछ भी प्रयत्न किए उसका फल चखते चले आ[ते] हैं। जब संपत्ति का उत्पादन, रक्षण और मूल्य समा[ज] ही पर निर्भर है, जैसा कि हम ऊपर देख आए हैं, त[ब] क्या यह उचित है कि समाज व्यक्तित्व का ऐसा पूज[न] करे कि एक श्रम-जीवी के कारण सैकड़ों वर्षों तक उस[के] श्रम-शून्य उत्तराधिकारियों को महत्ता का मान दे? इ[न] उत्तराधिकारियों में से कितने ही ऐसे निंद्य कर्म करते [हैं] कि यदि उनका श्रम-कर्ता पूर्व-पुरुष भी उन्हें देखता तो अपना उत्तराधिकारी मानने की जगह जूते [की] ठोकरों से उनके शरीर को पृथ्वी पर लुढ़का देता। फि[र] मान लिया कि कुछ उत्तराधिकारी बुरे पुरुष न हों, तो भी एक प्राचीन श्रम-कर्ता के सम्मानार्थ सैकड़ों वर्षों त[क] एक साधारण श्रम-हीन व्यक्ति को महत्ता-युक्त मानना क्या उचित है? फिर, बहुत-से प्राचीन श्रम-कर्ता ऐसे [हैं] जिन्होंने केवल लूट-पाट, छीना-झपटी आदि से ही ध[न] कमाया है। उपर्युक्त विचारवाले लोगों का कथन है [कि] क्या समाज को यह शोभा देता है कि वह ऐसे बेईमानों के उत्तराधिकारियों को भी सैकड़ों वर्षों तक उस [बे]ईमानी के पैसे से लाभ उठाने दे? उनका विचार है [कि] किसी भी प्राचीन श्रम-कर्ता की कमाई पर उसके उत्तरा[-]धिकारियों के स्वत्व की कुछ तो सीमा होनी ही चाहिए। वर्तमान नियम-समूह, कुछ बातों को छोड़कर, उन उत्तराधिकारियों के अधिकारों को असीम बतलाता है। कहते हैं, इँगलैंड आदि में, सन् १९०६ में, जो ला[खों] लोगों की संपत्ति पर हर उत्तराधिकार के समय २०) सैक[ड़ा] टैक्स लगने का नियम बनाया गया, वह कुछ-कुछ ऐसे [ही] विचारों का फल था। उन लोगों का कथन है कि अ[ब] कोड़ी कर नहीं लगी, इन संपत्तियों पर बहुत अधि[क]

कर लगना चाहिए, जिसमें समाज-रक्षण में निर्धन लोगों को वर्तमान कर की अपेक्षा बहुत कम कर देना पड़े ।

यह तो हुई उत्तराधिकारियों की दशा । वर्तमान श्रम-जीवियों के विषय में भी उनके विचार ये हैं कि विविध पुरुषों के श्रमों की तुलना में इतनी विषमता क्यों हो कि एक ५) मासिक वेतन पावे, और दूसरा २०००) मासिक ? क्या उस एक व्यक्ति का श्रम पहलेवाले १००० व्यक्तियों के श्रम के बराबर है ? क्या भारी वेतन पानेवाले की यह स्वार्थांधता नहीं है कि उसने अपने अधिकार से लाभ उठाकर अधिकार-शून्य पुरुष के श्रम की तुलना अपने श्रम की अपेक्षा बहुत ही न्यून रक्खी ? बहुत लोगों का विचार है कि किसी भी विभाग में ऊँचे-से-ऊँचे अधिकारी का वेतन नीचे-से-नीचे कर्मचारी के वेतन की अपेक्षा दसगुने से अधिक न होना चाहिए । अर्थात् यदि नीचे-से-नीचा कर्मचारी १०) मासिक पाता हो, तो उस विभाग में ऊँचे-से-ऊँचा अधिकारी १००) से अधिक न पावे । थोड़े दिनों से ऐसे विचार भी कहीं-कहीं यथेष्ट उन्नत नहीं समझे जाते । समझा जाता है कि ये विचार उन्नतिशील नव्य-मनुष्यों के भावों की तुलना में पुराने खूसटों के कथन समझे जाने के योग्य हैं ।

बहुत ही नवीन विचारों की मर्यादा इस सीमा तक पहुँच गई है कि संसार में सभी मनुष्य सब तरह से बराबर हैं, और होने चाहिए । यदि दैव-संयोगवश मैं विकलेंद्रिय (बहरा-गूँगा) अथवा असमर्थ होकर जन्मा हूँ, तो इसमें मेरा क्या दोष है ? यदि आप उन कारणों से, जिन पर आपका कोई प्रभाव न था, भीमसेन होकर आए, और वैसे ही कारणों से मैं चलने भी नहीं पाता, तो क्या सभ्य और उच्च विचारवाले मनुष्य होकर भी आपको यह शोभा देता है कि अपने सामर्थ्य से लाभ उठाकर आप बहुत अधिक संपत्ति का आनंद लूटें और मैं भूखों मरूँ ? क्या आपका यह कर्म स्वार्थ-परता की कोटि में नहीं आता ? क्या ही अच्छा होता, यदि आप ऐसे उदार होते कि मुझे भी अपने सामर्थ्य का पूरा साथी बनाकर ऐसा मानते कि हम दोनों मिलकर आपकी आय से बराबर आनंद उठावें । यदि आप स्वार्थ-परता के कारण इतनी उदारता नहीं दिखा सकते, तो क्या समाज का यह धर्म नहीं है कि वह आपको विवश करके क़ानून के द्वारा ऐसा करने के लिये मजबूर करे ?

उपर्युक्त सिद्धांत को 'समता-सिद्धांत' कहते थे । अँगरेज़ी में इसे 'सोशलिज़्म' के नाम से पुकारते हैं । हाल में इसका नाम 'बोलशेविज़्म' पड़ा है । यह दूसरा सिद्धांत समता-सिद्धांत से भी कुछ अंशों में कठिनतर है । इन दोनों में भेद क्या है, सो बताना वर्तमान प्रबंध के लिये आवश्यक नहीं । जो लोग इस सिद्धांत को मानते हैं, उन्हें बोलशेविक कहते हैं । हिंदी जाननेवालों के लिये हम इन्हें बल-सेवक कहेंगे । हाल में, इस देश में, ऐसे लोगों का प्रभाव अधिक पड़ा है । कुछ लोगों का यह भी विचार है कि असल में रूस के बाद इँगलैंड में ही बल-सेवकों का ज़ोर है, यद्यपि वे अपने को इस नाम से नहीं पुकारते । बहुतों का मत है कि ऐसा कथन नितांत भ्रम-मूलक है ।

बल-सेवकों का सिद्धांत इस प्रकार है कि न्याय से संपत्ति पर व्यक्ति का कुछ भी अधिकार नहीं, क्योंकि संपत्ति सर्वथा समाज की है । बिना समाज की सहायता के व्यक्ति कुछ भी नहीं कर सकता । यदि समाज शरीर है, तो व्यक्ति उँगली के समान है । शरीर को उँगली की आवश्यकता अवश्य है, किंतु बिना शरीर के उँगली सर्वथा असमर्थ है । संपत्ति का स्वत्व समाज में स्थापित करना बल-सेवकों के सिद्धांत का मूल-मंत्र है । वे कहते हैं, पूर्ण न्याय इसी में है कि समाज प्रत्येक व्यक्ति का, चाहे उसमें धन कमाने की शक्ति हो या न हो, समान सत्कार करे । उनका विचार है कि अपने विशेष पुरुषार्थ का लाभ उठाकर अपना ही मतलब निकालना किसी सभ्य और शिष्ट पुरुष को शोभा नहीं देता ; क्योंकि यह एक प्रकार का पाशविक धर्म है । इसलिये यदि स्वार्थांधतावश व्यक्ति अपने इस अधःपतन को नहीं देखता, तो समाज उसको उच्चाभिलाषी होने के लिये बाधित करेगा । समाज इसी कारण संपत्ति से व्यक्तिगत अधिकार उठाकर उसका स्वत्व अपने में स्थापित करता है । बल-सेवक प्रत्येक गाँव को एक प्रकार का प्रजा-तंत्र राज्य मानते हैं । उस गाँव के सब लोग काम करें । जो नाज गाँव-भर के खेतों में उत्पन्न हो, वह सब एक ही स्थान पर जमा हो । इसी प्रकार अन्य पदार्थ भी एकत्र हों । प्रत्येक कुटुंब के लोग अपनी-अपनी संख्या

के अनुसार ग्राम्य-अन्न-राशि से बिना मूल्य नाज पावें। इसी प्रकार वस्त्र तथा अन्य आवश्यक पदार्थ भी उन्हें मिलें। यदि कोई बीमार हो, तो डॉक्टर उसकी दवा करे। यदि किसी का विवाह हो, तो पादरी विवाह करा दे। सारांश यह कि प्रत्येक पुरुष का काम मुफ़्त हो; कोई किसी काम के करने पर कुछ मेहनताना न ले। मेहनताना या मज़दूरी वही है, जो प्रत्येक पुरुष अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति मुफ़्त करा पाता है। यदि किसी ग्राम में एक प्रकार के लोग कम हों, तो दूसरे ग्रामों से मँगाए जायँ। एक ग्राम में किसी बात की कमी पड़े, तो अन्य ग्रामों से सहायता मिले। कई ग्रामों को मिलाकर जो समिति उनका प्रबंध करे, उसे सोवियट कहते हैं। सारा देश प्रबंध के लिये ऐसे-ही-ऐसे सोवियटों में बँटा हुआ है। प्रत्येक पुरुष की सब आवश्यकताओं को यथाशक्ति पूर्ण करने का भार समाज पर है, और प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है कि वह यथाशक्ति समाज के हित के लिये काम करे। सारांश यह कि सारा देश मानो एक प्रकार का सम्मिलित हिंदू-कुटुंब है, जिसमें मनुष्यों की प्रधानता कमाई पर न होकर केवल उसके अस्तित्व पर है। यही बल-सेवकों का सिद्धांत है। इसके प्रतिकूल जो शंकाएँ उठ सकती हैं, उनका भी बल-सेवक लोग यथाशक्ति उत्तर देते हैं। उन्हीं का वर्णन आगे किया जाता है।

सबसे पहले तो यह कहा जाता है कि वर्तमान समय के धनी लोगों के शारीरिक सुख की मात्रा गिराकर जब सर्व-साधारण के बराबर लाई जायगी, तब उनको इतना शारीरिक कष्ट होगा कि बहुतेरे शरीर धारण न कर सकेंगे। इसका उत्तर यह दिया जाता है कि ऐसे लोग बहुत कम होंगे, जो मर ही जायँ। अधिकांश लोग कुछ दिन कष्ट उठाने के पीछे उस विषय में अभ्यस्त होकर भली भाँति रहने लगेंगे। यदि कुछ थोड़े-से मर भी जायँ, तो उसके लिये क्या किया जा सकता है? क्या वर्तमान सांसारिक स्थिति स्थिर रखने में जो युद्धादि होते हैं, उनमें आज लाखों आदमी नहीं मरते? यदि थोड़े-से अमीर शारीरिक कष्ट से मर जायँगे, तो भले ही मरें। उनके मरने के भय से इतना बड़ा सांसारिक सिद्धांत तो नहीं छोड़ा जा सकता? उनका यह भी कथन है कि जैसे आज धनाढ्यों के लिये बड़े-बड़े महल बनते हैं, वैसे आगे पाठशाला आदि सार्वजनिक संस्थाओं के लिये बनेंगे। किसी प्रकार के काम करनेवाले की कमी न होगी। बड़े आदमी आज जैसे मोटर आदि रखते हैं, वैसे ही बहु-मूल्य वाहन सर्व-साधारण के आवश्यक कार्यों के लिये रक्खे जायँगे। बहु-मूल्य भोजन-वस्त्र आदि जैसे आज बनते हैं, वैसे अवश्य न बन सकेंगे। किंतु उनकी कोई आवश्यकता भी नहीं है। धन-बाहुल्य से धनिकों को जितना मानसिक सुख मिलता है, उससे अधिक कष्ट भी वे भोगते हैं। कारण, उनको असंख्य आपदाएँ और चिंताएँ घेरे रहती हैं। वास्तव में धनिकों को शारीरिक सुख निर्धनों की अपेक्षा कम है। धनी लोग बहु-मूल्य भोजन आदि करके, और धन-बाहुल्य से आलसी होकर, अपना स्वास्थ्य बिगाड़ डालते हैं। उनके आचरण भी बिगड़ जाते हैं। उनकी पाचन-शक्ति और शरीर निर्धनों की अपेक्षा बहुत बुरे और कमज़ोर रहते हैं। उनको भाँति-भाँति के ऐसे रोग सताया करते हैं, जो केवल धन-बाहुल्य के कारण होते हैं। निर्धनों को जो अच्छे डॉक्टर-वैद्य आदि नहीं मिलते, इसमें धनिकों का धन भी एक प्रकार से बाधक है। यदि केवल धन से ही अच्छे डॉक्टर न मिलते होते, तो निर्धनों को भी यथासमय मिल जाते। सबको न मिलते, तो अब की अपेक्षा अधिकतर निर्धनों को अवश्य मिलते। संसार में जो हज़ारों चोर-डाकू भरे हुए हैं, वे सब न रहते; क्योंकि इस दुराचार का कारण निर्धनता ही है। यदि कोई निर्धन अथवा धनी न हो, और सबको आवश्यकतानुसार समान-भाव से वस्तुएँ प्राप्त हों, तो कोई चोरी या डकैती काहे को करे! इस प्रकार संसार से पातकों की संख्या बहुत कम हो जाय। धन के लिये झगड़े न हों। झगड़ों की जड़ केवल सुंदरता भले ही रह जाय, किंतु धन झगड़ों का मूल-कारण न रहे। बल-सेवकों का विचार है कि लोग केवल नाम के लिये अधिक विद्या प्राप्त करने तथा अपने को गुणी बनाने में वैसे ही दत्त-चित्त रहेंगे, जैसे कि आज हैं। यदि कोई पुरुष शक्ति होने पर भी काम न करेगा, तो उसे गोली मार दी जायगी।

बल-सेवी-सिद्धांत के समर्थन में यही और ऐसी ही अनेक बातें कही जाती हैं। यद्यपि इनमें से बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जो निर्धनों को पसंद आती हैं, और बहुतेरी सभ्यता-पूर्ण देख पड़ती हैं, किंतु जब इस सिद्धांत के विचार ध्यान-पूर्वक देखे जाते हैं, तो इसके स्थापन से

किसी का भी लाभ नहीं जान पड़ता। बल्कि कहना पड़ता है कि इसके अंग-अंग में पूरी डकैती व्याप्त है। इस सिद्धांत के प्रतिकूल जो बातें ध्यान में आती हैं, वे अब कही जाती हैं। वे ही आपत्तियाँ कुछ घटा-बढ़ाकर समता सिद्धांत के प्रतिकूल भी आरोपित होती हैं। विलायत के प्रसिद्ध सचिव बालफ़ोर महाशय ने रूस की बल-सेवक-सरकार को यह लिख भेजा था कि बल-सेवक लोग जो डींग मारते हैं कि हमने ऊँचों को दबाकर और नीचों को उठाकर सबको बराबर तथा उन्नत किया है, सो इतना तो माना जा सकता है कि बल-सेवकों ने ऊँचों को पस्त कर दिया, किंतु नीचों के उन्नत करने में वे कुछ भी समर्थ हुए हैं, इसमें संदेह है। सचिव महाशय का यह कथन देखने में तो एक बहुत बढ़िया मज़ाक़ था, किंतु असल में अक्षरशः सत्य है। और, बल-सेवक लोग इसी कथन का उत्तर अपने पास कुछ भी नहीं रखते। अब हम तार्किक सिद्धांतों के अनुसार इस गहन प्रश्न पर विचार करेंगे। बल-सेवी सिद्धांत के प्रतिकूल हमें चार प्रधान आपत्तियाँ समझ पड़ती हैं, जिनका तर्क-सहित विवरण यहाँ दिया जाता है—

(१) सबसे पहले यह सिद्धांत प्रकृति के पूर्णतया प्रतिकूल है। प्रकृति ने संसार में प्रचंड असमानताएँ बनाई हैं। उन सबको मिटाकर समता के सिद्धांत को पूर्णरूप से चलाना संपूर्णरूप से प्रकृति की प्रतिकूलता करना है। ऐसा अप्राकृतिक नियम कभी चल न सकेगा। सभी बातों में हमें प्रकृति का आदर करना पड़ता है, और बिना ऐसा किए शरीर-यात्रा भी नहीं चल सकती। फिर संपत्ति-शास्त्र में उसका पूर्ण विरोध करने से कैसे काम चलेगा?

(२) यह सिद्धांत सब तरह अन्यायकारी और असंगत है। इसका कोई भाग न्याय पर अवलंबित नहीं। यदि हमारा शरीर बलिष्ठ है, तो किसी को भी अधिकार नहीं कि हमें उसका पूर्ण फल न लेने दे, और हमारी इच्छा के प्रतिकूल हमारे श्रम का फल दूसरों में बाँट दे। यदि हम अपनी इच्छा से ऐसा करें, तो कर सकते हैं; किंतु किसी दूसरे को हमारी इच्छा के प्रतिकूल ऐसा करने का कोई भी अधिकार नहीं। यदि समाज ऐसा करे, तो वह भी डाका डालनेवाला होगा। समाज का यह पवित्र कर्तव्य है कि सबके सामर्थ्य बढ़ावे; यह नहीं कि प्रत्येक समर्थ व्यक्ति के सामर्थ्य पर नित्य-प्रति नियमबद्ध डाका डाले। यह कहना कि संपत्ति का पूर्ण स्वामी समाज ही है, व्यक्ति का उसपर कोई अधिकार है ही नहीं, सर्वथा वृथा है। समाज मौक़े पैदा करता है, किंतु बिना व्यक्ति के हुए उन मौक़ों से लाभ उठाकर धनोपार्जन करनेवाला कौन होगा? बिना व्यक्तिगत चातुर्य, परिश्रम और महत्ता के समाज शत्रु के समान हो जायगा। इसलिये व्यक्ति के अधिकार को न मानना सरासर अन्याय है, और अपने ही पैरों में आप कुल्हाड़ी मारना है, जैसा कि आगे दिखलाया जायगा। समाज धनोपार्जन का डौल लगाता है, गुण-संपादन में व्यक्ति की सहायता करता है, संपत्ति-रक्षण में प्रयोग देता है और संपत्ति के मूल्य का कारण है। किंतु इन सब कार्यों का भी कोई मूल्य है। ये कार्य मूल्य-हीन नहीं हैं। पहले तो बिना इन बातों के स्वयं समाज का ही अस्तित्व नहीं हो सकता। संपत्ति का मूल्य ठीक करना समाज का स्वभाव ही है; बिना इसके समाज हो ही नहीं सकता। जहाँ समाज होगा, मूल्य आप-से-आप स्थिर हो जायगा। समाज धन पैदा करने में व्यक्ति की जो सहायता करता है, उसका मूल्य प्रकट ही है। उसका मूल्य वही है, जो शिक्षा-विभाग आदि और गवर्नमेंट में ख़र्च होता है। इसी भाँति संपत्ति की रक्षा करना भी समाज का ऐसा बड़ा उपकार नहीं है, जिसके बदले में वह सारा द्रव्य ही हज़म कर जाय। ऐसा करना तो यही होगा कि चौकीदार ही स्वामी हो गया। अतएव व्यक्ति पर समाज के जो संपत्ति-संबंधी उपकार हैं, उनका मूल्य है। वे ऐसे नहीं हैं कि उनके कारण समाज सारा धन हज़म कर जाय। समाज के अधिकारों की भी एक सीमा है। ऐसा नहीं है कि समाज जो चाहे करने लगे, और वही ठीक माना जाय। न्याय का अर्थ ही यह है कि जो जिसका है, वह उसे मिले। यदि सबका सब-कुछ समाज ही ले ले, तो व्यक्तियों के साथ न्याय कहाँ हुआ? फिर यह भी विचारशील व्यक्ति सोच सकते हैं कि जिस सिद्धांत का अवलंब पूर्ण अन्याय और अधर्म है, जिसकी जान ही डकैती है, जो औरों का धन लूटकर पलता है, उससे अंत में संसार का क्या उपकार हो सकता है? यदि चोरों, डकैतों आदि की कमाई में बरकत होती होगी, तो समाज की भी इस कमाई में बरकत

होगी, नहीं तो नहीं। यदि डकैती पाप होगी, तो ऐसा डाकू समाज भी पूर्ण पाप का भागी होगा। ये तो धर्म और न्याय की बातें हुईं। अब यह देखना बाक़ी है कि संसार-यात्रा में क्या ऐसे कार्यों से कुछ लाभ हो सकता है? इस प्रश्न का विचार आगे की दोनों आपत्तियों में होगा।

(३) बल-सेवक-सिद्धांत में जैसे कर्मों पर विचार किया गया है, उनसे प्रकट है कि मनुष्य के प्रत्येक कर्म की देखरेख आवश्यक है; नहीं तो पग-पग पर हानि रक्खी है। यदि कोई कपड़ा हमें नापसंद है, और वही हमें मिलता है, तो हम उसे बहुत जल्द फाड़फूड़ डालेंगे। यह भी कह सकते हैं कि जल गया, या गुम हो गया, या बंदर उठा ले गए। नए कपड़े पहनना सबको अच्छा लगता है। थोड़ी भी ख़राबी आने से वह कपड़ा हमें नापसंद हो सकता है। हम उसे बदलने का प्रायः प्रयत्न करेंगे। ख़र्च तो एक पाई भी नहीं पड़ता। फिर क्यों न वैसा प्रयत्न करें? गाँव-भर भी वैसा क्यों न करे? सबके ऐसे कामों का निबटेरा नित्य कौन करेगा? ऐसे ईमानदार हाकिम हर गाँव के लिये कहाँ बैठे हैं? मान लो, सारा गाँव अच्छी तरकारी, अच्छे कपड़े, अच्छी सवारी, अच्छे जूते, अच्छी स्त्री आदि को मचलता है। क्या इन सब बातों का निबटेरा ईमानदार-से-ईमानदार हाकिम कर सकता है? क्या ऐसे ईमानदार अफ़सर हर गाँव के लिये मिलेंगे? फल यह होगा कि हर गाँव के अफ़सर सभी बातों में सब मनुष्यों के स्वामी-से होंगे, और सारे लोग उनके गुलाम। उनको जो अच्छा लगेगा, करेंगे। कोई रोकनेवाला न होगा। यदि हुआ, तो नित्य का यह टंटा कभी समाप्त ही न होगा। यदि किसी प्रकार संसार-भर से स्वार्थ की वासना उठाई जा सके और सभी लोग पूर्ण संतोषी का-सा स्वभाव रख सकें, तो काम चल सकता है, नहीं तो रोज़ के झगड़े-झंझट, मन-मुटाव, मार-पीट आदि का प्रबंध तो ईश्वर के किए भी न हो सकेगा। यदि कोई व्यक्ति बल-पूर्वक सबको दबाकर क़ाबू में रख सकेगा, तो सब लोग मानों उसके दास होंगे। ऐसी दशा में, जिस स्वतंत्रता और आनंद के लिये इतनी डाकेबाज़ी की जायगी, उसकी छायामात्र भी न पड़ेगी। सारा समाज अपने अफ़सर स्वामियों का गुलाम पहले से भी अधिक होगा, और उन्हें छोड़कर साधारण प्रजा को आज से अधिक संकट होगा।

(४) बल-सेवक-सिद्धांतों के प्रतिकूल यह आपत्ति इससे भी बढ़कर है कि कोई मनुष्य अच्छी तरह काम नहीं करेगा। ठेके और अमानी के क़ामों में कितना अंतर होता है, सो किसी से छिपा नहीं। अमानी का काम करनेवालों को प्रतिदिन मज़दूरी वही मिलेगी, काम चाहे जितना करें, या न करें। इसलिये वे सदा समय को टालते हुए पाए जाते हैं। घंटे में दो बार चिलम अवश्य पिएँगे, और पानी पीने, पेशाब करने, या इसी प्रकार के अन्य बहाने करके वे दिन में सौ बार काम छोड़कर इधर-उधर करते रहेंगे। उधर जो लोग ठेके पर काम करते हैं, या स्वयं अपना काम करते हैं, वे सदा जी तोड़कर काम करते हुए देखे जाते हैं। उन्हीं के काम में बरकत होती है, और काम भी उन्हीं का पूरा होता है। बल-सेवक-सिद्धांत सारे देश को मानों अमानी का मज़दूर बनाता है; अर्थात् कोई काम करे, या न करे, उसे मिलना उतना ही है। यदि कुछ भी न करे, तो गोली लगने का भय अवश्य है। किंतु कुछ भी न करने के दर्जे और बहुत ही अच्छा काम करने के दर्जे के बीच बहुत-से और दर्जे हैं, जिनकी सापेक्ष उत्तमता में आकाश और पाताल का अंतर है। उनकी उन्नति से साधारण जन-समुदाय को कुछ भी अपना लाभ नहीं है। जब जाड़े में बर्फ़ पड़ने लगती है, तब खेतों को देखने या भेड़ों को बचाने के लिये आज कंबल ओढ़े हुए जो किसान या गड़रिए दौड़ते देख पड़ते हैं, बल-सेवक-सिद्धांत स्थापित होने पर उन दौड़नेवालों का कहीं पता न लगेगा। कड़ी दोपहर तक की सूर्य की असह्य किरणों को सिर पर सहकर जो किसान आज हल जोतते हुए दिखाई देते हैं, वे बल-सेवक-सिद्धांत की बदौलत सिर का पसीना पैरों तक नहीं बहावेंगे। स्वत्व का जादू मिट्टी को भी सोना बनाता है, यह, या ऐसी-ही-ऐसी जो अन्य कहावतें संसार में प्रचलित हैं, वे बल-सेवक-सिद्धांत का पोषण नहीं करतीं।

जो लड़के तीन बजे रात से उठकर अपना पाठ पढ़ने लगते हैं, और जो आठ बजे दिन तक खर्राटे भरते हैं, उनके भविष्य में यदि संपत्ति-संबंधी कोई अंतर न हो, तो सौ में निन्नानबे लड़के नव बजे के पहले सोकर न

उठें। सारांश यह कि कठिन श्रम हज़ार में नौ सौ निन्नानबे लोग अपने ही लिये कर सकते हैं, औरों के लिये नहीं। फिर जब किसी की कोई संपत्ति ही नहीं है, तो जीवन-भर काम करने के पीछे यदि कोई कुछ विशेष व्यय, या अपनी इच्छा के अनुसार कोई प्रबंध, करना चाहे, तो कठिन-से-कठिन परिश्रम के साथ अधिक-से-अधिक सफलता प्राप्त करने पर भी उसको अपनी इच्छा के अनुसार व्यय या कोई अन्य प्रबंध करने का कुछ भी अधिकार नहीं है। इतना ही नहीं, बल-सेवक-सिद्धांतों में मनुष्य को प्रायः कुछ भी इच्छा रखने का अवकाश नहीं है। जाने-आने, देने-लेने, कृपा-क्रोध करने आदि का मूल-सूत्र धन ही है। जब उसी पर किसी का अधिकार नहीं, तो व्यक्ति का व्यक्तित्व तो बिलकुल ही नष्ट हो गया। केवल समाज-ही-समाज रह गया। धीरे-धीरे जब व्यक्ति की अवनति होती जायगी, तब समय पर उसकी वैसी ही दशा होगी, जैसी कि अन्य जानवरों की होती है। यदि यह दशा बहुत वांछनीय है, तो बल-सेवक-सिद्धांत भी ग्राह्य और श्रद्धेय है। यदि नहीं, तो नहीं। बल-सेवकों का कथन है कि केवल नाम और प्रशंसा के लिये सारे मनुष्य वैसा ही कठिन परिश्रम करेंगे, जैसा कि वे आज करते हैं। किंतु यह बात केवल कहने की है। लोकानुभव से जाना जाता है कि १००० में ६६६ केवल लाभ के लिये ऐसा कठिन परिश्रम कर सकते हैं, जिससे लोक-संचालन हो सके, अन्यथा नहीं। ऊपर दिखलाया जा चुका है कि संसार की वर्तमान स्थिति और अधिकाधिक उन्नति को सिद्ध करनेवाली एकमात्र होड़ (Competition) ही है। बिना इसके संसार स्थिर नहीं रह सकता।

इन ऊपर कही गई बातों से प्रकट है कि बल-सेवक-सिद्धांत न केवल धनिकों के लिये तिरस्करणीय है, बल्कि सारे संसार के लिये विष है। इसके चलने से सौ-दो सौ वर्षों में मनुष्य की दशा जंगली जानवरों की-सी हो जायगी। ऊपर कहा जा चुका है कि बल-सेवकों के सिद्धांत में विचार करने के योग्य इतनी बात अवश्य है कि व्यक्ति की संपत्ति पर समाज का कहाँ तक अधिकार है। दंड-शास्त्र का नियम यह माना जाता है कि उतना ही दंड दिया जाय, जिससे अपराधी आइंदा अपराध करने से रुके; न कि उतना, जितना अपराध हुआ हो। जैसे, यदि किसी ने किसी की नाक काटी हो, तो दंड में उसकी भी नाक न काट ली जायगी, बल्कि केवल उतना दंड दिया जायगा, जिससे भविष्य में उसी अपराधी को देखकर और लोग दंड के भय से वैसा अपराध न करें। इसी प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि व्यक्ति को संपत्ति बढ़ाने या बचाने की उतनी ही उत्तेजना मिलनी चाहिए, जितनी कि भविष्य में व्यक्तियों द्वारा धनोपार्जन के लिये काफ़ी हो। उससे अधिक उत्तेजना देने का फल यह होता है कि एक परिश्रमी के कारण उसके परिश्रम-शून्य उत्तराधिकारी यदि केवल इतना किए जायँ कि अपनी पैतृक संपत्ति का मूल-भर बचाए रहें, तो सैकड़ों वर्षों तक बिना किसी परिश्रम के संपत्तिशाली बने रह सकते हैं। समाज ने अब तक संपत्ति पर व्यक्ति के पूर्ण अधिकार को बहुत ही पवित्र माना है। उसको मिटाने से अवश्य गड़बड़ का भय है। समाज ने अब तक निरंतरता (Perpetuity) का रोकना, अथवा वसीयत, हिबा आदि के अधिकारों में थोड़ी-सी रुकावट डालना ही काफ़ी समझा है। सरकारी व्यय के लिये धनिकों से निर्धनों की अपेक्षा कुछ अधिक अवश्य लिया जाता है, किंतु समाज ने संपत्ति के ऊपर अधिकार जमाने की इससे अधिक आतंक-जनक चेष्टा अब तक नहीं की है। समाज अब तक व्यक्ति की संपत्ति के रक्षण को ही पूरा न्याय मानता आया है। समाज ने कहीं-कहीं टैक्स बाँधने में ही कुछ थोड़ा-सा प्रभाव फैला लिया है; किंतु उसकी भी सीमा बहुत संकुचित है। रूस में अब तक इसका पूरा विरोध हुआ है। अन्यत्र नहीं। उस विरोध का फल अब तक विपरीत ही हुआ है। आगे भी उससे हानि-ही-हानि होने की संभावना है। इँगलैंड में सन् १६०६ के क़रीब जो बजट बना था, उसमें भी व्यक्ति की संपत्ति पर समाज ने अपना अधिकार बढ़ाने का दावा किया था। आजकल टैक्स की मात्रा अवश्य बढ़ी हुई है; किंतु उसे घटाने का प्रबंध भी हो रहा है। भारत में अभी तक समाज ने व्यक्ति की संपत्ति पर विशेष अधिकार नहीं दिखलाया। यदि साधारण-रूप से ऐसा हो, तो अनुचित नहीं; किंतु इसे सीमा के बाहर बढ़ाना अवश्य ही भयंकर है। फिर भी यह विषय ऐसा है कि इस पर भिन्न-भिन्न देशों की स्थिति के अनुसार कुछ मत-भेद होना संभव है। किंतु स्मरण रहे कि यह मत-भेद

यहाँ तक न बढ़े कि बल-सेवक-सिद्धांतों की छाया तक ही पहुँच जाय ; क्योंकि ऐसा होने से कल्याण की संभावना नहीं है ।

ऊपर कहा जा चुका है कि आजकल भारत में अधिकार-हरण की चर्चा बहुत चल पड़ी है । इस प्रथा का जन्म सरकारी कार्यों और राजनीतिक सिद्धांतों के खंडन-मंडन-संबंधी तर्कों से हुआ है । इस लेख के लेखकों ने अबतक राजनीतिक विषयों पर कुछ भी लिखना उचित नहीं समझा, और उनकी अब भी यही लेखन-शैली है । यदि यह विषय केवल राजनीतिक रहता, तो हम लोग इस पर कुछ लिखना-पढ़ना अनावश्यक मानते । किंतु राजनीति से बढ़ते-बढ़ते अब यह प्रश्न सामाजिक हो गया है । यह प्रश्न भी उठ खड़ा हुआ है कि बालकों के लिये पढ़ना ठीक है, या और कुछ करना । इसी प्रकार यह भी प्रश्न है कि बालक अपने पालकों की सम्मति पर चलें, या राजनीतिक आंदोलन-कर्ताओं की सम्मतियों पर । इसी भाँति कृषक तथा ज़मींदार भविष्य में किस प्रकार रहें, उनका परस्पर क्या संबंध हो, यह भी एक प्रश्न है । वास्तव में समाज और व्यक्ति की संपत्तियों का स्वामी कौन है ? ऐसे-ऐसे प्रश्न आजकल बड़े ज़ोर के साथ सोचे जा रहे हैं । इन सबका प्रभाव केवल सरकार से ही संबंध नहीं रखता । बल्कि सारे समाज पर इसका प्रभाव पड़ता दिखाई देता है । इसीलिये राजनीतिक विषयों से संबंध न रखनेवाले इस प्रबंध के लेखकों ने भी इस विषय पर अपनी सम्मति देना उचित समझा । अपने भविष्य पर विचार करना सभी के लिये ठीक है, किंतु ऐसा जान पड़ता है कि कुछ लोग आजकल के विचारों की नवीन धारा को बल-सेवक-सिद्धांतों की ओर ले जाना चाहते हैं । इसीलिये व्यक्ति, समाज और संपत्ति पर यह प्रबंध पाठकों के सम्मुख उपस्थित किया जाता है । कहना केवल इतना ही है कि उन्नति का घोड़ा अवश्य दौड़ाइए, किंतु इस प्रकार आँख मूँदकर नहीं कि कहीं गढ़े में जा गिरिए ।

श्यामविहारी मिश्र एम्० ए०
शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०

मथुरा

"तीन लोक से मथुरा न्यारी ।"
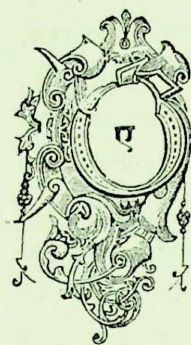
एक प्रसिद्ध श्लोक * में जो प्रधान तीर्थों की गिनती की गई है, उसमें मथुरा का नंबर दूसरा है । गोस्वामी तुलसीदासजी रामचंद्र के अनन्य उपासक कहे जाते हैं । कथा † प्रसिद्ध है कि वृंदावन में, एक कृष्ण-मंदिर में, श्रृंगार देखकर गोस्वामीजी ने कहा था—

"कहा कहौं छबि आजु की ? भले बने हौ नाथ !
तुलसी-मस्तक जब नवै, (जो) धनुष-बान लेव हाथ ।"

इसके सुनते ही—

"मुरली, मुकुट बिहायकै, धनुष-बान लिए हाथ ;
तुलसी, रुचि लखि दास की, नाथ भए रघुनाथ ।"

उन्हीं तुलसीदास का यह दोहा भी प्रसिद्ध है—

"तुलसी, मथुरा, राम में भेद गनै जो खोइ,
जुग अच्छर के बीच जो, ताके मुँह में सोइ ।"

इससे बढ़कर मथुरा की महिमा क्या हो सकती है ? इस महिमा का कारण श्रीकृष्णावतार ही माना जाता है । यद्यपि अयोध्या की तरह इसको मनु ने नहीं बसाया था, तो भी यह बहुत ही प्राचीन नगर है । हरिवंश-पुराण में लिखा है कि गिरिवर या गिरिव्रज को राजधानी बनाकर सत्ययुग में मधु दानव वहाँ राज्य करता था । गिरिवर को आजकल गिरिराज कहते हैं, और व्रज-मंडल के बाहर यह स्थान गोवर्द्धन कहलाता है ।

---

* अयोध्या मथुरा माया काशी कांची ह्यवंतिका ।
पुरी द्वारावती चैव सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥

† हमें यह कथा झूठी जान पड़ती है । गोस्वामीजी राम और कृष्ण दोनों को बराबर मानते थे । देखो विनय-पत्रिका ।

मधु बड़ा धर्मात्मा राजा था ; असुर होने पर भी बड़ा बुद्धिमान्, ब्रह्मण्य और शरणागत-वत्सल था। शिवजी उसे बहुत मानते थे। वह उसको एक शूल देकर बोले—"हे मधु, हम तुमसे बहुत प्रसन्न हैं, और तुमको यह शूल देते हैं। देवतों और ब्राह्मणों से कभी विरोध न करना। तुम्हारे पास जब तक यह शूल रहेगा, युद्ध में तुमको कोई जीत न सकेगा।"

मधु ने शिवजी को प्रसन्न जानकर यह वर माँगा कि यह शूल मेरी संतान को भी इसी प्रभाव के साथ मिले। शिवजी ने कहा—"जब तक तुम्हारे पुत्र के हाथ में यह शूल रहेगा, उसे कोई मार न सकेगा।"

मधु दानव रावण की बहन कुंभीनसी को हर लाया था। उससे उसके बड़ा पराक्रमी लवण-नामक पुत्र हुआ। मधु के एक मधुमती नाम की कन्या भी थी, जिसका विवाह इक्ष्वाकु-वंशी राजा हर्यश्व के साथ हुआ था। वाल्मीकीय रामायण के अनुसार इक्ष्वाकु की वंशावली में हर्यश्व का नाम नहीं है। पर विष्णु-पुराण के अनुसार हर्यश्व अनरण्य का पोता और पृषदश्व का पुत्र है। किंतु श्रीमद्भागवत, नवम स्कंध, के अनुसार हर्यश्व अनरण्य ही का बेटा है। हरिवंश-पुराण को देखिए तो विदित होता है कि हर्यश्व को उसके भाई ने निकाल दिया और वह अपनी सुसराल चला गया। उसके ससुर मधु ने उसे अपना सर्वस्व दे दिया ; केवल मधुवन और वही शूल अपने बेटे लवण के लिये रख छोड़ा। लवण बड़ा दुष्ट निकला। धर्मात्मा मधु उसकी दुष्टता देखकर वरुणालय को चला गया। इससे यह समझना चाहिए कि वह यमुना में डूब मरा। जो यमुना-तीर-वासी ऋषि-मुनि मधु के राज्य में सुख से रहते थे, वे लवण के अत्याचार से पीड़ित होकर, भार्गव च्यवन को अपना मुखिया बनाकर, श्रीरघुनाथजी के पास अयोध्या में पहुँचे, और उनसे रक्षा के लिये प्रार्थना की। श्रीरघुनाथजी ने लवण के वध का काम शत्रुघ्न को सौंपा। लवण यद्यपि शूल पाकर अवध्य हो गया था, तो भी ऋषियों ने शत्रुघ्नजी को ऐसा उपाय बताया कि लवण मारा गया, और मधुवन की जगह, जो शायद मधु के विहार का बाग़ ही था, 'मधुरा' नगरी बसाई गई। इसी मधुरा का दूसरा नाम मथुरा है।

हम समझते हैं, मधु एक व्यक्ति का नाम नहीं, जिसने सत्ययुग-भर गिरिव्रज में राज्य किया, बल्कि यह एक असुर-कुल की पदवी है। इसी कुल के एक असुर को विष्णु भगवान् ने मारा था, जिससे वह मधुसूदन कहलाते हैं। यह भी संभव है कि आर्यों से प्रीति रखने के कारण उसको मधु का पद मिला हो। जब उसी कुल में एक दुष्टात्मा ने जन्म लिया, जो आर्यों के घावों पर नमक छिड़कता था, तो उसे लवण बना दिया।

अब मधुरा शब्द की जाँच करनी चाहिए। यह तो सिद्ध ही है कि इसी स्थान पर पहले मधुवन था। हमारा अनुमान है, मधुरा भी पुराना ही नाम है। 'रा' अब भी राजपूतानी हिंदी में संबंध का चिह्न है : जैसे, बँगला में 'एर' (रामेर) हिंदी में 'का', पंजाबी में 'दा', गुजराती में 'ना', और मराठी में 'चा' है। फ़ारसी में 'रा' 'को' के अर्थ में लगाया जाता है, जैसे, 'मरा' अर्थात् मुझको। इस अनुमान से मधुरा का अर्थ हुआ मधु का (नगर), और ऐसे नाम हमारे देश में बहुत हैं। शत्रुघ्नजी को भी पुराना ही नाम मधुर लगा। उन्होंने उसको बदलने की आवश्यकता न समझी। ऐसा प्रतीत होता है कि पीछे यमुना-तट पर

बहुत-से गोप बस गए, जिनके पास लाखों गउएँ थीं। सूरदासजी यशोदाजी के मुख से कहलाते हैं—

"जाकी कृपा दूध-दधि पूरन;
सहस मथानी मथत सदाई।"

इसी कारण उस प्रांत का नाम ही व्रज-मंडल पड़ गया। और, उस मंडल का प्रधान नगर मथुरा हो गया। मथुरा शब्द मंथ (मथना) धातु में 'उरच्' प्रत्यय जोड़ने से बना है।

"मन्दिवाशिमथिचतिचंकयंकिभ्य उरच्। (उणादि सूत्र १।३८)

मथुरा में श्रीकृष्णावतार का मुख्य कारण विशेषज्ञ जानें; किंतु हमारे विचार में तो यह आता है कि हवि देवतों को सदा प्रिय रहा है, और इसी लालच से देव-देव विष्णु भगवान् ने घी-मक्खन के परम-पूर्ण भंडार मथुरा को अपने जन्म से बड़ाई दी, तथा माखन-चोर नाम धारण किया। मथुरा के आसपास भार्गवों की पुरानी बस्ती के विषय पर आगे किसी लेख में विचार किया जायगा।

मधुरा-मथुरा के विषय अपने तुच्छ विचार
देहुँ माधुरी-पाठकन प्रथम प्रेम-उपहार।

सीताराम बी० ए०
(श्रीअवधवासी)

मयंक-महिमा

(गतांक से आगे)

मेचक चिकुर-पुंज रजनी के मध्य मंजु मन भाता है।
रमा रुचिर बिधु-बदन, चाँदनी-मिस मानों मुसकाता है॥
जिसका चारु चकोर चक्रधर चकित लालची लोचन से—
निहारता, हारता सदा मन रहता है भोलेपन से॥
अथवा, गगन-सरोवर, नील-सलिल-पूरित, पर फूला है—
सित सहस्र-दल अमल कमल, बनकर मन मधुकर भूला है॥
जिसकी केसर सरस कौमुदी, जग कमनीय बनाती है।
शुभ सुगंध-सम्मिलित सुधा मकरंद-बिंदु बरसाती है॥
या यह अंबर-उदधि बीच उतराया, क्या मन-माया है।
उज्ज्वल उपल महान खंड मंडलाकार छबि-छाया है॥
तिमिर मत्त मातंग मार, या सिंह उसी पर बैठा है।
मरीचि-माला सटा छटा छहराता गर्वित ऐंठा है॥
अथवा क्या आकाश-माठ में मथित हुआ उतराया है।
मंजुल मक्खन-पिंड स्वच्छ; सबके मन को ललचाया है॥
प्रकृति-देवि-छबि-दर्शक दर्पण गोल अलौकिक भारी है।
या यह पूरित प्रभा दिखाता, भाता जगती सारी है॥
रमना रम्य व्योम-उद्यान बीच या बिकसित भाया है।
सुंदर सूर्यमुखी कमनीय कुसुम क्या यह रँग लाया है॥
अथवा आदि अखंड पिंड ब्रह्मांड मनोहर दिखलाता।
फिर भी है जगदीश आ- निज माया-महिमा प्रगटाता॥
या यह थाल रजत मन्मथ महीप का जिला कराया है।
रस शृंगार-सार जिसमें भर, जग को सरस बनाया है॥
या कलधौत-कलश पूरित पीयूष धरा-सा भाता है।
या भारत-हृदयेश-सुयश-संपुट नभ पहुँच सुहाता है॥
अथवा किसी देव-शिशु ने क्या गोली गुड़ी उड़ाई है।
प्रभामयी, जिसने जग-दीठ खींचकर, पास बुलाई है॥
अंबर-मानसरोवर में या राजहंस यह चरता है।
तारावली सकल मुक्ता चुग, जिसका पेट न भरता है॥
या चतुरानन-कुंभकार का चलता चक्र सुहाता है।
भव्य भांड प्राणी-समूह, जो सदा बनाता जाता है॥
पांचजन्य या हृषीकेश का, मध्य सुदर्शन सोहा है।
भरा प्रभा या क्या कमनीय कौस्तुभ ने मन मोहा है॥
शची देवि सिर सीसफूल-सा, कैसा चित्त चुराता है।
आतपत्र या नृपति पुरंदर, श्वेत प्रभा प्रगटाता है॥
दीन भारती प्रजा, जिन्हें या नहिं कर्तव्य सुझाता है।
दुसह शोक उच्छ्वास उनका, बन उड़ा गुब्बारा जाता है॥
विद्युद्दीपावरण प्रभा-पूरित या सोहा सुंदर है।
टँगा उसी विवाह-संबंधी मजलिस के क्या अंदर है॥
उसी समय हुँ-हुँ-हूँ-हूँ-हूँ धुनि 'अरुणशिखा' की मैं सुनकर।
लगा सोचने मन-ही-मन मैं चौकन्ना हो विशेषतर॥
क्या सचमुच विवाह का साज सजा है इस फुलवारी में?
इधर अग्नि-क्रीड़ा होती है, क्या दिसि प्राची प्यारी में?
उठा अंक पर्यंक त्यागकर तुरंत मैं तब चकराया।
उतर उच्च अट्टालिका के ऊपर से जब नीचे आया॥

(असमाप्त)

बदरीनारायण उपाध्याय 'प्रेमघन'

महात्मा मुंशीराम

स्वामी श्रद्धानंद

N. K. Press, Lucknow.
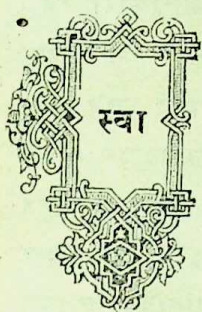
स्वामी श्रद्धानंद

स्वामी श्रद्धानंद का संन्यास लेने से पूर्व का नाम 'मुंशीराम' था। उनका जीवन-चरित एक अद्भुत, परस्पर-विरुद्ध घटनाओं से भरा हुआ है। जिनके पिता ग़दर के ज़माने में ब्रिटिश-सरकार के सेवक और सहायक की हैसियत से बाग़ियों से लड़े, और सहारनपुर-ज़िले को निःशस्त्र बनाने का कारण हुए, वही आज भारत को स्वाधीनता दिलाने के लिये झगड़नेवाले सबसे बड़े वकीलों में से एक हैं। कमाई के जगत् में जिनके जीवन का प्रवेश नायब-तहसीलदारी से हुआ, वह इस समय अहिंसा-प्रिय, आनंद-मय देश-सेवकों के एक मुखिया समझे जाते हैं। जिनके यौवन का बहुत-सा भाग भोग और विलास की सेवा में व्यतीत हुआ, उनके जीवन का एक मुख्य उद्देश इस समय ब्रह्मचर्य और तपस्या का प्रचार करना है। जो एक दिन युवक नास्तिकों के अगुआ थे, ईश्वर तथा धर्म को एक खिलौना समझते थे, इस समय, उनका सब कुछ—घर-बार तक—धर्म पर न्योछावर हो चुका है। ऐसे जीवन धर्म-शास्त्र और मनोविज्ञान के विद्यार्थियों के लिये बहुत मनोरंजक और शिक्षा-प्रद होते हैं। कारण, वे उनसे क्रमशः प्रकट होती हुई धर्म-भावना का अनुशीलन कर सकते हैं। ऐसे जीवन सर्व-साधारण की आँखें खोलनेवाले कहे जा सकते हैं। एक ही जीवन में अपराध और उसका पूरा प्रायश्चित्त भी, यह बात बहुत कम दिखाई देती है। और, जहाँ कहीं दिखाई देती है, वह जीवन शिक्षा-दायक होता है। फिर यदि प्रायश्चित्त अपराध से कई गुना अधिक हो जाय, तो फिर उसका क्या कहना है? वह जीवन तो जनता के लिये बहुत ही उपयोगी होगा।

स्वामीजी के परदादा का नाम सुखानंद था। आपके दादा गुलाबराय महाराज नौनिहालसिंह की रानी श्रीमती हीरादेवी की डेवढ़ी के मुंशी थे। आप बड़े धार्मिक, व्यवहार में खरे और सच्चे थे। डेवढ़ी के मुंशी होने पर भी आपकी प्रतिष्ठा बहुत थी; क्योंकि खरे आदमी से सभी डरते हैं। जब सरदार विक्रमाजीत और कुँअर सुचेतसिंह कपूरथले से निर्वासित होकर जालंधर आए, तो गुलाबरायजी भी उनके साथ ही आए। स्वामीजी के पिता का नाम नानकचंद था। आप छः भाइयों में सबसे बड़े थे। आपने छोटी अवस्था में थोड़ी-सी उर्दू की शिक्षा के सिवा कुछ विशेष पढ़ा-लिखा न था। उन दिनों शिक्षा का आदर्श इतना ऊँचा नहीं था। सरकारी नौकरी में जाने के लिये भी बहुत ऊँची शिक्षा की आवश्यकता नहीं समझी जाती थी। ला० नानकचंदजी की अवस्था अभी बहुत अधिक नहीं हुई थी कि आपको कपूरथले में 'काला' गाँव की थानेदारी दी गई। काम आपने परिश्रम से किया; परंतु स्पष्ट-वादियों के लिये कहीं स्थान नहीं होता। उसी स्पष्ट-वादिता का प्रभाव था कि आप अपने कार्य में तो कामयाब समझे गए, परंतु शीघ्र ही अफ़सर के नाराज़ हो जाने के कारण इस्तीफ़ा देकर अलग हो गए।

इतने में, देश-भर में, ग़दर की आग भड़की। १८५७ का विद्रोह, सूखे ईंधन में आग की तरह, धायँ-धायँ करके जल उठा। अन्य प्रांतों में विद्रोह का जितना असर हुआ, उतना पंजाब में नहीं। केवल इतना ही नहीं, बल्कि पंजाब ने, विप्लव-कारियों के विरुद्ध, सरकार की सहायता भी

की । पंजाब के जवान अँगरेज़ी सरकार की नौकरी स्वीकार करके क्रांति-कारियों को दबाने के कार्य में प्रवृत्त हुए । ला० नानकचंदजी भी एक काने टट्टू पर सवार होकर भाग्य-परीक्षा के लिये युक्त-प्रांत की ओर रवाना हुए । भाग्य ने साथ दिया; मौक़ा मिल गया । हिसार में सरकारी फ़ौज की सहायता के बदले में कोतवाल बनाए गए, सहारनपुर को बे-हथियार किया, फिर मेलाघाट की लड़ाई में क्रांति-कारियों के एक छोटे-से दल को परास्त किया । इन सब सेवाओं से प्रसन्न होकर सरकार ने बदले में आपको पुलिस के इंस्पेक्टर का पद दिया । इस समय से जब तक आप सेवा करते रहे, पुलिस के महकमे में ही रहे ।

स्वामीजी का जन्म अपने गाँव तलवन (ज़िला जालंधर) में, सं० १९१३ की फागुन-बदी त्रयोदशी के दिन, हुआ । ला० नानकचंदजी उस समय नौकरी पर थे । उन्हें पुत्र होने का संवाद वहीं मिला । पुत्र का नाम मुंशीराम रक्खा गया । मुंशीराम चार भाइयों में सबसे छोटे थे । ला० नानकचंदजी की पत्नी बहुत ही सुशील,धर्म-परायण और बच्चों से प्रेम करनेवाली थीं । स्वामीजी ने अपने जीवन के प्रारंभिक भाग का वृत्तांत 'मेरी ज़िंदगी के नशेबोफ़राज़' नाम के पैम्फ्लेट में लिखा है । उसमें जहाँ कहीं अपनी माता का वर्णन किया है, वहाँ बहुत ही प्रेम और भक्ति से भरे हुए शब्दों में । उसे पढ़कर ज्ञात होता है, माता का पुत्रों से अगाध प्रेम था, जिसे वह बड़े धैर्य और विवेक से निभाती थीं । माता का जैसा आदर्श-प्रेम होना चाहिए, वैसा ही चारों भाइयों को प्राप्त था ।

ला० नानकचंदजी की नौकरी युक्त-प्रांत में ही रही । वह बनारस, बलिया, बरेली, मिर्ज़ापुर आदि में पुलिस के महकमे के अधिकारी रहे । आप बहुत अधिक समय तक बनारस में शहर-कोतवाल रहे । पुलिस में आपने खूब नाम कमाया । आप बड़े बड़े डाकुओं को पकड़ने में बड़े प्रवीण थे । इसके लिये आप ख़ास तौर पर मशहूर थे । ला० नानकचंदजी बड़े ईश्वर-भक्त और तुलसी-कृत रामायण के प्रेमी थे । प्रतिदिन नियमित पूजा-पाठ होता था । दौरे में भी कभी पूजा-पाठ नहीं छूटता था । पुलिस का महकमा, उसमें भी ऊँचा पद, फिर १९ वीं सदी का अंतिम भाग ! रिशवत के लिये इससे बढ़कर अनुकूल अवस्था और कौन हो सकती थी ? तो भी ला० नानकचंद अपने सहयोगियों में अधिक ईमानदार और कम रिशवत लेनेवाले समझे जाते थे ।

चारों भाइयों में से इस चरित के नायक की ही शिक्षा की ओर प्रवृत्ति थी । मुंशीरामजी अपने माता-पिता के लाड़ले और पढ़ने-लिखने में प्रवीण थे । उन्हें प्रायः अपने पिता के साथ ही रहना पड़ता था । जहाँ-जहाँ बदली होती थी, या जाना पड़ता था, वहीं-वहीं पिताजी के साथ जाना और नए-नए अनुभवों को प्राप्त करना होता था । बाँदे में आपकी शिक्षा का प्रारंभ हुआ । शिक्षा का अधिक समय आपने बनारस में ही बिताया । वहाँ के कॉलेजिएट स्कूल से आपने एंट्रेंस की परीक्षा दी थी । उस समय बनारस में प्रसिद्ध हेडमास्टर पं० मथुराप्रसाद की योग्यता की धूम थी । आपने उन्हीं के निरीक्षण में स्कूल की शिक्षा समाप्त की । जिस वर्ष आपने स्कूल की शिक्षा समाप्त की, उसी वर्ष माता का देहांत हो गया । प्रेममयी माता के देहांत से लाड़ले पुत्र को कितना दुःख हुआ करता है, इसे वे ही जानते हैं, जिन्हें

कभी ऐसी दुर्घटना देखने का अवसर मिला हो। इस दुःखदायी घटना के कुछ समय बाद ही मुंशीरामजी ने बड़ी उत्तमता से एंट्रेंस पास किया।

स्कूल का जीवन समाप्त करके मुंशीरामजी ने बनारस-कॉलेज में प्रवेश किया। उन दिनों बनारस-कॉलेज में बड़े-बड़े योग्य व्यक्ति कार्य करते थे। कॉलेज के प्रिंसिपल ग्रिफ़िथ साहब थे, जिनके किए हुए रामायण आदि के अनुवाद इस समय बहुत प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके हैं। अँगरेज़ी के प्रोफ़ेसर पं० लक्ष्मीशंकर एम्० ए० थे। उनकी प्रतिष्ठा की भी खूब ख्याति थी। मुंशीरामजी का कॉलेज का जीवन विचित्र था। कभी पढ़ाई का शौक़, कभी कविता की धुन, कभी उपन्यास लिखने की लटक और कभी आवारगी। घर में धन बहुत था। शहर-कोतवाल के पुत्र होने से बहुत-से ऐसे अधिकार प्राप्त थे, जो सबको नहीं प्राप्त होते। इस कारण मुंशीरामजी का विद्यार्थि-जीवन समान नहीं रहा। उसमें बहुत-से उतार-चढ़ाव रहे।

बनारस में रहते समय की दो-एक घटनाएँ विशेषरूप से वर्णन करने योग्य हैं। उन्हीं घटनाओं से चरित-नायक के चरित्र पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। १८७६ में प्रिंस-ऑफ़-वेल्ज़ भारत-भ्रमण करने आए थे। वे बनारस-कॉलेज को भी देखने गए। आस-पास के राजे-महराजे भी सलाम करने के लिये बनारस में जमा हुए। उस समय कोमल हृदय के युवक ने जो दृश्य देखा, उसका उस पर गहरा असर पड़ा। डिस्ट्रिक्ट-मैजिस्ट्रेट-जैसे छोटी हैसियत के कर्मचारी देसी राजों को इस तरह धमकाते और आँखें दिखाते थे, जैसे वे साधारण अपराधी हैं। इससे नव-युवक के हृदय को अँगरेज़ी अफ़सरों के अनुचित असभ्य व्यवहार और राजों की अशक्त दशा का पूरा पता लग गया।

ला० नानकचंदजी मूर्ति-पूजक थे। कुल-क्रम से उनके सब पुत्र भी मूर्ति-पूजक ही थे। मुंशीरामजी पहले ही से धुन के पक्के थे। जो धुन सवार हुई, तन्मय हो गए। बनारस में मूर्ति-पूजा की धुन सवार हुई। प्रतिदिन प्रातःकाल और सायं-काल पाँचों देवतों की पूजा करने का नियम पालन करते थे, तब मुँह में अन्न-जल डालते थे; उससे पहले नहीं। महीनों तक यही नियम रहा। एक दिन आप नियत समय पर विश्वनाथजी के मंदिर के द्वार पर पहुँचे। अंदर घुसना ही चाहते थे कि सिपाही ने रोक दिया। पूछने पर बताया गया कि अंदर रीवाँ-नरेश की महारानी गई हुई हैं—जब वह बाहर आ जायँगी, तब प्रवेश की आज्ञा होगी। भक्त के भक्ति-पूर्ण हृदय पर आघात पहुँचा। क्या भगवान् का द्वार भी बंद किया जा सकता है? क्या एक रानी विश्वनाथजी की दृष्टि में दूसरे लोगों से अधिक आदरणीय है? यह विचार चित्त में उत्पन्न हुआ, और भक्त-वर मुंशीराम विश्वनाथ के द्वार से नास्तिक-वर मुंशीराम बनकर लौटे।

बनारस में मुंशीरामजी का उठना-बैठना बहुधा भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र की मंडली में रहता था। आप प्रायः भारतेंदुजी के वस्त्र, आभूषण और रहन-सहन के हाल सुनाया करते हैं। ज़री के गोट-वाले कपड़े, तिलाई टोपी, घुँघराले बाल, नौकर के हाथ में छाता, आशु-कविता, भारतेंदु की ये सब बातें आपकी आँखों-देखी हुई हैं। उनकी निर्भयता के भी कई दृष्टांत आपको याद हैं। बनारस में आप आमोद-प्रमोद के लिये जिस युवक-मंडली के बीच बैठते थे, उसके एक सभ्य भारतजीवन-प्रेस के स्वामी बा० रामकृष्ण वर्मा भी थे। मुंशीरामजी

के पुराने कॉलेज के साथियों में स्वनाम-धन्य पं० मोतीलाल नेहरूजी भी हैं। कॉलेज में दोनों साथ-साथ एक ही श्रेणियों में पढ़ते थे। फिर देर तक दोनों एक दूसरे को भूले रहे। बहुत समय पीछे, लगभग आधी शताब्दी के पीछे, दोनों पुराने परिचित मित्र, पंजाब के 'मॉर्शल-ला' के पीछे, तब मिलें, जब दोनों ही महापुरुष ज़ख्मी पंजाब के अंगों की मरहम-पट्टी कर रहे थे। उस समय दोनों ने अपने पुराने नोट मिलाए, और आधी शताब्दी-भर के जीवन की तुलना की।

इन दिनों आपको मूर्ति-पूजा के प्रति अश्रद्धा हो गई थी। एक रोज़ घूमते हुए आपने रोमन-कैथलिक गिर्जे का घंटा सुना। उस स्वर की मधुरता से आकृष्ट होकर मुंशीरामजी गिर्जे में चले गए और प्रार्थना सुनने लगे। फ़ादर ज़करिया, जो वहाँ के बड़े पादरी थे, नया शिकार देखकर बड़ी उत्सुकता से लपके, और उन्होंने नवयुवक को फाँसने के लिये अनेक ढंग रचे। कुछ दिनों तक नवयुवक भी उधर झुका रहा। परंतु कुछ दिनों में ही, फ़ादर की अनुपस्थिति में, उसके घर पर एक नन और नाविस में ऐसा अनुचित संबंध देखा कि हृदय जिस वेग से गिर्जे की ओर बढ़ा था, उसी वेग से पीछे को लौट पड़ा। उस दिन से असंतुष्ट नवयुवक के हृदय के द्वार ईसाइयत के लिये सदा को बंद हो गए।

१८७७ में आपका विवाह हो गया। यह विवाह बहुत ही महत्त्व-पूर्ण था। जालंधर के रईस ला० शालग्रामजी का परिवार, जिनकी पुत्री शिवदेवी से इनका ब्याह हुआ, एक मशहूर घराना है। कन्या-महाविद्यालय, जालंधर के संचालक ला० देवराजजी, जालंधर के प्रसिद्ध बैरिस्टर रायज़ादा ला० भक्तरामजी और पंजाब के होनहार कांग्रेस-कार्यकर्ता ला० हंसराजजी, ये ला० शालग्रामजी के सुपुत्र हैं। तीनों से बड़े भाई ला० बालकरामजी का देहांत हो गया है। मुंशीरामजी का सब भाइयों से अधिक प्रेम बालकरामजी से ही था।

१८७८ में मुंशीरामजी इलाहाबाद के म्योर-सेंट्रल-कॉलेज के एफ़० ए०-क्लास में भर्ती हुए। यह समय उमंग का था। 'यौवनं धनसंपत्तिः प्रभुत्वमविवेकिता', ये चारों बातें एकत्र हो गई थीं। यौवन था ही। पिताजी की ओर से खर्च के लिये कोई कड़ा बंधन नहीं था। कोतवाल का लड़का अपने को प्रभु मानता है ही। बस, इन बातों से जितनी अविवेकिता उत्पन्न हो जानी चाहिए, वह पूरी मात्रा में विद्यमान थी। शराब खूब उड़ती थी। नास्तिकता ज़ोरों पर थी। नाटक-मंडली आदि चलाने का शौक़ था। शराब पीने की आदत सीमा को नाँघती जाती थी। इस कारण स्वास्थ्य नष्ट होने लगा। स्वभाव से ही आपका शरीर लंबा-चौड़ा और हृष्ट-पुष्ट था। शरीर की बनावट का बताना व्यर्थ है, क्योंकि स्वामी श्रद्धानंदजी के लंबे क़द और अनेक बीमारियों से घिरे होने पर भी गड़ांडोल शरीर से देश-भर परिचित हो चुका है। आपकी खूराक उस समय दो आदमियों की इतनी थी। जब पूरे वेग से चलते थे, तब साधारण आदमियों को दौड़ना पड़ता था। इतना हृष्ट-पुष्ट शरीर भी व्यतिक्रमों के प्रभाव से रोगी होने लगा। दो-एक बार बहुत ही भयानक दशा हो गई। आख़िरकार डॉक्टर और वैद्य हार गए। एक जुराबाज़ लल्लाजी हकीम थे। उनके इलाज से आराम हुआ। उस समय तो स्वास्थ्य ठीक हो गया, परंतु परीक्षा पर बुरा असर पड़े बिना न रहा। ठीक परीक्षा के समय आप रोगी हो गए, और रसायन के पर्चे में फ़ेल हुए। फ़ेल होकर

आपने कॉलेज छोड़ दिया, और अपने पिताजी के पास बरेली में आ गए। यहाँ आपको पहले-पहल ऋषि दयानंद के दर्शन मिले। इस समय आप कट्टर नास्तिक थे। योरप के नास्तिकों के ग्रंथों ने संदेह-शील हृदय को पूरा-पूरा अविश्वासी बना दिया था। नास्तिक मुंशीराम ऋषि के पास पहुँचे, और ईश्वर के संबंध में प्रश्न पूछे। ऋषि के युक्ति-युक्त उत्तर सुनकर योरप के नास्तिकों की युक्तियाँ निर्मूल, असार प्रतीत होने लगीं। युक्तियों का खंडन हो गया, परंतु हृदय संतुष्ट नहीं हुआ। आपने ऋषि से कहा—"महाराज, आपने मुझे निरुत्तर तो कर दिया, परंतु ईश्वर पर विश्वास नहीं कराया।" ऋषि दयानंद ने उत्तर दिया—"भाई, मैंने कब दावा किया था कि मैं तुम्हें विश्वास करा दूँगा? मैं तो केवल प्रश्नों का उत्तर दे सकता था। विश्वास तो तभी होगा, जब ईश्वर की कृपा होगी।" वही हुआ। एक दिन ईश्वर की कृपा हुई, नास्तिक मुंशीराम ने ईश्वर-विश्वास के भरोसे पर अपनी जीवन-नौका को विशाल संसार-सागर में छोड़ दिया।

१८८० में पहले-पहल नौकरी में प्रवेश हुआ। वही नौकरी अंतिम भी थी। बरेली के कमिश्नर मि० एडवर्डस् ला० नानकचंदजी पर बड़े मेहरबान थे। आपने मेहरबानी का परिचय देते हुए कोतवाल साहब के लड़के को बिना विशेष प्रस्तावना के ही नायब-तहसीलदार बना दिया। तहसीलदार छुट्टी पर गया, तो मुंशीरामजी को तहसीलदार का भी कार्य करना पड़ा। परंतु आपका स्वतंत्र हृदय अधिक समय तक नौकरी के बंधन को सहन न कर सका। कारण यह हुआ कि आप कमिश्नर से मिलने गए। चपरासी ने आपको बिठाकर अंदर ख़बर दी। हुक्म हुआ कि थोड़ी देर ठहरो। इतने में एक अँगरेज़ सौदागर आया और चटपट अंदर चला गया। मुंशीरामजी ने उसी समय नायब-तहसीलदारी से इस्तीफ़ा दे दिया। सदा के लिये दासता से छुट्टी पाई।

अब नौकरी छोड़कर वकालत करने का विचार किया। लाहौर जाकर मुख़्तारी में भरती हुए। पहले वर्ष परीक्षा नहीं दी। दूसरे वर्ष पिताजी की पेंशन हो गई। इस खुशी में बहुत-सा समय अपने गाँव में बिता दिया। इस कारण परीक्षा में अनुत्तीर्ण रहे। १८८३ में तीसरी बार परीक्षा का अवसर आया। इस बार भी साल-भर मौज में बीता। खाना-पीना और उड़ाना, बस यही स्वाध्याय था। जब परीक्षा को केवल २७ दिन रह गए, तब मन में विचार उठा कि अब तो मुख़्तार बन ही जाना चाहिए। २७ दिनों तक लगातार घोर परिश्रम किया, रात-दिन एक कर दिए, साल-भर की कसर निकाल दी और परीक्षा में उत्तीर्ण हो गए। मुख़्तार बनकर पहले फ़िल्लौर में वकालत शुरू की; पीछे से जालंधर में आ गए।

उस समय वकील बनने के पहले मुख़्तारी पास करना आवश्यक था। कुछ रोज़ मुख़्तारी करके आप वकालत पास करने के लिये लाहौर गए। वहाँ जाकर आपके जीवन का नया अध्याय शुरू हुआ। आपने नियत समय पर वकालत पास कर ली और वकील बनकर जालंधर में कार्य आरंभ कर दिया। यह तो आनुषंगिक फल था। मुख्य फल यह था कि हृदय में परिवर्तन हो गया। जीवन के नए परिच्छेद का प्रारंभ हुआ। विद्यार्थि-जीवन में बरेली, बनारस और इलाहाबाद में जो जीवन बिताया था, वह क्या विचारों की ओर

क्या कार्यों की दृष्टि से, मौज-बहार का जीवन था। जो किया, वह भरपेट किया। गिनाने की आवश्यकता नहीं। पाठक स्वयं समझ सकते हैं कि यथेष्ट धन और मद्य-सेवा के आगे-पीछे कितनी बुराइयाँ लग सकती हैं। माता का रक्षा करनेवाला हाथ सिर पर से उठ ही चुका था। मित्र मिले, तो वे भी जैसे-के-तैसे। इस प्रकार प्रवृत्तियाँ प्रति-दिन बढ़ती ही गईं। बीच-बीच में कई धक्के लगे। एक बार शराब की मस्ती में चूर एक अपने साथी को अपनी आँखों के सम्मुख अबला का सतीत्व नष्ट करने की चेष्टा करते देखा। यद्यपि आपने भी शराब पी थी, पर वह अत्याचार सहा नहीं गया। मुंशीरामजी ने अपने अंतरंग मित्र को धक्का देकर गिरा दिया, और उस अबला की रक्षा की। यह घटना वकालत के लिये लाहौर को रवाना होने के पहले हुई। बस, यहाँ से जल का प्रवाह पलट पड़ा। उमंगी हृदय की बढ़ी हुई उमंग टकराकर उलटी ओर को चली। लाहौर में जाकर घटनाएँ ऐसी उपस्थित हुईं कि परिवर्तन की ओर होने-वाला झुकाव उनसे सफल ही होता गया। लाहौर में एक ओर आर्य-समाज के उस समय के प्रधान ला० साईंदास का प्रेम-भरा संभाषण, दूसरी ओर मुनिवर गुरुदत्त के योग्यता-भरे व्याख्यान, इन्हीं सब बातों ने मिलकर केवल नास्तिक मुंशीराम को परम आस्तिक ही नहीं बना दिया, बल्कि हृदय पर लगे हुए धक्के को सहायता देकर आचरणों में भी क्रांति उत्पन्न कर दी। एक-एक करके सब व्यसन छूटने लगे। व्यसनों का विनाश शराब से ही शुरू हुआ। धीरे-धीरे मांस, हुक्का और पान तक छूट गए। परिवर्तन धीरे-धीरे हुआ, परंतु यहाँ तक हुआ कि अब आपके भोजन में रोटी, शाक और दूध के सिवा नमक, मीठा और हल्दी ही बस रह गए हैं; भोजन के शेष सब सहायक छूट चुके हैं।

वकालत में और आर्य-समाज में एकसाथ ही प्रवेश हुआ। आपके वकील बनकर जालंधर आने से पहले ही आपके संबंधी ला० देवराजजी के उद्योग से आर्य-समाज की स्थापना हो चुकी थी। पहले आप आर्य-समाज की हँसी उड़ाया करते थे। लाहौर से लौटकर आप उसमें शामिल हुए। इस समय से आपने आर्य-समाज की सेवा शुरू की। यह आपके स्वभाव में था, और अब भी है, कि जो कुछ करना, खूब करना और पेट भरके करना। बुद्धि के खुले घोड़े दौड़ाए, तो ईश्वर तक को जवाब दिया। आचरणों की बागें ढीली कीं, तो सभी आमोद देख लिए। अब धर्म का रास्ता पकड़ा, तो दिल से, जान से, आत्मा से उसे निभाने का यत्न किया। ऋषि दयानंद का वह वाक्य कि "ईश्वर पर विश्वास तो तुम्हें तभी होगा, जब तुम पर उसकी कृपा होगी", अब पूरा हुआ। ईश्वर की कृपा हुई, और १८८५ में आपने आर्य-समाज में प्रवेश किया।

आपका १८८५ से १९२२ तक का जीवन धर्म-सेवा के ही अर्पण हुआ है। हमारे पास यहाँ इतना स्थान नहीं कि हम इन सैंतीस सालों के घटना-पूर्ण कर्म-जीवन का संक्षेप में भी वर्णन कर सकें। इन वर्षों के कार्य-वृत्तांत के लिये एक दफ़्तर की आवश्यकता है। हम यहाँ इन वर्षों के कार्यों को कुछ जुदे-जुदे भागों में बाँटकर प्रत्येक के संबंध में थोड़ा-थोड़ा निवेदन करेंगे।

जालंधर में आपने वकालत शुरू की। इस समय आपकी अभिलाषा यह थी कि एक कामयाब वकील बनकर चीफ़-कोर्ट की जजी तक पहुँचना चाहिए। इसलिये Case Law तथा अन्य क़ानून

शास्त्र के संबंध में आपने खूब परिश्रम किया। वकालत खूब चली। इधर पारिवारिक सुख भी प्राप्त होने लगे। दो कन्याएँ और दो पुत्र हुए। अब तक आप किराए के मकान में रहकर वकालत का कार्य करते थे, अब आपने अपनी कोठी बनवाना शुरू की। जालंधर में आपकी कोठी प्रसिद्ध हो गई थी। बड़े चाव से यह कोठी बनवाई गई। आपने पहले ही अपना सर्वस्व गुरुकुल को दे डाला था। पंद्रह वर्ष के लगभग हुए, जब आपने उक्त कोठी भी गुरुकुल को ही दे दी। १८९१ में, आपके जीवन में, वह दुःखदायक घटना उपस्थित हुई, जो प्रायः मनुष्यों के जीवनों में युगांतर उत्पन्न कर दिया करती है। आपकी धर्मपत्नी का देहांत हो गया। उस समय आपका सबसे छोटा पुत्र केवल दो वर्ष का था। चारों बच्चे अभी अज्ञान नासमझ ही थे। चारों ओर से ज़ोर पड़ने लगा कि बच्चों की रक्षा के लिये दूसरा विवाह कर लो। परंतु आपने एक की न मानी; दूसरे विवाह का नाम तक न लिया। आपके बड़े भाई ला० आत्मारामजी अपनी धर्म-पत्नी-सहित जालंधर में आ गए; दोनों भाई एक साथ रहने लगे। बच्चों के पालन-पोषण का भार उनकी ताई पर पड़ा, जिसे उन्होंने बड़ी सफलता से निभाया। लगभग सात साल तक वकालत का कार्य ज़ोर से चला। १८९२ में जब आप आर्य-प्रतिनिधि-सभा, पंजाब के प्रधान बने, तब आपका समय बँटने लगा, और उसका एक बड़ा हिस्सा आर्य-समाज के अर्पण होने लगा। यह युद्ध देर तक जारी रहा। इधर वकालत, उधर आर्य-समाज की सेवा, दोनों अपनी-अपनी ओर खींच-कर हृदय में हलचल मचाने लगीं। यह खींच-तान लगभग आठ वर्षों तक जारी रही। अंत में समाज-सेवा की ही जीत और वकालत की हार हुई। उस समय मित्रों और बंधुओं के सभी उद्योग व्यर्थ हुए, और महात्मा मुंशीरामजी ने कचहरी में जाना बिलकुल ही बंद कर दिया।

आर्य-समाज में प्रवेश करने के कुछ समय पीछे ही आप जालंधर-आर्य-समाज के प्रधान बनाए गए। आप जालंधर-आर्य-समाज के प्रतिनिधि बनकर आर्य-प्रतिनिधि-सभा, पंजाब (लाहौर) में भी सम्मिलित होते थे। इस समय लाहौर में डी० ए० वी० कॉलेज की स्थापना की धूम थी, और पं० गुरुदत्तजी का प्रभाव सर्वोपरि था। महात्मा मुंशीरामजी भी पं० गुरुदत्तजी के विशेष भक्तों में सम्मिलित होकर अष्टाध्यायी और संस्कृत के अन्य ग्रंथों के पठन-पाठन में लग गए। शीघ्र ही डी० ए० वी० कॉलेज के संचालक आर्य-पुरुषों में मत-भेद पैदा हो गया। पं० गुरुदत्तजी वेद, अष्टाध्यायी और निरुक्त के भक्त थे। वह समझते थे कि जो दयानंद-कॉलेज ऋषि दयानंद की यादगार में बनाया गया है, उसमें वेद और वेदांग की पढ़ाई होना आवश्यक है। दूसरा पक्ष मानता था कि यह आवश्यक नहीं। शिक्षा समय के अनुसार ही होनी चाहिए; अष्टाध्यायी आदि का बोझ डालना ठीक नहीं। इस मत-भेद ने धीरे-धीरे उग्र रूप धारण किया। अष्टाध्यायी के विरोधी दल में भी आर्य-समाज के बड़े-बड़े नेता थे। महात्मा मुंशीरामजी की सम्मति पं० गुरुदत्तजी से मिलती थी। वह भी मानते थे कि जिस संस्था को आर्य-समाज ने ऋषि दयानंद की स्मृति में बनाया है, उसमें वेद-वेदांग की पढ़ाई न हो, तो फिर संस्था की आवश्यकता ही क्या है? यह झगड़ा देर तक चला, और अंदर-ही-अंदर बढ़ता हुआ पीछे से बड़े विशाल रूप में परिणत हो गया।

१८९० में पं० गुरुदत्तजी अकाल-मृत्यु के ग्रास हुए। उस समय उस समूह का नेतृत्व आप पर पड़ा, जो डी० ए० वी० कॉलेज की पाठ-विधि में संस्कृत का अधिक प्रवेश कराना चाहता था। १८९२ में आप आर्य-प्रतिनिधि-सभा के प्रधान चुने गए। अब घटना-चक्र शीघ्र शीघ्र चलने लगा। उसी वर्ष आर्य-समाज, लाहौर के उत्सव के समय मांस का झगड़ा भी चल पड़ा। आर्य-समाज के कुछ सभ्यों ने भरी-सभा में यह उद्घोषित कर दिया कि वे मांस-भक्षण को वेद के या धर्म के विरुद्ध नहीं समझते। ये सज्जन वे ही थे जो पाठ-विधि-संबंधी झगड़े में पं० गुरुदत्तजी के प्रतिपक्षी थे। जहाँ पहले आर्य-समाज का आंतरिक मत-भेद एक विषय में था, वहाँ अब दो में हो गया। उसमें से एक दल का नेतृत्व धीरे-धीरे महात्मा मुंशीरामजी के सिर पड़ा।

आर्य-समाज के आंतरिक झगड़े की दुःखजनक कथा का वर्णन आवश्यक नहीं है। इस छोटे-से लेख में उसके लिये न स्थान है, न अवसर। यहाँ तो इतना ही बता देना काफ़ी है कि झगड़ा धीरे-धीरे उग्र रूप धारण करता गया। १८९० में मांस का झगड़ा शुरू हुआ। १८९३ में आर्य-प्रतिनिधि-सभा के चुनाव पर उसी दलबंदी को लक्ष्य में रखकर भारी प्रतिद्वंद्विता हुई। १८९४ में झगड़ा चरम सीमा को पहुँच गया। डी० ए० वी० कॉलेज की कमेटी के अधिवेशन में ज़बरदस्ती या बल-प्रयोग तक की नौबत आ गई। इन वर्षों में उस दल के नेता, जिसे अब हम महात्मा-पार्टी कह सकते हैं, महात्मा मुंशीरामजी रहे। आपने १८९० में आर्य-समाज की लेखबद्ध सेवा के लिये 'सद्धर्म-प्रचारक' पत्र निकाला। उसने इन दिनों बड़ा काम किया। इन दिनों आपको कितना कार्य करना पड़ा, इसका अनुमान शायद इस बात से लग सके कि आपके प्रतिपक्षियों में राय मूलराज एम्० ए०, महात्मा हंसराज, ला० लाजपतराय और ला० लालचंद एम्० ए० आदि-जैसे धुरंधर सज्जन थे। १८९४ में दोनों दल जुदा-जुदा हो गए। डी० ए० वी० कॉलेज राय मूलराजजी की पार्टी के हाथों में रहा। वह पार्टी कॉलेज-पार्टी या कल्चर्ड-पार्टी के नाम से प्रसिद्ध हुई। महात्मा-पार्टी के हाथ में आर्य-प्रतिनिधि-सभा रही, और वेद-प्रचार के नाम से आर्य-समाज के सिद्धांतों के प्रचार का कार्य आरंभ हुआ। १८९५ में आर्य-प्रतिनिधि-सभा की रजिस्ट्री हो गई। इस समय पार्टियों की प्रतिद्वंद्विता एक ओर और आर्य-समाज के कार्य का उत्साह दूसरी ओर, इन दोनों ने मिलकर वकालत को पट कर दिया। सारा समय सद्धर्म-प्रचारक के संपादन और प्रचार के दौरों के अर्पण होने लगा। घर का काम-काज गौण हो गया। महीने के ३० दिन घर के बाहर ही बीतने लगे। इन दौरों में आपके साथी पं० लेखरामजी थे।

यहाँ पर कुछ घटनाओं की ओर निर्देशमात्र किया जा सकता है। इस छोटी-सी जीवनी में विस्तार से वर्णन नहीं हो सकता। अत्यंत परिश्रम और रात-दिन कार्य करने से १८९६ में आपको उन्निद्र रोग हो गया। १९ रातों तक बिलकुल नींद नहीं आई। अनेक उपाय किए गए, पर कुछ भी फल न हुआ। अंत को पहाड़ पर जाकर कुछ समय विश्राम करने से नींद फिर आने लगी। १८९७ में धर्मवीर पं० लेखरामजी का एक मुसलमान के हाथ से वध हुआ। महात्माजी और पं० लेखरामजी का भाई-भाई का-सा प्रेम था। पं० लेखरामजी की मृत्यु के समय महात्माजी भी उपस्थित थे। पं० लेखरामजी का अंतिम संदेश यही था कि लेख का कार्य बंद न होने पावे। उसी संदेश को

सिर-आँखों पर रखकर महात्माजी ने बहुत-सा समय और द्रव्य पं० लेखरामजी के और कुछ अपने लिखे हुए ग्रंथों के छपाने में खर्च किया। १८९८ में पं० गोपीनाथ के साथ आपके वे प्रसिद्ध शास्त्रार्थ हुए, जिनका आर्य-समाज के इतिहास में विशेष स्थान है। जालंधर के कन्या-महाविद्यालय के संस्थापन में आपका विशेष हाथ था। आप उसके जन्मदाताओं में से एक थे। आप और ला० देवराजजी, दोनों ने मिलकर बहुत वर्षों तक विद्यालय को चलाया। जब आप गुरुकुल के कार्य में लग गए, तब महाविद्यालय के कार्य का सारा बोझ ला० देवराजजी पर ही पड़ा। आज उस कन्या-महाविद्यालय की जो उन्नत दशा है, वह ला० देवराजजी के ही परिश्रम का फल है।

डी० ए० वी० कॉलेज को असफल समझकर महात्माजी के हृदय में यह भावना जम गई थी कि जब तक ब्रह्मचर्याश्रम की रक्षा के लिये गुरुकुलों की स्थापना नहीं होगी, तब तक ऋषि दयानंद का अभिप्राय या उद्देश्य पूरा नहीं हो सकता। न भारतवर्ष की शिक्षा का प्रश्न ही हल हो सकता है। आपको विश्वास हो गया था कि आर्य-समाज के लिये गुरुकुल की स्थापना अत्यंत आवश्यक है।

गुरुकुल की आवश्यकता का अनुभव करके आपने अपना विचार प्रस्ताव-रूप में आर्य-प्रतिनिधि-सभा के सामने उपस्थित किया। २५ नवंबर १८९८ के अधिवेशन में वह स्वीकृत हुआ। सभा ने निश्चय किया कि प्रारंभिक खर्च के लिये ८००० रुपए इकट्ठे हो जाने पर उक्त संस्था खोल दी जाय। कुछ समय तक नियम आदि बनते रहे। १८९९ में यह देखकर कि गुरुकुल की स्थापना का कार्य बहुत सुस्त चल रहा है, आप घर से निकल खड़े हुए, और सद्धर्म-प्रचारक में यह घोषणा कर दी कि जब तक गुरुकुल के लिये ३०,००० रुपए एकत्र न कर लेंगे, घर में पाँव न रक्खेंगे। सात महीने तक आप भारत में भ्रमण करते रहे। अभी गुरुकुल का नाम तक कोई नहीं जानता था। आप कहीं जाते थे, तो लोग गर्दन हिलाकर कहते थे कि 'बेचारा था तो कभी अच्छा, अब इसे क्या हो गया!', क्योंकि वे गुरुकुल की स्थापना के विचार को एक पागलपन समझते थे। देश में दुर्भिक्ष था। ऐसे समय में ३०,००० रुपए एकत्र कर लेना कोई साधारण बात नहीं थी। वकालत दूर गई, प्रेस का काम अस्त-व्यस्त हो गया। घर के धंधों से पहले ही जुदा रहते थे, अब तो एकदम संबंध ही टूट गया। अस्तु, इच्छित द्रव्य एकत्र हो गया। आर्य-समाज ने आपको अपूर्व प्रतिष्ठा दी। उसी समय से सेवा का आदर करनेवाले समाज ने आपको 'महात्मा' की पदवी से अलंकृत किया, जो कि आपके सर्वथा योग्य थी।

हरद्वार के समीप स्थान चुना गया, जो दान-रूप में ही प्राप्त हो गया। २ मार्च, १९०२ को नील-गिरि और नील-धार के बीच, विशाल जंगल में कुछ झोपड़ियाँ बनाकर ३० के लगभग बालक रक्खे गए। आप उसके पहले मुख्याधिष्ठाता बने। वकालत पहले ही छूट गई थी। प्रेस का काम भी दूसरों पर डालना पड़ा। सब कुछ छोड़-छाड़कर आप गुरुकुल की धुन में मस्त हो गए। धीरे-धीरे सब कुछ गुरुकुल के अर्पण कर दिया। गुरुकुल में सबसे पहले आपने अपने दोनों पुत्र भरती किए। कुछ साल पीछे अपना प्रेस गुरुकुल को दान दे दिया। जालंधरवाली कोठी बाक़ी थी। उसमें हज़ारों रुपए का सामान था। कोठी खाली पड़ी रहती थी, इस कारण जिसके हाथ जो लगा, वह उसे

ले गया। अंत को वह कोठी भी गुरुकुल को दान देकर आपने सर्वमेध-यज्ञ को पूर्ण किया। १९०६ से १९१७ तक आप एकमात्र गुरुकुल की धुन में मस्त रहे। आज गुरुकुल जिस उन्नत दशा में है, उसे देश-भर जानता है। वह आपके बलिदान का साक्षी और आर्य-समाज के धर्म-प्रेम का फल है। इस समय वह देश-भर का एक प्रधान राष्ट्रीय विश्व-विद्यालय है, इसमें कोई संदेह नहीं।

१९१७ में आपने संन्यास ले लिया। उस समय हरद्वार में आर्य-जनता जमा हुई और सर्वमेध-यज्ञ की साक्षी बनी। श्रद्धा से प्रेरित होकर ही आप जन्म-भर कार्य करते रहे, इस कारण आपने अपना नाम 'श्रद्धानंद' रक्खा। संन्यास लेकर आपने विस्तृत कार्य-क्षेत्र में पदार्पण किया। आप आर्य-समाज की सार्व-देशिक सभा के पहले ही से प्रधान थे। यह सभा आपके आंदोलन का ही फल थी। संन्यास लेकर एक तो आपने इस सभा के कार्य की ओर अधिक ध्यान दिया, और दूसरा कार्य, जिसमें आपने योग दिया, वह देश का धर्म-युद्ध था। आप स्वभाव से ही सरल, और इसीलिये कुटिल-नीति के विरुद्ध हैं। साथ ही विलायती फ़ैशन और विदेशी ढंग आपको सदा से पसंद नहीं। सत्य और ब्रह्मचर्य, ये दो सिद्धांत आपके संचालक हैं, इस कारण आप १९१९ से पूर्व कांग्रेस की राजनीति के कड़े समालोचक रहे। माँगकर या परावलंब से स्वराज्य पाने की चेष्टा आपके सिद्धांतों के विरुद्ध थी। दिल्ली के सत्याग्रह में आपने राजा और प्रजा की भलाई की दृष्टि से जो कार्य किया, उसे देश-भर जानता है। गोरखों की ग्यारह किर्चें छाती पर लगी हुई थीं उस समय भी आप निर्भय, शांत रहे, और जनता को शांत रहने का उपदेश करते रहे। वह भारत के इतिहास में एक स्वर्गीय दिन था, जब जुम्मा-मसजिद के मिंबर पर खड़े होकर एक संन्यासी (श्रद्धानंद) ने हिंदू-मुसलमानों की एकता पर धर्म की छाप लगा दी, और शहीदों के लिये मंगल-कामना करके देश-भक्ति और धर्म के अच्छेद्य संबंध की घोषणा की।

मॉर्शल-ला के शासन से पीड़ित पंजाब के अंगों के घाव पर मरहम लगाने के लिये पं० मदनमोहन मालवीय, पं० मोतीलाल नेहरू आदि जो महानुभाव मान्य सज्जन पंजाब में पहुँचे, स्वामी श्रद्धानंदजी भी उनमें एक थे। अनाथों और विधवाओं को सहायता देने का काम आपने अपने ज़िम्मे लिया, और सेवा-समिति के प्रधान की हैसियत से प्रांत-भर में भ्रमण करके उस समय जागृति उत्पन्न की, जिस समय अचिंतित आपत्ति के आतंक से प्रांत का शरीर मूर्च्छित दशा में पड़ा हुआ था। उस वर्ष के अंत में कांग्रेस का अधिवेशन अमृतसर में होने को था। दुःखित पंजाब—वहाँ भी वह अमृतसर, जिसके अंग-प्रत्यंग छिदे पड़े थे—कांग्रेस का अधिवेशन कर सकेगा, यह किसी को आशा नहीं थी। यह प्रस्ताव किया गया कि अमृतसर में कांग्रेस न हो। आपने इसका भारी विरोध किया। तब कांग्रेस करने का बोझ आप ही पर पड़ा। आप स्वागतकारिणी समिति के सभापति बनाए गए। कांग्रेस का अधिवेशन किस ख़ूबी से हुआ और कैसे सुंदर ढंग से समाप्त हुआ, यह बताने की आवश्यकता नहीं। उस अचिंतित कृतकार्यता में आपका बड़ा हाथ था।

हिंदी-भाषा से आपका पुराना प्रेम है। जब सद्धर्म-प्रचारक उर्दू में था, तब भी उसकी भाषा आधी हिंदी होती थी। सद्धर्म-प्रचारक अपने जीवन के १७ वर्ष उर्दू के कलेवर में काटकर, १९०७ से

नागरी-अक्षरों में निकलने लगा। उस समय भाषा-परिवर्तन से आपकी बहुत आर्थिक हानि हुई, क्योंकि पंजाब में हिंदी के पढ़नेवाले बहुत कम हैं। परंतु आदर्श-प्रियता की लगन में आर्थिक सोच-विचार आपके सिद्धांतों के बहिर्गत है। आप उर्दू के ओजस्वी लेखक थे। उपदेश-मंजरी, सुबह-उम्मेद आदि कई ग्रंथ आपने उर्दू में लिखे हैं। हिंदी में आपने धर्मवीर पं० लेखराम का जीवन-चरित, आदिम सत्यार्थ-प्रकाश आदि कई ग्रंथों के अतिरिक्त धर्म-विषय पर कई छोटे-छोटे ट्रैक्ट भी लिखे हैं। उर्दू-प्रधान पंजाब में नागरी-अक्षर और हिंदी के प्रचार का प्रधान श्रेय आप-को ही है। हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के भागलपुर के अधिवेशन में, इन्हीं सेवाओं के पुरस्कार-स्वरूप, हिंदी-भाषी जनता ने आपको सभापति चुना। अपने प्रारंभिक भाषण में आपने हिंदी के स्थान पर 'मातृ-भाषा' शब्द का प्रयोग किया था।

आप स्वभाव ही से आदर्श-प्रेमी हैं। एक आदर्श की धुन में मस्त होकर यह विचार करना कि इसके आनुषंगिक परिणाम क्या होंगे, आपके स्वभाव के विरुद्ध है। इससे दुनियादार आदमी आपको जल्दबाज़ या साहसिक कह देते हैं। यही आपका दोष या गुण है। यदि यह दोष या गुण न होता, तो आप आज शायद पंजाब-हाईकोर्ट के जज होते; पर समाज-सेवा का खाता बिलकुल शून्य होता। जब कोई धुन समाई, तभी आगा-पीछा नहीं देखा। अछूतों को उठाकर अपने साथ मिलाने का विचार पहले-पहल जालंधर में कार्य-रूप में तब परिणत हुआ, जब आपके नेतृत्व में आर्य-समाज ने 'रहतियों' की शुद्धि की। आर्य-पुरुषों ने इस पर नाक-भौं चढ़ाई, मित्रों ने मार डालने की धमकी दी, पर आपने जो करना था कर ही डाला। आपने जाति-बंधन तोड़कर एक अरोड़ के साथ अपनी छोटी कन्या का विवाह किया, जिसके सदाचारी और पक्के आर्य होने का आपको विश्वास था। इस विवाह से अत्यंत निकट-संबंधी भी रूठ गए—आर्य-समाज के नेता आग-बबूला हो गए—पर जो सोचा था, वह करके छोड़ा। वकालत में झूठ का आश्रय प्रतीत हुआ, उसे त्याग दिया। उर्दू में श्रद्धा न रही, घाटा सहकर भी प्रचारक के अक्षर बदल डाले। इसे अच्छा कहिए या बुरा, यही आपकी कठिनाइयों का कारण है, और यही आपकी कामयाबी का राज़ है।

कार्य की सफलता के ध्यान में आपने अपने शरीर को भी कभी क्षमा नहीं किया। आर्य-प्रति-निधि-सभा या गुरुकुल का हिसाब ठीक करने में बराबर बीस-बीस घंटों की बैठक तो एक साधारण बात थी। इधर बवासीर का आपको पैतृक रोग है। उसके साथ हर्निया का रोग भी प्रकट हुआ। हाई-ड्रोसील का ऑपरेशन हो चुका है। इन सब रोगों के होने पर भी दौड़-धूप और काम बराबर जारी रहा। प्रकृति ने अपने नियम का पालन किया है, और लगभग दो वर्षों से आप बुढ़ापे और थकन से उत्पन्न होनेवाले अनेक रोगों से पीड़ित हैं। शरीर रोगों का घर हो गया है, परंतु मन की शक्ति अब तक बराबर गाड़ी को चला रही है। वही नित्य का व्यायाम, वही लंबे-लंबे दौरे और वही दौड़-धूप अब तक जारी है। विचारशील लोग कहते हैं कि स्वामीजी को अब बैठकर विश्राम करना चाहिए, नहीं तो बीमारी बढ़ जायगी। परंतु ऐसे विचारशील पुरुषों को निराश करना स्वामी-जी ने अपना धर्म बना रक्खा है। बूढ़ा सिपाही

अपना कवच उतारना नहीं चाहता, और न घोड़े की पीठ पर से उतरना चाहता है। जब तक देश में हाहाकार है, तब तक उसे चैन कहाँ ?

एक भक्त

महाकवि वृंद
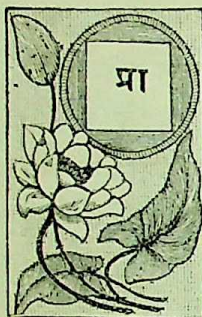
प्रायः लोग यह कहा करते हैं कि "व्रज-भाषा की कविता में आदि-रस (शृंगार) के सिवा और है ही क्या ?" परंतु ऐसा कहने-वाले भ्रम में पड़े हुए हैं, क्योंकि उक्त भाषा में थोड़े-बहुत सभी रसों के काव्य पाए जाते हैं। हाँ, यह अवश्य है कि अधिकतर कविता रस-राज (शृंगार) की ही मिलती है । इसके दो कारण हैं । उनमें से एक तो वैष्णव-धर्म का प्रचार है, और दूसरा मुसलमान कवियों की रँगीली कविता का प्रसार।

अस्तु, ज्यों-ज्यों खोज की जाती है, त्यों-त्यों विविध विषयों और भिन्न-भिन्न रसों के ग्रंथ-रत्न मिलते जाते हैं।

हम यहाँ पर व्रज-भाषा के एक ऐसे ही महा-कवि का वृत्तांत लिखते हैं, जिसने और-और रसों के अलावा महा नीरस 'नीति'-विषय की ऐसी सरस और सरल कविता की है कि उसके हाथ चूम लेने को जी चाहता है । सरलता के साथ ही सरसता तो मानों इसी कवि के बाँटे पड़ी थी।

इस कवि-पुंगव का नाम 'वृंद' है। यह भारत के मुग़ल-सम्राट् औरंगज़ेब का दरबारी कवि था। यह औरंगज़ेब के पोते अज़ीमुश्शान के साथ, जो अपने पितामह (औरंगज़ेब) के समय से ही बंगाल, बिहार और उड़ीसे का सूबेदार था, ढाके* में रहता था । अज़ीमुश्शान स्वयं भी व्रज-भाषा तथा उर्दू का अच्छा कवि और शायर था। इसलिये उसने अपने दादा (औरंगज़ेब) से उक्त (वृंद) कवि को माँग लिया था। वह उन्हें बड़ी इज़्ज़त और क़दर के साथ अपने पास रखता था।

स्वयं वृंद कवि ने अपनी 'दृष्टांत-सतसई' का अज़ीमुश्शान के मनोरंजन के लिये ढाके में बनाया जाना लिखा है।

वह अपनी सतसई के अंत में लिखता है कि

"समय-सार-दोहानि कौं सुनत होय मन मोद ।
प्रगट भई यह सतसई भाषा वृंद-बिनोद ॥ ७०५ ॥
अति उदार, रिझवार जग, शाह अज़ीमुश्शान ।
सतसैया सुनि वृंद की कीनो अति सनमान ॥ ७०६ ॥
संवत ससि रस बार ससि, कातिक सुदि ससि-बार।
सातैं ढाका सहर मैं उपज्यौ यहै बिचार ॥ ७०७ ॥"

'वृंद-विनोद-सतसई' के इन अंतिम तीन दोहों से यह बात सिद्ध होती है कि यह सतसई औरंग-ज़ेब के जीवन-काल में, उसके पोते अज़ीमुश्शान के मनोविनोद के लिये, उसके आश्रित कवि वृंद ने संवत् १७६१ वैक्रम, कार्त्तिक-शुक्ला सप्तमी, सोम वार को ढाका शहर में बनाकर पूरी की।

अब तक दो जगह की छपी हुई पुस्तकें हमारे देखने में आई हैं। उनमें से एक तो सन् १८६० ई० में खड्गविलास-प्रेस, बाँकीपुर में, और दूसरी सन् १८६१ में भारतजीवन-प्रेस, बनारस में छपी है। पहली में ७०५, और दूसरी में ७०६ दोहे हैं । इनमें परस्पर कुछ-कुछ पाठ-भेद भी है।

श्रीनाथद्वारे के समीप 'काँकरौली' एक स्थान

* मुग़ल-बादशाहों के समय में बंगाल की राजधानी ढाका और मुर्शिदाबाद थे। बिहार की राजधानी 'पटना था।

है। वहाँ के नरेश श्रीवल्लभ-कुल-भूषण गोस्वामी श्रीबालकृष्णलालजी महाराज थे। आपके साथ हमारा परिचय, और फिर मैत्री-भाव, उस समय हुआ, जब आप काशी के श्रीगोपाल-मंदिर में ठहरे थे, और 'कवि-समाज' स्थापित किया था।

मथुरा के सेठजी का करोड़ों की संपत्तिवाला मंदिर, जो 'श्रीद्वारकाधीश' के नाम से प्रसिद्ध है, श्रीगोस्वामी बालकृष्णलालजी की भेंट है। सन् १९०८ में उक्त गोस्वामीजी जब मथुरा पधारे, तो आपको हमारे वृंदावन में उपस्थित रहने का पता लगा। आपने स्वयं पधारकर हमें कृतार्थ किया। फिर आप अपने साथ ही हमें मथुरा ले गए, और चार दिन तक वृंदावन न आने दिया। उन चार दिनों तक प्रायः पहरों साहित्य-चर्चा होती रही। उसी प्रसंग में आपने कविवर वृंद की रची हुई सतसई की एक हस्त-लिखित प्रति हमें दी, जो संवत् १८०८ वैक्रम की लिखी हुई है, और जिसे मथुरा-पुरी के जीवनभट्ट-नामक नागर ब्राह्मण ने 'स्वमनोविनोदाय' लिखा है। इस प्रति में ७०७ दोहे हैं। इसका पाठ छपी हुई दोनों प्रतियों से अधिक शुद्ध है। अतएव हमने इसी (लिखी हुई) के पाठ पर कुंडलियाएँ बनाई हैं।

श्रीगोस्वामीजी ने कृपापूर्वक उक्त पुस्तक हमें देकर उन दोहों पर कुंडलियाएँ बना देने का बहुत आग्रह किया था। पाँच कुंडलियाएँ तो हमने आपके सामने ही बना दी थीं, जिन्हें सुनकर आप बहुत प्रसन्न हुए, और शीघ्र-शीघ्र ग्रंथ के पूर्ण कर देने का आग्रह किया। किंतु हमारे-ऐसे आलसी जीव भला जल्दी-जल्दी कोई काम कभी पूरा कर सकते हैं! यही हुआ भी, उधर उक्त गोस्वामीजी काँकरौली पधार गए, इधर हमने उक्त पुस्तक को बेठन में बाँधकर आलमारी के हवाले कर दिया। यों ही जब कभी उक्त गोस्वामीजी का तक़ाज़ा आता, तो दो-चार कुंडलियाएँ बन जातीं; फिर पुस्तक बस्ते में बँधी पड़ी रहती।

बड़े खेद के साथ लिखना पड़ता है कि अभी उस साल मथुरा में उक्त गोस्वामीजी महाराज का गोलोक-वास हो गया; इसलिये हमने फिर कभी इस सतसई की ओर ध्यान ही न दिया। इधर कुछ रसिकों ने हमें फिर उत्तेजित करना आरंभ किया कि वृंद के दोहों पर कुंडलियाएँ बनें और ऐसा अनुपम ग्रंथ-रत्न सुवर्ण-संयुक्त होकर 'स्वर्णालंकार' बन जाय।

यद्यपि मुझमें इतनी योग्यता नहीं कि मैं महाकवि वृंद की रचना पर कुंडलियाओं की रचना करूँ, किंतु हठी मित्रों के अनुरोध से विवश होकर मैं नमूने की भाँति थोड़ी-सी कुंडलियाएँ आगामी संख्या में रसिक-वृंदों की भेंट करूँगा। यदि मेरी तुच्छ रचना सहृदयों को रुचिकर हुई, तो मैं यथासाध्य चेष्टा करके इस दुरूह कार्य को किसी तरह पूर्ण करूँगा। किंतु यदि दुर्भाग्य-वश मेरी फीकी रचना सुरसिकों को न भाई, * तो अधिकारी और योग्य कवीश्वरों से यह प्रार्थना करूँगा कि कोई कविवर कृपाकर इस अपूर्व ग्रंथ पर कुंडलियाएँ रचकर काव्य-रसिकों की प्रबल पिपासा मिटाएँ।

कविवर वृंद के विषय में उक्त गोस्वामीजी महाराज ने जो कुछ हमसे कहा था, उसका सारांश हम यहाँ पर लिखते हैं—

"यह कवि गौड़-ब्राह्मण-कुल में, मथुरा-प्रांत के किसी ग्राम में, पैदा हुआ था। इसने कहाँ और

* हमारी सम्मति में गोस्वामीजी की रचना उत्कृष्ट हुई है, और वे उसके पूर्ण अधिकारी हैं। हम गोस्वामीजी से अनुरोध करते हैं कि वे अवश्य और शीघ्र अपनी इस कृति को पूर्ण कर डालें। — संपादक

कितनी शिक्षा पाई, इसका कोई पता नहीं। किसी तरह यह औरंगज़ेब के दरबार में पहुँच गया, और दरबारी कवि बना लिया गया।

एक दिन वह मथुरा के उस पार श्रीगोकुलजी के ठाकुर श्रीगोकुलनाथजी के दर्शनों को गया, और वहाँ के तत्कालीन गोस्वामीजी का शिष्य हो गया। इसीसे इसने अपनी सतसई के मंगलाचरण में 'श्रीगुरुनाथ प्रभाव तें०' इत्यादि कहकर वस्तु-निर्देशात्मक मंगलाचरण किया है। श्रीगोकुलनाथजी की गद्दी के, आरंभ से लेकर आज तक, जितने शिष्य हुए हैं, उन सबका संक्षिप्त इतिवृत्त वहाँ के बहीखातों में लिखा हुआ है। जिसका जी चाहे, वह वहाँ जाकर अनुसंधान कर सकता है। श्रीनाथद्वारे में कवि-सम्राट् श्रीसूरदासजी के लक्ष पद, और श्रीसूरश्यामजी की छाप के पचीस हज़ार पद सुरक्षित हैं। उस गद्दी के अन्यान्य शिष्य-कवियों के भी काव्य-ग्रंथ सुरक्षित हैं। 'अष्टछाप' के अष्ट सखा, अर्थात् सूरदास, विट्ठलनाथ, कुंभनदास आदि कवीश्वरों की वाणी वहाँ बड़े आदर और प्रतिष्ठा के साथ सुरक्षित है। वृंद कवि ने दृष्टांत-सतसई के अतिरिक्त और भी कोई काव्य-ग्रंथ अवश्य बनाया होगा। कारण, उसकी छाप के कवित्त, सवैये और पद आदि भी सुनने में आते हैं।" इत्यादि।

बस, उक्त गोस्वामीजी के कथन का सारांश यही है, जो ऊपर दे दिया गया। इस विषय में अज्ञता-वश हम कुछ नहीं कह सकते। हाँ, इसके जानकार सज्जनों से यह प्रार्थना अवश्य की जाती है कि वृंद के विषय में यदि कोई सज्जन कुछ जानकारी रखते हों, तो कृपाकर हमें अवश्य सूचित करें।

'शिवसिंह-सरोज'-नामक पुस्तक के कर्ता ने कवियों की गणना में वृंद का केवल नाम-भर लिया है, और उदाहरण में उसका एक कवित्त भी लिखा है। बस, उसी कवित्त को उद्धृत करके हम इस संक्षिप्त जीवनी को समाप्त करते हैं—

"कौरव-सभा-समुद्र, गहर विरोध-बारि,
　　कोप-बड़वानल की ओप अगमगी है।
जोधा दुरजोधन, कुमंडलादि जलपति,
　　'वृंद' कहै, लोभ की लहर सगमगी है॥
कुबुधि-बयारि तें दुसासन-तुफान उठ्यौ,
　　चाल्यौ बादियान चीर भीर रँगमगी है।
प्रीति-पतवार लैकै हूजिए करनधार,
　　आज हरि लाज की जहाज डगमगी है॥"

उक्त कवि का एक सवैया हमें और स्मरण हो आया है; उसे भी यहाँ पर लिख देना कुछ अनुचित न होगा—

"जो कछु बेद-पुरान कही,
　　सुनि लीनी सबै जुग कान पसारे।
लोकहु में यह ख्यात कथा,
　　छिन में खल कोटि अनेकन तारे॥
'वृंद' कहै, गहि मौन रहे किमि ?
　　हौं हठकै बहु बार पुकारे।
बाहर ही के नहीं, सुनौ हे हरि !
　　भीतर हू ते अहो तुम कारे॥"

बस, इस अमर कवि के विषय में अन्य सज्जन यदि कुछ जानकारी रखते हों, तो लिखने की कृपा करें।

अगले अंक में हम इस कवि के दोहों और अपनी बनाई कुछ कुंडलियाएँ देंगे।

श्रीकिशोरीलाल गोस्वामी

बिहारी-बोधिनी

(समालोचना)

परिचय

यों तो हिंदी के काव्य-संसार में कवि-वर बिहारीलाल-विरचित सुप्रसिद्ध 'सतसई' सदैव समादृत होती रही है, पर इस खड़ी बोली के ज़माने में उसकी भी चर्चा और अर्चा कुछ कम हो गई थी । स्वर्गीय पं० ज्वालाप्रसाद मिश्र-कृत सत-सई-टीका की समालोचना जब से पं० पद्मसिंहजी शर्मा ने 'सतसई-संहार'-शीर्षक से सरस्वती में की, तब से कविता-प्रेमियों की सुदृष्टि एक बार फिर उसकी ओर भली भाँति आकृष्ट हुई है। उक्त पंडितजी ने सतसई-संहार के बाद सतसई की 'संजीवन-भाष्य'-नामक एक सुंदर टीका भी लिखी है । कई वर्ष हुए इसका प्रथम भाग काशी के ज्ञान-मंडल से प्रकाशित हो चुका है । इस समय कविवर बिहारीलाल की कविता इस ग्रंथ की बदौलत और भी लोकप्रिय हो गई है। इतना ही नहीं, 'संजीवन-भाष्य' की कृपा से व्रज-भाषा की कविता का विरोध भी बहुत कुछ कम हो गया है । संजीवन-भाष्य विद्वानों के पढ़ने की चीज़ है ; विद्यार्थियों को उससे आरंभ में वैसा लाभ नहीं हो सकता । इसीलिये वर्तमान प्रचलित हिंदी-गद्य में सतसई की एक ऐसी टीका की ज़रूरत थी, जिसमें, थोड़े में, सब आवश्यक बातें समझा दी जायँ—जिससे विद्यार्थी बिहारीलाल की कविता में सरलता-पूर्वक प्रवेश करके उसका गहन अध्ययन करने का अधिकारी बन जाय । हर्ष का विषय है कि काशी के हिंदू-विश्वविद्यालय में हिंदी-साहित्य के अध्यापक, सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी, प्रखर समालोचक और उद्भट कवि लाला भगवानदीनजी ने इस कमी को पूरा करने के लिये सतसई की 'बिहारी-बोधिनी'-नामक एक टीका लिखी है । जो प्रति इस टीका की टीकाकार ने कृपा करके हमें प्रसाद-स्वरूप भेंट की है, वह बिना जिल्द की है, और उसका मूल्य २।) है। पुस्तक के बाहरी टाइटिल-पेज पर एक मनोहर चित्र है । यह चित्र निम्न-लिखित दोहे के भाव पर बनाया गया है—

> अहे दहेंड़ी जिनि धरै, जिनि तू लेहि उतारि ;
> नीके है छींके छुए, ऐसी ही रहि नारि ।

पुस्तक की पृष्ठ-संख्या ३६६ के लगभग है । आरंभ में विषयानुक्रमणिका दी हुई है । उसके आगे टीकाकार का एक भव्य चित्र है । तदनंतर क्रम से टीकाकार तथा श्रीयुत रामदास गौड़ का लिखा वक्तव्य और प्रस्तावना है । फिर ३२२ पृष्ठों में मूल-सहित टीका है । टीका का क्रम इस प्रकार है कि आरंभ में मूल दोहा, फिर शब्दार्थ और भावार्थ, अंत में अलंकार । किसी-किसी दोहे में विशेष नोट भी संयोजित किए गए हैं । पुस्तक की छपाई और सफ़ाई भी साधारण रीति से अच्छी ही है । छपाई की शुद्धता का अनुमान पाठक इसी बात से कर सकते हैं कि शुद्धि-पत्र केवल एक पृष्ठ का है । अंत में, टीका के बाद, अकारादि-क्रम से दोहों के नंबरों की सूचनिका दे दी गई है । यह सूचनिका बहुत ही उपयोगी है, और इससे इष्ट दोहा ढूँढ़ निकालने में बड़ी सरलता हो गई है । सूचनिका के बाद एक 'शब्द-कोष' भी दिया गया है, जिससे पुस्तक की उपयोगिता और भी बढ़ गई है ।

समालोचना का कारण

इसके मानने में हमें ज़रा भी संकोच नहीं कि ऐसी अच्छी टीका लिखकर बिहारी-बोधिनी के रचयिता ने विद्यार्थियों का बड़ा उपकार किया है । अधिकतर दोहों का पाठ, अर्थ और अलंकार इत्यादि सब शुद्ध दिए हुए हैं । फिर भी, यह टीका विद्यार्थियों के लिये लिखी गई है, इसलिये प्रत्येक समालोचक का कर्तव्य है कि यदि कहीं वह इस टीका में कोई खटकने-योग्य बात पावे, तो उसे हिंदी-संसार के सामने निस्संकोच होकर रख दे । अपने वक्तव्य के चौथे पृष्ठ पर टीकाकार ने साहित्य-प्रेमियों से इस आशय की प्रार्थना भी की है । हिंदी के पत्र-पत्रिकाओं में अब तक हमने इस टीका की कई समालोचनाएँ पढ़ी हैं, परंतु खेद के साथ कहना पड़ता है कि किसी में भी टीका की उपयोगिता पर गंभीरता-पूर्वक विचार नहीं किया गया । ऐसी दशा में इस टीका को पढ़कर, इसके संबंध में, हमारे मन में, जो दो-चार बातें उठी हैं, उनको हिंदी-संसार के सामने रख देना हम अपना परम कर्तव्य समझते हैं । हम टीका को सर्वांग-सुंदर देखना चाहते हैं, इसलिये जो-जो बातें हमारी राय

में टीका के सर्वांग-सुंदर बनने में बाधा पहुँचाती होंगी, उनकी सूचना हम अवश्य देंगे । वयोवृद्ध टीकाकार महोदय से प्रार्थना है कि वह हमारी इस समालोचना को किसी दूसरी दृष्टि से न देखें । हमने यह समालोचना कई मित्रों के आग्रह से, शुद्ध साहित्यिक सेवा के भाव से, लिखी है ।

मौलिकता

बिहारी-सतसई पर इतनी अच्छी-अच्छी टीकाएँ निकल चुकी हैं कि अब भविष्य में कोई टीका उनसे भी अच्छी बन सकेगी, इसमें बहुत कुछ संदेह है । लाल-चंद्रिका, हर-प्रकाश तथा पांडेय प्रभुदयालु की टीकाओं को सामने रखकर एक अच्छा साहित्य-सेवी बिना अधिक परिश्रम के 'बिहारी-बोधिनी'-जैसी टीका की रचना कर सकता है । यदि अमर-चंद्रिका की सहायता ली जा सके, तो टीका और भी पांडित्य-पूर्ण बन सकती है । अमर-चंद्रिका और लाल-चंद्रिका में प्रत्येक दोहे के अलंकार अलग-अलग दे दिए गए हैं । इसलिये नवीन टीकाकार को इस काम में भी विशेष परिश्रम नहीं पड़ सकता । बिहारी-बोधिनी-टीका के रचयिता ने अलंकार-प्रदर्शन किया है, शब्दार्थ और भावार्थ भी लिखे हैं, पर इसके लिये वह विशेष प्रशंसा के पात्र नहीं हैं । कारण, उनके इस कार्य में कोई विशेष मौलिकता नहीं है । पहले से जो सामग्री मौजूद थी, उन्होंने अधिकतर उसीसे लाभ उठाया है । उदाहरण के लिये निम्न-लिखित दोहा लीजिए—

छुटी न सिसुता की झलक, झलक्यो जोबन अंग ;
दीपति देह दुहून मिलि, दिपति ताफता रंग ।

इस पर बिहारी-बोधिनी-टीका इस प्रकार है—

"शब्दार्थ—ताफता=धूपछाँह नाम का रेशमी कपड़ा ।

भावार्थ—लड़कपन की झलक अभी नहीं छूटी और जवानी की झलक शरीर में आ चली है । दोनों अवस्थाओं के मेल से शरीर की छटा धूपछाँह के रंग की तरह दोरंगी-सी चमकती है ।

अलंकार—वाचक-लुप्तोपमा ।"

अब इसी दोहे पर लाल-चंद्रिका में जो टीका दी हुई है, उसे भी पाठक पढ़ें—

"छुटी नहीं लड़काई की चमक और चमकी जवानी देह में । दीपती है दोनों देह में मिलके ऐसी चमकती है, जैसे ताफते का रंग । ताफता एक रेशमी कपड़ा है, जिसका ताना एक रंग और बाना एक रंग । उसमें दोनों रंग की झलक मारती है । उसे धूपछाँह भी कहते हैं । वाचकलुप्तोपमालंकार ।"

पाठक देख सकते हैं कि बिहारी-बोधिनी का क्रम और भाषा-सौंदर्य तो लाल-चंद्रिका से अच्छा है, परंतु यह स्पष्ट जान पड़ता है कि लाल-चंद्रिका-टीका ही संशोधित करके वर्तमान समय के अनुकूल बना ली गई है । हम यह नहीं कहते कि बिहारी-बोधिनी और लाल-चंद्रिका-टीका में सर्वत्र ही ऐसा साम्य है, पर इसके कहने में हमें संकोच भी नहीं कि बिहारी-बोधिनी-टीका की अधिकांश सामग्री पूर्ववर्ती टीकाकारों की संपत्ति है । बिहारी-बोधिनी के रचयिता ने इस सामग्री को संगठित, सुसज्जित करके वर्तमान पाठकों के अनुकूल बनाया है । इस परिश्रम के लिये उनकी जितनी प्रशंसा की जाय, वह थोड़ी है । इस प्रकार अधिकांश दोहों की टीका के संबंध में अपना यह मत स्थिर करके हम यथास्थान उन कई दोहों की टीकाओं पर विचार करेंगे, जिनमें टीकाकार अपने विलक्षण अर्थ-प्रदर्शन की सूचना देते हैं ।

कठिन दोहे

विहारीलाल की सतसई में कई दोहे ऐसे भी हैं, जिनकी बाबत विद्वानों की राय है कि अब तक के टीकाकार उनका यथार्थ चमत्कार-पूर्ण अर्थ प्रकट नहीं कर पाए । खेद के साथ कहना पड़ता है कि बिहारी-बोधिनी भी उन दोहों पर कोई नया प्रकाश नहीं डाल सकी । इतना ही नहीं, ऐसे कई दोहों का अर्थ तो बिहारी-बोधिनी में पूर्व-टीकाओं में दिए अर्थ से भी घटकर हुआ है । एक उदाहरण लीजिए—

वाही निसि तें ना मिटो, मान कलह को मूल ;
भले पधारे पाहुने, ह्वै गुड़हर को फूल ।

इसका भावार्थ बिहारी-बोधिनी में इस प्रकार पाया जाता है—

"हे कलह के मूल-कारण 'मान', तू उसी रात्रि से अब तक नहीं मिटा । हे पाहुने, तू तो गुड़हर का फूल होकर भला आया !"

उपर्युक्त अर्थ से स्पष्ट है कि मान ही 'पाहुना' कहकर संबोधित हुआ है, तथा दोहा एक प्रवीण सखी की उक्ति

है। अब पूछना यह है कि इस अर्थ में चमत्कार क्या है ? कहा गया है कि मान दूर कराने के लिये प्रवीण सखी का यह कथन है। होगा, पर इसमें मान को दूर करानेवाली कौन-सी सामग्री है ? यह भी जाने दीजिए। मान की समता 'पाहुने' से की गई है, तो क्या जब पाहुने से यह कहना अभीष्ट होता है कि अब आप यहाँ से चले जाइए, तो उससे इसी प्रकार कहा जाता है, जैसा कि सखी ने मान से कहा है ? असभ्य, चिड़चिड़ा, क्रोधी और अशिष्ट गृहस्थ अपने अतिथि को ऐसे खुले शब्दों से भले ही दुतकारे, परंतु अत्यंत सूक्ष्म-दर्शी, सरस-हृदय, व्यंजना-मूलक अलौकिक काव्य करने में समर्थ श्रीकविवर विहारीलाल की उस उक्ति में, जो एक प्रवीण सखी के मुख से निकली हुई मानी गई है, विहारी-बोधिनीवाला अर्थ आरोपित करना, कम-से-कम हमें तो, बिलकुल संतोष-प्रद नहीं प्रतीत होता। हमें क्षण-भर के लिये भी यह विश्वास नहीं कि विहारी-जैसे मार्मिक कवि ने इस भद्दे अर्थ को लक्ष्य में रखकर उपर्युक्त दोहे की रचना की होगी। हमें आशा है, संजीवन-भाष्य में पं० पद्मसिंह शर्माजी, तथा अपनी अविदित नामवाली टीका में श्रीरत्नाकरजी, इस दोहे पर विशेष ध्यान देंगे। लाल-चंद्रिका, अमर-चंद्रिका तथा शृंगार-सप्तशती में इस दोहे की व्याख्या जिस प्रकार से की गई है, वह विहारी-बोधिनी की व्याख्या से भिन्न है। परंतु, पूर्ण संतोष-दायिनी न होने पर भी, ऊपर कही गई व्याख्या से अवश्य अच्छी है। उन सबमें प्रायः मान और पाहुना एक नहीं माने गए हैं, और पाहुने के विशेष कारण से आगमन को लेकर मान की उत्पत्ति कही गई है। विहारी-बोधिनी में ऐसे ही और भी कई दोहे हैं, परंतु 'रत्नाकरी' और 'पद्मसिंही' भाष्यों के निकलने के पूर्व हम इस संबंध में विशेष कुछ भी लिखना नहीं चाहते।

छंद के रूप का परिवर्तन

अब तक सतसई की उपलब्ध प्रतियों में कई-एक सोरठे भी पाए जाते हैं। न-जानें क्या समझकर विहारी-बोधिनी के टीकाकार ने सोरठों के चरणों में फेर-फार करके उनको दोहों के रूप में कर दिया है। नहीं जानते, ऐसा करने की क्या आवश्यकता थी ? हमारी राय में टीकाकार को यह अधिकार कदापि नहीं कि वह दोहे को सोरठे का, या सोरठे को दोहे का रूप दे दे। इंगलैंड में शेक्सपियर आदि महाकवियों ने जिस प्रकार अपनी कविता की है, जिन शब्दों का व्यवहार किया है, ठीक उसी क्रम और उन्हीं शब्दों के यथातथ प्रकाशित करने का सदा उद्योग किया जाता है। हमारे यहाँ भी तुलसी-कृत रामायण के बीसों संस्करण रहते हुए भी काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा ने रामचरित-मानस के उस संस्करण को छपाने का पूर्ण उद्योग किया, जिसमें स्वयं तुलसीदास के द्वारा व्यवहृत शब्दों और उनके रूपों के ही रहने की अधिक-से-अधिक संभावना थी। कहाँ तो कवि के द्वारा व्यवहृत शब्दों के यथातथ रूप की रक्षा का यह प्रयत्न ! और कहाँ छंद तक बदल डालने का साहस ! और, वह भी उस टीका में, जो विद्यार्थियों के लिये लिखी गई बतलाई जाती है ! हम विहारीलाल के छंदों में इस प्रकार के मन-माने परिवर्तन का घोर विरोध करते हैं। ऐसे छंद-परिवर्तन का एक उदाहरण लीजिए—

मैं समुझ्यो निरधार, यह जग काँचो काँच सो ;
एकै रूप अपार, प्रतिबिंबित लखियत जहाँ।

उपर्युक्त छंद इसी सोरठे के रूप में सतसई की प्रायः सभी प्रतियों में पाया जाता है। पर विहारी-बोधिनी में वह इस प्रकार से दोहा बनाया गया है—

यह जग काँचो काँच सो, मैं समुझ्यो निरधार ;
प्रतिबिंबित लखियै जहाँ, एकै रूप अपार।

सोरठे के रूप में छंद का क्रम भी ठीक है, और वह परिवर्तित दोहे की अपेक्षा पढ़ने में भी अच्छा लगता है। फिर भी, न-जानें टीकाकार ने ऐसा फेरफार क्यों कर डाला ? ऐसे ही और भी सोरठे दोहे बनाए गए हैं।

अंतिम ४२ छंद

७१० दोहों पर टीका करके विहारी-बोधिनी की 'इति' हुई है। इसके बाद ४२ दोहे और दिए गए हैं, जिन पर न तो टीका है, और न उनके विषय में कहीं पर यही लिखा गया कि उन सबको पुस्तकांत में क्यों स्थान मिला है। क्या टीकाकार को संदेह है कि वे विहारी-कृत नहीं हैं ? तो फिर उसने साफ़-साफ़ ऐसा लिखा क्यों नहीं ? इन दोहों में कई दोहे तो ऐसे हैं, जो सतसई की प्रायः सभी सुलभ प्रतियों में पाए जाते हैं। क्या हम किसी प्रकार यह जान सकते हैं कि मूल-पुस्तक से, किन कारणों से, अंतिम ४२ दोहों का बहिष्कार किया गया है ?

वक्तव्य

बिहारी-बोधिनी के लेखक ने प्रारंभ में प्रायः तीन पृष्ठों का एक छोटा-सा वक्तव्य लिखा है। इस वक्तव्य के पढ़ने से यह पता चलता है कि टीकाकार सतसई में शुद्ध बुंदेलखंडी शब्दों का व्यवहार किए जाने की बात मानता है। टीकाकार ने यह भी लिखा है कि शृंगार-रस के वर्णन में विहारी का नंबर पहला है। 'नवरत्न'-कारों ने कविवर देव को शृंगार के कवियों में सबसे आगे रक्खा है। विहारी-बोधिनी-टीका के रचयिता पूज्यपाद मिश्र-बंधुओं के इस कार्य को धींगाधींगी बतलाते हैं। इस वक्तव्य में नवरत्न-कारों पर एक आश्चर्य-जनक आक्षेप किया गया है। कहा गया है— "(मिश्र-बंधुओंने) अनर्गल ही लिख मारा कि विहारी ने देव के भावों को अपहरण किया है।" हमारी राय में यह आक्षेप ठीक नहीं। मालूम नहीं, टीकाकार को मिश्र-बंधुओं का ऐसा लेख उनकी किस पुस्तक में मिला है; पर हमारा अनुमान तो यह है कि हो-न-हो, 'नवरत्न' को पढ़कर ही बिहारी-बोधिनी के लेखक ने यह आक्षेप किया है। टीकाकार से हमारी प्रार्थना है कि वह एक बार 'नवरत्न' को फिर ध्यान-पूर्वक देख लें। पूज्यपाद मिश्र-बंधुओं ने यह कहीं पर नहीं लिखा कि विहारी ने देव के भाव लिए हैं। टीकाकार महोदय थोड़ा-सा भ्रम में पड़ गए हैं। नवरत्न के पृष्ठ २३९-४० में विहारी, देव तथा अन्य कवियों के भाव-सादृश्य के कुछ उदाहरण दिए हुए हैं। पहला उदाहरण विहारी का है, उसके बाद देव का। पहले उदाहरण के पूर्व, नवरत्न में जो गद्य-वाक्य लिखा है, वह यह है कि "एकाध स्थानों पर इन्होंने औरों के भी कुछ भाव लिए हैं।" टीकाकार महोदय ने इस वाक्य को पढ़कर नीचे विहारी और देव के भाव-सादृश्य के कुछ उदाहरण देखे, तो चट समझ बैठे कि लेखकों का आशय विहारी को चोर ठहराने का है। यदि आप इतनी जल्दी न करके उपर्युक्त गद्य-वाक्य के ठीक पहले का गद्य-वाक्य भी पढ़ लेते, तो कदाचित् नवरत्नकारों पर ऐसा आक्षेप न करते। वह दूसरा वाक्य यह है कि "इन्होंने बहुत-से ऐसे विचार और भाव लिखे हैं कि बड़े-बड़े कवियों ने भी इनके सामने उनके लिये हाथ फैलाए हैं।" कृपाकर इन दोनों वाक्यों को मिलाकर साथ पढ़िए, तो आप देख सकेंगे कि मिश्र-बंधुओं पर आपका आक्षेप कितना बेजा है। वे तो स्वयं कहते हैं कि विहारी के भाव बड़े-बड़े कवियों ने लिए हैं, तथा विहारी ने भी औरों के भाव लिए हैं। इन दोनों कथनों के समर्थन में उन्होंने उदाहरण दिए हैं। उनका पहला कथन यह है कि विहारी के भाव बड़े कवियों ने लिए हैं, इसलिये पहले उदाहरण भी वेही दिए गए हैं, जिनमें बड़े कवियों ने विहारी के भाव लिए हैं। देवजी ने विहारी के अनेक भाव अपनाए हैं। ऐसे ही दो-तीन उदाहरण दिए भी गए हैं। इसके बाद विहारी ने जो और कवियों के भाव लिए हैं, वे २४० पृष्ठ पर दिए गए हैं। हमको टीकाकार के विचित्र आक्षेप पर, जो सर्वथा निर्मूल है, बड़ा ही आश्चर्य है। हमें विश्वास है, वह उदारता और सज्जनता का ख़याल करके, भ्रमोच्छेद के बाद, अपने अनर्गल आक्षेप को वापस लेंगे।

टीकाकार की राय में विहारी और देव, इन दो कवियों में देवजी मध्यम हैं। आपकी इस सम्मति से सहमत होने में हम अपने को असमर्थ पाते हैं। आगे चलकर टीकाकार ने यह सूचना दी है कि उसने विहारी के अनेक दोहों के विलक्षण अर्थ किए हैं। पाठक, आगे हमने कुछ ऐसे विलक्षण अर्थवाले दोहों पर विचार किया है, और हमारी यह शुद्ध सम्मति है कि ऐसे विलक्षण अर्थों से न तो विहारी की प्रतिभा का गौरव है, और न टीकाकार की योग्यता का। टीकाकार का यह कथन भी हमें संगत नहीं प्रतीत होता कि उन्होंने विलक्षण अर्थ, मुख्य अलंकार का ध्यान रखकर, किए हैं। खेद के साथ कहना पड़ता है कि किसी-किसी दोहे में तो विद्यार्थियों का ध्यान जिस अलंकार की ओर दिलाना चाहिए, उसकी ओर या तो दिलाया ही नहीं गया, या दिलाया भी गया है, तो अमुख्य अलंकार मुख्य मान लिया गया है। इस कथन के समर्थन में दो उदाहरण यथेष्ट होंगे—

तन भूषन, अंजन दृगनि, पगन महावर रंग;
नहिं सोभा को साज ये, कहिबे ही को अंग।

यह नायक के प्रति सखी का वचन है। सखी कहती है—

"तन के भूषण, आँखों का काजल और पैरों का महावर, ये सब उसके लिये शोभा की सामग्री नहीं हैं। ये तो कहने- [illegible] समझे जाते हैं।"

टीकाकार के ऊपर दिए हुए अर्थ से स्पष्ट है कि सखी श्रृंगार के उपादानों की निष्प्रयोजनीयता के व्याज से नायिका के स्वाभाविक सौंदर्य का वर्णन करती है। नायिका को शरीर में आभूषणों की, नेत्रों में कज्जल की तथा पैरों में महावर की अपेक्षा नहीं है, इस कथन से ही नायिका के सौंदर्य की प्रशंसा हो जाती है। यह 'व्याज-स्तुति'-अलंकार का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस स्तुति से यह ध्वनि भी निकल सकती है कि भूषण, कज्जल और महावर नायिका की सहज सुंदरता में लुप्त हो जाते हैं। उस दशा में 'मीलित'-अलंकार का रूप सामने आता है। पर वह मुख्य नहीं। 'नहिं शोभा को साज यह,' इतने शब्द-समूह का एकमात्र अर्थ जब हम यही मानें कि श्रृंगार के उपादान स्वाभाविक सौंदर्य में लुप्त हो गए, तभी हम दोहे में 'मीलित' की स्थापना कर सकते हैं। पर उक्त शब्द-समूह 'मीलित' के भाव का पोषण, पूर्ण बल से, नहीं कर पाता। उसका अर्थ यह भी तो हो सकता है कि नायिका के शरीर में श्रृंगार के उपादान सौंदर्य-वर्द्धक न होकर भद्दे लगते हैं। ऐसे अर्थ के लगाने से दोहे में 'मीलित' की छाया भी नहीं रह जाती। हाँ, 'प्रतीक' की झलक अवश्य आ जाती है, क्योंकि श्रृंगार के उपादानों का स्पष्ट निरादर है। 'स्वभावोक्ति' का आरोप भी दोहे में बुरा न होगा। पर 'व्याज-स्तुति' सबसे प्रधान दिखलाई पड़ती है। 'मीलित' की अमुख्यता हर तरह से स्पष्ट है। फिर भी, बिहारी-बोधिनी में टीकाकार ने इसी को मुख्य मानकर लिखा है। विवेकी पाठक स्वयं देखें कि उपर्युक्त दोहे में कौन अलंकार मुख्य है। दूसरा उदाहरण लीजिए—

नासा मोरि, नचाय दृग, करी कका की सौंह ;
काँटे-सी कसकति हिए, वहै कटीली भौंह ।

दोहे का अर्थ बिलकुल स्पष्ट है। बिहारी-बोधिनी-टीका के लेखक ने इस छंद में 'पूर्णोपमा'-अलंकार माना है। यह बिलकुल ठीक है। पर देखना यह है कि संपूर्ण दोहे में किस अलंकार की प्रधानता है। क्या दोहे के प्रथम और द्वितीय चरण में 'पूर्णोपमा' की पुष्ट करनेवाली सामग्री है ? उत्तर मिलता है, नहीं। तो फिर विद्यार्थी को वह अलंकार भी क्यों न बता दिया जाय, जो संपूर्ण दोहे में व्याप्त हो रहा है। क्या 'स्वभावोक्ति' की अनुपम छटा दोहे में 'पूर्णोपमा' से बढ़कर है ? क्या समग्र दोहे में व्यापकता के आधिक्य के कारण 'स्वभावोक्ति' 'पूर्णोपमा' से बढ़ नहीं जाती ? पाठक स्वयं सब बातों को विचार लें।

प्रस्तावना

वक्तव्य के बाद श्रीयुत रामदासजी गौड़ ने प्रायः ८ पृष्ठ की एक छोटी-सी प्रस्तावना लिखी है। इस प्रस्तावना को पढ़कर हमें गौड़जी का यह मत पहले-पहल मालूम हुआ कि सुकवि लाला भिखारीदास कायस्थ ('दास' कवि) को आप देव कवि से कई बातों में बढ़कर मानते हैं। जो हिंदी-कविता-मर्मज्ञ देव कवि को बिहारी कवि से काव्य-प्रतिभा में बढ़कर मानते हैं, उनके विषय में गौड़जी की यह सम्मति विचारणीय है—

"देव आदि पीछे के कवियों को बिहारी से भी ऊँचे बिठाने की चेष्टा करना बिहारी का तो थोड़ा, किंतु काव्य-मर्मज्ञता का अधिक अपमान करना है।"

काव्य-मर्मज्ञता-परीक्षक इस नूतन वैज्ञानिक यंत्र के निर्माण के लिये गौड़जी को शत-शत साधुवाद। बिहारीलाल, तुम बड़े भाग्यशाली हो। क्या मजाल, कोई कह दे कि अमुक कवि तुम्हारे समकक्ष या तुमसे बढ़कर है ! उसने ऐसा कहा नहीं कि गौड़जी ने उसे यह प्रमाण-पत्र दिया नहीं कि यह व्यक्ति कविता का मर्मज्ञ नहीं है। फिर भला ऐसे अज्ञ की बात हिंदी-संसार में कौन सुनेगा ? फिर भी हम देवजी को निश्चय-पूर्वक काव्य-प्रतिभा में बिहारीलालजी से बढ़कर मानते हैं, और श्रीयुत गौड़जी के द्वारा दिए गए अज्ञता-सूचक प्रमाण-पत्र को सहर्ष स्वीकार करते हैं। सनदयाफ़्ता 'अज्ञ' की बात ही क्या, पर श्रीगौड़जी से हमारी यह प्रार्थना है कि अब से वह किसी विद्या-केंद्र में 'गौड़ीय विशिष्ट-काव्य-मर्मज्ञता-लेक्चर्स' का प्रबंध करा दें।

भूमिका का अभाव

वक्तव्य और प्रस्तावना के बाद भी, बिहारी-बोधिनी में एक अच्छी समालोचनात्मक भूमिका की कमी बेतरह खटकती है। अँगरेज़ी ढंग से कॉलेज में शिक्षा पानेवाले छात्र यदि पुस्तक के प्रारंभ में एक क्रिटिकल इंट्रोडक्शन (Critical Introduction) न पाकर हताश हों, तो कोई आश्चर्य नहीं। विद्यार्थियों में समालोचना-शक्ति जाग्रत् करानेवाली सामग्री का या तो पुस्तक में अभाव है, या वह इस ढंग से रक्खी

गई है कि समालोचना-मार्ग में क़दम बढ़ाने के लिये विद्यार्थियों के हृदयों में यथेष्ट उमंग नहीं उत्पन्न करती ।

दो टीकाकारों में मत-भेद

विहारीलाल की कविता में कुछ समालोचकों को अनेक निरंकुशताएँ देख पड़ी हैं । उनका उल्लेख उक्त समालोचकों ने, अपने निबंधों में, किया है । हाल में पं० पद्मसिंह शर्मा का संजीवन-भाष्य प्रकाशित हुआ है । इस पुस्तक में शर्माजी ने ऊपर कही गई अधिकांश निरंकुशताओं को दोष नहीं माना है—उनकी दोष-शून्यता प्रमाणित करने की भरपूर चेष्टा की है । इस चेष्टा में वह कहाँ तक कृतकार्य हुए हैं, इस पर हम यहाँ विचार करने नहीं जा रहे हैं । पर बिहारी-बोधिनी के पाठ से हमें यह विदित हुआ है कि इन निरंकुशताओं के संबंध में उनमें और लाला भगवानदीनजी में स्पष्ट मत-भेद है । कुछ उदाहरण लीजिए—

(१) अपने कई दोहों में विहारीलाल ने स्त्री-लिंग शब्दों का रूपक पुल्लिंग शब्दों के साथ किया है । जैसे 'बिरह-बिथा जल' या 'अवधि दुसासन-चीर' आदि । कई समालोचकों ने विहारीलाल के ऐसे रूपकों में इस लिंग-संबंधी भेद को दोष माना है । परंतु पं० पद्मसिंह शर्मा ने ऐसे रूपकों के औचित्य को स्वीकार करके उनके समर्थन में कई प्रमाण उद्धृत किए हैं । लाला भगवानदीनजी भी ऐसे रूपकों को ठीक नहीं समझते, और उनका दोष-युक्त होना स्वीकार करते हैं ।

(२) पावस में चक्रवाक की स्थिति को अस्वीकार करके, एक समालोचक की राय में, वर्षा में उक्त पक्षी का विहारी-कृत वर्णन ठीक नहीं है । पर शर्माजी कहते हैं—नहीं, ऐसा वर्णन करना दोष नहीं है । कारण, संस्कृत के कवियों ने भी ऐसा किया है । बिहारी-बोधिनी-टीका के रचयिता की राय में ऐसा वर्णन 'विहारी की ग़लती' है ।

(३) ओंठ उचै हाँसी-भरी, दृग भौंहन की चाल ;
मो मन कहा न पी लियो, पियत तमाखू लाल ।

एक समालोचक ने इस दोहे के विहारी-कृत होने में संदेह किया है । पर संजीवन-भाष्यकार ने इसे विहारी-कृत ही माना है । बिहारी-बोधिनी के लेखक की राय में इस दोहे में वह रस नहीं पाया जाता, जो विहारी के और दोहों में मौजूद है । इसलिये वह इसे विहारी-कृत नहीं मानते ।

(४) लालाजी "शृंगार-रस में 'मरण' का वर्णन रस-विरुद्ध है," ऐसा बतलाते हैं । पर शर्माजी कहते हैं—"बहुतेरे कविगण मूर्च्छा ही का नहीं, स्पष्ट मरण का भी वर्णन कर देते हैं ।"

(५) बिहारी-बोधिनी के रचयिता की राय में 'बिहारी-सतसई' में निश्चय-पूर्वक बुंदेलखंडी शब्द मौजूद हैं । पर संजीवन-भाष्यकार को इस बात के मानने में आनाकानी है । यही क्यों, श्रीरामदास गौड़ की राय में तो "विहारी की भाषा आदर्श व्रज-भाषा है ।"

पक्षपात

ऊपर दिखलाए गए दो-चार मत-भेदों के होते हुए भी, हमारी राय में, शर्माजी और लालाजी, दोनों को ही विहारीलाल की कविता के प्रति समान-भाव से पक्षपात है । इसीलिये बिहारी-बोधिनी में कई जगह हम विहारी-लाल की निरंकुशता के समर्थन का स्पष्ट प्रयत्न देखते हैं । उदाहरण के तौर पर नीचे का दोहा पेश है—

तिय-मुख लखि हीरा-जरी बेंदी बढ़ै बिनोद ;
सुत-सनेह मानों लियो बिधु पूरन बुध गोद ।

(१) नायिका के मुख-चंद्र में हीरा-जड़ी बेंदी देख-कर विहारीलाल को यह उक्ति सूझती है कि मानों पूर्णिमा के चंद्र ने प्रेम-वश अपने पुत्र बुध को गोदी में बिठा रक्खा है । इस उत्प्रेक्षा से यह स्पष्ट है कि विहारीलाल ने 'बुध' का वही रंग स्वीकार किया है, जो हीरे का है । पर हीरे का रंग श्वेत होता है, और बुध का हरा । सो दोनों के रंगों का साम्य ठीक नहीं । इसलिये कुछ विद्वान् इसे कवि की निरंकुशता बतलाते हैं । पर लालाजी इस दोष को दोष मानने के लिये तैयार नहीं । उनका कहना है कि हीरे की उपमा के कारण, श्वेत चंद्रमा का पुत्र होने के कारण, और ज्योतिष के इस मत के कारण कि बुध जिस ग्रह के साथ होता है, उसी का रूप, गुण और स्वभाव ग्रहण कर लेता है, बुध का सफ़ेद कहा जाना कोई दोष नहीं । आपने इस संबंध में केशवदास का प्रमाण भी दिया है । चाहे यह कवि का दोष न भी हो, पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि बिहारी-बोधिनी के इस प्रकार के समर्थन से हमें संतोष नहीं हुआ । ऐसे समर्थन की असमर्थता पर हम यहाँ विचार करने नहीं जा रहे हैं ; हमें दिखलाना केवल यही है कि टीकाकार इस प्रकार से दोष-परिमार्जन का उद्योग

करके अपनी पक्षपात-प्रवृत्ति को प्रकट करते हैं । बुध का रंग इस प्रकार का हरा माना गया है—

> प्रियंगुकलिकाश्यामं रूपेणाप्रतिमं बुधम् ।

> (२) करे चाह सों चुटुकि कै खरे उड़ौहैं मैन ;
> लाज-नवाए तरफरत, करत खुँदी-सी नैन ।

उपर्युक्त दोहे में नेत्र-तुरंगों का रूपक बाँधा गया है । मैन (मदन) ही घोड़े को निकालनेवाला है । चाह चुटकी है । लज्जा लगाम है । जिस प्रकार अच्छे उस्ताद का उड़ान सिखाया हुआ घोड़ा लगाम के द्वारा नियंत्रित किए जाने पर तड़पड़ा-तड़पड़ाकर खुँदी करने लगता है, उसी प्रकार कामदेव की अनुवर्तिनी चाह से परिपूर्ण नायिका के नेत्र, लज्जा से विवश होकर, तड़पड़ा रहे हैं । वे नायक को स्वतंत्रता-पूर्वक देख नहीं पाते । पाठक देख सकते हैं कि उपर्युक्त रूपक की पूर्णता के लिये दोहे में 'नैन-तुरंग', 'लाज-लगाम' और 'मैन-अश्व-संचालक' का साथ-ही-साथ स्पष्ट वर्णन कितना आवश्यक है । क्योंकि 'चुटुकि', 'उड़ौहैं' और 'खुँदी' शब्द 'मैन', 'लाज' और 'नैन' के साथ अकेले व्यवहृत नहीं हो सकते । फिर भी, बिहारीलाल उनका साथ-साथ व्यवहार करने में असमर्थ ही रहे हैं । उनकी यह असमर्थता दोहे को स-दोष प्रमाणित करती है । कवि की निरंकुशता साफ़ झलकती है । पर टीकाकार इस बड़े दोष का परिमार्जन लक्षणा की शक्ति के बल पर करना चाहते हैं । वह बिहारीलाल के विषय में कहते हैं—"ऐसी लक्षणा-शक्ति से काम लेना भी बिहारी ही का काम है ।" इस संबंध में हमें केवल इतना ही कहना है कि "ऐसी पक्षपात-प्रवृत्ति का परिचय देना भी बिहारी-बोधिनी के रचयिता का ही काम है ।" अधिक क्या लिखें ? आश्चर्य तो यह है कि निम्न-लिखित दोहे के संबंध में टीकाकार यह कैसे लिख सके कि "यहाँ दृष्टि को यात्री कहना चाहिए था, सो नहीं कहा ।"

> कुच-गिरि चढ़ि, अति थकित ह्वै, चली डीठि मुख चाड़ ;
> फिरि न टरी, परियै रहै, परी चिबुक की गाड़ ।

बिहारीलाल के अनेक दोहों में अव्याप्ति, अतिव्याप्ति, यति-भंग और दूरान्वयी दोष मौजूद हैं । विद्यार्थियों के सुबीते के लिये बिहारी-बोधिनी में इन दोषों का भी उल्लेख कर देना उचित था । पर खेद के साथ कहना पड़ता है कि टीकाकार ने बिहारी के दोषों से विद्यार्थियों को परिचित कराना उचित नहीं समझा । हमारे इस लेख का उद्देश्य बिहारीलाल के दोष दिखलाना नहीं है, इसलिये हम सतसई के उन अनेक स-दोष दोहों को उद्धृत करने में असमर्थ हैं, जिनमें टीकाकार सहज ही दोषों की ओर अंगुलि-निर्देश कर सकते थे । यहाँ हमें केवल इतना ही कहना है कि पक्षपात के वशीभूत टीकाकार ने दोष छिपाने का महा उद्योग किया है । पाठकों के संतोष के लिये इस प्रकार का एक उदाहरण भी दिया जाता है—

> कियौ जु चिबुक उठायकै, कंपित कर भरतार ,
> टेढ़ीयै-टेढ़ी फिरति, टेढ़ौ तिलक लिलार ।

उपर्युक्त दोहे में दूरान्वयी-दोष पूरे तौर से मौजूद है । फिर भी, बिहारी-बोधिनी के टीकाकार यह बात विद्यार्थियों की जानकारी में नहीं आने देना चाहते । दोहे का अन्वय इस प्रकार से करना होगा—"भरतार जु चिबुक उठाय कै कंपित कर लिलार तिलक कियौ, टेढ़ीयै-टेढ़ी फिरति ।"

अनुचित पाठांतर

बिहारी-बोधिनी-टीका के लेखक ने दोहों के पाठ में भी कहीं कहीं फेरफार कर दिया है । पर ऐसा क्यों किया, यह समझाने का उद्योग नहीं किया गया । आश्चर्य है कि जो टीकाकार स्वयं समालोचक हैं, वह इस ज़माने में कैसे विश्वास करते हैं कि लोग उनके कारण-कथन-हीन मत को, जब कि वह प्रचलित मत से भिन्न भी है, क्योंकर आँख मूँदकर मान लेंगे ! बिहारीलाल का निम्न-लिखित दोहा बहुत प्रसिद्ध है—

> जो वाके तन की दसा, देख्यौ चाहत आप,
> तौ बलि नेकु बिलोकिए, चलि औचक, चुपचाप ।

इसमें प्रायः सर्वत्र ही 'औचक' पाठ पाया जाता है । व्रज-भाषा-काव्य में इस शब्द का बे-रोकटोक प्रयोग होता है । हिंदी के प्राचीन कवियों में प्रायः सभी ने इसका व्यवहार किया है । दोहे में 'औचक' शब्द बिलकुल चुस्त भी है । फिर भी, बिहारी-बोधिनी के लेखक ने इस शब्द को हटाकर इसका स्थान 'अचकाँ'-जैसे अत्यंत अप्रचलित शब्द को दिया है । यह क्यों ? कारण कुछ भी नहीं बतलाया गया । तो क्या इसे मन-मानी समझें ? ... अच्छा होता, यदि विद्यार्थियों के लिये लिखी

गई टीका में टीकाकार ऐसी गड़बड़ न करते। काशी की नागरी-प्रचारिणी सभा के द्वारा प्रकाशित 'शब्द-सागर' के पृष्ठ ४०३ पर बिहारी का यही दोहा उद्धृत है। उसमें भी 'औंचक' ही पाठ है। इस कोश के संपादकों में बिहारी-बोधिनी-टीका के रचयिता भी थे। तो क्या उस समय टीकाकार 'औंचक' पाठ को पसंद करते थे, पर अब उन्हें 'अचकाँ' में आनंद मिलने लगा? हमारी राय में 'अचकाँ' पाठ, किसी भी दृष्टि से, 'औंचक' पाठ से बढ़कर नहीं है। इसी प्रकार 'गुल्लाला' के स्थान पर 'गुल-अनार' लिखा गया है। हम टीकाकार के इस काम को पसंद नहीं करते।

(आगामी अंक में समाप्य)

कृष्णविहारी मिश्र बी० ए० एल्-एल्० बी०

सूर्य और चंद्र

(गद्य-काव्य)

ष्म-काल था। अरुण आकाश में अंशुमाली उदित हुए। उनके आते ही पृथ्वी-तल पर छाए हुए अंधकार का अंत उसी तरह हो गया, जिस तरह ज्ञान-सूर्य के प्रखर प्रकाश से हृदय-तम का उच्छेद हो जाता है। संसार ने हृदय खोलकर इस तप्त स्वर्ण के गोले का स्वागत किया। सच है, उगते सूर्य के पैर सभी पड़ते हैं; जिसका उत्थान होता है, उसे सभी शीश झुकाते हैं। जो अपना उत्थान नहीं करते, जो अपने उत्थान के लिये प्रयत्न नहीं करते, वे संसार में उसी दृष्टि से देखे जाते हैं, जैसे अस्त होते हुए तारागण। धीरे-धीरे सूर्य भगवान् ने और भी उन्नति की। वह बढ़ते-बढ़ते मध्य-आकाश में आ पहुँचे। जैसे एक परम वैभव-शाली और उन्नति-शिखरारूढ़ नरेश अपना आपा भूलकर, ऐश्वर्य-मद से मत्त होकर, सारे संसार को भूल जाता है, न्याया-न्याय को ताक पर रखकर अत्याचार करने में प्रवृत्त हो जाता है, वैसे ही वही अवस्था अब सूर्य-देव की भी हो गई है।

अब वह सूर्य तप्त स्वर्ण का गोला नहीं रहे। अब उन्होंने भयंकर अग्नि का रूप धारण कर लिया है। उनकी किरणें लपटों के रूप में बदल गईं; वे काल-स्वरूप लपटें सारे संसार को झुलसाने लगीं। पृथ्वी हाहाकार करती हुई धक-धक जलने लगी। अपनी माता पृथ्वी की यह वेदना देखकर पुत्र पाषाण का हृदय दुःख से फटने लगा। माता मेदिनी की वेदना से व्याकुल होकर वंश-वृक्ष लिपट-लिपटकर करुण क्रंदन करने लगे। अहा! यह मातृ-भक्ति का कैसा अपूर्व आदर्श है! जिस माता ने अनेक कष्ट सहकर अपनी संतान का पालन-पोषण किया है, उस माता की ममता को समझना, उस माता की ममता का—उस माता के स्नेह का—आदर करना, और उस माता के दुःख में शुद्ध हृदय से दो आँसुओं के बूँद टपकाना, केवल यही मातृ-भक्ति है। माता मेदिनी की विपुल ज्वाला से जल भी जल उठा; वह चूल्हे पर चढ़े अदहन की तरह खौलने लगा। निर्दोष मीन उछल-उछलकर अपनी व्याकुलता, अपनी पीड़ा, प्रकट करने लगे। परंतु बगलों की बन आई। वे उनको सुख से खाने लगे। सच है, दुर्जन पर-दुःख से सुख ही पाते हैं। सूर्य-ताप से लहलही लता, सुंदर सुकोमल सुमन और कठोर वृक्ष, सभी कुम्हलाने लगे। मनुष्य-शरीर इस वेदना को सह ही न सका। वह हज़ार-हज़ार अश्रुओं से रो उठा। पशु-पक्षियों का तो कहना ही क्या, उनकी वह दयनीय दशा कौन वर्णन कर सकता है? इस समय उन पर जो बीत रही है, उसका वर्णन करना, इस जड़ लेखनी की शक्ति से परे है। संसार की यह दशा देखकर हिम-गिरि रो दिया। सच है, सज्जन कभी दूसरे का दुःख नहीं देख सकते। उनका

मोम के समान हृदय दया की आँच से शीघ्र ही पिघल उठता है। वे पराया दुःख दूर करने के लिये अपनी शक्ति-भर प्रयत्न करते हैं। हिम-गिरि ने उलहिना देते हुए कहा—"महाराज, भगवान् ने आपको संसार को सुख पहुँचाने के लिये भेजा था, जलाने के लिये नहीं। बड़े ही दुःख की बात है कि आपने अपने प्रताप के घमंड में आकर, अपने गर्व में उन्मत्त होकर, अपने प्यारे पिता की निरीह संतानों को भून डाला! क्या यही प्रतापी का कर्तव्य होना चाहिए? क्या यही बली का कर्तव्य होना चाहिए? क्यों न हो, यदि संतप्तों को त्रास न पहुँचाया, यदि भोले-भाले पर-वश निरीहों को न सताया, तो बली का बल ही क्या?" सूर्य के सदृश समर्थ क्षमताशाली के दरबार में हिम-गिरि की प्रार्थना पर कोई क्यों ध्यान देने लगा? अत्याचार पहले ही की तरह जारी रहा।

परंतु कैसे खेद की बात है कि ऐसे दुःख-मय समय में सरोवर-वासी, ध्यान-मग्न योगी की तरह एक पैर से खड़ा कमल, अब भी सूर्य की हाँ में हाँ मिलाता हुआ, उनके अत्याचारों का समर्थन कर रहा था। वह अब भी खिल रहा था। जब उसके साथी सभी पुष्प संसार को अग्निमय देखकर दुःख से कुम्हला रहे थे, तब वह विभीषण खिला जा रहा था, और उसके मुसाहब मधुकर गुंजा-रव के बहाने उसे इस कार्य पर शाबासी दे रहे थे। सच है, देश-द्रोही, जाति-द्रोही लोग अपने भाइयों के दुःख से, अपनी जाति के पतन से, प्रसन्न ही होते हैं। विधाता, तुमने जगत् में ऐसे जीवों की सृष्टि ही क्यों की? जिस कमल को तुमने इतनी सुंदरता, इतनी कमनीयता, इतनी मनोहर महक दी है, उसे हृदय क्यों ऐसा कठोर दिया? उसे अपनी जाति का अपवाद क्यों बनाया?

हे भ्रमराधार कमल, सच जानो, तुम्हारा यह कलंक कभी मार्जनीय और क्षंतव्य नहीं।

पर समय सबका होता है। देखते-ही-देखते संसार में संध्या-सुंदरी ने पदार्पण किया। उसकी शोभा बड़ी ही सुहावनी मालूम होने लगी। उसकी छवि की छटा को जो कोई निहारता, वही मोहित होकर हृदय को हारता। स्वच्छ नील आकाश ही उसका साँवला-सलोना मुख है। आकाश में जो रक्त-वर्ण आभा छाई हुई थी, वही उसके कमनीय कपोलों की लालिमा थी। उस अरुण आकाश के बीच में जो थोड़ा-सा काला धब्बा था, वही संध्या-सुंदरी के कपोल का काला तिल जान पड़ता था। उस तिल की बहार का बखान कौन कवि कर सकता है? जिसका मन-योगी इस तिल की कंदरा में जा पहुँचता है, वही उसके मज़े को खूब जान सकता है। आकाश में जो अरुणता-मिश्रित काले-काले अभ्र-खंड इधर-से-उधर विचरण करते दिखाई दे रहे हैं, वे ही संध्या-सुंदरी के लहराते हुए किंचित् कुंचित काले-काले केश हैं। आहा! सरोवरों में खिले हुए ये अरुण-वर्ण कमल ही उसके लाल-लाल हाथ-पैर हैं। और, इन नील-वर्ण कमलों की सुंदरता को कौन कह सकता है? ये इंदीवर ही संध्या-सुंदरी के कटीले मृग के-से नेत्र हैं, और उन पर छाई हुई मधुप-माला ही काजल की करारी कोर है। पक्षियों का चहचहाना ही उसकी सुरीली बोली और हृदय हर लेनेवाली यह सायाह्न-समीर ही उसकी मधुर मुसकान है। प्रकृति ने जो काली चादर-सी ओढ़ रक्खी है, वही इस सुंदरी की सुंदर साड़ी है। ऐसी संध्या-देवी को देखते ही सूर्य उस पर मुग्ध हो गए, सुध-बुध भूलकर उन्हों-ने उसे अपना हृदय दे दिया। वह निर्निमेष नेत्रों से उसकी सुंदरता निरखने लगे, निस्संकोच-भाव से उस

सौंदर्य-सरिता में बहने लगे। उधर संध्या-सुंदरी का भी यही हाल हुआ। अपने सामने ऐसे प्रतापी, तेजस्वी और सुंदर सूर्य को देखकर वह भी अपना मन न सँभाल सकी। उसने सूर्य पर अपना मन न्योछावर कर दिया। दोनों के हृदय में प्रेम का कहिए या विषय का, ऐसा स्रोत बहा कि देखते-ही-देखते संध्या और सूर्य, दोनों एक हो गए। सूर्य ने भी सोचा दिन-भर के थके-माँदे हैं, ऐसी सुंदरी की गोद में क्यों न विश्राम करें, क्यों न सुख लूटें?

सूर्य पहले ही अपना कर्तव्य भूल चुके थे, और इसीलिये उनकी शक्ति का ह्रास उसी तरह हो रहा था जिस तरह अत्याचारी राज्य आप ही निर्बल होते जाते हैं। अब संध्या-सुंदरी को पाकर, उसके सौंदर्य-रस को पानकर, उसकी विलासिता में फँसकर, वे बिलकुल ही निर्बल हो गए। देखते-ही-देखते वे श्री-हीन, सत्ता-हीन और तेजोहीन हो गए। उनकी दशा वैसी ही हो गई, जैसी कि एक सुंदर युवक की वार-नारी के प्रेम में पड़कर हो जाती है। जिस प्रकार अत्याचारी नरेश निर्बल होने पर शीघ्र ही पतन को प्राप्त हो जाते हैं, उसी प्रकार सारे संसार के देखते-ही-देखते सूर्य भी पतन को प्राप्त हो गया। साथ ही नवोदिता संध्या-सुंदरी का भी पतन हो गया।

संसार में जो लोग केवल विषय-सुख के लिये कलुषित हृदय से नारी-सौंदर्य का आदर करते हैं, जो नारी-सौंदर्य को केवल विलासिता की सामग्री समझते हैं, और जो इस तरह ईश्वर की इस पवित्र विभूति का अनादर करते हैं, अंत में उनकी यही दशा होती है। वे आप तो पतन को प्राप्त होते ही हैं, अन्य अनेकों के भी पतन का कारण बन जाते हैं। जो सूर्य इतना प्रतापी था कि जिसके प्रताप के कारण सारा संसार काँपता था, [illegible] कारण अंधकार ऐसी महा-शक्ति भी नाश को प्राप्त हो गई थी, वही सूर्य संध्या की सौंदर्याग्नि में भस्म हो गया। जो रावण इतना प्रतापी था, जिसके वीर-नाद से एक बार दसों दिशाएँ कंपायमान हो उठी थीं, जिसके भय से देवता दिन को अन्न और रात्रि को निद्रा त्याग चुके थे, जिसके भय से देव-राज इंद्र भी पीपल के पत्ते की नाईं थर-थर काँपते थे, जो रावण अपनी विद्वत्ता और सच्चे ब्राह्मणत्व के कारण मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के रामेश्वर-मंदिर का संस्थापक हुआ था, वही रावण सीता की सौंदर्याग्नि में भस्म हो गया। यदि वह इस प्रचंड अग्नि में भस्म न हो गया होता, तो न-जाने संसार का कैसा अपूर्व पदार्थ बनता! संभाजी-से शूर नेपोलियन-से महावीर और मुग़लों-से पराक्रमी इसी सौंदर्याग्नि में नष्ट हो गए। अहा! सूर्य और संध्या, दोनों संसार को इस विषय में कैसा उत्कट उपदेश देते हैं! परंतु हाय, कोई भी उस उपदेश को ग्रहण नहीं करता; प्रकृति के इस उपदेश पर चलने के लिये कोई भी राज़ी नहीं होता। विलियम शेक्सपियर ने ही प्रकृति के उस मर्म को भली भाँति समझा था। तभी तो वह एक स्थल पर कहता है—

"Books in the books tongues in the trees."

जिस प्रकार मनुष्यों को अपने अंतिम काल में अपने पूर्व-कर्मों की याद आ जाती और वे अपने किए हुए पापों की वेदना से व्याकुल हो जाते हैं, वही अवस्था अस्ताचल-गामी सूर्य की भी हुई। इस समय उनके सामने से गर्व का, बल का और विलासिता का परदा हट गया। उन्हें अपने कर्तव्य का खयाल हो आया। सचमुच ही उन्हें अपने अत्याचार पर पश्चात्ताप हुआ, और उस पश्चात्ताप की वेदना [illegible] मलिन हो गया। वह सोचने लगे कि

देखो, जब मैं उदय हुआ था, तब संसार ने बड़ी-बड़ी आशाओं से भरा हुआ हृदय लेकर मेरा कैसा प्रेम-पूर्ण स्वागत किया था! वही संसार अब अपनी आशाओं का अंत देखकर, मेरे अत्याचारों से अकुला-कर, मेरी ओर देखता तक नहीं। अब कोई मेरा स्वागत नहीं करता। ठीक ही तो है, मैंने अपने कर्तव्य-पालन से मुँह छिपाया, इसलिये मेरा पतन होना ही चाहिए। अकर्मण्य का—कर्तव्य से विमुख का—कोई क्यों स्वागत करेगा? ऐसे धिक्कृत जीवन से तो मृत्यु ही भली है! ऐसा विचार करते-करते लज्जा से अंशुमाली ने अस्ताचल की ओट में अपना मुँह छिपा लिया।

परंतु सूर्य महाराज चलते-चलते अपने पाप का प्रायश्चित्त करना नहीं भूले। उन्होंने चंद्रमा को बुला-कर कहा—"प्रिय भ्रातः! तुम मेरे अनुज हो। देखो, मेरी आज्ञा मानो। मेरे मद से—मेरे बल से—मेरे अत्याचार से—सारा संसार त्रस्त हो उठा है; प्रकृति दुःख से विकल होकर आठ-आठ आँसू रो रही है। इस अत्याचार का जो फल मुझे हाथों-हाथ मिला है, वह भी तुम देख रहे हो। इसलिये जाओ, तपी हुई मेदिनी को शीतल करो। ताप से संतप्त जीवधारियों को शांति पहुँचाओ। तरु-लता मेरी आग से झुलस गई हैं; अपनी अमृत-वर्षा से उन्हें नव जीवन का दान करो। यह संसार मैं तुम्हें सौंपता हूँ; इसकी रक्षा भली भाँति करना। देखो, मेरे समान तुम भी गर्वो-न्मत्त न हो जाना। स्त्रियों के सौंदर्य से बचना। स्त्री नहीं, स्त्री का सौंदर्य आसक्त जनों के लिये धधकता हुआ दावानल है। मैं तुममें सज्जनों के सारे लक्षण देखता हूँ। सज्जनों का कर्तव्य परोपकार करना ही है। अतः जाओ, अब देर न करो।

आकाश में चंद्र-देव उदित हुए, मानो हम लोगों को भ्रातृ-भक्ति का—भ्रातृ-प्रेम का—पाठ पढ़ाने आए। परंतु यह क्या! चंद्रदेव तुम मलिन-मुख क्यों हो? हाँ, जाना, तुम्हें अपने अग्रज के अप्रिय पतन का अनुताप हो रहा है। परंतु नहीं, यह तो संसार का नियम ही है कि दुःख के पीछे सुख और सुख के पीछे दुःख, या हर्ष के बाद शोक और शोक के बाद हर्ष हुआ करता है। देखो, संसार ललक-ललककर तुम्हारा स्वागत कर रहा है। पक्षी-रूपी बंदीजन पहले से ही तुम्हारे आगमन की खुशी में अपने कल कंठ से तुम्हारी कीर्ति-गाथा गा रहे थे। अब मंदिरों में देखो, यह तुम्हारी ही पूजा हो रही है। घंटों का यह गगन-भेदी स्वर तुम्हारी कीर्ति का गान कर रहा है। मख़मली हरित दूर्वा तुम्हारे आगमन की खुशी में हँस रही है। अब देखो, यह कुमुदिनी कैसा हँस-हँसकर तुम्हारा स्वागत कर रही है। जल की तो बात ही न पूछिए; वह तो खुशी के मारे चंद्र-मय ही हो गया है। चकोर तुम्हारे स्वागत के लिये आग के अंगारे चुगने तक को तैयार है। अब तुम्हें स्वागत के लिये और क्या चाहिए?

इस अपूर्व और शानदार स्वागत से चंद्र-देव थोड़ी देर में अपना शोक भूल गए, और प्रसन्न वदन से कर्तव्य-पालन करने के लिये तैयार हो गए। देखते-ही-देखते सारा संसार उनके प्रकाश से प्रकाशित हो उठा। सूर्य-किरण में संतप्त करने की शक्ति थी, चंद्र-किरण में शीतलता प्रदान करने की शक्ति है। सूर्य-किरण में नाशक शक्ति थी, चंद्र-किरण में नव जीवन देने की शक्ति है। सूर्य-किरण में त्रस्त करने की शक्ति थी, चंद्र-किरण में शांति देने की शक्ति है। सूर्य-किरण में अशांत करने की शक्ति थी, चंद्र-किरण में शांत करने की शक्ति है।

जिस प्रकार न्यायी और प्रजा-वत्सल राजा के

राज्य में प्रजा शांति और सुख से समय बिताती है, उसी प्रकार चंद्र-देव की छत्रच्छाया में सारा संसार शांति-मय हो गया। अशांति के तांडव-नृत्य की विभीषिका उसी तरह नष्ट हो गई, जिस तरह अत्याचारी राज्य नष्ट हो जाता है। जिस प्रकार चंद्र-देव प्रकाश-मय हैं, उसी प्रकार उनके साथ से संसार भी प्रकाश-मय हो गया। जिस प्रकार चंद्र-देव प्रसन्न-मुख हैं, उसी प्रकार संसार भी उनके साथ से प्रसन्न-मुख हो गया। जिस प्रकार चंद्र-देव शीतल हैं, उसी प्रकार उनके साथ से संसार भी शीतल हो गया। सच है, सज्जन सभी को अपने चरित्र से—अपने आत्म-बल से—सज्जन बना लेते हैं।

खेद की बात है कि संसार ऐसे सज्जन और सदाचारी चंद्र को भी कलंकी कहे बिना नहीं मानता। यह स्वाभाविक ही है। ऐसे उपकारी, सुंदर और शीतल चंद्र को देखकर कुटिल लोगों का हृदय ईर्षा से जल उठता है, और वे अपनी ईर्षा की अग्नि को शांत करने के लिये ही उसे कलंकी कह बैठते हैं। सच बात तो यह है कि वियोगी, चंद्र को देखकर, अपने प्रेमी की स्मृति आने पर, वियोग-जन्य ज्वाला से जल उठता है। चंद्र-देव उसका दुःख दूर नहीं कर पाते, इसीलिये दुःख से उनका हृदय व्याकुल हो जाता है। उनके हृदय में दुःखाग्नि जल उठी है। यह कलंक-कालिमा उसी दुःख-ज्वाला को प्रकट करती है। ऐसे सहानुभूति के सागर चंद्र को कौन कलंकी कह सकता है?

सूर्य-भगवान् ने चंद्र को यहाँ भेजते समय स्त्री-सौंदर्य से बचने के लिये उपदेश दे दिया था। परंतु जिस सौंदर्य से विश्वामित्र-से ब्रह्मर्षि, शंकर-से शक्तिशाली और इंद्र-से पराक्रमी अपनी रक्षा नहीं कर सके, उससे चंद्र कैसे बच सकता था? जो चंद्रमा संसार को इतना प्रिय था, जिसने संयोगियों को असीम सुख दिया था, जो वियोगियों की वियोग-ज्वाला से स्वयं जल उठा था, जिसने वनस्पति-वर्ग को नव जीवन प्रदान किया था—हाय!—वही चंद्रमा निशा-सुंदरी की सौंदर्य-सरिता में बह गया। हाय सुंदरते! तुम ग़ज़ब की बला हो! तुम मानव-हृदय के लिये विषाक्त छुरिका के सदृश हो। विषाक्त छुरिका का घाव भले ही भर जाय, पर तुम्हारा घाव मरने पर ही भरता है। तुम्हारी सौंदर्य-किरणों ने न-जानें कितनों का हृदय चलनी बना डाला है, कितने महानुभावों को अधःपतित कर दिया है। तुम्हारे सौंदर्य-कटाक्ष ने न-जानें कितनों को नेत्र-हीन कर डाला है। तुम्हारी वारुणी पीकर न-जानें कितने मस्तानों ने संसार की ख़ाक छान डाली है। इंद्र के वज्र से चाहे बच भी जाय, पर तुम्हारे वज्र से बचना असंभव है। जिस पर तुम्हारा वज्र गिरा, उसके शरीर का, उसके रोम-रोम का, उसके मन का और उसके विवेक तक का नाश हो जाता है। हे सुंदरते! तुम देवी के रूप में पिशाची हो! संसार पर दया करो; यह तुम्हारी दया का पात्र है। यदि तुमने इस पर अपनी कृपा न की, तो रोग, शोक, विग्रह आदि से त्रस्त यह संसार अवश्य ही नष्ट हो जायगा।

ज़हूरबख़्श

तेरी छवि

हे मेरे प्रभु! व्याप्त हो रही है तेरी छवि त्रिभुवन में,
तेरी ही छवि का विकास है कवि की वाणी में, मन में।
बालक के कोमल अधरों पर मधुर हास्य की छाया में,
माता के निःस्वार्थ नेह में, प्रेममयी की माया में,
पतिव्रता नारी के बल में, वृद्धों के लोलुप मन में,
होनहार युवकों के निर्मल ब्रह्मचर्यमय यौवन में,
तृण की लघुता में, पर्वत की गर्व-भरी गौरवता में,
तेरी ही छवि का विकास है रजनी की नीरवता में।

ऊषा के चंचल समीर में, खेतों में, खलियानों में,
गाते हुए गीत सुख-दुख के सरल-स्वभाव किसानों में,
श्रमी, किंतु निर्धन, मजूर की अति छोटी अभिलाषा में,
पति की बाट जोहती बैठी ग़रीबिनी की आशा में,
भूख-प्यास से दलित दीन की मर्मभेदिनी आहों में,
दुखियों के निराश आँसू में, प्रेमी जन की राहों में,
मुग्ध मोर के सरस नृत्य में, कोकिल के पंचम स्वर में,
वन-पुष्पों के स्वाभिमान में, कलियों के सुंदर घर में,
निर्जनता की व्याकुलता में, संध्या के संकीर्तन में,
तेरी ही छवि का विकास है संतत पर-हित-चिंतन में।
'विल्सन' के चौदह नियमों में, 'क़ैसर' की दृढ़ आशा में,
'लेनिन' के उस साम्य-वाद में, 'रीडिंग्' की मृदु भाषा में,
'गाँधीजी' के आत्म-यज्ञ में, भारत की अभिलाषा में,
तेरी ही छवि का विकास है भिन्न-भिन्न परिभाषा में।
खोल चंद्र की खिड़की जब तू स्वर्ग-लोक से हँसता है,
पृथ्वी में नवीन जीवन का नया विकास विलसता है।
कल-कल करती हुई, कौमुदी घुलकर, बहती गंगा है;
यह स्वर्गीय दूध है, या जल हीरे के रँग रंगा है?
जी में आता है, किरनों में घुलकर केवल पल-भर में
बरस पड़ूँ मैं इस पृथ्वी पर विस्तृत शोभा-सागर में।

रामनरेश त्रिपाठी

हँसी

[१]

कहते हैं कोई, फूलों की इसको महानदी।
कहते हैं कोई, चाँदनी ज़ेवर अमर लदी॥
कहते हैं, लड़ी मोतियों की, हीरों की थाली।
मुझको तो, हँसी आपकी है जान की लाली॥

[२]

धरती को झूम-झूमके करती यही हरी।
आकरके कोई बैठ गई ओठ पर परी॥
अंदर की झलक चूम गई या डरी-डरी।
धंधा है यही एक, बचा या धनंतरी॥

[३]

आशा में, निराशा में, रहा रोज़ खेवता।
हँसने का नहीं ठीक कोई देवी-देवता॥

हँसती है हिमालय की उमा, चोटियों पली।
हँसती है खड़ी चंचला, लहरों पै चुलबुली॥

[४]

हँसता है अनायास महाहास रुद्र का।
हँसता है रंग-रंग का पानी समुद्र का॥
हँसते हैं सूर्य-देव, धधकते हैं, क्या हुआ?
हँसते हैं चंद्र-देवता, गलते हैं, क्या हुआ?

[५]

हँसते हैं सात-जीभ, जातवेद* देवता।
हँसते हैं धर्मराज, दिए नित्य नेवता॥
हँसते हैं सभी स्वप्न में नन्हे पड़े-पड़े।
हँसते न कोई जागते शायर बड़े-बड़े॥

[६]

हँसते हैं कोई क्रोध से बाँसों उछल-उछल।
हँसते हैं कोई नाज़ से, निर्दय, कुचल-कुचल॥
हँसते हैं कोई शौक़ से, ठनता है ठहाका।
हँसते हैं कोई शोक से, मचता है सनाका॥

[७]

बटते हैं ज़हर सैकड़ों यों ही हँसी-हँसी।
फटते हैं जिगर सैकड़ों यों ही हँसी-हँसी॥
हँसते जपी-तपी भी हैं, हँसते भी हैं सिड़ी।
हँसती है खीस काढ़, पड़ी घाट, खोपड़ी॥

[८]

हँस-हँसके कोई बैठते खो उम्र ही पूरी।
हँस-हँसके कोई मारते चुपचाप ही छूरी॥
हँसने का हुआ रोग जिन्हें, उनकी क्या दवा?
हँसती हमें-तुम्हें है हमारी उड़न-हवा॥

[९]

आता है बँधा कौन न, रोता हुआ यहाँ?
जाता है बँधा कौन न, रोता हुआ वहाँ?
दम-भर की कहो जिंदगी में रोने के नफ़े?
हँसने को दिए दाँत, न रोने को, दो दफ़े?

शिवाधार पांडेय, एम्० ए०

---

* सात-जीभ=सप्तजिह्व, जातवेदा, ये अग्नि के नाम हैं।—संपादक

गर्म देश और सभ्यता

[२]

गत निबंध में हम देख चुके हैं कि आदि-अवस्था में मनुष्य की सभ्यता पूर्णरूप से प्रकृति के अधीन रहती है; अर्थात् जल-वायु के अनुकूल हुए बिना मनुष्य सभ्य नहीं हो सकता। गत निबंध में हम बकले के तर्कों का खंडन और गर्म देशों की प्राचीन सभ्यताओं का कुछ वर्णन भी कर चुके हैं। यह भी सिद्ध कर चुके हैं कि सारे संसार में गर्म देशों ने ही सभ्यता को फैलाया था, और योरप अपनी सभ्यता के लिये वास्तव में गर्म देशों का ही ऋणी है। उस लेख में हमने सभ्यता के प्रचलित सिद्धांतों को भ्रम-मूलक और मूढ़-विश्वासात्मक तक कहने का साहस किया था। इस लेख में हम विधेयात्मक और वैज्ञानिक रूप से यह सिद्ध करना चाहते हैं कि आदि-काल में गर्म देशों के सिवा सभ्यता का जन्म और कहीं हो ही नहीं सकता था, तथा इन्हीं गर्म देशों से सभ्यता का प्राथमिक पाठ पढ़े बिना योरप आदि सर्द देश कभी सभ्य नहीं हो सकते थे। यों तो ऐतिहासिक प्रमाण मौजूद ही हैं, और वे यथेष्ट रूप से हमारा समर्थन भी कर रहे हैं, किंतु यदि कोई ऐतिहासिक प्रमाण न होता, तो भी वैज्ञानिक रीति से यही सिद्ध होता है कि प्रथम-प्रथम गर्म देशों के सिवा और कहीं सभ्यता का आविर्भाव नहीं हो सकता। गर्म देशों में किंचित् उन्नति प्राप्त कर लेने पर ही सभ्यता सर्द देशों में पदार्पण कर सकती है।

यदि इस तथ्य को ग्रहण करने के लिये हमें पाश्चात्य विद्वानों के आप्त वचन एकमात्र आवश्यक भी प्रतीत हों, तो इतना ही कहना यथेष्ट होगा कि हर्बर्ट स्पेंसर-सरीखे विद्वान् भी यह मानते हैं कि देश की गर्मी के कारण सभ्यता में बाधा नहीं पड़ती।

ताप के एक निर्दिष्ट परिमाण के अंदर ही सभी प्रकार के जीव-धारियों का जीवित रहना संभव है; पर उच्च श्रेणी के जीवों के लिये जल-वायु के कहीं अधिक अनुकूल होने की आवश्यकता है। मानव-जीवन प्रत्येक स्थान पर संभव नहीं। अतएव सामाजिक [illegible] सर्दी और गर्मी की एक निर्दिष्ट सीमा ही के अंदर संभव हो सकता है।

उदाहरण के लिये उत्तरी प्रदेश (Arctic regions) को लीजिए। यदि ताप उत्पन्न करने की यथेष्ट सामग्री प्रस्तुत रहे, तो निस्संदेह बहुत ठंडे प्रदेशों में भी उष्ण-रक्त* जीव जीवन धारण कर सकते हैं। उत्तर-वृत्त के अत्यंत ठंडे प्रदेशों में भी बहुत-से जल-चर और स्थल-चर दूध पिलानेवाले जानवर निवास करते हुए पाए जाते हैं। परंतु इन जीवों का अस्तित्व प्रत्यक्ष या परोक्ष रीति से अन्य नीच श्रेणी के जल-चर जीवों ही के ऊपर निर्भर है। अब यदि गर्म देशों (Tropics अर्थात् कर्क-रेखा, Tropic of Cancer अर्थात् मकर-रेखा, और Tropic of Capricorn के मध्य-स्थित प्रदेशों) से आनेवाली हवा का झोंका जल को बर्फ़ में परिवर्तित होने से न रोके, तो ये क्षुद्र श्रेणी के समुद्री जीव क्योंकर जीवित रह सकते हैं, और क्योंकर इन्हीं क्षुद्र जीवों पर निर्भर करनेवाले उपर्युक्त दूध पिलानेवाले जीव प्राण धारण कर सकते हैं? फिर उत्तर-प्रदेश में जो मानव-जीवन दृष्टि-गोचर होता है, वह इन दूध पिलानेवाले जानवरों ही के अस्तित्व पर अवलंबित है। अतएव यह सिद्ध होता है कि उत्तर के प्रदेशों में सबका जीवन गर्म वायु के प्रवाह पर ही निर्भर है।

परंतु ऐसी जगहों में, जहाँ जीवन धारण करने के लिये मनुष्य को इतनी कठिनता से गर्मी प्राप्त होती है, सामाजिक उन्नति नहीं हो सकती। मनुष्य की सारी शक्तियाँ जीवित रहने के प्रयत्नों में ही ख़र्च होती हैं; उसे और किसी काम के करने का अवकाश नहीं प्राप्त होता। स्वभावतः उसके शारीरिक अवयव भी निरंतर इसी काम में लगे रहते हैं, और इसीलिये यही उनका मुख्य 'धर्म' हो जाता है। उदाहरणार्थ एस्किमो-जाति की सारी शक्ति शरीर में यथेष्ट ताप-परिमाण (temperature) के बनाए रखने में ही ख़र्च होती है। वे बर्फ़ के घरों में रहते हैं, और दीवारों के पिघलने के भय से वे तेल के एक टिमटिमाते हुए दीपक के सिवा और कुछ नहीं जला सकते। वे अग्नि जलाकर अपने शरीर

* मनुष्य, पक्षी आदि गर्म ख़ून के जीव उष्ण-रक्त (warm-blooded) और मछली आदि ठंडे रक्त के जीव शीत-रक्त (cold-blooded) कहे जाते हैं।

या घर को गर्म नहीं रख सकते । इस काम के लिये रोमों का मोटा-मोटा वस्त्र भी यथेष्ट नहीं होता ; वह भी उन्हें काफ़ी गर्मी नहीं पहुँचा सकता । अतएव शरीर में यथेष्ट ताप-परिमाण (temperature) के बनाए रखने के लिये उन्हें ह्वेल आदि समुद्री जंतुओं की चर्बियों को बहुत अधिक परिमाण में खाना पड़ता है, और इसलिये उनकी अँतड़ियों को बहुत कठिन परिश्रम करने की आवश्यकता होती है । उनके अवयव सदा एक ही काम के संपादन में—अर्थात् मानव-शरीर से गर्मी की जो अनवरत क्षति होती रहती है, उसीको पूरा करने के प्रयत्न में—लगे रहते हैं, और इसलिये वे उन्हें और किसी तरह की शक्ति नहीं दे सकते । जीवन-यापन के इतने कठिन होने के कारण जन-संख्या में भी वृद्धि नहीं होती, और इसलिये सामाजिक उन्नति भी रुकी रहती है ।

यह तो हुई उत्तर की बात, परंतु दक्खिन की भी यही अवस्था है । उदाहरण के लिये फ़्यूज़ियनों को लीजिए । स्पेंसर कहते हैं, जहाँ शरीर में कँपकँपी पैदा करनेवाली ज़ोरदार आँधी सदा प्रचंड वेग से उठा करती है, ऐसे प्रदेशों में घास और पतली-पतली छड़ियों की बनी हुई झोपड़ियों में रहने और भोजन के लिये केवल मछली और सितुओं-घोंघों आदि पर अवलंबित होने के कारण, ये मंदभाग्य पुरुष—जिनके वेश, आकृति या रहन-सहन में मनुष्यता का कोई भी चिह्न नहीं देख पड़ता, और जिन्हें मनुष्य कहना भी कठिन प्रतीत होता है—बहुत मुशकिल से अपने शरीर में उचित ताप-परिमाण को क़ायम, और किसी तरह अपने को जीवित, रखते हैं । इसीलिये इनकी संख्या में कोई वृद्धि नहीं होती, और इनका सामाजिक जीवन एकदम हीनावस्था में है ।

स्पेंसर कहते हैं, यद्यपि अधिक उष्णता भी अच्छी वस्तु नहीं है, तथापि इससे सभ्यता में कोई बड़ी बाधा नहीं पहुँचती । अधिक सर्दी से जितनी हानि पहुँचती है, उतनी अधिक गर्मी से कदापि नहीं । सभी तरह का जीवन—केवल मानव-जीवन ही नहीं, बल्कि पशु और वनस्पति-जीवन भी—संख्या और श्रेष्ठता दोनों के लिहाज़ से गर्म देश में ही अधिक उन्नत देख पड़ता है । सभ्यता की उत्पत्ति के संबंध में हम गत लेख में एशिया की सभ्यताओं और मिस्र का नाम ले ही चुके हैं, परंतु संसार के अन्य भागों पर भी जब हम नज़र डालते हैं, तो ये ही बातें देखने में आती हैं । संसार के अन्य भागों में भी सर्द प्रदेशों की अपेक्षा गर्म प्रदेश ही अधिक उन्नत नज़र आते हैं । प्राचीन समय में अमेरिका के सभ्य स्थान मेक्सिको और पेरू ही थे । अब यदि गर्म और सर्द देशों में बसनेवाली असभ्य जातियों की तुलना की जाय, तो भी यही बात विदित होगी'। टहीटी, टोंगा और सैंडविच-द्वीप अयन-वृत्त के अंदर हैं । पहले-पहल जब इन द्वीपों का पता चला, तो, बिना किसी प्रकार की धातु के भी, जो सभ्यता देखने में आई, वह कदापि उपेक्षणीय न थी । परंतु सर्द प्रदेशों में बसनेवाली एस्किमो, फ़्यूज़ियन आदि जातियों की कैसी अवस्था है, इसका कुछ दिग्दर्शन अभी ऊपर कराया जा चुका है ।

सूर्य के किरण-विकिरण (radiation) अर्थात् चारों ओर अपनी प्रखर अंशु-राशि के फैलाने ही के कारण इस पृथ्वी पर वनस्पति, पशु या मानव का जीवन टिका हुआ है । सूर्य की गर्मी के ही द्वारा इस पृथ्वी पर सभी तरह के जीवन का आविर्भाव हुआ है । महोज्ज्वल अंशुमाली भगवान् सूर्य ही हम लोगों के पिता हैं । जीव-धारियों के शरीर की गर्मी सूर्य ही की गर्मी है । एक लेखक सच ही कहता है कि "शरीर-रूपी बोतल में बंद सूर्य के ताप को ही जीवन कहते हैं, और मृत्यु उसी नीरव ख़ानसामा का नाम है, जो चुपचाप इस बोतल की काग को खोल डालता है ।"

सूर्य के ताप पर ही सभी तरह के जीवन निर्भर हैं । अतएव मानव-जीवन में जो-जो शक्तियाँ क्रीड़ा करती हुई देख पड़ती हैं, उन सभी का कारण सूर्य का किरण-विकिरण ही है । अतएव पृथ्वी के उन खंडों में, जहाँ सूर्य का ताप अति क्षीण है, सामाजिक उन्नति संभव नहीं हो सकती । स्पेंसर कहते हैं कि यद्यपि पृथ्वी के कुछ खंडों में सूर्य का किरण-विकिरण ज़रूरत से ज़्यादा होता है, तथापि इससे सामाजिक उन्नति में उतनी बाधा नहीं पहुँचती । उन्नति प्रकाश और गर्मी के ही द्वारा संभव हो सकती है ।

अतएव गर्म देशों की हँसी उड़ाना, इन देशों के अधि-वासियों को सभ्यता के अयोग्य ठहराना, और उनके रहन-सहन, समाज या धर्म आदि को गालियाँ सुनाना

कदापि बुद्धि-संगत नहीं प्रतीत होता। गर्मी से सभ्यता को उत्तेजना मिलती है, उस पर कुठाराघात नहीं होता। निस्संदेह भौतिक बाधाओं को टालकर पाश्चात्य भू-खंड इस समय सभ्य हुआ है। परंतु उसे सभ्यता का प्राथमिक पाठ किसने पढ़ाया ? फिर क्या सभी अंशों में उसकी सभ्यता पुरानी सभ्यताओं से उत्तम है ? क्या अनेक पाश्चात्य विद्वान् इस समय भी—पाश्चात्य जगत् के इतना धन-विभव-संपन्न होने पर भी—निराश होकर अश्रु-पात नहीं कर रहे हैं ?

यदि मरुस्थलों की—ऐसे गर्म प्रदेशों की कि जहाँ अत्यधिक ताप के कारण पृथ्वी एकदम शुष्क रहती है, और किसी प्रकार की वनस्पति उग नहीं सकती—बात छोड़ दी जाय, तो यह स्पष्ट होगा कि केवल-मात्र देश के गर्म होने से सभ्यता में कोई अड़चन नहीं उपस्थित होती। बल्कि उलटे इससे लाभ होता है। बकले का सिद्धांत है कि गर्म देश के मनुष्य उत्साह-हीन और आलसी होते हैं, वे सर्द देशों के मनुष्यों के बराबर परिश्रम नहीं कर सकते, और इसलिये उनकी सभ्यता एक हद तक पहुँचकर उससे आगे नहीं बढ़ने पाती। परंतु नहीं, विचारकर देखने से विदित होगा कि प्राकृतिक नियमों के अनुसार गर्म देशों ही के मनुष्य अधिक परिश्रमी और उत्साही हो सकते हैं। आलस्य की उत्पत्ति गर्मी से नहीं, बल्कि सर्दी से ही होती है। गर्मी से मनुष्य की शक्तियों का ह्रास नहीं होता।

मनुष्य-शरीर के भिन्न-भिन्न अवयवों को अपना कार्य संपन्न करने के लिये पहले आवश्यकता इस बात की है कि मनुष्य के चमड़े और फेफड़े से वाष्पीभवन (Evaporation) जल्दी-जल्दी हो। अतएव स्वच्छ अक्लिन्न वायु-मंडल में ही मनुष्य फुरतीला रहता है, और उसके अवयव अपने-अपने कार्य का संपादन करते हैं। यह सभी के अनुभव में आया होगा कि शुष्क, स्वच्छ और अक्लिन्न वायु-मंडल में ही रुग्ण और दुर्बल मनुष्य अच्छे रहते हैं, तथा जब हवा में आर्द्रता का परिमाण बहुत हो जाता है, तब उनका स्वास्थ्य और भी बिगड़ जाता है।

अतएव इस विवेचन के बाद बकले का सिद्धांत पूर्ण-रूप से निराधार प्रतीत होता है। निस्संदेह उन गर्म देशों में, जहाँ का वायु-मंडल अधिक आर्द्र होता है, मनुष्य की शारीरिक फुरती कुछ घट सकती है, परंतु उन देशों में, जहाँ आकाश सदा मेघाच्छन्न रहता है, जहाँ सूर्य-देव के दर्शन भी बड़ी कठिनता से होते हैं, जहाँ निरंतर हिम की वर्षा होती है, मनुष्य क्योंकर फुरतीला हो सकता है, कुछ समझ में नहीं आता। जैसा ऊपर कहा जा चुका है, ऐसी अवस्था में जीवन-मात्र के ही धारण करने में, तथा शरीर से गर्मी अर्थात् प्राण-वायु को निकल जाने से रोकने ही में, मनुष्य की सारी शक्ति ख़र्च हो जाती है। जब पशुओं की खाल या लोम से शरीर को ढके बिना बाहर निकलना तक कठिन है, तो कठिन परिश्रम का करना क्योंकर संभव हो सकता है ?

पर नहीं, इसके और भी प्रमाण हैं। प्राचीन समय में संसार की प्रायः सभी विजयी जातियों का निवास-स्थान वही तप्त रही, वृष्टि-शून्य भूमि थी, जो उत्तरी आफ़्रिका, अरब, फ़ारस इत्यादि से होती हुई तिब्बत और मंगोलिया तक विस्तृत है। इन्हीं प्रदेशों से तातार, आर्य, सिमेटिक आदि जातियों का उत्थान हुआ है, जिन्होंने प्रायः समस्त एशिया, योरप तथा अनेक देशों को जीतकर संसार के अनेक खंडों को आबाद किया है। इतिहास यह भी बतलाता है कि येही मनुष्य जब अपेक्षाकृत आर्द्र देशों में बस गए, तो फिर इन्हीं तप्त प्रदेशों के मनुष्यों द्वारा पराजित किए गए। नई दुनिया में भी यही बात देख पड़ती है। मध्य-अमेरिका, पेरू और मेक्सिको प्रदेशों में ही अमेरिका की प्राचीन सभ्यता का जन्म हुआ था, और ये सभी देश शुष्क और वृष्टि-रहित हैं। इसका तात्पर्य इन जातियों की श्रेष्ठता सिद्ध करना नहीं, बल्कि यह बतलाना है कि सभ्य होने के लिये केवल उष्णता की ही आवश्यकता नहीं है। परंतु हाँ, इससे बकले का सिद्धांत अवश्य खंडित होता है, और उलटे यह भी प्रतिपादित होता है कि गर्म और शुष्क देश के रहनेवाले ही अधिक उत्कट, उद्दाम और बल-वीर्य से युक्त होते हैं।

इसमें कोई संदेह नहीं कि सभ्यता के इतिहास में मनुष्य के पौरुष और ज्ञान को ही अधिक महत्त्व प्राप्त है। परंतु आदिम अवस्था में मनुष्य पूर्ण-रूप से प्रकृति के अधीन था—उसका विकास और उन्नति प्रकृति के अधिकार में थी। जिस ज्ञान, बुद्धि और मानसिक शक्ति की बदौलत मनुष्य इस समय इतना उन्नत हुआ है, वह ज्ञान और बुद्धि प्राचीन मनुष्य को प्राप्त न थी, और न उसकी

मानसिक शक्तियों ही का कुछ विकास हुआ था। अतएव निष्कर्ष यही निकलता है कि मनुष्य को उन्नत बनाने में प्रथम-प्रथम उसकी बुद्धि और मस्तिष्क ने कोई सहायता नहीं दी। उसकी बुद्धि और ज्ञान का बढ़ना भी प्रथम-प्रथम अनुकूल जल-वायु पर ही निर्भर था। नर-विज्ञान के पंडितों ने वर्तमान जंगली जातियों की बुद्धि की अवस्था का जो चित्र अंकित किया है, उसके द्वारा हम प्राचीन मनुष्यों की मन और बुद्धि की अवस्था का कुछ अनुमान कर सकते हैं।

अहट-जाति के संबंध में मिस्टर स्प्रॉट ने जो कुछ लिखा है, उसे सभी जंगली जातियों की मन तथा बुद्धि की अवस्था का नमूना समझना चाहिए। वह लिखते हैं—"उसका मस्तिष्क सुषुप्तावस्था में है। किसी वस्तु की ओर उसका ध्यान आकृष्ट किए जाने पर, वह अक्सर बहुत जल्दी से जवाब देता है, और चतुरता-पूर्वक तर्क भी करता है। परंतु जब उससे ऐसे प्रश्न पूछे जाते हैं, जिनके उत्तर देने में उसे विचार और स्मरण-शक्ति से काम लेना पड़ता है, तो वह तुरंत ही थक जाता है, और अन्यमनस्क होकर भाव-शून्य दृष्टि से इधर-उधर घूरने लगता है।" ब्रेज़िल की इंडियन जाति के बारे में भी एक लेखक ने यही लिखा है। उसकी भाषा के संबंध में कोई सवाल पूछते ही, वह घबरा उठता है, और सिर-दर्द की शिकायत करने लगता है। वह तनिक भी मानसिक परिश्रम नहीं कर सकता। अबियोन-जाति का कोई मनुष्य जब देखते ही किसी वस्तु को नहीं जान सकता, तो वह इस प्रयत्न को एकदम छोड़ ही देता है, और एकाएक चिल्ला उठता है—"आख़िर इससे नफ़ा ही क्या है ?" निग्रो-जाति के बारे में भी ये ही बातें लिखी गई हैं। पूर्व-ऑफ़्रिका की जंगली जातियों के संबंध में बर्टन लिखता है कि उनके यहाँ प्रचलित गणना-परिपाटी के ऊपर दस मिनट तक ही सवाल करने से उस जाति का सब से बुद्धिमान् मनुष्य भी थक गया। मलागासी जाति की भी यही दशा है। "जीवधारी बढ़ते हैं," या "पौदे हरे होते हैं," इस तरह का कोई व्यापक या सामान्य वाक्य जंगली मनुष्य के पास नहीं है। डमारा-जाति के मनुष्य पाँच से अधिक गिनना नहीं जानते ; क्योंकि वे उँगलियों के सहारे गिनते हैं, और उनके पाँच से अधिक उँगलियाँ नहीं हैं। लेकिन तो भी उनका एक भी बैल नहीं खोता। बैलों के कम होने का पता उन्हें उनकी संख्या के घट जाने से नहीं चलता, बल्कि किसी पहचाने हुए स्वरूप के न पाए जाने से वे ताड़ जाते हैं कि कोई बैल निस्संदेह खो गया है। जब उनमें वस्तुओं का विनिमय होने लगता है, तो प्रत्येक भेंड़ी की क़ीमत अलग-अलग ली जाती है। जैसे, विनिमय की दर इस तरह है कि एक भेंड़ी के बदले दो पत्ते तंबाकू के मिलते हैं, तो एक डमारा के लिये यह असंभव है कि वह एकसाथ दो भेंड़ियाँ लेकर तंबाकू के चार पत्ते दे दे। वह अलग-अलग दो बार विनिमय करेगा। मिस्टर हौजसन कहते हैं कि जंगलियों के बीच साधारण प्रत्यय (general concepts) का पूर्ण अभाव है। वे 'आलोक' शब्द को नहीं जानते, और न इसे समझ ही सकते हैं। यद्यपि वे 'रौद्र', 'दिया' या 'अग्नि' को जानते हैं, और इनके लिये उनके पास शब्द भी मौजूद हैं, तथापि एक 'आलोक' शब्द के लिये, जिससे इन सभी वस्तुओं का बोध होता है, उनके पास कोई प्रत्यय या शब्द नहीं है। ब्रेज़िल की जंगली जातियों के बीच 'पौदे', 'जानवर', 'रंग', 'आवाज़', 'लिंग', 'जाति' आदि के लिये शब्द पाना असंभव है। अबियोन और गुरानिस-जाति के पास 'मनुष्य', 'शरीर', 'ईश्वर', 'स्थान', 'समय', 'सर्वत्र', 'सदा', 'कभी नहीं' के लिये कोई शब्द नहीं हैं। जंगलियों का शब्द-कोष बहुत छोटा है। 'मैं हूँ' इस साधारण शब्द के समझने की शक्ति या इसे व्यक्त करने की भी भाषा उनके पास नहीं है। कमैस्कडेल-जाति के पास यद्यपि प्रत्येक नदी के लिये या प्रत्येक प्रकार के वृक्ष के लिये कोई-न-कोई नाम अवश्य है, तथापि 'नदी' या 'वृक्ष' के लिये कोई शब्द नहीं है। शरीर के भिन्न-भिन्न अंगों को धोने के लिये चेरो की जाति के पास तेरह क्रियाएँ हैं, परंतु साधारण 'धोने' के लिये उनके पास कोई शब्द नहीं है।

अतएव हमारे सिद्धांत की पुष्टि पूर्ण-रूप से होती है कि आदिम समय में, उसे सभ्य बनाने में, मनुष्य की बुद्धि ने कोई भाग नहीं लिया। अभी जिस तरह की मानसिक अवस्था का निदर्शन कराया गया है, क्या इस अवस्था में मनुष्य को उसकी बुद्धि से कुछ भी सहायता मिल सकती है ? प्राचीन मनुष्य का मस्तिष्क अत्यंत दुर्बल था। वह तर्क-वितर्क करने—नियमित रूप से विचार करने—में असमर्थ था। वह कार्य-कारण का क्रम निश्चित करने में असमर्थ था। इसके लिये प्रथम आवश्यकता इस बात

की है कि विशेष वस्तुओं को देखकर उनमें जो समता विद्यमान है, उसका एक मानसिक प्रत्यय बनाया जाय, तत्पश्चात् उस साधारण वस्तु से अन्य किसी वस्तु की तुलना की जाय, और फिर यह निश्चित किया जाय कि यह वस्तु हमारे मानसिक प्रत्यय से मिलती है या नहीं। तर्क करने का यही आदि-सोपान है, और अभी हम यह प्रमाणित कर चुके हैं कि प्राचीन मनुष्य इससे रहित था।

अतएव सभ्यता के आदि-युगों में मनुष्य की बुद्धि और परिश्रम की अपेक्षा प्रकृति की दान-शीलता का ही अधिक महत्त्व है। यदि प्राकृतिक बाधाएँ अनुल्लंघनीय हों, तो मनुष्य—ख़ासकर वह मनुष्य जिसकी बुद्धि अभी तक एकदम सुषुप्तावस्था में है—क्योंकर सभ्य हो सकता है? सभ्य होने के लिये प्रथम इस बात की आवश्यकता है कि जीवन-निर्वाह की सामग्रियाँ सुलभ हों, कम ख़र्च में जीवन बिताया जा सके, और थोड़े ही परिश्रम में सुख देनेवाली सभी वस्तुएँ प्राप्त की जा सकें। यदि मनुष्य का सारा समय उदर-पूर्ति ही के प्रयत्नों में ख़र्च होगा, यदि जीवन निर्वाह ही कठिन होगा, तो मनुष्य सभ्य क्योंकर हो सकेगा? सभ्यता के लिये प्रथम यह आवश्यक है कि स्थान-विशेष के साथ मनुष्य का स्थायी संबंध हो जाय, अर्थात् मनुष्य खेती करके अपने जीवन का निर्वाह कर सके, तथा शिकार और भोजन की तलाश में इधर-उधर भटकता न फिरे। परंतु प्रथम-प्रथम मनुष्य उपयुक्त और उर्वर भू-खंड पर ही खेती कर सकता है। केवल मांस-भोजी, शिकार करके उदर-पूर्ति करनेवाले और जानवरों के चमड़े से बदन ढकनेवाले मनुष्य सभ्य नहीं हो सकते।

अतएव सब ओर से यही प्रमाणित होता है कि उपयुक्त प्राकृतिक अवस्था, अनुकूल जल-वायु, में ही मनुष्य की सभ्यता का श्रीगणेश हो सकता है; हर जगह कभी नहीं। कौन-कौन-सी प्राकृतिक अवस्थाएँ सभ्यता के अनुकूल हैं, यह कहना बिलकुल सहज नहीं है। पर हाँ, इतना हम अवश्य प्रमाणित कर चुके हैं कि देश की उष्णता सभ्यता के मार्ग में बाधा नहीं डाल सकती। मनुष्य की उन्नति और अवनति बहुत-सी बातों पर निर्भर रहती है, केवल देश की उष्णता और शीतलता पर नहीं। अन्य किसी निबंध में इनके विवेचन की चेष्टा की जायगी।

गोवर्द्धनलाल एम्० ए०, बी० एल्०

उदयन *
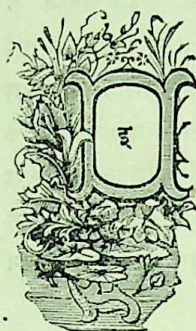
तिहास में घटनाओं की प्रायः पुनरावृत्ति होते देखी जाती है। इसका तात्पर्य यह नहीं है कि उसमें कोई नई घटना होती ही नहीं। किंतु असाधारण नई घटना भी भविष्य में फिर होने की आशा रखती है। मानव-समाज की कल्पना का भांडार अक्षय है, क्योंकि वह इच्छा-शक्ति का विकास है। समाज के बाल्य-काल का चिंतन सभ्यता की उन्नत दशा का मूल है। इन कल्पनाओं या इच्छाओं का मूलसूत्र बहुत ही सूक्ष्म और अपरिस्फुट होता है। जब वह इच्छा-शक्ति किसी व्यक्ति या जाति में केंद्रीभूत होकर अपना सफल या विकसित रूप धारण करती है, तभी इतिहास की सृष्टि होती है। विश्व में जब तक कल्पना इयत्ता को नहीं प्राप्त होती, तब तक वह रूप-परिवर्तन करती हुई पुनरावृत्ति करती ही जाती है। राजनीतिज्ञ लोग पूर्व घटना के उसी घुमाव-फिराव से बचने के लिये इतिहास का अनुशीलन करते हैं, और प्राचीन कल्पना को निर्दोष तथा संपूर्ण बनाने के लिये भूतपूर्व विघ्न-स्वरूप कारणों का बहिष्कार करते हैं। किंतु समाज की अभिलाषा अनंत स्रोतवाली है। पूर्व कल्पना के पूर्ण होते-होते एक नई कल्पना उसका विरोध करने लगती है, और पूर्व-कल्पना, कुछ काल तक ठहरकर, फिर होने के लिये अपना क्षेत्र प्रस्तुत करती है। इधर इतिहास का नवीन अध्याय खुलने लगता है। मानव-समाज के इतिहास का इसी प्रकार संकलन होता है।

---

* माधुरी के प्रथम अंक में उदयन के संबंध में एक लेख, श्रीयुत पं० विजयानंदजी 'श्रीकवि' का, निकला है। उसमें उदयन के संबंध में कुछ शंकाएँ हैं। हम नहीं कह सकते कि इस प्रबंध से उन शंकाओं का परिहार हो जायगा। हमें 'अजातशत्रु' नाटक लिखने के लिये उस काल के इतिहास की खोज करनी पड़ी थी; यह प्रबंध उसीका फल है। संभव है, इस लेख से पाठकों का मनोरंजन हो, और उदयन की कथा के ऊपर बहुत-सा प्रकाश पड़े। इतना कह देना आवश्यक है कि इस लेख का उद्देश्य किसी विशेष प्रबंध का खंडन नहीं है।—लेखक
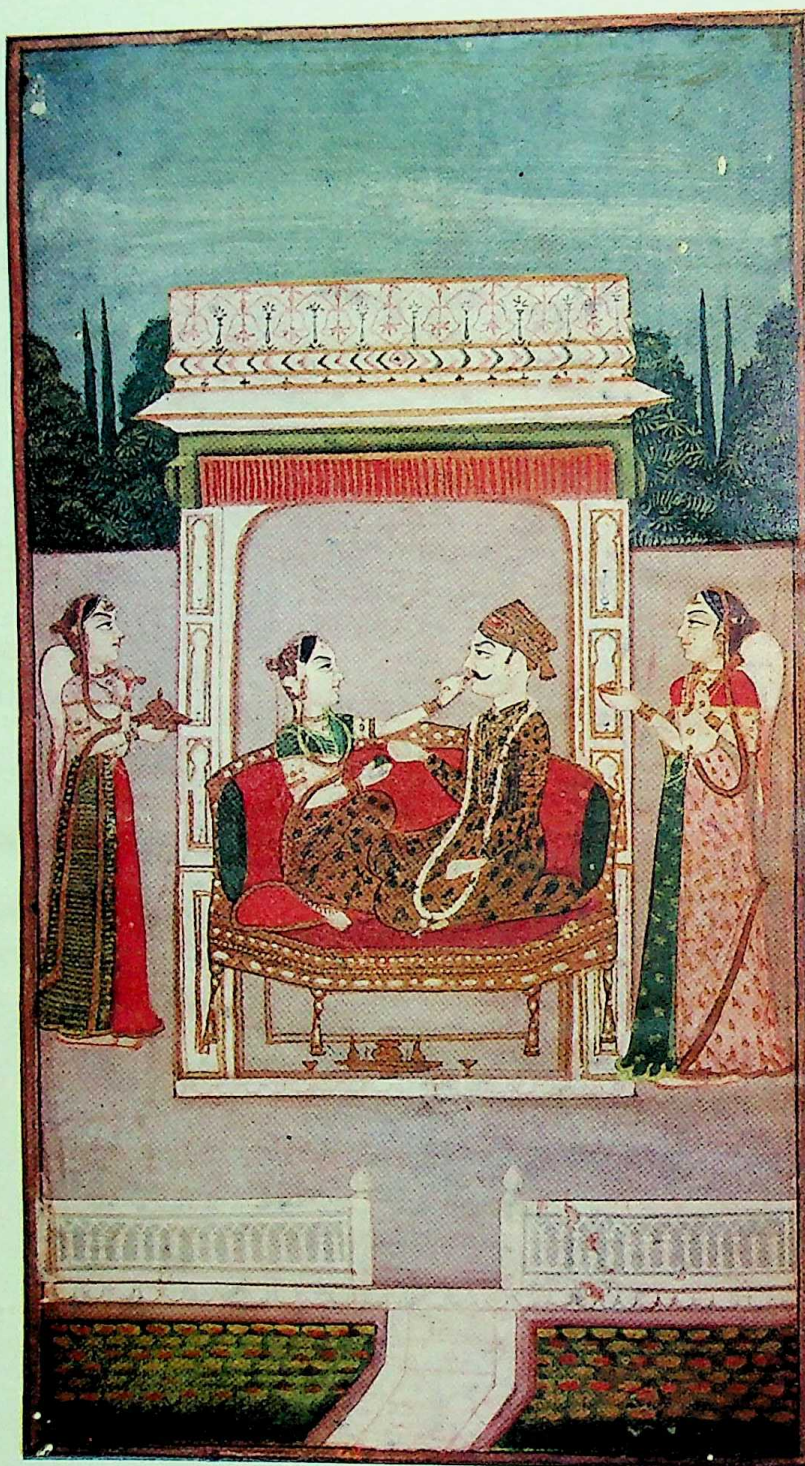
तांबूल-दान

मानहुँ पिय-आगमन-सुख, सब उराहनो भूलि,
गाढ़ो हिय-अनुराग तिय देत पान-मिस—फूलि ।

N. K. Press, Lucknow.

भारत का ऐतिहासिक काल गौतम बुद्ध से आरंभ होता है ; क्योंकि उसी काल की बौद्ध-कथाओं में वर्णित व्यक्तियों का पुराणों की वंशावली में भी प्रसंग आता है। इसलिये विद्वान् लोग वहीं से प्रामाणिक इतिहास मानते हैं। पौराणिक काल के बाद गौतम बुद्ध के व्यक्तित्व ने तत्कालीन सभ्य-संसार में बड़ा भारी परिवर्तन किया। इसलिये हम कहेंगे कि भारत के ऐतिहासिक काल का प्रारंभ धन्य है, जिसने संसार में पशु-कीट-पतंग से लेकर इंद्र तक के साम्य-वाद की शंख-ध्वनि की थी। केवल इसी कारण हमें, अपना अतीव प्राचीन इतिहास रखने पर भी, यहीं से इतिहास-काल का प्रारंभ मानने में गर्व होना चाहिए।

भारत-युद्ध के पौराणिक काल के बाद, इंद्रप्रस्थ के कौरवों की प्रभुता कम होने पर, बहुत दिनों तक कोई सम्राट् नहीं हुआ। भिन्न-भिन्न जातियाँ अपने-अपने देशों में शासन करती थीं। बौद्धों के प्राचीन ग्रंथों में ऐसे १६ राष्ट्रों का उल्लेख है। प्रायः उनका वर्णन भौगोलिक क्रम के अनुसार न होकर जातित्व पर निर्भर है। उनके ये नाम हैं—अंग, मगध, काशी, कोशल, वृजि, मल्ल, चेदि, वत्स, कुरु, पांचाल, मत्स्य, शूरसेन, अश्वक, अवंतिक, गांधार और कांबोज।

इनका वर्णन केवल बौद्धों की धार्मिक दृष्टि से हुआ है। उस काल में जिन लोगों से बौद्धों का संबंध हुआ है, इनमें उन्हीं का नाम है। जातक-कथाओं में शिबि, सौवीर, मद्र, विराट् और उद्यान का भी नाम आया है। किंतु उनकी प्रधानता नहीं है। उस समय जिन छोटी-से-छोटी जातियों, गणों और राष्ट्रों का संबंध बौद्ध-धर्म से हुआ, उन्हें प्रधानता दी गई ; जैसे 'मल्ल' आदि।

अपनी-अपनी स्वतंत्र कुलीनता और आचार रखनेवाले इन राष्ट्रों में—जिनमें से कई में गण-तंत्र-शासन-प्रणाली भी प्रचलित थी—निसर्ग-नियमानुसार एकता का परिवर्तन (जिसका होना अनिवार्य था), राजनीति के कारण नहीं, किंतु एक धार्मिक क्रांति से, होनेवाला था। वैदिक हिंसा-पूर्ण यज्ञों और पुरोहितों के एकाधिपत्य से साधारण जनता के हृदय-क्षेत्र में विद्रोह की उत्पत्ति हो रही थी। उसी के फल-स्वरूप जैन और बौद्ध-धर्मों का प्रादुर्भाव हुआ। चरम अहिंसा-वादी जैन-धर्म के बाद बौद्ध-धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। वह हिंसा-मय 'वेद-वाद' और पूर्ण अहिंसावाली जैन-दीक्षाओं के 'अति-वाद' से बचता हुआ एक मध्यवर्ती नया मार्ग था। संभवतः धर्म-चक्र-प्रवर्तन के समय गौतम ने इसी से अपने धर्म को 'मध्यमा प्रतिपदा' के नाम से अभिहित किया। इसी धार्मिक क्रांति ने भारत के भिन्न-भिन्न राष्ट्रों को परस्पर संधि-विग्रह करने के लिये बाध्य किया।

इंद्रप्रस्थ और अयोध्या के प्रभाव का ह्रास होने पर, इस धर्म के कारण, पाटलि-पुत्र पीछे बहुत दिनों तक भारत की राजधानी बना रहा। उस समय के बौद्ध-ग्रंथों में ऊपर कहे हुए बहुत-से राष्ट्रों में से चार प्रमुख राष्ट्रों का बहुत वर्णन है—कोशल, मगध, अवंती और वत्स। कोशल का पुराना राष्ट्र संभवतः उस काल के सब राष्ट्रों से विशेष मर्यादा रखता था ; किंतु वह जर्जर हो रहा था। महाराज प्रसेनजित् का वहाँ राज्य था। अवंती में प्रद्योत (पज्जोत) का राज्य था। मालव का राष्ट्र भी उस समय सबल था। मगध, जिसने कौरवों के बाद भारत में महान् साम्राज्य स्थापित किया, शक्तिशाली हो रहा था। बिंबसार वहाँ के राजा थे। अजातशत्रु, वैशाली (वृजि) की राजकुमारी से उत्पन्न, उन्हीं का पुत्र था। इसका वर्णन भी बौद्धों की प्राचीन कथाओं में बहुत मिलता है। बिंबसार की बड़ी रानी कोशला कोशल-नरेश प्रसेनजित् की बहन थी। वत्स-राष्ट्र की राजधानी कौशांबी थी, जिसका खँड़हर ज़िला बाँदा (करुई-सब-डिवीज़न) में यमुना के किनारे 'कोसम्' नाम से प्रसिद्ध है। उदयन इसी कौशांबी का राजा था। इसने मगधराज और अवंती-नरेश, दोनों की कन्याओं से विवाह किया था। भारत के सहस्ररजनी-चरित्र 'कथा-सरित्सागर' का नायक इसी का पुत्र नरवाहनदत्त है।

बृहत्कथा (कथा-सरित्सागर) के आदि आचार्य वररुचि हैं, जो कौशांबी में उत्पन्न हुए थे, और जिन्होंने मगध में नंद का मंत्रित्व किया। उदयन के समकालीन अजातशत्रु के बाद उदयाश्व, नंदिवर्द्धन और महानंद नाम के तीन राजा मगध के सिंहासन पर बैठे। शूद्रा के गर्भ से उत्पन्न, महानंद के पुत्र, महापद्म-नामक नंद ने नंद-वंश की नींव डाली। इसके बाद सुमाल्य आदि ८ नंदों ने शासन किया (विष्णु-पुराण, ४ अंश)। किसी के मत से महापद्म के बाद केवल नव नंदों ने राज्य किया। इसी 'नव नंद' वाक्य के दो अर्थ हुए—नव नंद (नवीन नंद), तथा महापद्म और सुमाल्य आदि ९ नंद। इनका राज्य-काल, विष्णु-पुराण के अनुसार, १०० वर्ष है। नंद के पहले राजा का राज्य-काल भी, पुराणों के अनुसार,

लगभग १०० वर्ष होता है । ढुंढि ने मुद्राराक्षस के उपोद्घात में अंतिम नंद का नाम धननंद लिखा है । कथा-सरित्सागर में उसका नाम सत्यनंद है। इसके बाद योगानंद का मंत्री वररुचि हुआ । यदि ऊपर लिखी हुई पुराणों की गणना सही है, तो कहना होगा कि उदयन के पीछे, २०० वर्ष के बाद, वररुचि हुए। क्योंकि पुराणों के अनुसार ४ शिशनाग-वंश के और ९ नंद-वंश के राजों का राज्य-काल इतना ही होता है। महावंश और जैनों के अनुसार कालाशोक के बाद केवल नवनंद का नाम आता है। कालाशोक पुराणों का महापद्म नंद है । बौद्धों के लेखानुसार इन शिशुनाग तथा नंदों का संपूर्ण राज्य-काल १०० वर्ष से कुछ ही अधिक होता है। यदि इसे माना जाय, तो उदयन के १००-१२५ वर्ष पीछे वररुचि का होना प्रमाणित होगा । कथा-सरित्सागर में इसी का नाम 'कात्यायन' भी है—"नाम्ना वररुचिः किंच कात्यायन इति श्रुतः ।" इन विवरणों से प्रतीत होता है कि वररुचि उदयन के १२५-२०० वर्ष बाद हुए। विख्यात उदयन की कौशांबी वररुचि की जन्म-भूमि है ।

मूल-बृहत्कथा इसी वररुचि ने काणभूति से कही, और काणभूति ने गुणाढ्य से। इससे व्यक्त होता है कि यह कथा वररुचि के मस्तिष्क का आविष्कार है, जो संभवतः उसने संक्षिप्त रूप से संस्कृत में कही थी । क्योंकि उदयन की कथा उसकी जन्मभूमि में किंवदंतियों के रूप में प्रचलित रही होगी । उसी मूल-उपाख्यान को क्रमशः काणभूति और गुणाढ्य ने प्राकृत और पैशाची भाषाओं में विस्तार-पूर्वक लिखा । महाकवि क्षेमेंद्र ने उसे बृहत्कथा-मंजरी नाम से, संक्षिप्त रूप से, संस्कृत में लिखा । फिर काश्मीर-राज अनंतदेव के राज्य-काल में कथा-सरित्सागर की रचना की। इस उपाख्यान को भारतीयों ने बहुत आदर दिया ; क्योंकि वत्सराज उदयन कई नाटकों और उपाख्यानों में नायक बनाए गए हैं । स्वप्न-वासवदत्ता, प्रतिज्ञा-यौगंधरायण और रत्नावली में इन्हीं का वर्णन है । हर्षचरित में लिखा है—"नागवनविहारशीलं च मायामतंगांगान्निर्गता महासेनसैनिका वत्सपतिं न्ययसिंपुः ।" मेघदूत में भी—"प्राप्यावंतीनुदयनकथाकोविदग्रामवृद्धान्" और "प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे" इत्यादि है। इसी से इस कथा की सर्वलोक-प्रियता समझी जा सकती है। वररुचि ने इस उपाख्यान-माला को संभवतः ३५० ई० पू० में लिखा होगा । फिर सातवाहन-नामक आंध्र-नरपति के राज-पंडित गुणाढ्य ने इसे बृहत्कथा नाम से, ईसा की पहली शताब्दी में, लिखा । इस कथा का नायक नरवाहनदत्त इसी उदयन का पुत्र था ।

बौद्धों के यहाँ इसके पिता का नाम 'परंतप' मिलता है। और, 'मरन परिदीपित उदेनिवस्तु' के नाम से एक आख्यायिका है । उसमें भी—जैसा कि कथा-सरित्सागर में—इसकी माता का गरुड़-वंश के पक्षी द्वारा उदय-गिरि की गुफा में ले जाया जाना और वहाँ एक मुनि-कुमार का उसकी रक्षा और सेवा करना लिखा है । बहुत दिनों तक इसी प्रकार साथ रहते-रहते मुनि से उसका स्नेह हो गया, और उसी से वह गर्भवती हुई । उदय-गिरि (कलिंग ?) की गुफा में जन्म होने के कारण लड़के का नाम उदयन पड़ा । मुनि ने उसे हस्ती वश करने की विद्या और और भी कई सिद्धियाँ दीं । एक वीणा भी मिली (कथा-सरित्सागर के अनुसार वह, प्राण बचाने पर, नागराज ने दी थी)। वीणा द्वारा हाथियों और शबरा की बहुत-सी सेना एकत्र करके उसने कौशांबी को हस्तगत किया, और उसे अपनी राजधानी बनाया। किंतु बृहत्कथा के आदि-आचार्य वररुचि का, कौशांबी में जन्म होने के कारण, उदयन की ओर विशेष पक्षपात-सा दिखाई देता है । अपने आख्यान के नायक को कुलीन बनाने के लिये उसने उदयन को पांडव-वंश का लिखा है। उसके अनुसार उदयन गांडीवधारी अर्जुन की सातवीं पीढ़ी में उत्पन्न सहस्रानीक का पुत्र था ! बौद्धों के मतानुसार 'परंतप' के क्षेत्रज पुत्र उदयन की कुलीनता नहीं प्रकट होती। परंतु वररुचि ने लिखा है कि इंद्रप्रस्थ नष्ट होने पर पांडव-वंशियों ने कौशांबी को राजधानी बनाया। वररुचि ने यों सहस्रानीक से कौशांबी के राज-वंश का आरंभ माना है । कहा जाता है, इसी उदयन ने अवंतिका को जीतकर उसका नाम उदयन-पुरी या उज्जयन-पुरी रक्खा। कथा-सरित्सागर में उदयन के बाद नरवाहनदत्त का ही वर्णन मिलता है। विदित होता है, एक-दो पीढ़ी चलकर उदयन का वंश मगध की साम्राज्य-लिप्सा और उसकी रण-नीति में अपने स्वतंत्र अस्तित्व को नहीं रख सका।

अर्जुन से सातवीं पीढ़ी में उदयन का होना किसी प्रकार से ठीक नहीं माना जा सकता; क्योंकि अर्जुन के समकालीन जरासंध के पुत्र सहदेव से लेकर, शिशुनाग-वंश से पहले

के, जरासंध-वंश के २२ राजे मगध के सिंहासन पर बैठ चुके हैं। उनके बाद १२ शिशुनाग-वंश के बैठे, जिनमें छठे और सातवें राजों के समकालीन उदयन थे। तो क्या एक वंश में, उतने ही समय में, तीस पीढ़ियाँ हो गईं, जितने में कि दूसरे देश में केवल सात ही पीढ़ियाँ हुईं? यह बात कदापि मानने योग्य न होगी। संभवतः इसी विषमता को देखकर श्रीगणपति शास्त्री ने "अभिमन्योः पंचविंशःसंतानः" इत्यादि लिखा है। संभव है, विद्वानों की खोज आगे चलकर किसी दूसरी बात की सूचना दे; क्योंकि कौशांबी में न तो अभी विशेष खोज ही हुई है, और न विशेष शिला-लेख इत्यादि ही मिले हैं। इसलिये संभव है, कौशांबी के राज-वंश का रहस्य अभी पृथ्वी के गर्भ में ही दबा पड़ा हो।

कथा-सरित्सागर में उदयन की दो रानियों का नाम मिला है, किंतु बौद्धों के प्राचीन ग्रंथों में उसकी तीसरी रानी मागंधी का नाम भी आया है। वासवदत्ता और पद्मावती, इनमें से वासवदत्ता उसकी बड़ी रानी थी, जो अवंती के चंड-महासेन की कन्या थी! संभवतः इसी चंड का नाम प्रद्योत भी था; क्योंकि मेघदूत में "प्रद्योतस्य प्रियदुहितरं वत्सराजोऽत्र जह्रे", और किसी प्रति में "चंडस्यात्र प्रियदुहितरं वत्सराजो विजह्रे", ये दोनों पाठ मिलते हैं। इधर बौद्धों के लेखों में अवंती के राजा का नाम प्रद्योत मिलता है, और कथा-सरित्सागर के एक श्लोक से एक भ्रम और भी उत्पन्न होता है। वह यह है—"ततश्चंडमहासेनप्रद्योतौ पितरौ द्वयोः देव्योः ...।" तो क्या प्रद्योत पद्मावती के पिता का नाम था? किंतु विद्वान् लोग प्रद्योत और चंड-महासेन को एक ही मानते हैं। यही मत ठीक है; क्योंकि भास ने भी अवंती के राजा का नाम प्रद्योत ही लिखा है, और वासवदत्ता में उसने यह दिखाया है कि मगध-राजकुमारी पद्मावती को वह अपने लिये चाहता था। जैकोबी ने अपने वासवदत्ता के अनुवाद में अनुमान किया है कि यह प्रद्योत संभवतः चंड-महासेन का पुत्र था; किंतु, जैसा कि प्राचीन राजों का देखा जाता है, यह अवश्य अवंती के राजा का मुख्य नाम था। उसका राज्य-नाम चंड-महासेन था। बौद्धों के लेख से प्रसेनजित् के एक दूसरे नाम 'अग्निदत्त' का भी पता लगता है। बिंबसार श्रेणिक के और अजातशत्रु कुणीक के नाम से भी विख्यात है।

पद्मावती, उदयन की दूसरी रानी, के पिता के नाम में बड़ा मत-भेद है। यह तो निर्विवाद है कि वह मगध-राज की कन्या थी; क्योंकि कथा-सरित्सागर में भी यही लिखा है। किंतु बौद्धों ने उसका नाम श्यामावती लिखा है; जिस पर, मागंधी के द्वारा उत्तेजित किए जाने पर, उदयन बहुत नाराज़ हो गए थे। वह श्यामावती के ऊपर, बौद्ध-धर्म का उपदेश सुनने के कारण, बहुत क्रुद्ध हुए। यहाँ तक कि उसे जला डालने का भी उपक्रम हुआ था। किंतु भास की वासवदत्ता में इस रानी के भाई का नाम दर्शक लिखा है। पुराणों में भी अजातशत्रु के बाद दर्शक, हर्षक, दर्भक और वंशक इन कई नामों से अभिहित एक राजा का उल्लेख है। किंतु महावंश आदि बौद्ध-ग्रंथों में केवल अजात के पुत्र उदयाश्व का ही नाम उदायिन्, उदयभद्रक के रूपांतर में, मिलता है। हमारा अनुमान है कि पद्मावती अजातशत्रु की बहन थी, और भास ने संभवतः (कुणीक के स्थान में) अजात के दूसरे नाम का ही उल्लेख किया है, जैसा कि उसने चंड-महासेन के लिये प्रद्योत नाम का प्रयोग किया है।

यदि पद्मावती अजातशत्रु की कन्या हुई, तो इन बातों को भी विचारना होगा कि जिस समय बिंबसार मगध में, अपनी वृद्धावस्था में, राज्य कर रहा था, उस समय पद्मावती का विवाह हो चुका था। क्योंकि प्रसेनजित् उसकी हमजोली का था। वह बिंबसार का साला था। कलिंगदत्त ने प्रसेनजित् को अपनी कन्या देनी चाही थी, किंतु स्वयं उसकी कन्या कलिंगसेना ने प्रसेन को वृद्ध देखकर उदयन से विवाह करने का निश्चय किया था।

"श्रावस्तीं प्राप्य पूर्वं च तं प्रसेनजितं नृपम्।
मृगयानिर्गतं दूराज्जरापांडुं ददर्श सा॥
× × ×
तमुद्यानगता सा वै वत्सेशं सख्युदीरितम्। इत्यादि
(मदनमंचुका लंबक)

अर्थात् पहले श्रावस्ती में पहुँचकर, उद्यान में ठहरकर, उसने सखी के बताए हुए वत्सराज प्रसेनजित् को, शिकार के लिये जाते समय, दूर से देखा। वह वृद्धावस्था के कारण पांडु-वर्ण हो रहे थे।

इधर बौद्धों ने लिखा है कि "गौतम ने अपना नवाँ चातुर्मास्य कौशांबी में, उदयन के राज्य-काल में, व्यतीत किया, और ४५ चातुर्मास्य करके उनका निर्वाण हुआ।

ऐसा भी कहा जाता है कि अजात के राज्याभिषेक के नवें या आठवें वर्ष में गौतम का निर्वाण हुआ। इससे प्रतीत होता है कि गौतम के ३५ वें या ३६ वें चातुर्मास्य के समय अजातशत्रु सिंहासन पर बैठा। तब तक वह बिंबसार का प्रतिनिधि या युवराज-मात्र था। क्योंकि अजात ने अपने पिता को अलग करके, प्रतिनिधि-रूप से, बहुत दिनों तक राज्य-कार्य किया था, और इसी कारण गौतम ने राजगृह का जाना बंद कर दिया था। ३५ वें चातुर्मास्य में ६ चातुर्मास्यों का समय घटा देने से निश्चय होता है कि अजात के सिंहासन पर बैठने के २६ वर्ष पहले उदयन ने पद्मावती और वासवदत्ता से विवाह कर लिया था, और वह एक स्वतंत्र शक्तिशाली नरेश था। इन बातों के देखने से यही ठीक जँचता है कि पद्मावती अजातशत्रु की ही बड़ी बहन थी; क्योंकि पद्मावती को अजातशत्रु से बड़ी मानने के लिये यह विवरण यथेष्ट है। दर्शक का उल्लेख पुराणों में मिलता है, और भास ने भी अपने नाटक में वही नाम लिखा है। किंतु समय का व्यवधान देखने से—और बौद्धों के यहाँ उसका नाम न मिलने के कारण—यही अनुमान होता है कि प्रायः जैसे एक ही राजा को बौद्ध, जैन और पौराणिक लोग भिन्न-भिन्न नाम से पुकारते हैं, वैसे ही दर्शक, कुणीक और अजातशत्रु ये नाम एक ही व्यक्ति के हैं। जैसे बिंबसार के लिये विंध्यसेन और श्रेणिक, ये दो नाम भी मिलते हैं। किंतु प्रोफ़ेसर गेजर अपने महावंश के अनुवाद में बड़ी दृढ़ता से अजातशत्रु और उदयाश्व के बीच में दर्शक नाम के किसी राजा के होने का विरोध करते हैं। कथा-सरित्सागर के अनुसार प्रद्योत ही पद्मावती के पिता का नाम था। इन सब बातों के देखने से यही अनुमान होता है कि पद्मावती बिंबसार की बड़ी रानी कोशला (वासवी) के गर्भ से उत्पन्न मगध-राजकुमारी थीं।

मगध में उदयन नाम का कोई राजा नहीं हुआ। अजातशत्रु के पुत्र का नाम उदयाश्व था। बौद्ध लोग इसे उदायिन् लिखते हैं। जैन लोगों ने उदयभद्रक इत्यादि नामों से इसका उल्लेख किया है। इसीके लिये वायु-पुराण में लिखा है—

"स वै पुरवरं राजा पृथिव्यां कुसुमाह्वयम्।
गंगाया दक्षिणे कोणे चतुर्थेऽब्दे करिष्यति॥"

अर्थात् वह राजा चौथे वर्ष पृथ्वी पर गंगा के दक्षिण तट पर पुष्पपुर-नामक नगर बसावेगा।

मगध के राज-वंश में यही उदायी, उदयभद्र और उदयाश्व के नाम से परिचित है। इसलिये उदयन से इसका कोई संबंध नहीं। उदयन कौशांबी का राजा था। उसके पुत्र का नाम बौद्धों ने 'बोधि' लिखा है। किंतु कथा-सरित्सागर के अनुसार विद्याधर-चक्रवर्ती नरवाहनदत्त उदयन का पुत्र था।

भारतवर्ष के ऐतिहासिक काल का यह एक प्रमुख राजा था, जिसने दो शक्तिशाली राष्ट्रों (मगध और अवंती) की राजकुमारियों से विवाह किया। इसके समय की घटनाओं ने आगे चलकर भारत के नक़्शे को बड़ी शीघ्रता से बदलना शुरू किया। इसके जीवन-काल में मगध, कोशल तथा अवंती, सब इसकी धाक मानते थे। अजातशत्रु को कोशल के पहले युद्ध में विजय मिली थी, किंतु दूसरी बार इसी की सहायता से वह उद्धत राजकुमार बंदी हुआ। उदयन ने अपने बाहु-बल से प्रतिष्ठा प्राप्त की थी।

किंतु विष्णु-पुराण की एक प्राचीन प्रति में कुछ नया शोध मिला है और उससे कुछ और नई बातों का पता चलता है। विष्णु-पुराण के चतुर्थ अंश के २१ वें अध्याय में लिखा है कि "तस्यापि जनमेजयश्रुतसेनोग्रसेनभीमसेनाः पुत्राश्चत्वारो भविष्यंति। १। तस्यापरः शतानीको भविष्यति योऽसौ... ... ...विषयविरक्तचित्तो... ... ...निर्वाणमाप्स्यति। २। शतानीकादश्वमेधदत्तो भविता। तस्मादप्यधिसीमकृष्णः अधिसीमकृष्णात् निचक्षुः यो गंगयापहृते हस्तिनापुरे कौशांब्यां निवत्स्यति।"

इसके बाद १७ राजों के नाम हैं। फिर "ततोप्यपरः शतानीकः तस्माच उदयनः उदयनादहीनरः" लिखा है।

इससे दो बातें व्यक्त होती हैं। पहली यह कि शतानीक कौशांबी में नहीं गए, किंतु निचक्षु-नामक पांडव-वंशी राजा हस्तिनापुर के गंगा में बह जाने पर कौशांबी गए। उनसे २६ वीं पीढ़ी में उदयन हुए। संभवतः उनके पुत्र अहीनर का ही नाम कथा-सरित्सागर में नरवाहनदत्त लिखा है।

दूसरी यह कि शतानीक इस अध्याय में दोनों स्थान पर "अपर-शतानीक" करके लिखा गया है। "अपर-शतानीक" का विषय-विरागी होना, विरक्त हो जाना, लिखा है। संभवतः यह शतानीक उदयन के ही पहले का, कौशांबी का, राजा है। अथवा बौद्धों की कथा के अनुसार

इसी की रानी का क्षेत्रज पुत्र उदयन है; किंतु वहाँ नाम— इस राजा का—परंतप है। जनमेजय के बाद जो "अपर-शतानीक" आता है, वह भ्रम-सा प्रतीत होता है; क्योंकि जनमेजय ने अश्वमेध-यज्ञ किया था, इसलिये जनमेजय के पुत्र का नाम अश्वमेधदत्त होना कुछ संगत प्रतीत होताहै। अतएव कौशांबी में इस दूसरे शतानीक की ही वास्तविक स्थिति ज्ञात होती है, जिसकी स्त्री किसी प्रकार (गरुड़-पक्षी द्वारा) हरी गई। उस राजा शतानीक के विरागी हो जाने पर उदय-गिरि की गुफा में उत्पन्न विजयी वीर उदयन अपने बाहु-बल से कौशांबी का अधिकारी हो गया। इसके बाद कौशांबी के सिंहासन पर क्रमशः अहीनर (नर-वाहनदत्त), खंडपाणि, नरमित्र और क्षेमक, ये चार राजे बैठे। इसके बाद कौशांबी के राज-वंश या पांडव-वंश का अवसान होता है।

जयशंकर "प्रसाद"

प्रेत-प्रसंग

प्रेत-बालिका

भूत-प्रेतों की अनेक बातें संसार के सभी देशों में प्रचलित हैं। भारत का कोई भी स्थान ऐसा न होगा, जहाँ आपको प्रेतों के विषय में कुछ आश्चर्य-जनक बातें सुनने में न आवें। इस देश में तो ऐसी बातों का प्रचार प्रायः अशिक्षित लोगों, विशेषकर स्त्रियों, में ही पाया जाता है, परंतु पश्चिम (योरप, अमेरिका आदि) में बड़े-बड़े वैज्ञानिक भी अब प्रेतात्माओं के अस्तित्व पर विश्वास करते हैं। 'रिव्यू-ऑफ़-रिव्यूज़'-नामक मासिक पत्र के भूतपूर्व संपादक, स्वर्गीय श्रीयुक्त स्टेड तथा विज्ञानाचार्य सर ऑलिवर लॉज साहब प्रेतात्माओं के अस्तित्व पर पूर्ण विश्वास रखनेवालों में थे, और हैं। पश्चिमी लोगों ने इन अमूर्त प्राणियों के साथ बातचीत करने के साधन भी निकाले हैं। अमेरिका के प्रसिद्ध आविष्कारकर्ता, वैज्ञानिक पंडित एडीसन साहब एक ऐसे सूक्ष्म यंत्र के निर्माण की चेष्टा में हैं, जो प्रेतलोक-निवासियों से मर्त्यलोकवालों की बातचीत करा सकेगा। योरप और अमेरिका में इस समय कुछ लोग—खासकर स्त्रियाँ—ऐसे हैं, जो प्रेतात्माओं से बातचीत करा देने का दावा करते हैं। इनको 'माध्यम' या 'मध्यस्थ' कहते हैं। ये प्रेतात्माओं को बुला सकते और उनसे पूछकर प्रश्नों के उत्तर दे सकते हैं। ये इस काम की दक्षिणा भी खूब लेते हैं। जैसे हमारे देश में ऐसी स्त्रियाँ होती हैं, जिनके सिर पर देवी, नारसिंह, भैरव, मियाँ आदि आते हैं, वैसे ही पश्चिमी देशों में ये 'माध्यम' हैं। सभी माध्यम सच्चे ही नहीं होते। इनमें से बहुतेरे पाखंड और ढोंग से धनोपार्जन करते हैं।

प्रेतात्माओं के संबंध में खोज करने के लिये पश्चिममें एक बड़ी संस्था है। इसका नाम Psychic Research Society (आध्यात्मिक अन्वेषण-सभा) है। इसने इस विषय पर अनेक ग्रंथ प्रकाशित किए हैं, जिनमें बड़ी-बड़ी विचित्र और आश्चर्य-जनक बातें लिखी हैं। हिंदी में भी इस विषय पर "छाया-दर्शन" नाम का एक ग्रंथ मिलता है। यह उन्हीं अँगरेज़ी पुस्तकों के आधार पर लिखा गया है।

पाश्चात्य लोगों को खोज का बहुत शौक़ है। वे प्रत्येक महत्त्व-पूर्ण घटना को लेख-बद्ध करते जाते हैं। फिर उन वृत्तांतों पर विचार करके तत्संबंधी नियमों का आविष्कार करते हैं। उन अन्वेषणों में उनसे भारी भूलें भी होती हैं; परंतु उनके आगे आनेवाली पीढ़ियाँ कालांतर में उनका संशोधन कर देती हैं। किंतु इस देश में घटनाओं को लेख-बद्ध करने का विचार तक लोगों को नहीं

है। फिर अन्वेषण हो, तो कैसे? विचित्र घटनाएँ तो संसार में सर्वत्र होती हैं, परंतु उन पर ध्यान केवल थोड़े ही लोग देते हैं। हाल में प्रेतात्माओं के विषय में एक बड़ा ही आश्चर्य-जनक रहस्य खुला है। उसी का वर्णन आगे दिया जाता है।

श्रीमती एडा रॉबिंस नाम की एक स्त्री के एक लड़की उत्पन्न हुई। उत्पत्ति के कुछ ही देर बाद वह मर भी गई। जिस दिन उसकी मृत्यु को ठीक एक वर्ष हुआ, उसी दिन, आधी रात के समय, उसकी खाट के पास एक ज्योतिर्मयी मूर्ति प्रकट हुई। उसके हाथ में बच्चा था। उसने उसे मा की छाती से लगा दिया।

इस नए बच्चे के शरीर की आकृति उसकी मृत कन्या के ही सदृश थी। यह भी लड़की ही थी। इसकी जीभ में भी मृत बालिका का-सा ही एक दोष था।

यह अमानुषिक छाया-दर्शन उस समय हुआ, जब घड़ी बारह बजा रही थी। पहली कन्या की मृत्यु एक वर्ष पहले ठीक इसी समय हुई थी।

श्रीमती रॉबिंस की 'प्रेत'-कन्या की कहानी का इतना भाग तो एक निश्चित तथ्य है। किंतु इसका शेष भाग इससे भी अधिक आश्चर्य-जनक है।

श्रीयुत वी० एच्० रॉबिंस और उनकी धर्म-पत्नी अपने तीन वर्ष के एक सुंदर बालक के साथ बड़े सुख से जीवन व्यतीत करते थे। मा को इस बात की सदा प्रबल इच्छा रहती थी कि उसके यहाँ एक कन्या उत्पन्न हो, जिसमें भाई-बहन दोनों मिलकर खेला करें। अंत को उसकी प्रार्थना ईश्वर के यहाँ स्वीकृत हुई। उसके गर्भ से एक कन्या का जन्म हुआ। परंतु जन्म के कुछ ही घंटे बाद उसकी जीवन-ज्योति बुझ गई।

माता का शोक

श्रीमती रॉबिंस की अवस्था ऐसी शोचनीय थी कि जब तक वह थोड़ा-बहुत स्वस्थ न हो गई, उसे नन्ही-सी बालिका की मृत्यु का समाचार नहीं दिया गया।

जब अंत को उनके पति ने प्रकारांतर से उन्हें मृत्यु की सूचना दी, तो उनका रोग सहसा फिर लौट आया, और कई सप्ताह तक वह मृत्यु और जीवन के बीच लटकती रहीं। डॉक्टर उनके जीवन से निराशा प्रकट करने लगे। पति ने जब प्यारी स्त्री की जीवन-लता को अपनी आँखों के सामने इस प्रकार धीरे-धीरे मुरझाते देखा, तो वह पागल-सा हो गया। श्रीमती में जीने की कोई कामना नहीं देख पड़ती थी। उनके तीव्र शोक और मनस्ताप को देखकर पाषाण का हृदय भी पसीज उठता था।

जब उनके नीरोग होने की कुछ भी आशा नहीं रही, तब एक पड़ोसी उनके व्याकुल पति के पास गया, और कहने लगा—"मेरी स्त्री प्रेतात्माओं की विद्या जाननेवाली (spiritualist) है। माध्यम के रूप में वह आश्चर्य-जनक बातें कर सकती है। यदि आपको आपत्ति न हो, तो मैं उसे आपके पास भेज दूँ।"

यह सुनते ही रॉबिंस खुशी से उछल पड़ा। 'माध्यम' को चटपट बुला लिया गया। आकर उसने कहा, जब से कन्या मरी है, मुझे प्रति-दिन उसका दर्शन होता रहा है। यह सुनकर माता को बच्चे के विषय में और बातें जानने की बड़ी उत्सुकता हुई।

वह पूछने लगी—"लड़की की आकृति कैसी देख पड़ती थी? उसके साथ प्रेत-लोक में कैसा बर्ताव होता था? क्या वह मुझे याद करती थी?

माध्यम ने लड़की के विषय में ऐसे विस्तार के साथ बातें सुनाईं कि मा को विश्वास हो गया कि यदि माध्यम चाहे, तो वह प्रेतात्मा के अभिभावकों के साथ मेरी भी बातचीत करा दे सकती है। बस, उसी समय से उसका स्वास्थ्य सुधरना शुरू हो गया।

माध्यम की प्रतिज्ञा

युवती माता ने अपने को पूर्ण-रूप से माध्यम के प्रभाव के नीचे कर दिया—उसे अपने ही यहाँ ठहरा लिया। माध्यम रॉबिंस के घर रहने लगी। दोनों स्त्रियाँ प्रति दिन कई-कई घंटे प्रेतात्माओं के साथ बातचीत में व्यतीत करती थीं।

श्रीयुत रॉबिंस ने कुछ आपत्ति न की। वह समझता था कि चाहे जिस बात से मेरी स्त्री का स्वास्थ्य ठीक हो जाय, और वह सुखी रहे ; उसमें 'किंतु', 'परंतु' करने की मुझे कुछ आवश्यकता नहीं।

श्रीमती रॉबिंस एक बड़ी ही धर्म-निष्ठ स्त्री थी। उसने ईसाइयों की धर्म-पुस्तक बाइबिल में अनेक बार पढ़ा था कि अलीशा ने विधवा के मृत पुत्र को फिर से जिला दिया था।

इस घटना को मन में रखकर वह ऐसी बात की आशा कर रही थी, जो वर्तमान काल में कभी देखने में नहीं आई। इसलिये वह अपने इन विचारों को सूचना अपने पति तक को देते डरती थी।

वह अपने मन में सोचती थी कि क्या कोई कारण हो सकता है कि मेरी कन्या फिर जीवित न हो सके? इस विचार ने उस पर इतना अधिकार कर लिया कि वह एक दूसरे 'माध्यम' के पास दौड़ी हुई गई, और उससे यह प्रश्न, जिसने उसे व्याकुल कर रक्खा था, लिखकर पूछा कि "मैं अपनी कन्या चाहती हूँ। क्या वह फिर जिलाई जा सकती है?"

माध्यम ने उत्तर दिया—"दृढ़ विश्वास रक्खो। कोई भी बात असंभव नहीं।" यह सुनकर मा हर्ष से फूली न समाई।

श्रीमती रॉबिंस ने शीघ्र ही यह बात पहले माध्यम (अर्थात् उस पहली स्त्री) को बताई। उसने भी यही कहा कि वह इसे सर्वथा संभव समझती है। उसने माध्यमों के कार्य-कलाप के विषय में अनेक बातें इसे बताईं। कहा—"माध्यम यह कर सकता है, वह कर सकता है।" उसने इसके विश्वास को दृढ़ करने और उत्कंठा को बढ़ाने के लिये इसे प्रेतात्माओं के छाया-चित्र (फ़ोटो) भी दिखाए।

माध्यम ने इसे परीक्षा के लिये तैयार करने के पहले उपवास और व्रत कराए। जब यह सब तरह से तैयार हो गई, तब इसने माध्यम से प्रार्थना की कि कृपया देखिए तो सही, मेरी लड़की का शीघ्र ही पुनर्जन्म हो सकता है कि नहीं? अब वह दिन बहुत निकट आ पहुँचा था, जिस दिन, एक वर्ष पहले, कन्या का जन्म और मृत्यु हुई थी।

दुबारा आने की रात्रि

माध्यम ने कहा, उसने बच्चे की अभिभावक आत्माओं से पूछा था। उसे कल उत्तर मिलेगा।

दूसरे दिन माध्यम 'खेलने' लगी। फिर उसने यह समाचार सुनाया कि अभिभावक आत्माओं ने कन्या को पार्थिव शरीर देकर शीघ्र ही तुम्हारी गोद में रख देने का वचन दिया है। यह सुनकर माता की श्रद्धा और विश्वास की सीमा नहीं रही। परंतु बच्चे की आत्मा को कैसे और कब शरीर मिलेगा, यह वह माध्यम स्त्री न बता सकी।

अंत को उसने सूचना दी कि कन्या के फिर शरीर धारण के लिये उसके जन्म और मृत्यु का

दिन ही चुना गया है, और एक प्रौढ़ आत्मा उसे पृथ्वी पर छोड़ने आवेगी।

उन आकाश-रूप या वायुमय, सूक्ष्म-रूप, अदृश्य पाहुनों के स्वागत के लिये लंबी-चौड़ी तैयारियाँ की गईं। जब वह दिन निकट आया, सारा घर फूलों से भर दिया गया। सारा घर गुलाब और जूही की सुगंध से महकने लगा।

माध्यम ने शाम को उक्त परिवार से कहला भेजा कि अमुक-अमुक घटनाएँ घटेंगी, सब लोग तैयार रहें। उसने विशेष-रूप से प्रत्येक को आज्ञा दी कि सफ़ेद वस्त्र पहनना, और रसोई-घर के द्वार खुले रखना। उसने यह भी कहा कि अपने पड़ोसियों को इसकी सूचना बिलकुल न देना। रात हुई, श्रीमती रॉबिंस एकांत में बैठ गई। उसे डर-सा मालूम पड़ने लगा, जिससे वह व्याकुल-सी हो गई।

उसने सामने का दरवाज़ा खोला; डरती-डरती आँगन में गई। आकाश में बड़े घने और काले बादल दौड़ रहे थे, जिनसे चंद्रमा और तारों का प्रकाश छिप-सा गया था। गरमी की ऋतु थी, परंतु वह अपनी कँपकँपी को न रोक सकती थी।

वृक्षों में हवा सरसरा रही थी, जिससे मा की कँपकँपी और भी बढ़ रही थी। प्रत्येक शब्द पर वह डर से काँप उठती थी। घबराहट में वह दौड़कर अपने कमरे में जा दबकी।

पति को दूसरे कमरे में शांति-पूर्वक सोया हुआ देख उसे कुछ धैर्य हुआ, और वह कपड़े उतारने लगी। कुछ ही मिनटों में वह अपने बिछौने में जा लेटी। मगर नींद कहाँ? वह आँखें खोले बड़ी उत्कंठा में बैठकर उन अमूर्त अतिथियों के आने की प्रतीक्षा करने लगी, क्योंकि माध्यम ने उसे बता रक्खा था कि वे कन्या को लेकर आवेंगे।

हवा घन के साथ बराबर सरसरा रही थी। प्रत्येक नया शब्द मा की उत्सुकता को और भी बढ़ा देता था। वह डरती हुई मन में कह रही थी कि न-मालूम अब क्या होनेवाला है।

घड़ी ने ग्यारह बजाए। उसकी एक-एक आवाज़ उस सन्नाटे में पीतल के पात्र की तरह टंकार करती थी।

थोड़ी ही देर बाद एक खिड़की पर अव्यवस्थित-रूप से खटखटाहट होने लगी। इससे उसका डर और भी बढ़ गया। परंतु उसे मालूम हो गया कि यह शब्द पवन से परदे के हिलने से हो रहा है।

उसका मन अभी शांत न होने पाया था कि और भी अधिक शोर सुनाई देने लगा। इस बार कुछ भी संदेह न हो सकता था। निश्चय ही रसोई-घर के दरवाज़े धीरे-धीरे खोले जा रहे थे।

बहुत देर तक किर-किर का शब्द होता रहा। इसके बाद ज़ीने के घने अंधकार में एक हलका-सा प्रकाश देख पड़ा। डर के मारे उसका शरीर चेतना-शून्य-सा हो गया!

वह धुँधला प्रकाश धीरे-धीरे ज़ीने पर चढ़ गया। वह कान लगाकर पैरों की आहट को सुन रही थी, परंतु कुछ भी आहट सुनाई न दी। इससे मारे डर के उसका लहू जम गया। सरसराहट का शब्द उसे निकट आता मालूम हो रहा था। अंत को उसके शयन-गृह के बाहर आकर वह शब्द बंद हो गया। शायद कोई एक मिनट तक बिलकुल सन्नाटा रहा।

निश्चय ही उसके दरवाज़े के बाहर कोई चीज़ थी।

श्रीमती रॉबिंस की आँखें अंधकार में जैसे किसी को ढूँढ़ रही थीं। अंत को उन्होंने एक छोटे-से

छिद्र में जुगनू का-सा फीका प्रकाश देखा। वह बड़ा होता गया। धीरे-धीरे उसने मनुष्य का आकार धारण कर लिया। वह आकृति बिछौने की ओर लुढ़कती हुई जान पड़ती थी। चेहरे का आकार-प्रकार कुछ भी न था, वह छाया का एक धब्बा-सा था। ज्यों-ज्यों वह ज्योतिर्मयी मूर्ति निकट आती गई, भय से काँपती हुई माता को दिखाई देने लगा कि उसकी गोद में कोई चीज़ है। वह सफ़ेद और कोमल मलमल के टुकड़े में लपेटा हुआ एक बच्चा था।

ज्योंहीं वह छाया-मूर्ति श्रीमती रॉबिंस की खाट के पास पहुँची, वह डरकर पीछे हट गई, मगर फिर बाँहें फैलाए हुए आगे बढ़ी। तब माता को ऐसा अनुभव हुआ कि उसकी गोद में एक छोटा-सा गरम बच्चा साँस ले रहा है।

संदेह

वह विचित्र छाया फिर पीछे हटने लगी, और घटते-घटते नीले हरे रंग के प्रकाश का एक धब्बा-सा रह गई। बाद को वह खिसकती हुई धीरे-धीरे सीढ़ियों के नीचे उतर गई।

माध्यम की आज्ञाओं का पालन करते हुए श्रीमती रॉबिंस कोई पाव घंटे तक बिलकुल चुप पड़ी रही। परंतु जब उसने बच्चे को अपनी छाती के साथ लगाया, तब वह चिल्लाने लगा, जिससे कमरे की निस्तब्धता नष्ट हो गई। जब बालक की नन्ही-नन्ही उँगलियों और होंठों का श्रीमती को स्पर्श हुआ, तब उसे विचित्र आनंद का अनुभव हुआ। वह आनंद के वेग में ऐसे ज़ोर से हँसी कि उसका पति जाग उठा।

वह उच्च स्वर से कहने लगी कि मेरी कन्या मेरे पास फिर आ गई है। यह सुनकर उसका पति बिछौने पर से उछल पड़ा। उसने झट बिजली की बत्ती जलाई। जब उसने बच्चे की शकल हूबहू मृत बालिका की-सी पाई, तब वह चकित और अवाक् रह गया। पहली बालिका की जीभ में एक छोटा-सा दोष था। पिता ने झटपट इस दूसरे बच्चे की जीभ देखी। परंतु इसके भी वैसा ही दोष देख उसके आश्चर्य की कोई सीमा न रही। किंतु इससे उसकी पत्नी के हर्ष का कोई वारापार न था।

करते-कराते सवेरा हो गया। श्रीमती रॉबिंस बिछौने पर पड़ी बालिका को देखकर कभी रोती और कभी हँसने लगती। इस नए बच्चे के शरीर का आकार इतना बड़ा था, जितना कि पहले बच्चे का अब होता, यदि वह इस समय तक जीता रहता।

तीन दिन के बाद 'माध्यम' वापस आकर कहने लगी—"मुझे आज तक पता नहीं लगा कि मेरा प्रयत्न सफल हुआ कि नहीं। मैं आज तक देहातीत वृत्ति में रही हूँ। आज जब श्रीमती रॉबिंस का पत्र मिला कि बच्चा वापस आ गया है, तब मैं उठी हूँ। इस परिश्रम से मैं बहुत कमज़ोर और दुबली हो गई हूँ।

परंतु इसके बाद वह श्रीयुत रॉबिंस से रुपए की इतनी भारी-भारी रक़में माँगने लगी कि उसे उस पर संदेह हो गया। ख़ासकर जब उसने अपने पति और पुत्री को भी रॉबिंस ही के घर में ला ठहराया और वे उसके ख़र्च पर गुलछर्रे उड़ाने लगे, तब तो यह संदेह और भी बढ़ गया।

अब वह उन हालतों की जाँच करने लगा, जिनसे प्रेत बालिका का प्रादुर्भाव हुआ था।

एक बात तो उसे यह मालूम हुई कि जिस माध्यम के पास उसकी स्त्री गुप्त रूप से गई थी, जिसने उसे एक विचित्र स्वप्न सुनाकर पहले-

पहल आशा बँधाई थी, वह मूल-माध्यम की सखी थी ; दोनों में गहरी मित्रता थी।

दूसरे, उस माध्यम के यहाँ एक कन्या उत्पन्न हुई थी, जो प्रेत-बालिका से बहुत मिलती-जुलती थी।

तीसरे, पहली माध्यम का पति एक रेल-गाड़ी को देखने गया था, जो बच्चे के माने हुए पुनर्जन्म के समय से कुछ ही पहले आई थी।

चौथे, उसने यह भी मालूम किया कि दूसरी माध्यम की कन्या श्रीमती रॉबिंस को प्रेत-बालिका की छाया का दर्शन होने के एक दिन पहले ग़ायब हो गई थी।

अब रही आधी रात के समय प्रकाशमयी मूर्ति के दर्शन की बात। सो नक़ली आध्यात्मिक चमत्कारों की जाँच करनेवाले जानते हैं कि एक चतुर मदारी फ़ेल्ट जूतों (felt shoes) और रात को जुगनू की तरह चमकनेवाली एक औंस जाली (phosphorescent Gauze) के साथ क्या कुछ कर सकते हैं।

यह चीज़ इतनी बारीक होती है कि इसका छः गज़ का टुकड़ा हाथ की हथेली में छिपाया जा सकता है।

मूर्ति बढ़ रही है, यह भ्रम, प्रकाशमयी जाली को क्रमशः अधिकाधिक छोड़ते जाकर और फिर उसे खींचकर सिर पर लाकर, कराया जाता है। ऐसी 'अभिव्यक्ति' की सफलता दर्शक के मन की अवस्था पर निर्भर है। वह पुष्प-गंध की सहायता से भ्रम को ग्रहण करने के लिये और भी अधिक तैयार हो जाता है।

उस बालिका का अलौकिक रीति से पुनर्जन्म हुआ कि नहीं, इस विचार को छोड़कर श्रीमती रॉबिंस ने उसे अपनी दत्तक पुत्री बना लिया है। 'शिकागो-हेरल्ड' पत्र का संवाददाता लिखता है कि वह उस पर अपनी संतान के समान ही प्रेम करती है, और उसका नाम भी उसने वही रख लिया है, जो उसकी पहली बालिका का था।

संतराम बी० ए०

नाम-माहात्म्य

यदपि सुकवियों ने है भाखा—
"कर्म-प्रधान विश्व करि राखा",
तदपि आजकल कर्म-कहानी
अप्रधान गिनते हैं ज्ञानी ॥ १ ॥
जाती रही काम की महिमा ;
है अब एक नाम की महिमा।
काम नहीं है नाम-सहायक ;
किंतु नाम है काम-सहायक ॥ २ ॥
हानि नहीं, यदि काम न होगा ;
पर दुख है जो नाम न होगा।
चाहे नष्ट काम हो जाए,
पर सब जगह नाम हो जाए ॥ ३ ॥
किसी भाँति जो नाम बढ़ेगा,
अनायास ही काम बढ़ेगा।
पहले नाम किया जाता है,
तब फिर काम किया जाता है ॥ ४ ॥
छोड़ो काम काज की बातें ;
सोचो नाम-वृद्धि की घातें।
काम करोगे, काम बढ़ेगा ;
नाम करोगे, नाम बढ़ेगा ॥ ५ ॥
अजी काम के करनेवालो,
यह सिद्धांत कंठ कर डालो—
पहले अपना नाम बढ़ाना,
उसके बाद काम ठहराना ॥ ६ ॥
सच्चा काम नहीं जग लखता ;
दृष्टि नाम पर ही है रखता।
जग-जाहिर यदि नाम न होगा,
सफल एक भी काम न होगा ॥ ७ ॥

नाम वस्तु का जब जानेंगे,
तभी उसे हम पहचानेंगे।
ज्ञान कठिन है बिना नाम के ;
वही चाहिए हेतु काम के ॥ ८ ॥
नाम काम का मूल-हेतु है ;
भव-सागर के लिये सेतु है।
अतः नाम सब भाँति बढ़ाओ ;
लेख लिखाओ, भेंट चढ़ाओ ॥ ६ ॥
"चहुँ युग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ ;
कलि विशेष नहिं आन उपाऊ।
कहहुँ कहाँ लगि नाम-बड़ाई ;
राम न सकहिं नाम-गुण गाई ॥" १० ॥

कामताप्रसाद गुरु

कला
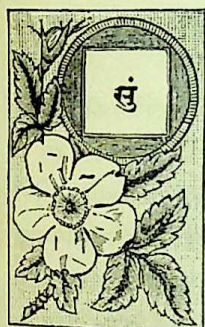
दर चित्रों, सुप्रभ प्रतिमाओं और भव्य प्रासादों को रास्ते-चलते आँखें ढूँढ़ा करती हैं। मीठे कंठ से निकली हुई संगीत-ध्वनि को सुनने के लिये कान सदा तरसा करते हैं। मानव-प्रकृति के उद्गम-स्थान से ही इस सरल रुचि का स्रोत निकलता है। लोग अपने कमरे को चारु चित्रों तथा चीनी, पीतल और पत्थर की प्रतिमाओं से खूब सजाते हैं। जो शिक्षित अथवा साहित्य-प्रेमी होते हैं, वे तरह-तरह की पुस्तकों से अपनी ग्रंथ-कुटी की शोभा बढ़ाते हैं। समाज की उच्चतम श्रेणी में इस रुचि का परिष्कृत रूप देखने को मिलता है। परंतु निम्न-तम श्रेणी के मनुष्यों में भी यह रुचि किसी-न-किसी अंश में अवश्य पाई जाती है। दीन-हीन चमार वस्त्र के थान की तसवीरों को ही अपनी कच्ची दूकान की दीवाल पर चिपकाकर संतोष कर लेता है। दूकान की अधिक श्री-वृद्धि करने के लिये पटनी पर दो-चार मिट्टी के टूटे-फूटे खिलौने भी रख देता है। अपढ़ व्यक्ति की रुचि की गति यहाँ आकर रुक जाती है। निर्बोध बालक तनिक-सी बात पर मचल जाता है। पर वह भी गुड़िया देखकर रोना भूल जाता है, चित्र देखते ही उस पर टूट पड़ता है। जिस वस्तु के लिये उसने हठ ठाना था, उसका उसे ध्यान ही नहीं रहता। स्वाभाविक रुचि की यह प्रबलता उसे मोह-जाल में फँसा लेती है। प्रतिदिन की ही साधारण घटनाएँ कला और मानव-जीवन के पारस्परिक संबंध के गूढ़ रहस्य का उद्‌घाटन करती हैं। वे मानव-रुचि की प्रवृत्ति पर प्रकाश डालती हैं। इसमें कुछ संदेह नहीं कि आदि-काल से ही मानव-जीवन और कला का अटूट संबंध रहा है। मानव-रुचि की सर्वकालीन प्रगति इसका प्रमाण है। इसी रुचि की प्रेरणा से कमरे में चित्रों तथा पुस्तकों का संग्रह होता है। सभ्यता के प्रसार के साथ-साथ इस अक्षय रुचि का क्रीड़ा-क्षेत्र भी अधिक विस्तृत हो गया है। हम स्पष्ट देखते हैं कि कला सभ्य मनुष्य-समाज का अच्छेद्य अंग बन गई है।

मानव-हृदय पर इस प्रकार शासन करनेवाली कला विश्व के इतिहास में महत्त्व का स्थान रखती है। इसका परिचय प्राप्त कर लेना मानों उससे संबंध रखनेवाले देश का कच्चा चिट्ठा जान लेना है।

प्रारंभ में हम कला के दो मुख्य भेद कर सकते हैं; १—सूक्ष्म या ललित कला, और २—स्थूल अथवा यंत्र-कला। शिल्प, तक्षण (नक़ाशी या संगतराशी), चित्र-लेखन, संगीत तथा काव्य की गणना ललित कला में की जाती है। स्थूल कला का संबंध लुहार, बढ़ई, जुलाहे और कुँभार आदि से होता है। ललित कला अत्यंत उत्कृष्ट है। वह अपनी मधुरता से मनुष्य का जीवन सुख-मय बना देती है। उसकी अदा पर मानव-हृदय लट्टू हो जाता है। स्थूल कला में वह सरसता कहाँ ? उसमें तड़क-भड़क का अभाव रहता है। उसका एकमात्र उद्देश्य हमारे जीवन की आवश्यकताओं की पूर्ति करना है। परंतु उक्त दोनों प्रकार की कलाएँ हमें मनुष्य-जाति के विकास का इतिहास समझने में ख़ासी सहायता देती हैं। ललित कला में हम उसके नैतिक एवं मानसिक विकास का प्रतिबिंब देखते हैं। स्थूल कला हमें उसकी भौतिक उन्नति का दिग्दर्शन कराती है। जगत्-प्रसिद्ध अजंता-गुफा की चित्रकारी और पुरानी पाषाण-मूर्तियाँ प्राचीन भारत के गौरव का बखान करती हैं। इतिहास इनकी ही सहायता से पुरातन भारत की नैतिक एवं मानसिक उन्नति का अनुमान करते हैं। आधुनिक काल में पश्चिमी देशों ने स्थूल कला में आश्चर्य-जनक उन्नति की है। वायु-यान,

वाष्प-यंत्र,' विद्युत्-यंत्र, तोपें और अन्य कितने ही नूतन आविष्कारों ने संसार को चकित कर दिया है। इसी को भौतिक उन्नति की चरम सीमा कहते हैं।

लकड़ी, धातु या शीशे पर, उनकी सुंदरता बढ़ाने के लिये, फूल-पत्ती के चित्र बनाना, अथवा कपड़े में बेल-बूटे काढ़ना मध्यम श्रेणी की कला है। उसकी गिनती उपर्युक्त दोनों श्रेणियों की कलाओं में से किसी में की जा सकती है। यह तो कारीगर की कुशलता पर निर्भर है कि वह इस साधारण कृति को इतना मनोहर बना दे कि कला-कोविद तक उसकी गणना ललित कला की श्रेणी में करने लगें।

स्थूल कला की उत्पत्ति का मूल-कारण मनुष्य की बढ़ रही आवश्यकताएँ हैं। भोजन, वस्त्र, शयन आदि की आवश्यकता प्रतीत होने के कारण मनुष्य ने उन आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये हल, चक्की, चूल्हा, बर्तन, वस्त्र और कुटी का निर्माण किया। जगत् का शैशव-काल बीत गया। सभ्यता की पुकार ने लोगों के कर्ण-कुहरों में प्रवेश किया। उधर लोगों की आवश्यकताओं में वृद्धि हुई, इधर संसार की आँखों के सामने नवीन आविष्कारों का इंद्र-जाल खड़ा हो गया। इस प्रकार स्थूल कला की सृष्टि हुई।

उपयोगिता ही स्थूल कला का प्रधान गुण है। गृह की सुंदरता देखकर उसकी प्रशंसा करने के लिये हम यही कहते हैं कि यह घर तो राजों-महराजों के रहने-योग्य है। 'रहने-योग्य है', इन्हीं तीन शब्दों के द्वारा, उपयोगिता की दृष्टि से, गृह की प्रशंसा की जाती है। उस घर का कोई मूल्य नहीं, जो देखने में तो अत्यंत स्वच्छ और सुंदर हो, पर वायु और प्रकाश के आने के लिये उसमें कहीं रास्ता ही न हो। सारांश यह कि स्थूल कला के अंतर्गत जितनी भी वस्तुएँ हैं, उनका मूल्य उनकी उपयोगिता पर निर्भर है। अर्थहीन व्यक्ति अलंकार और आभरण-ऐसी वस्तुओं का मूल्य बढ़ाने के स्थान में घटा ही देता है। सच पूछिए तो व्यर्थ की सजावट के कारण उनका रंग फीका पड़ जाता है—वे कुरूप हो जाती हैं। परिमार्जित रुचि के मनुष्यों की नज़रों में वे कभी नहीं चढ़तीं।

ललित कला के विषय में पूर्ण ज्ञान प्राप्त कर लेना अधिक कठिन है। इसके विषय में कोई निश्चित सम्मति भी सहसा नहीं दी जा सकती। विद्वानों में इसके उद्गम और उद्देश्य के विषय में सदा से भयंकर मत-भेद चला आ रहा है। ऐसे सघन वन में घुसकर हम भटकना नहीं चाहते। हम तो उसके संबंध की मुख्य-मुख्य बातों का ही अनुशीलन करेंगे।

ललित कला के चमत्कार का प्रभाव हमारे मस्तिष्क पर, आँखों और कानों के द्वारा, पड़ता है। केवल येही दो ज्ञानेंद्रियाँ इस कला को हमारे मर्म-स्थल के छूने में सहायता देती हैं। अतः हम उसके दो भेदों को 'कर्ण-कला' और 'चक्षु-कला' के नाम से पुकारते हैं। यह स्पष्ट ही है कि काव्य और संगीत कर्ण-श्रेणी की कलाएँ हैं; और चित्र-लेखन, तक्षण तथा शिल्प चक्षु-श्रेणी की। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिये इन कलाओं को अनेक जड़ पदार्थों की सहायता लेनी पड़ती है। यदि उन पदार्थों की संख्या और स्थूलता को आधार मानकर हम इनका वर्ग-क्रम निश्चित करें, तो हमें सर्वोत्कृष्ट स्थान काव्य को देना पड़ेगा, और शिल्प को सबसे अधम दर्जे में रखना पड़ेगा।

शिल्प-कला के प्रस्फुटित करने में पदार्थों की खूब ही सहायता लेनी पड़ती है। उसका सौंदर्य प्रकट करने के लिये ईंटों और पाषाण-खंडों के क्रम पर ध्यान देना पड़ता है। उनकी काँट-छाँट ही मंदिर की शोभा बिगाड़ या बना देती है। इतने परिश्रम के बाद जो भव्य वस्तु बनकर तैयार होती है, उसका रूप एक क्रम-विशेष में रक्खे हुए ईंट और पत्थर के ढेर के सदृश ही होता है। तक्षण-कला में भी जड़ पदार्थों की सहायता लेनी पड़ती है। परंतु इसकी करतूत शिल्प-कला से निराली ही होती है। जो दिव्य शिला-मूर्ति आँखों के सामने आती है, वह एक नई चीज़ होती है। पाषाण-ऐसे कठोर पदार्थ को कौशल-द्वारा किसी चैतन्य पदार्थ के सदृश बना देना तक्षण-कला का ही काम है। इसी बात में यह शिल्प-कला से बाज़ी मार ले जाती है। क्योंकि शिल्प-कला तो जड़ पदार्थ के द्वारा जड़ पदार्थ के अनुरूप वस्तु को ही जन्म देती है।

चित्र-लेखन में जड़ आधार की संख्या और भी परिमित हो जाती है; उसकी स्थूलता भी घट जाती है। शिल्पी और भास्कर (संगतराश) को अपनी कलाओं का चमत्कार दिखलाने के लिये अधर तक में स्थान मिल

जाता है, परंतु चित्र-लेखन-कला को अभिव्यक्त करने के लिये बेचारे चित्रकार को एक स्थूल पट पर अपनी कला की करामात दिखलानी पड़ती है। विस्ताराभाव के रहने पर भी वह रेखाओं की सहायता से इतने चित्ताकर्षक चित्र बनाता है कि बस, यही जी चाहता है कि चित्रकार के हाथ चूम लो। कितना सुंदर बालक है? गालों पर कैसी सुर्ख़ी है? और कितना चंचल है? वह देखो, माता की गोद से कूदा ही पड़ता है। अब गिरा, अब गिरा। जो कला इन सुकुमार रूप-रंग और भावों को चित्रित करने में कमाल कर दिखाए, उसके, उपर्युक्त दो कलाओं से, अधिक उत्तम होने में किसे संदेह होगा? परंतु संगीत-कला और भी ग़ज़ब ढाती है। केवल ध्वनि-राशि उसकी सहायता करती है। इस ध्वनि का क्रम संगीत में इतना प्रभावोत्पादक होता है कि हृदय-तंत्री का प्रत्येक तार बज उठता है। काव्य-कला संगीत-कला से भी बढ़ी-चढ़ी है। वह ध्वनि का सहारा लिए बिना ही मानव हृदय के कोने-कोने को छान डालती है। कुछ शब्दों को एक क्रम-विशेष में रख देने से वह विद्युत्-प्रवाह पैदा हो जाता है, जो हमारी विचित्र दशा कर देता है। सर्वोत्कृष्ट काव्य-कला की महिमा कुछ ऐसी ही है।

कला के इस श्रेणी-भेद पर दृष्टि डालने से उसके संबंध की दो-चार मुख्य बातें बिलकुल स्पष्ट हो जाती हैं। प्रथम तो यह कि जड़ पदार्थ कला का आधार है। शिल्प में ईंट और पत्थर की आवश्यकता पड़ती है, तो काव्य में शब्दों की। दूसरे यह कि हृदय पर अपना प्रभाव डालने के लिये उसे कर्ण और चक्षु का मुँह ताकना पड़ता है। और, तीसरे यह कि जड़ पदार्थ कर्ण और नेत्र, ये कला-कोविद के साधन-मात्र हैं। इनके द्वारा उसकी अंतरात्मा दर्शक की अंतरात्मा से संभाषण करती है। कला की कृतियाँ सांकेतिक होती हैं, चाहे वे गगन-चुंबी देवालय हों, अथवा सतसई के दोहे। उनके गुण का प्रभाव अंतःकरण पर पड़ता है। कला वास्तविकता का मनोभव रूप में प्रतिपादन है—"Art is the presentation of the real in its mental aspect." कला की इस व्याख्या को स्पष्ट-रूप से समझने के लिये उसके आधार और साधन के संबंध की कुछ बातें विस्तार से जान लेना आवश्यक है। किन पदार्थों की सहायता से और किन साधनों के द्वारा कला अंतःकरण पर प्रभाव डालती है? वास्तविकता का चित्र हमारे सम्मुख रखते समय वह उसके मनोभव रूप को कितना महत्त्व देती है? इन प्रश्नों का उत्तर ही हमारी समस्या की कुंजी है। इसके लिये प्रत्येक कला पर पृथक्-पृथक् विचार करना होगा।

शिल्प-कला में जिन जड़ पदार्थों का प्रयोग किया जाता है, वे अत्यंत स्थूल होते हैं। भवनों का निर्माण भद्दी ईंटों और पत्थरों के द्वारा किया जाता है। दर्शक के मन पर इसका कुछ वैसा ही प्रभाव पड़ता है, जैसा कि अन्य बाह्य वस्तुओं का। शिल्पी को दर्शक का चित्त आकृष्ट करने के लिये अधिक परिश्रम भी नहीं करना पड़ता। प्रकाश, छाया और परिसरस्थ वन-वाटिकाएँ आप ही उसकी छवि बढ़ा देती हैं। वास्तविकता का यह प्रतिनिधि जड़ पदार्थों के द्वारा निर्मित होकर जड़ पदार्थ ही बना रहता है, परंतु फिर भी उसमें मनोभव रूप की झलक देखने को मिल ही जाती है। उदाहरणार्थ शिवालय की बनावट हृदय में श्रद्धा का स्रोत बहा देती है। छोटे-छोटे झरोखे, जिनसे प्रकाश छन-छनकर भीतर आता है, अंधकार की प्रगाढ़ता को कम करने के ही अभिप्राय से बनाए जाते हैं। वह भी इतने हलके हाथों से कि मंदिर की शांति टूटने न पाए। इसी को वास्तविकता का मनोभव रूप कहते हैं। शिल्प-कला में यह छिपी रहती है। कला के आधार जड़ पदार्थों की जितनी ही स्थूलता कम होती जाती है, और प्रेक्षक का चित्त आकृष्ट करने के ढंग में ख़ूबी आती जाती है, मनोभव रूप उतना ही स्पष्ट होता जाता है। आगे चलकर यह बात सिद्ध हो जायगी।

मूर्ति बनानेवाले का मुख्य आधार पाषाण है। उसमें काठिन्य और आकार दोनों मौजूद हैं। यदि है नहीं, तो गति का गुण। प्रतिमा बनानेवाले की तारीफ़ तो इसी में है कि वह पत्थर की मूर्ति में जान डाल दे। ऐसा जान पड़े, मानों हिरण छलाँगें मार रहा है; बालक कूदता चल रहा है। परंतु बिना इन भावों को चित्रित किए हुए भी वह अपना काम चला सकता है; क्योंकि चैतन्य वस्तु भी निश्चल अवस्था में बैठी पाई जाती है। पाषाण-ऐसी कठोर वस्तु में वस्त्र की सिकुड़नें डालना और उसकी सूक्ष्मता चित्रित करना एक प्रकार का झंझट ही है। सिर-तोड़ परिश्रम करने के बाद भी मूर्ति के वस्त्र-पट में उसके अनुरूप विशिष्टता नहीं आती। अर्द्ध-नग्न मूर्तियाँ

ही तक्षण-कला की शोभा हैं। जड़ पाषाण को चैतन्य पदार्थ का सादृश्य देना मूर्ति बनानेवाले का हस्त-कौशल है। इसी बात में, मनोभव रूप के व्यक्त करने में, तक्षण-कला में शिल्प-कला की अपेक्षा अधिक विशेषता पाई जाती है।

चित्रकार के आधार चित्र-पट की स्थूलता और भी कम हो जाती है। वह जो चित्र उस स्थूल पट पर अंकित करता है. उसमें अपने कौशल के द्वारा उसे केवल स्याही और रेखा की सहायता से वस्तु का काठिन्य, आकार और रंग, सभी दरसाना पड़ता है। संकुचित, सपाट पृष्ठ पर चित्र खींचने के लिये चित्र-कला के नियमों का पूर्ण ज्ञान होना चाहिए। ऐसी ही क्षमता प्राप्त करके चित्रकार एक स्थूल पट को हरे-भरे खेतों और गुलज़ार नगरों में परिणत कर देता है। चित्रकारी की इस कृति में तक्षण-कला से भी बढ़कर मनोभव रूप की छटा देखने को मिलती है। चित्रकार पहले ऐतिहासिक घटनाओं, अथवा प्राकृतिक दृश्यों का एक आदर्श-चित्र अपने मन में खींच लेता है, तब उसी के अनुसार वह स्थूल पट पर चित्र अंकित करता है। उसे वस्तुओं के चुनने की, और उन्हें स्वेच्छानुसार इधर-उधर करने की पूर्ण स्वतंत्रता रहती है। वास्तव में वह हमारे सामने घटनाओं अथवा दृश्यों की प्रतिलिपि नहीं उपस्थित करता, बल्कि उनके भाष्य का चित्र बनाता है। उस भाष्य का रचयिता भी वह स्वयं ही होता है। ऐसी कृति में मनोभव रूप का उत्कर्ष खूब देखने को मिलता है।

परंतु संगीत और काव्य की कर्ण-कलाओं में जो मनोभव रूप की स्पष्टता और श्रेष्ठता पाई जाती है. वह उपर्युक्त तीनों चक्षु-कलाओं में खोजने से भी नहीं मिलती। बात यह है कि कर्ण-कलाओं के आधार जड़ पदार्थों की स्थूलता हलकी हो जाने के कारण उनके मनोभव रूप का गौरव बढ़ जाता है। अपरिच्छिन्न और अलक्षित ध्वनि की एकमात्र सहायता से संगीत-कला, मनुष्यों की तो कौन कहे, पशुओं तक को मंत्र-मुग्ध बना देती है। राग-मत्त मृग इसके फेर में पड़कर अपनी जान खो बैठता है। जंगली मनुष्यों से लेकर सभ्य मनुष्य तक संगीत को बड़े चाव से सुनते हैं। संगीत-कला हृदय के गहरे-से-गहरे भावों को बड़ी सुंदरता से प्रकट करती है। परंतु उसमें विद्युत् की चमक और समुद्र की लहरों की भीषण गति को व्यक्त करने की सामर्थ्य नहीं है। ध्वनि आकार को चित्रित नहीं कर सकती। वह तो केवल हमारे भावों को जाग्रत् कर सकती है। संगीत-कला इस ध्वनि की सहायता से हमारे हृदय में उन भावों का प्रवाह बहा सकती है, जो हमारे हृदय में आँधी देखकर उठते हैं। दिल पर असर डालनेवाली जादू-भरी शक्ति की इसमें अधिकता है। चित्र-लेखन-कला इस बात में इसको नहीं पाती।

काव्य-कला का आधार अति स्थूल है। छंद में छिपी हुई ध्वनि-विशेष और शब्द के सिवा काव्य में किसी अन्य पदार्थ का सहारा नहीं लिया जाता। काव्य और संगीत के गुण में बहुत कुछ समता पाई जाती है। संगीत-कला की भाँति काव्य-कला का भी संबंध वस्तुओं के मनोभव रूप से है। कविता पढ़कर मुर्दा-दिल आदमी का भी हृदय फड़क उठता है। पद्यावली का प्रभाव अंतःकरण पर तत्काल ही पड़ता है पंक्तियों पर दृष्टि पड़ने-भर की देर लगती है। इधर कानों में कविता की भनक पड़ी नहीं कि उधर हृदय चंचल हो उठा। कविता की शब्द-योजना प्राकृतिक दृश्यों और जीवन की अनेक घटनाओं का मनोगत भाव अनूठे ढंग से व्यक्त करती है; उसकी चुभती हुई भाषा हृदय में पैठ जाती है। संगीत-कला में भी ऐसा ही गुण है। परंतु ध्वनि--और वह भी नियंत्रित ध्वनि—होने के कारण काव्य-कला के आगे उसे मान नहीं दिया जा सकता।

कुछ हो, यह मानना पड़ेगा कि कला समुचित रूप से मानव-जीवन को सुखद और सुंदर बनाने में कुछ उठा नहीं रखती। इसके लिये हम उसके कृतज्ञ हैं।

जंगबहादुर सिंह

विज्ञान-वाटिका

१. हिसाब करनेवाली मशीन

ज्ञानिक संसार में अमेरिका बड़े ज़ोरों के साथ पैर बढ़ा रहा है। ऐसा शायद ही कोई हफ़्ता जाता होगा, जिसमें एक नए प्रकार की मशीन बनाकर वह संसार के समक्ष न रखता हो। पाठकों को यह जानकर आश्चर्य होगा कि वहाँ एक प्रकार की ऐसी मशीन बन चुकी है, जो स्वयं जोड़, बाक़ी, गुणा, भाग आदि हिसाब-किताब का काम करती

है। तारीफ़ यह कि आप उसे चाहे जितना बड़ा हिसाब दे दीजिए, वह बात-की-बात में उसे लगा देगी और भूल नाममात्र को भी न होगी। नीचे के चित्र में एक ऐसी मशीन दिखाई गई है। इसकी लंबाई एक फुट और चौड़ाई ८ इंच है। तौल में यह प्रायः ६½ सेर होगी।
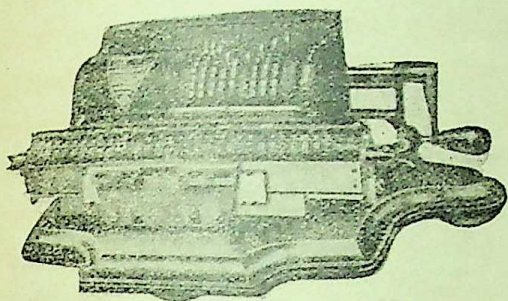
इसकी आकृति साधारण टाइप करनेवाली कल (Type-writing Machine) से बहुत कुछ मिलती है। इसमें चाभियाँ (Keys) भी उसी की-सी होती हैं, किंतु अंतर यह है कि चाभियाँ, अक्षरों के बदले, अंक-सूचक होती हैं। साधारण टाइप-कल में बड़े अक्षरों को छापने के लिये, स्थान-परिवर्तन के लिये, अतिरिक्त चाभियाँ (Back Spacers) होती हैं। उसी प्रकार इस मशीन में भी कई अतिरिक्त चाभियाँ होती हैं। एक पर जोड़, दूसरे पर बाक़ी, तीसरे पर गुणा आदि शब्द लिखे रहते हैं। जब आपको जोड़ देना है, तो जोड़ की चाभी को दबाकर अंकों को छापते जाइए। छापना समाप्त कर मशीन से लगे हुए हैंडिल को घुमाने से ही आपको सब अंकों का जोड़ मिल जायगा। छापने में यदि भूल हो जाय, तो उसे सुधार ले सकते हैं।

इस मशीन से केवल अंकों ही की नहीं, किंतु रुपया-आना-पाई, पौंड-शिलिंग-पेंस आदि की भी जोड़-बाक़ी आदि होती है। अमेरिका में इसका प्रचार दिन-दिन अधिक होता जाता है। एक हिसाब-नवीस का प्रायः सभी काम यह मशीन करती है और भूल एक छदाम की भी नहीं होती।

× × ×

२. संक्षिप्त लेखन-कला में उन्नति

कांग्रेस, कानफ़्रेंस, या अन्य बड़ी-बड़ी सभा-समितियों में संक्षिप्त लेख-लेखक (Short-hand-writer) हाज़िर ही रहते हैं। उनका काम वक्ता के मुँह से निकले हुए प्रत्येक शब्द को संकेतात्मक चिह्नों द्वारा लिख लेना और पीछे उसी को लिपि-बद्ध करना है। बड़े-बड़े ऑफ़िसों में, जहाँ बहुत-सी चिट्ठियों का उत्तर देना रहता है, वहाँ भी उपर्युक्त लेखकों की आवश्यकता होती है। चिट्ठियों का उत्तर कोई ऑफ़िसर बोलता जाता है, दूसरा संक्षेप में लिख लेता और पीछे उसे लिपि-बद्ध कर देता है। मनुष्य के लिखने में बहुत-सी भूलें हुआ करती हैं। संक्षिप्त लेखन-कला उच्चारण पर अवलंबित है। लेखक जैसी आवाज़ सुनेगा, वैसा ही लिखेगा। एक ही शब्द का उच्चारण भिन्न-भिन्न प्रदेश-वासी भिन्न-भिन्न प्रकार से करते हैं, इसलिये लिखते समय बड़ी गड़बड़ पड़ जाती है। इसके अलावा वक्ता जितनी जल्दी बोल सकता है, लेखक उतनी जल्दी सर्वदा लिख नहीं सकता। इसके प्रतिकार-स्वरूप, कभी-कभी लेखक को अपने मन से गढ़कर कुछ बातें जोड़नी पड़ती हैं, या कुछ वाक्यों को सर्वथा छोड़ देना पड़ता है।

इन असुविधाओं को दूर करने के लिये विद्युत्-गुण-संपन्न एक प्रकार का चोंगा बना है। वह चोंगा टेलीफ़ोन के चोंगे से बहुत कुछ मेल खाता है। आपको यदि कुछ कहना हो, या चिट्ठियों का उत्तर देना हो, तो उस चोंगे में मुँह लगाकर कह जाइए। लिपि-बद्ध करनेवाला मनुष्य (साधारणतः टाइपिस्ट) अवकाश के समय उस चोंगे को अपने कान में लगा लेगा। बटन दबाते ही आपका कहा हुआ प्रत्येक शब्द उसे ऐसा सुनाई देगा, जैसे आप उसी से बातें कर रहे हैं। आपके कहे हुए शब्दों को वह ज्यों-का-त्यों लिपि-बद्ध कर देगा। एक ही चोंगा बरसों काम देता रहता है।

× × ×

३. प्रकृति की गोद में

हमारे देश के बड़े लोग अपना समय-विभाग प्रायः इस प्रकार करते हैं कि प्रकृति से उनका कोई संबंध ही नहीं रहता। जो लोग धनी हैं, उनका बहुत-सा समय नाच-रंग हँसी-खुशी आदि में ही बीत जाता है। वैज्ञानिक अपना सब समय खोज ही में बिता देते हैं। राज-काज में लिप्त मनुष्यों का सारा समय राजनीतिक समस्याओं को सुलझाने में ही लग जाता है। किंतु पाश्चात्य लोग प्रकृति के बड़े उपासक होते हैं। प्राकृतिक आनंद लूटने का कोई भी अच्छा मौक़ा वे हाथ से जाने नहीं देते।
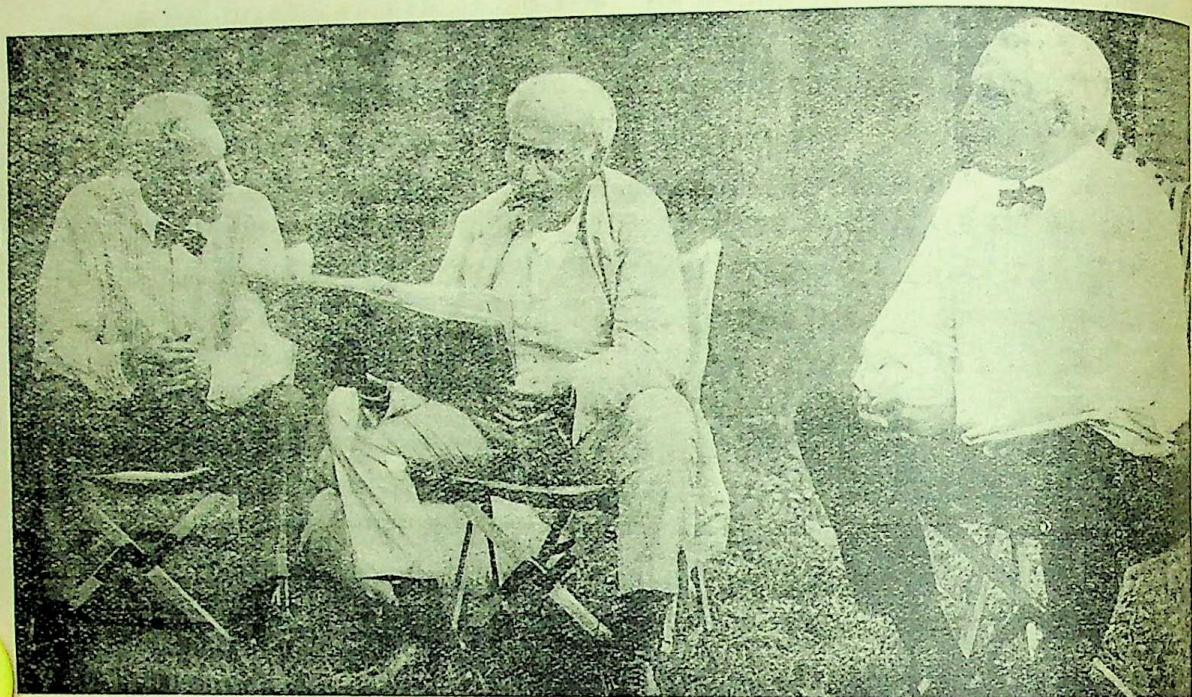
हेनरी फ़ोर्ड टॉमस एडीसन प्रे० हार्डिंज

ऊपर के चित्र में जिन तीन मनुष्यों का फ़ोटो दिया गया है, वे अमेरिका के तीन लब्ध-प्रतिष्ठ मनुष्य हैं। भारतवर्ष के प्रायः प्रत्येक बड़े-बड़े शहरों की सड़कों पर 'फ़ोर्ड'-मोटर-कार दौड़ती है। जिस कारख़ाने में यह 'कार' बनती है, उसी के स्वामी हेनरी फ़ोर्ड का फ़ोटो बाईं तरफ़ है। दाहनी ओर अमेरिका के प्रेसीडेंट हार्डिंज बैठे हुए हैं। टॉमस एडीसन अमेरिका के प्रसिद्ध वैज्ञानिक हैं। वही बीच में बैठे दैनिक समाचार पढ़कर और लोगों को सुना रहे हैं। चित्र को देखते ही पता चल जायगा कि यह त्रयी प्रकृति की गोद में बैठी हुई है। प्रकृति का प्रेम इसे ही कहते हैं।

× × ×

८. मोटर-कार में 'रोक'

बड़े-बड़े शहरों में मोटर-कारों की बड़ी भीड़ रहती है। कभी-कभी मोटरों का ताँता बँध जाता है, और एक के पीछे कई मोटरें जाती हैं। दिन को जब किसी कारण से आगेवाली मोटर को ठहरना पड़ता है, या किसी मोड़ से घूमना पड़ता है, तो आगे जानेवाली मोटर का ड्राइवर मोटर से हाथ बाहर निकाल देता है, जिसे देखकर पीछे आनेवाली गाड़ी का ड्राइवर सचेत हो जाता है, अपनी गाड़ी को रोक लेता या उसकी गति को कम कर देता है।

मोटर-गाड़ियों के पीछे लाल रोशनी लगी रहती है सही, किंतु रात को यह जानना कठिन है कि कब आगे जानेवाली गाड़ी ठहरेगी, या मोड़ में घूमेगी। अब एक ऐसी रोशनी निकली है, जो मोटर के पीछे लगाई जाती है, और जिसका संबंध मोटर रोकनेवाले यंत्र (Brake) के साथ होता है। आगे जानेवाली मोटर के रोकने की आवश्यकता होने पर उसका संचालक ब्रेक दबाता है, जिससे पीछे की रोशनी में बड़े-बड़े अक्षरों में, "Stop" (ठहरो) लिख जाता है। उसे देखकर पीछे से आनेवाली मोटर का संचालक सावधान हो जाता है। इससे संबंध रखनेवाले दो चित्र दिए जाते हैं। एक चित्र में केवल यंत्र दिखलाया गया है, और दूसरे में मोटर के पीछे के चक्के पर वही यंत्र लगा हुआ है।
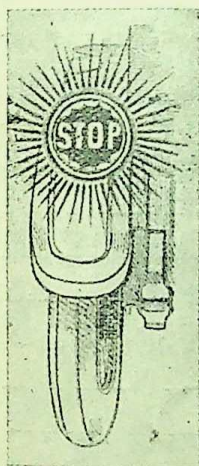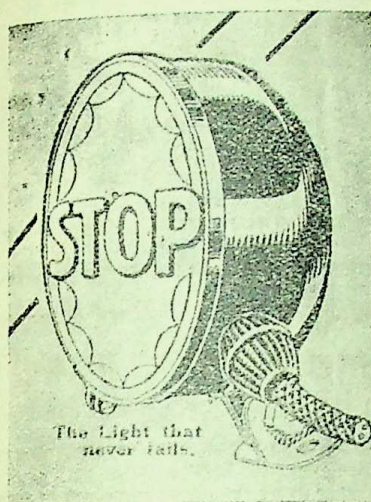
५. समुद्र की गहराई और वज़न

समुद्र की गहराई और उसका वज़न कितना है, यह बतलाना, असंभव नहीं तो, कठिन अवश्य है। इन दो विषयों को लेकर बहुत दिनों से झगड़ा चला आ रहा है। हाल में एक मनुष्य की परीक्षाओं के फल-स्वरूप जो बातें मालूम हुई हैं, व नीचे दी जाती हैं—

समुद्र की गहराई और उसका वज़न इतना अधिक है कि दोनों हमारी धारणा के परे हैं। प्रशांत-महासागर प्रायः ३ करोड़, ४० लाख कोस तक फैला है। अटलांटिक-महासागर १ करोड़, ५० लाख कोस को घेरे हुए है। भारत-महासागर, आर्टिक और एंटार्टिक-महासागर को लेकर, २ करोड़, १० लाख कोस में फैला हुआ है।

एक मील लंबे, एक मील चौड़े और एक मील गहरे किसी गढ़े को ४४० वर्ष तक नित्य भरते रहने से प्रशांत-महासागर का जल नापकर खतम किया जा सकता है। प्रशांत-महासागर के जल की तौल ६४८०००००००००००००००० करोड़ टन है। अटलांटिक-महासागर की गहराई, अधिकांश स्थानों में, ३ मील के लगभग है। उसका वज़न ३२५००००००० करोड़ टन के लगभग है! अटलांटिक-महासागर के जल को एक ४३०' मील के चतुष्कोण स्थान में रख सकते हैं।

अन्य तीन महासागरों की गहराई और तौल प्रशांत और अटलांटिक-महासागरों की अपेक्षा बहुत कम है।

× × ×

६. चलता हुआ गिर्जा

हैरिसबर्ग के जॉन् फुल्टन ने एक चलता हुआ गिर्जा बनाया है। जो लोग दिन-भर अपने काम में लगे रहते हैं, गिर्जे में जाने का समय नहीं पाते, अथवा इच्छा रहने पर भी नज़दीक कोई गिर्जा नहीं पाते, उनके द्वारों पर यह गिर्जा घूमा करता है। यह एक बड़ी मोटर-गाड़ी पर बना हुआ है। गाड़ी के आगे के हिस्से में पादड़ी साहब के रहने के लिये एक छोटा-सा कमरा है, और पीछे एक छोटी-सी वेदी। इसी वेदी पर पादड़ी साहब प्रार्थना करते हैं। सुविधा देखकर स्थान-स्थान पर यह गिर्जा खड़ा होता है, और आस-पास के लोग या रास्ते के यात्री आकर उपासना में शामिल होते हैं।

× × ×

७. जीव-जंतुओं में विवाह-प्रथा

जीव-जंतुओं में भी मनुष्यों के समान वैवाहिक प्रथा प्रचलित है। वे मनुष्यों के समान विवाह करते हैं, प्रेम करते हैं, और प्रेम कम हो जाने पर तलाक़ देते हैं। इन बातों को पढ़कर लोग आश्चर्य कर सकते हैं, किंतु वे सत्य हैं।

अविवाहित पुरुष-जंतुओं के दल होते हैं। ये दल हँसी-खुशी और आहार की खोज में अपना सारा समय बिता देते हैं। दल के जीव बड़े प्रसन्न रहते हैं; आपस में कभी लड़ाई-झगड़ा नहीं करते—सदा मित्रता का भाव रखते हैं। किंतु किसी स्वजातीय स्त्री के दल में आ

जाने से उनकी मित्रता तथा शांति-प्रियता नष्ट हो जाती है। उस स्त्री-रत्न को प्राप्त करने के लिये वे आपस में लड़ने लगते हैं। स्त्री-जीव उनकी यह लड़ाई बड़े कौतूहल के साथ देखती है। जो पुरुष-जीव औरों को मारकर विजयी होता है, वही स्त्री को पाता है। बंदर, हरिण आदि के ऐसे बहुत-से दल होते हैं।

अधिकांश जंतुओं का एक ही विवाह होता है। साधारण रूप से उनमें नीचे-लिखे चार प्रकार के विवाह प्रचलित हैं—

१—पुरुष अपनी स्त्री खोज लेता है। जितने दिनों तक उसके साथ उसका प्रेम रहता है, उतने दिनों तक वह उस पर आसक्त रहता है। अन्यथा वह अपनी स्त्री को छोड़ देता और अपने लिये दूसरी स्त्री खोज लेता है। इसे परीक्षा-विवाह (Trial Marriage) कहते हैं। अमेरिका के हरिणों में इस प्रकार का विवाह प्रचलित है।

२—जितने दिनों तक कोई संतान नहीं होती, उतने दिनों तक पुरुष स्त्री के संग रहता है। संतान होते ही वह अपनी पत्नी को छोड़ दूसरी स्त्री खोज निकालता है। चूहा, खरगोश आदि अपनी स्त्री को एकदम छोड़ देते हैं। स्यार संतान होते ही अपनी स्त्री को छोड़कर चला जाता है, किंतु उसके बड़े हो जाने पर वह फिर अपनी स्त्री के पास लौट आता है।

३—जंगली हंस, पंडुक आदि एक ही विवाह करते हैं, और उनका प्रेम यावज्जीवन स्थायी रहता है। एक के मरने के बाद दूसरा शादी नहीं करता। मृत स्त्री या पुरुष के शोक में दूसरा अपनी जान दे देता है।

४—जिस प्रकार का विवाह मनुष्यों में प्रचलित है, ठीक उसी प्रकार का बहुत-से पशुओं में भी है। इसे दांपत्य-जीवन कहते हैं। बाघ इसी प्रकार का ब्याह करते हैं। उनका दांपत्य-जीवन स्थायी होता है। किंतु बाघ एक स्त्री के मरने के बाद दूसरा विवाह कर लेता है। उनमें परस्पर प्रकृत प्रेम का आदान-प्रदान भी देखा जाता है।

पशुओं में प्रायः सभी अपनी-अपनी शादी कर लेते हैं। अविवाहित पुरुष या स्त्री बहुत कम देखने में आते हैं। कुछ पशु एक के मर जाने पर दूसरी शादी भी कर लेते हैं; किंतु एक स्त्री के रहते दूसरी स्त्री के साथ शादी करने का अनौचित्य उन्होंने हम लोगों से भी पहले समझ लिया है।

× × ×

८. शब्द-शक्ति

एक राजा थे। एक दिन उनके पास एक पागल सारंगी लेकर गीत सुनाने आया। राजा ने द्वारपाल के द्वारा उसे महल के बाहर निकलवा दिया। पागल महल के बाहर आकर, एक पुल पर बैठकर, सारंगी बजाने लगा। सारंगी के शब्द को पुल न सह सका; वह टूटकर गिर गया।

अपोलो के गीत से स्वयं उड़-उड़कर पत्थरों ने ट्राय शहर का निर्माण किया था। इज़रायल-देश के निवासियों के चिल्लाहट तथा भेरी के शब्द से जेरिको की चहार-दीवारी टूट पड़ी थी। श्रीकृष्ण की वंशी के स्वर से यमुना नदी का जल ऊपर को उठने लगता था। ये सब पुरानी बातें हैं।

आधुनिक वैज्ञानिकों की भी सम्मति है कि जड़ वस्तुओं पर भी संगीत का प्रभाव पड़ता है। संसार की प्रत्येक वस्तु का किसी-न-किसी स्वर-विशेष से संबंध है। उस पर चोट करने से—वह जिस स्वर से बजती है, उसके पास उसी स्वर को बजाने से—उसमें सहानुभूति-जनित कंपन (Sympathetic Vibration) होता है।

इस कथन को कोई साधारण वस्तु न समझना चाहिए। मान लीजिए कि एक बहुत बड़े मकान का संबंध पंचम स्वर से है। उसके पास यदि कोई उच्च स्वर से गाए, या बाजा बजाए, तो वह मकान हिलने लगेगा। यदि बहुत-से मनुष्य मिलकर उसी स्वर से गाएँ या बजाएँ, तो उसमें इतना अधिक कंपन होगा कि सपूचा घर बात-की-बात में गिर जायगा।

कनाडा का एक मनुष्य किसी वस्तु के शब्द-तरंग को 'इलेक्ट्रो-मैगनेट' में जमा करके उसके द्वारा मोटर-गाड़ी, सीने की कल आदि के संचालन में समर्थ हुआ है। इसकी शक्ति बहुत अधिक नहीं है, तो भी आशा की जाती है कि थोड़े ही समय में इसकी समुचित उन्नति होगी। शब्द-शक्ति को और भी अनेक कामों में लगाने की, भिन्न-भिन्न स्थानों में, चेष्टा हो रही है।

रमेशप्रसाद बी० एस्-सी०

सुमन-संचय

१. साहित्य-संसार की एक झाँकी और देव के ग्रंथों द्वारा उसका शृंगार

अकस्मात् कवि के मन में किंचित् प्रेम-तरंग का प्रादुर्भाव हुआ। फिर क्या कहना था, क्षण-भर में वह कवि-जगत् की रमणीय सुख-सागर-तरंगों के साथ मग्न हो-होकर क्रीड़ा करता पाया गया। उसने इस नूतन सृष्टि में विविध विलासों का अनुभव किया। एक ओर जाति-विलास का दृश्य था, तो दूसरी ओर भाव-विलास विलसित हो रहे थे। तीसरी ओर रस-विलास की छवि सबसे निराली थी। आकाश में पावस-विलास उमंग पर था, तो भूमि पर वृक्ष-विलास का वैभव था। ऐसे अनुपम कुशल-विलास को देखकर कवि की आँखें बंद हो गईं। पर, तो भी, विलास-दृश्य का विकास होता ही गया। अब की बार उसने भवानी-विलास और राधिका-विलास का सरस चमत्कार देखा। भक्ति के आवेश में चित्त गद्गद हो गया। कैसा पुनीत दृश्य है? चारों ओर प्रेम-चंद्रिका छिटक रही है। रसानंद-लहरी से मन शराबोर हो रहा है। आज कवि को भव्य नख-सिख-प्रेम-दर्शन का सुख-सौभाग्य पूर्ण रीति से प्राप्त हुआ। साथ ही उसे यह भी विदित हुआ कि जगदर्शन, तत्त्व-दर्शन और आत्म-दर्शन क्या है? वाह! यह कैसा सुमिल-विनोद है? सुजान-विनोद की इससे अच्छी सामग्री और कहाँ मिल सकती थी? अहो! कैसे अच्छे ढंग से देव-माया-प्रपंच-नाटक की यवनिका का उद्घाटन हो रहा है? संसार की असारता, समता और विषमता के भावों का सम्मिलन कैसा चमत्कार-पूर्ण है? इन भावों से लाभान्वित होकर साधारण कवि भी अल्प प्रयास से नीति-शतक और वैराग्य-शतक की रचना कर सकता है। हमारे कवि का मन भी थोड़ी देर के लिये नीति और वैराग्य के झमेलों में भटक गया—सघन विचार-वन में अभीष्ट मार्ग भूल गया। पर शीघ्र ही प्रेम-दीपिका के सच्चे आलोक ने उसकी सहायता की। स्वल्प काल में, द्रुत गति से चलकर, वह राग-रत्नाकर के शीतल कूल के सन्निकट आ गया। यहीं पर उसने अष्टयाम, देवचरित्र-चिंतन में मन लगाया। देव की सुदृष्टि फिरी। वर-दान मिल गया। काव्य-रसायन बनाने की प्रक्रिया मालूम हो गई। अब तो कवि जिस शब्द को छू देता है, वह वर्ण और मूल्य में सुवर्ण का सामना करने लगता है। देव-महिमा ऐसी ही होती है।

कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०

× × ×

२. नई पीढ़ी से दो-दो बातें

क्या आपको नई रोशनी पसंद है? ज़रूर होनी चाहिए। पुरानी लीक से एक इंच न टलना जीवन का चिह्न या प्रमाण नहीं है। नयापन ही ज़िंदगी है। पर, क्या आप हमारी भी कुछ सुनेंगे? आप प्राचीन और नवीन, दोनों के बीच में खड़े हुए हैं। आप दोनों को देख सकते हैं। पर इस देखने में बड़ा अंतर है? एक मार्ग से चलकर आप यहाँ तक पहुँचे हैं, और दूसरे पर अभी आपको चलना है। इस अवस्था में नई रोशनी की सभी बातों को ग्रहण करने के पहले अपनी पुरानी बातों के गुण-दोषों पर विचार कर लेना आपके लिये कोई कठिन बात नहीं। अँगरेज़ी में एक कहावत है कि 'All that glitters is not gold', अर्थात् चमकती हुई सभी चीज़ें सोना नहीं होतीं। अभी जिस नई रोशनी की जगमगाहट आपको अपनी ओर खींच रही है, वह कहीं इतनी तेज़ न हो कि आपकी आँखें चौंधिया जायँ, और उनकी दृष्टि-शक्ति ही नष्ट हो जाय।

क्या आप फ़ैशन के प्रेमी हैं? अच्छी बात है। फ़ैशन कोई बुरी चीज़ नहीं। जीवित समाज उसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। जब तक मनुष्य में जीवन के लिये प्रेम है, जब तक उसके हृदय में सौंदर्य-बोध की वृत्ति है, तब तक फ़ैशन उसके साथ रहेगा, और उसमें नित्य नूतन परिवर्तन हुआ करेंगे। पर बात इतनी ही है कि फ़ैशन का अनुकरण करने के पूर्व उसके लाभ-हानि पर ज़रा विचार कर लिया जाय। आप कहेंगे, फ़ैशन से लाभ-हानि का क्या संबंध? वह तो ज़माने की बू है। पर नहीं, फ़ैशन से लाभ-हानि का संबंध न हो, यह बात नहीं है। उससे लाभ है, हानि है, और लाभ या हानि कुछ भी नहीं है। लाभ न हो, कोई हर्ज नहीं। पर सावधान, हानि न हो! कहीं ऐसा न हो कि आप फ़ैशन के नशे में अपनी

कोई अच्छी चाल खो बैठें। तड़क-भड़क से मतलब नहीं। मतलब गुण से रखना चाहिए।

क्या आप रिफ़ार्म (सुधार) चाहते हैं? अवश्य चाहते होंगे। समाज-मंदिर में भूत-काल के भूत ने कूड़ा-करकट और मैलों का ढेर लगा दिया है। भविष्य के जलसे के लिये वर्तमान की झाड़ू से उसकी सफ़ाई दरकार है। पहले के लोगों ने मंदिर की सजावट में अपनी सुविधा और रुचि के ख़याल के साथ लाभ का भी ख़याल रक्खा था। पर आज समय के साथ लोगों की रुचि बदल गई है, स्थिति में भी बड़ा परिवर्तन हो गया है। इस अवस्था में उसके पुजारी और उपासक उसका संस्कार चाहें, तो क्या आश्चर्य? पर झाड़-बुहार में सावधानी चाहिए। दीवालों के कोनों में जमी हुई मिट्टी, दीमक और कीड़ों के घरों की सफ़ाई में कहीं तोड़-फोड़ डालनेवाली लोहे की सलाकें—ऐसे उद्धत हाथों से कि जिनसे मंदिर की सुंदर कारनिस ही टूट जाय, उसकी ईंटें तक धँस पड़ें और उसका अंग-भंग हो जाय—काम में न लाई जायँ! इसके लिये सुचतुर मनुष्य चाहिए, सहृदयता चाहिए, जातीय आस्था चाहिए। बाज़ारी मज़दूर तो सैकड़ों मिलेंगे, जिन्हें अपनी रोज़ी से मतलब है।

सुधार चाहिए, पर योग्य सुधारक के द्वारा। नाम और यश के भूखे सुधारक आपको अनेक मिलेंगे। पर उनसे बाज़ आइए। उनकी क़लईदार बातों में न पड़िए। उनके खाने के और दिखाने के दाँत अलग-अलग हैं। एक उर्दू-शायर के शब्दों में सचमुच ही इन लोगों ने—

"नाम रक्खा है नुमाइश का तरक़्क़ी व रिफ़ार्म।"

आपने उच्च शिक्षा प्राप्त की है? करनी ही चाहिए। किंतु आपसे जो उम्र में बड़े हैं, पर जिन्हें शिक्षा आपकी इतनी नहीं मिली, उनकी बातों को आप यह सोचकर हँसी में न उड़ा दीजिए कि इनकी अपेक्षा हमारा ज्ञान अधिक है। आपको ज्ञान अधिक हो सकता है, पर आपको ख़याल रखना होगा कि हमारा यह ज्ञान अभी किताबी है। हमने उसे हासिल तो किया है, पर अभी तक काम में नहीं लाए। स्यानों ने यद्यपि किताबें नहीं पढ़ीं, किसी स्कूल, मकतब या कॉलेज में शिक्षा नहीं पाई, तथापि उन्हें जीवन-संग्राम में लड़ना पड़ा है; सैकड़ों मुसीबतों और हज़ारों आफ़तों से उनकी मुठभेड़ हुई है; कभी हारे हैं, तो कभी जीते। इस प्रकार संसार-सागर में उन्होंने जो सबक़ सीखा है, वह आपके किताबी ज्ञान से कई गुना अधिक महत्त्व रखता है। यद्यपि इन दोनों प्रकार के ज्ञानों का ख़ास ज़रिया अनुभव ही है, तथापि एक तो प्रत्यक्ष अनुभव का फल है और दूसरा अप्रत्यक्ष का। देखी और सुनी हुई बातों में जितना फ़र्क़ है, उतना ही फ़र्क़ इनमें भी समझना चाहिए। अतएव आपको उचित है कि आप अपनी शिक्षा और सभ्यता का अभिमान छोड़कर अपने से स्यानों की बात को ध्यान-पूर्वक सुनें। यह बात दूसरी है कि आप बिलकुल उसके ही अनुसार काम करें, या न करें। यद्यपि सब दशाओं में आपको उनकी सलाह माननीय नहीं हो सकती, तथापि ऐसे मौक़े कम नहीं आए कि जब अनेकों को स्यानों की बात न मानने के कारण पछताना पड़ा है।

आप सार्वजनिक कार्यों में भाग लेते हैं? लीजिए। यह मनुष्य-हृदय की उच्च वृत्ति का द्योतक है। पर क्या आप अपने गृह-प्रबंध पर भी इतना ही ध्यान देते हैं? यदि नहीं, तो सार्वजनिक कार्य-क्षेत्र में आपका उतरना व्यर्थ है। जो आदमी अपना कार्य नहीं कर सकता, वह दूसरे का कार्य क्या कर सकेगा? अतएव घर के कामों पर पहले ध्यान दीजिए। घर का छोटे-से-छोटा काम करने में भी न शरमाइए। आप लोगों में अनेक ऐसे होंगे, जो घर के लिये बाज़ार से साग-तरकारी लाने में अपनी मान-हानि समझते होंगे—घाट पर अपनी धोती धोते शरमाते होंगे। पर स्मरण रखिए, ये बातें शरमाने की नहीं। आप जितना स्वावलंबी बनते हैं, उतना ही अपनी आत्मा को समर्थ बनाते हैं। इसमें लज्जा नहीं, बल्कि आत्म-गौरव मानना चाहिए। आप लोगों में से कुछ लोग, यह सोचकर कि इसमें हमारे हृदय की संकीर्णता प्रकट होती है, व्यक्ति-गत स्वार्थ के प्रति उपेक्षा प्रकट करते हैं। किंतु आपका यह ख़याल ग़लत है। इसमें आपके हृदय की संकीर्णता नहीं है। यह बात मनुष्य-मात्र के लिये स्वाभाविक है। मनुष्य ही नहीं, जीवमात्र का स्वभाव यही है कि पहले वे अपने सुख और आराम का ख़याल करते हैं। भगवान् की सृष्टि ही इस नियम के आधार पर खड़ी है। आपको व्यक्ति-गत स्वार्थ का ख़याल रखना होगा; पर उसके साथ ही इस बात की ख़बरदारी भी रखनी होगी कि कहीं वह आगे [illegible] का विस्तार न करने लगे, जिससे

सार्वजनिक स्वार्थ में किसी तरह की बाधा पहुँचे। मनुष्य और पशुओं की इस स्वाभाविक वृत्ति में यही अंतर है। मनुष्य अपनी ख़बर लेने के साथ-साथ औरों की भी ख़बर लेता है; पर पशु में यह बात नहीं होती। उसे अपने पेट से ही मतलब रहता है।

आप सभा-समाजों में लेक्चर देते हैं? दीजिए। यदि नहीं, पर देने की इच्छा रखते हैं, तो सीखिए कि किस तरह लेक्चर दिया जाता है। कारण, सार्वजनिक कार्यों में सभा-समाजों की ज़रूरत पड़ती ही है, और ऐसे स्थानों पर जब तक वक्तृत्व-कला काम में नहीं लाई जाती, तब तक कुछ कहने का, जैसा चाहिए वैसा, प्रभाव नहीं पड़ता। पर हमारा कहना यही है कि आप कोरे लेक्चर-बाज़ न बनें। जो कुछ कहें—नसीहत दें—वह ख़ुद करके दिखा दें। तभी लोगों पर आपके कथन का असर पड़ेगा। यदि आपमें वे गुण पूर्ण रूप से हैं, जिनके विषय में आप लेक्चर देनेवाले हों, तो यह कभी नहीं हो सकता कि आपका श्रम निष्फल जाय। तब आप अपने कथन के आदर्श-स्वरूप होंगे; केवल मौखिक उपदेशक नहीं। इस समय देश को उदाहरण, या आदर्श, की ज़रूरत है; केवल लेक्चर-बाज़ी की नहीं। लेक्चर-बाज़ी ख़ूब हो चुकी, तालियों की गड़गड़ाहट सुनते-सुनते कान बहरे हो गए। अब काम कर दिखाने का ज़माना है—लेक्चर-बाज़ी अगर न भी हो, तो कोई विशेष हानि नहीं। आदर्श बनिए; चुप चाहे भले ही रहिए। आपकी मौन भाषा देश के कोने-कोने तक पहुँच जायगी। लोग उसे सुने बिना नहीं रह सकेंगे। वे सहर्ष आपका अनुकरण करेंगे।

पांडेय मुकुटधर शर्मा

× × ×

३. अभिलाषा *

अब सावन-घन गहरा छाया;
धीमे से पद रखता आया।
रजनी-सम नीरव हो आया;
सबकी आँख बचा तू आया।
सावन-घन० ॥ १ ॥

आँख खोलता नहीं प्रभात;
वृथा पुकार रहा है वात।
ढका सुनील गगन का गात;
मेघों ने परदा छिटकाया।
सावन-घन० ॥ २ ॥

कूजन होता नहिं कानन का;
द्वार बंद है भवन-भवन का।
कौन पथिक है निर्जन पथ का?
एकमात्र जो तू है आया।
सावन-घन० ॥ ३ ॥

तू है, अरे मित्र! हे प्रियतम!
खुला हुआ है यह आलय मम।
मुख दिखलाकर मुझे स्वप्न-सम
चले न जाना, जान पराया।
सावन-घन० ॥ ४ ॥

श्रीगिरिधर शर्मा

* कवि-सम्राट् डॉ० रवींद्रनाथ ठाकुर की 'गीतांजलि' के एक गीत का अनुवाद।

× × ×

४. कविता की भाषा

कविता की भाषा के संबंध में हिंदी-साहित्य-सेवियों के विचार अभी तक एक नहीं हुए। अभी तक यही तय नहीं हो पाया कि कविता के लिये कौन भाषा अधिक उपयुक्त है। वास्तव में यह बड़े ही खेद की बात है। हमने सोचा था, अखिल भारतवर्षीय हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के गत अधिवेशन के सुयोग्य सभापति चतुर्वेदीजी इस प्रश्न पर गंभीरता-पूर्वक प्रकाश डालेंगे। परंतु खेद है कि हम उनके मंतव्य से संतुष्ट नहीं हो सके। आपने इस प्रश्न पर बहुत कुछ कहा, फिर भी कुछ नहीं कहा। जो मत-भेद अभी तक चला आता है, उसी को आपने फिर दुहरा दिया। हाँ, आपकी सम्मतियों में एक विशेषता अवश्य रही। वह यही कि आपने अंत तक अपनी परम प्यारी ब्रज-भाषा का पक्ष लिया। इसमें संदेह नहीं कि आपकी आलोचना है वास्तव में बड़ी चुटीली, पर खेद इतना ही है कि वह एकांगी है। खड़ी बोली में कविता करनेवाले गण्य-मान्य कवियों पर तो आपने इतनी फबतियाँ उड़ाई कि शायद और किसी से इतनी बन भी नहीं पड़तीं। श्रीयुत पं० अयोध्यासिंहजी उपाध्याय-कृत 'प्रिय-प्रवास' से कुछ पंक्तियाँ उद्धृत करते हुए आपने कहा—

"क़सम खाने के लिये हिंदी की बस एक 'थी' है। इसे थैले में बंद कर दीजिए, फिर किसकी मजाल, जो इन पंक्तियों को हिंदी कह सके।"

ठीक है। मालूम होता है, आप हिंदी के क्षेत्र को इतना संकुचित रखना चाहते हैं कि उसमें—

प्रफुल्लिता कोमल-पल्लवान्विता,
मनोज्ञता-मूर्ति नितांत रंजिता।
वनस्थली थी मकरंद-मोदिता,
अकीलिता कोकिल-काकलीमयी॥

ऐसी पंक्तियाँ रखना आपकी दृष्टि में 'हिंदी पर अत्याचार करना', 'काव्य-कलेवर को कलंकित और कलुषित करना' है। आपकी धारणा है कि कविता की भाषा संस्कृत-गर्भित होने पर हिंदी का काव्य-कलेवर कलुषित हो जायगा। परंतु यह समझना भ्रम-मूलक है। हिंदी-कविता की भाषा का संस्कृत-गर्भित होना उतना ही स्वाभाविक है, जितना हो सकता है। संस्कृत हिंदी की जननी है, अतएव हिंदी-कविता का उच्च साहित्य ऐसी उत्कृष्ट भाषा में होना ही चाहिए। बोलचाल की भाषा में कविता होना जितना उपयोगी है, उत्कृष्ट भाषा में कविता होना उससे कम नहीं। हम यह नहीं कहते कि कविता की भाषा संस्कृत-गर्भित ही होनी चाहिए। किंतु हमारा कहना यह है कि हिंदी-कविता की भाषा का संस्कृत-गर्भित होना दोष नहीं, यह उसका स्वाभाविक गुण है—जन्म-सिद्ध अधिकार है। यह अधिकार छीना नहीं जा सकता। बोलचाल की भाषा में कविता हो सकती है, अच्छी हो सकती है और होती भी है; परंतु बोलचाल की भाषा ही में कविता हो, यह एक ऐसा बंधन है, जो हिंदी के काव्य-क्षेत्र की मर्यादा को संकुचित करता है। कविता की भाषा बोलचाल की भाषा से सदा भिन्न रही है, और रहेगी, यह समझते हुए भी चतुर्वेदीजी का उपर्युक्त उत्कृष्ट भाषा की खिल्ली उड़ाना कहाँ तक न्याय-संगत है, सो स्पष्ट है। बाबू मैथिलीशरण गुप्तजी की—

स्वागत सखे! आओ सखे! हम तुम परस्पर बाल हैं;
निज मातृभूमि स्वदेश के गोदी-भरे हम लाल हैं।

पंक्तियाँ रखकर और 'परस्पर बाल' को अनुपयुक्त बतलाकर आपने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि हिंदी में बोलचाल की भाषा में होनेवाली रचनाएँ इस प्रकार दोष-युक्त होती हैं। परंतु यदि आपने हिंदी की अन्य उत्कृष्ट रचनाओं की ओर कुछ भी ध्यान दिया होता, तो आपको निराश न होना पड़ता। सर्वथा निर्दोष रचनाएँ किसी भी भाषा के उच्च-से-उच्च साहित्य में भी शायद नहीं मिल सकतीं। यदि खड़ी बोली में दोष-युक्त रचनाएँ मिलती हैं, तो उसमें निर्दोष तथा उच्च रचनाएँ भी मिलती हैं, और मिल सकती हैं। सम्मति स्थिर करते हुए एकतरफ़ा डिगरी देना अन्याय है। परंतु आपने इस ओर बिलकुल ध्यान ही नहीं दिया। फिर खड़ी बोली का साहित्य अभी संपन्न या पूर्ण भी नहीं हुआ, जिससे आप यह निष्कर्ष निकाल सकते कि चूँकि अभी तक इसमें उत्कृष्ट रचनाओं का अभाव बना हुआ है, इसलिये इसमें उत्कृष्ट रचनाएँ हो ही नहीं सकतीं। यह युग तो खड़ी बोली के विकास का आरंभिक युग है। अभी तो खड़ी बोली के विकास का आरंभ ही हुआ है। अभी से आप यह राय क्यों तय किए लेते हैं कि

"खड़ी बोली की कविता में भाव का अभाव है, और ओज की खोज व्यर्थ है। लालित्य के तो सदा लाले पड़े रहते हैं। प्रसाद का कहीं पता ही नहीं है। रस क्या, रसाभास भी नहीं। न अर्थ से अर्थ और न मतलब से मतलब।"

और, वास्तव में यह बात सर्वथा, सोलहो आने, ठीक भी नहीं है। अब भी खड़ी बोली में उत्कृष्ट, उच्च और भावमयी रचनाएँ होती हैं, और मिल सकती हैं। खड़ी बोली की कविता को इस प्रकार निस्सार बतलाकर मानो परोक्ष-रूप से आपने आग्रह किया है कि कवि-वृंद ब्रज-भाषा की शरण लें। परंतु खड़ी बोली में उत्कृष्ट रचना नहीं हो सकती, इसलिये, विशेष रूप से, ब्रज-भाषा में कविता करनी चाहिए, यह राय क़ायम करना सर्वथा भ्रम-मूलक है। होना तो यह चाहिए था कि प्रथम आप यह सिद्ध करते कि 'ब्रज-भाषा में ही कविता होनी चाहिए—उसी में कविता का होना श्रेयस्कर है, कविता के लिये खड़ी बोली की ओर पग बढ़ाना अनुचित है,' और फिर यह राय देते, तो युक्ति-युक्त भी होता, और लोगों पर उसका असर भी पड़ता। परंतु आपने तो सर्वत्र ब्रज-भाषा की दीनता को विशेष-रूप से प्रकट किया है। इस संबंध में आपका कथन है—

"खड़ी बोलीवाले अभी खड़े-खड़े ब्रज-भाषा पर बिगड़ ही रहे हैं। बेचारी (?) ब्रज-भाषा की चाल निराली है।"

ब्रज-भाषा बेचारी क्यों है? उसका साहित्य बहु-विस्तृत है, उसमें अद्वितीय ग्रंथ-रत्न हैं, उसमें विहारी और देव-सरीखे महाकवि हैं। फिर भी वह बेचारी है? शायद आपकी यह धारणा है कि इस समय लोगों की प्रवृत्ति

व्रज-भाषा की ओर नहीं है, इसलिये वह बेचारी हो गई। यदि यही बात है, तो इसका दोषी कौन हो सकता है? लोगों की यह प्रवृत्ति रोकने के लिये कौन साधन हैं? यदि लोगों की प्रवृत्तियों का ही यह दोष है, तो यही कमी खड़ी बोली के संबंध में भी तो है? लोगों की प्रवृत्तियाँ ही इस ओर नहीं है। उनकी प्रवृत्तियाँ तो दूसरी ही ओर हैं। तब तो खड़ी बोली में भी उच्च कोटि की भावमयी, ओज से पूर्ण एवं ललित रचनाओं का अभाव होना ही स्वाभाविक है। साहित्य की प्रगति ही परिवर्तित है—इसका दोष न खड़ी बोली पर है, और न व्रज-भाषा पर। जब लोगों की प्रवृत्ति इस ओर होगी, तब आप ही लोग तथ्य की ओर बढ़ेंगे। जो खड़ी बोली में काव्य करना चाहेंगे, वे खड़ी बोली में लिखेंगे, और जो व्रज-भाषा में लिखना चाहेंगे, वे व्रज-भाषा में। चूँकि व्रज-भाषा बेचारी है और खड़ी बोलीवाले उस पर खड़े-खड़े बिगड़ रहे हैं, इसीलिये उसमें भाव का अभाव है, और लालित्य के सदा लाले पड़ रहते हैं, यह कहना कोरा मज़ाक़ हो सकता है, सत्य नहीं।

एक ओर आपका कथन है कि

"भाव अनूठो चाहिए, भाषा कोऊ होय"

और दूसरी ओर आपने खड़ी बोली की कविताओं को निस्सार सिद्ध करने का प्रयत्न किया है। यदि किसी भी भाषा में कवि और महाकवि हो सकते हैं, तो खड़ी बोली में भी हो सकते हैं, हैं, और होंगे। जिनकी दृष्टि में नहीं हैं, उनकी दृष्टि में न सही, हमारी दृष्टि में तो अब भी हैं।

यह तो हुई खड़ी बोली और व्रज-भाषा की बात। अतुकांत कविता पर भी आपके विचार पूर्ववत् विवादास्पद हैं। आपका कथन है—

"सज्जनो, कुछ ऐसे भी हैं, जो बेतुकी हाँकते हैं। जब तुक न मिले और क़ाफ़िया तंग हो जाय, तो बेचारे क्या करें? बेतुका काव्य ही नहीं, महाकाव्य भी बनने लगा। बेतुके कवियों का कहना है कि तुक मिलाने में बड़ा झंझट है। इसके फेर में पड़कर कवि भाव भूल जाते हैं। पर यह स्वीकार करने के लिये मैं अभी तैयार नहीं हूँ। जो स्वाभाविक कवि हैं, वह (वे?) सदा भावमय रहते हैं। तुक मिलाने की चिंता उनकी भाव-राशि में बाधा नहीं डाल सकती।"

जिन शब्दों के नीचे लकीर है, आप पहले उन पर ध्यान दें, और विचार करें कि ये शब्द अखिल-भारतवर्षीय-हिंदी-साहित्य-सम्मेलन के सभापति के आसन पर कितने शोभित होते हैं! एक साहित्य-सेवी के मुख से, दूसरे साहित्य-सेवियों के लिये ही, ऐसे शब्दों का निकलना शोभा नहीं देता। अंत्यानुप्रास-हीन रचनाओं के लिये क्या अतुकांत, भिन्न-तुकांत अथवा तुकांत-हीन शब्द उपयुक्त नहीं हैं? फिर उनका 'बेतुके' शब्द से क्यों अभिनंदन किया जाय? लोग आपकी साहित्यिक भाषा का ढिंढोरा पीटते हैं, परंतु आपकी भाषा की वह साहित्यिक छटा केवल कवियों के समय क्यों तिरोहित हो गई? "कुछ ऐसे भी हैं, जो बेतुकी हाँकते हैं।" कौन? शायद आपका इशारा माननीय महाकवि पं० अयोध्यासिंह उपाध्यायजी की ओर ही है। वह बेतुकी हाँकते हैं, इसलिये कि उन्हें तुकें नहीं मिलतीं, क़ाफ़िया तंग हो जाता है और तब वे बेचारे बन जाते हैं। उन्होंने ही बेतुका काव्य नहीं, महाकाव्य लिखा है। शायद इसीलिये आपने उन्हें बेतुके कवि की उपाधि दे डाली है। कविताओं के लिये बेतुकी कहना ठीक भी कहा जा सकता है, पर कवियों के लिये 'बेतुके' कहना आपके ही श्रीमुख से शोभा देता है!

हाँ, तो आप यह मानने के लिये बिलकुल तैयार नहीं कि

"तुक मिलाने में बड़ा झंझट है। इसके फेर में पड़कर कवि भाव भूल जाते हैं।"

इसलिये कि

"जो स्वाभाविक कवि हैं, वह (या वे?) सदा भावमय रहते हैं। तुक मिलाने की चिंता उनकी भाव-राशि में बाधा नहीं डाल सकती।"

परंतु महाशय, यह आपकी कोरी भावुकता-भर है। सचाई का अंश इसमें बहुत थोड़ा है। यह ठीक है कि कुछ ऐसे भी कवि हैं, और होते हैं, जिन्हें तुक मिलाने की चिंता उनकी भाव-राशि में बाधा नहीं डाल सकती, या कम डाल सकती है। परंतु सर्वांश में यह बात नहीं है। ऐसे भी कवि हैं, और मिलते हैं, जो पूर्ण भावुक हैं, और तुक मिलाने की चिंता उनकी भाव-राशि के प्रकटन में पूरी-पूरी बाधा डालती है। मैं पूछता हूँ, क्या आप उन्हें कवि-समुदाय से पृथक् कर देंगे? और क्या आप

उन्हें कवि-समुदाय से पृथक् कर भी सकते हैं ? उन्हें साथ लेते हुए तो आपको गौरवान्वित होना चाहिए । बंग-भाषा-भाषियों से पूछिए, क्या वे महाकवि माइकेल मधुसूदन दत्त के मेघनाद-वध-जैसे महाकाव्य को अपने साहित्य से निकाल डालने को तैयार हैं ? अँगरेज़ी-भाषा-भाषियों से पूछिए, क्या वे अँगरेज़ी के साहित्य से मिल्टन, शेक्सपियर तथा वर्डस्वर्थ-जैसे महाकवियों के भिन्न-तुकांत महाकाव्यों को पृथक् कर देने के लिये तैयार हैं ? संस्कृत-साहित्य से भिन्न-तुकांत श्लोक निकाल डालिए, क्या रह जायगा ? हिंदी-साहित्य-प्रेमियों से पूछिए, क्या वे 'प्रिय-प्रवास' को भूल जाने के लिये तैयार हैं ? मैं समझता हूँ, उत्तर में आपको 'नहीं' के सिवा और कुछ नहीं मिलने का ।

बात यह है कि सानुप्रास पद्य जितने मनोहर होते हैं, अंत्यानुप्रास-हीन पद्य भी उससे कम मनोहर नहीं होते, और यह इसलिये कि कविता अंत्यानुप्रासों की चेरी नहीं है । निर्विवाद-रूप से यह कहा जा सकता है कि कविता में भावों का स्थान प्रधान है, भाषा का गौण । किसी भी भाषा में कविता लिखी जाय, यदि उसमें भावों की सुंदरता है, लालित्य है, प्रसाद और ओज है, तो निस्संदेह वह कविता है । किसी की मजाल नहीं, जो उसे कविता के उच्चतम स्थान से गिरा सके । यह कहना कि कविता खड़ी बोली में ही हो, या व्रज-भाषा में ही हो, सानुप्रास ही हो, अथवा अंत्यानुप्रास-हीन ही हो, कविता के क्षेत्र को संकुचित बनाना है । किसी भी भाषा में कविता की जाय । यदि वह वास्तव में कविता है, तो सर्वत्र उसका आदर होगा—सर्वत्र वह पूजी जायगी । परंतु यदि वह कविता नहीं है, तो किसी भी भाषा में क्यों न हो—खड़ी बोली में हो, या व्रज-भाषा में, सानुप्रास हो, या अंत्यानुप्रास-हीन—कहीं आदर नहीं पा सकती । शत-शत तुकांत रचनाएँ पढ़ डालिए ; यदि वे वास्तव में कविताएँ हैं, तो स्मृति-पट पर सदैव के लिये अंकित मिलेंगी, अन्यथा विस्मृति के गर्भ में विलीन हो जायँगी । जो लोग व्रज-भाषा या खड़ी बोली, सानुप्रास अथवा अंत्यानुप्रास-हीन, किसी भी भाषा या कविता का निरादर करने के लिये तैयार हैं, वे निस्संदेह पक्षपात करते हैं । सभी हिंदी की संपत्ति हैं । सभी से हिंदी की गौरव-वृद्धि होगी । किसी का पक्ष लेकर किसी को गिराना सर्वथा भ्रम-मूलक है । आशा है, हिंदी-साहित्य-सेवी सज्जन इस विषय पर गंभीरता-पूर्वक विचार करेंगे ।

भगवतीप्रसाद वाजपेयी

× × ×

५. निरमोही
(चतुर्दश-पदी)

तन, मन, धन, जिस पर न्योछावर
करता रहा, न ध्यान दिया ;
हृदयासन पर जिसे बिठाकर
प्रेमी-सम सम्मान किया ।
मंजु मूर्ति, मुसकान-माधुरी
मुकुलित नेत्रों में मढ़ ली ;
बे-जल के बादल की बिजली,
वह निकली पाषाण-हिया !
सोचा था, पीयूष-प्रेम का
पीकर पुलकित होगा मन ;
लहर ज़हर की छहर उठी, पर
खूब सुधा का पान किया !
समझा था यह गुल गुलाब है,
गुण, गौरव, गरिमा देगा ;
पर, यह क्या, जब हाथ पसारा,
काँटों ने आह्वान किया !
आशा-आशा में भटकाया,
पर, फटकाया पास नहीं !
अतुलित उपकारों के बदले,
सूखा, कटु सामान दिया !
मतलब की लीला का लोलुप
अब भी ललचाता मन को ;
पर, मैं शिक्षित हुआ सीखकर,
ठग को ठगिया भान किया ।
ऐसे निष्ठुर निरमोही से
कौन नेह-नाता जोड़े ?
परम पिता प्रभु ने अपनाया,
नव-जीवन का दान दिया ।

"रसिकेंद्र"

महिला-मनोरंजन

१. कामिनी और कांचन

संस्कृत के अधिकांश साहित्य में कामिनी और कांचन को कुत्सित कहकर उनका हेय होना प्रमाणित किया गया है। मालूम नहीं, कामिनी और कांचन को सब अनर्थों की जड़ और नरक का खुला हुआ द्वार कहनेवाले कवियों ने, सचमुच आत्म-ज्ञान के कारण निवृत्ति-मार्ग के पथिक होकर वास्तविक वैराग्य की ताड़ना से ऐसा लिख मारा है, या संसार के बीच किसी कामिनी या कांचन से वंचित होकर अपने हृदय का उद्गार निकाला है। विचार करने से अंतिम कारण ही सत्य प्रतीत होता है। कारण, आत्म-ज्ञान के कारण निवृत्ति-मार्ग का आश्रय लेनेवाला पुरुष कभी ऐसी कटु, कूट, कठोर भाषा में कामिनी की कृतघ्नता और कांचन की कुत्सा नहीं लिख सकता। यह लिखना कि "स्त्रियाँ करुणा-हीन, क्रूर, असहन-शील, साहस-प्रिय होती हैं; वे थोड़े प्रयोजन के लिये भी अपने ऊपर विश्वास रखनेवाले पति और भाई तक को भी मार डालतीं या मरवा डालती हैं *!", क्या किसी आत्मज्ञानी विरक्त के लिये शोभा दे सकता है? स्त्री-जातिमात्र पर कितनी बड़ी तोहमत लगाई गई है! अवश्य ही ये किसी जले दिल के फफोले हैं!

हमें विचार करके देखना यह है कि क्या दरअसल कामिनी और कांचन ऐसी ही वस्तु हैं कि उनके संसर्ग से संसार का अपकार-ही-अपकार होता है? संसार की गति को ग़ौर से देखिए, देखिएगा, कामिनी और कांचन के बिना संसार पंगु होता। कामिनी और कांचन के बिना इस सृष्टि का काम घड़ी-भर भी नहीं चल सकता। सच पूछिए तो इस सारी सृष्टि का उद्गम-स्थान नारी ही है। और कांचन? कांचन तो वह चीज़ है, जिसकी प्रशंसा में किसी अनुभवी का कथन है कि "सर्वे गुणाः कांचनमाश्रयंति।" जन्म से मृत्यु-पर्यंत जितने काम होते हैं, सब कांचन ही के द्वारा। कांचन ही के लिये बड़े-से-बड़े विद्वान् घोर मूर्ख की प्रशंसा करते हैं। कांचन ही में यह शक्ति है कि वह मनुष्य को फाँसी के ऊपर से उतार ला सकता है। सच तो यह है कि संसार में सर्वश्रेष्ठ दो ही वस्तुएँ हैं—कामिनी और कांचन।

अच्छा तो फिर उनके बारे में ऐसी बुरी धारणा होने का क्या कारण है? सुनिए। मनुष्य-जाति में—उसमें भी ख़ासकर पुरुष में—यह बड़ी भारी कमज़ोरी है कि वह स्वयं दोषी बनना नहीं चाहता। वह यथा-संभव अपना दोष औरों के सिर मढ़कर स्वयं निर्दोष बनना चाहता है। कामिनी और कांचन को बुरा कहने की जड़ में भी पुरुष की यह कमज़ोरी मौजूद है। कामिनी और कांचन दोनों ही संसार के परम आवश्यक और श्रेष्ठ पदार्थ हैं। पुरुष आकर्षण के वेग को न सँभाल सकने के कारण उधर, अग्नि की ओर पतंग की तरह, दौड़कर जाता है—सुमार्ग और कुमार्ग का ख़याल नहीं रखता। जब गढ़े में गिरकर टाँग तोड़ लेता है, तब हाय-हाय के साथ ही कामिनी और कांचन को कोसने और बुरा कहने लगता है।

बात ज़रा और खुलासा करके कहने की ज़रूरत जान पड़ती है। देखिए, अग्नि एक उपयोगी आवश्यक पदार्थ है। चतुर, विज्ञ पुरुष उस अग्नि का उचित उपयोग करके उससे स्वादिष्ठ भोजन पाते हैं। किंतु अनाड़ी आदमी, अपनी ग़लती से, उसी आग से घर को जलाकर ख़ाक कर देता है। तो इसमें दोष किसका है? आग का या उस अनाड़ी आदमी का? मतलब यह कि अग्नि का तो स्वभाव ही जला देना है, इसलिये अग्नि का उचित उपयोग न करने के कारण वह अनाड़ी आदमी ही दोषी है, अग्नि नहीं। यही हाल कामिनी और कांचन का है। जैसे अग्नि को हम देवता मानते हैं, वैसे ही कांचन भी देवता (लक्ष्मी) है। और कामिनी? वह तो देवता से भी बढ़कर आदर-मान-भक्ति की वस्तु, साक्षात् आधा अंग और सहधर्मिणी है। किंतु जैसे अगर अपनी ग़लती हो, अगर हम सावधान न रहें, उचित उपयोग न करें, उचित उपयुक्त स्थान पर न रक्खें, तो वही अग्नि-देवता पैशाचिक कांड करने में भी संकुचित न होंगे, घर को जलाकर ख़ाक कर देने में भी न हिचकेंगे, वैसे ही अगर हम कामिनी और कांचन का उचित उपयोग न करेंगे, उन्हें उचित उपयुक्त स्थान पर न रक्खेंगे,

---

* स्त्रियोह्यकरुणाः क्रूरा दुर्मर्षाः प्रियसाहसाः।
घ्नंत्यल्पार्थेऽपि विश्रब्धं पतिं भ्रातरमप्युत॥

उनके आकर्षण में पड़कर अपने को सँभाल न सकेंगे, तो अवश्य ही उसका परिणाम गृह-दाह के सिवा और कुछ न होगा। फिर उसके उपरांत अगर हम कामिनी और कांचन को बुरे विशेषणों से याद करें, उन्हें अनर्थ की जड़ बतलाकर अपनी ग़लती और अपने दोष पर परदा डालने की कोशिश करें, तो वह अपनी मूर्खता का ढोल पीटने के सिवा और कुछ नहीं।

× × ×

२. स्त्री का स्थान

दुर्भाग्य से आज ऐसा समय आ गया है कि समाज के अधिकांश लोग यह नहीं जानते कि स्त्री का स्थान कहाँ है। बहुतों की तो यह धारणा है कि जैसे पुरुष की साज-सज्जा के लिये वस्त्र, आभूषण आदि की आवश्यकता है, मनोरंजन के लिये सितार, हारमोनियम, ग्रामोफ़ोन आदि की ज़रूरत है, वैसे ही सेवा-कर्म और गृहस्थी चलाने के लिये स्त्री की ज़रूरत है। इससे ऊँचे पर स्त्री का स्थान होना उनकी धारणा से अतीत है। कुछ महात्मा तो ऐसे हैं कि मनु के "न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति", इस वाक्य का यह अर्थ लगाने में भी नहीं सकुचते कि एक ज़र-ख़रीद गुलाम या पाले हुए कुत्ते को कुछ स्वतंत्रता दी भी जा सकती है, किंतु स्त्री को नहीं। वे स्त्री को केवल अपने इंद्रिय-सुख की पूर्ति की सामग्री-भर समझते हैं। उनकी दृष्टि में स्त्री के न तो बुद्धि है, न विवेक; न हृदय है, न आत्म-सुख की इच्छा। वे उसे संतान-प्रसव की मशीन, सेवा-कर्म करने के लिये प्रतिज्ञा-बद्ध फ़ीजी आदि गोरे उपनिवेशों का काला कुली, या कुछ ऐसा ही समझते हैं, इससे अधिक नहीं। वे नहीं समझ सकते कि हमारे यहाँ स्त्री को अर्द्धांगिनी, सहधर्मिणी आदि विशेष अर्थवाले नाम देने का क्या रहस्य है। स्त्री की कौन-सी स्वतंत्रता मनु की दृष्टि में अनुचित है, इस पर ग़ौर करने का अवकाश ही उन्हें नहीं।

मनु का तात्पर्य तो यह था कि स्त्री-जाति को अपने रक्षणावेक्षण में रखना ही उसके और अभिभावकों के लिये श्रेयस्कर है। इसी से वह विधान करते हैं कि स्त्री बचपन में पिता के, जवानी में पति के और वृद्धावस्था में पुत्र के वश में रहे। अर्थात् वह अगर कोई ऐसा काम करे, जिसके फलाफल का प्रभाव परिवार और समाज पर पड़नेवाला हो, तो वह उसके लिये अपने अभिभावक पिता, पति या पुत्र की अनुमति अवश्य ले ले। उदाहरण के तौर पर मान लीजिए कि कहीं से निमंत्रण आया, वहाँ जाना है, या किसी देवी-देवता के दर्शन या तीर्थ-स्थान को जाना है, तो स्त्री को चाहिए कि वह अपने अभिभावक से अनुमति ले ले। किंतु यदि स्त्री किसी उपकारी या इष्ट-मित्र को कुछ देना चाहती है, या किसी स्त्री को बुलाकर घड़ी-भर मन बहलाना चाहती है, अथवा स्वास्थ्य ख़राब होने के कारण घर का काम-काज या सेवा-शुश्रूषा नहीं कर सकती, या नहीं करना चाहती, तो उसको यह स्वतंत्रता भी क्यों न दी जाय? अक्सर देखा गया है कि बहू सुसराल में आकर अगर कुछ पढ़ने-लिखने का क्रम जारी रखना चाहती है, या पत्र, पुस्तक आदि पढ़ती है, या अपने पिता, माता, भाई आदि को पत्र लिखती है, तो सास, नंद, जिठानी—जो स्वयं अशिक्षित, अपढ़ होती हैं—उसे अच्छी नज़र से नहीं देखतीं, ताने-तिश्ने देकर मानसिक कष्ट पहुँचाती हैं, और वश चला, तो उसके पति-देव को ताड़ना के लिये भी प्रोत्साहित करती हैं। जब यह हाल है, तो फिर स्त्री-जाति कैसे अपने पहले के स्थान और अधिकार को प्राप्त कर सकती है?

पहले की स्त्रियों का स्थान क्या और कहाँ था, इसके उत्तर में निस्संदेह होकर कहा जा सकता है कि उनका स्थान पति के बराबर, उसके आधे आसन में, था। वह घर के भीतर गृहस्थी की मालकिन थी। पारिवारिक, सामाजिक और व्यक्तिगत कामों और मामलों में वह पति को सलाह देती थी। तात्पर्य यह कि वह पति की सेवा में दासी, भोजन कराने में माता, विपत्ति में मित्र और मंत्री होती थी। पति को प्रसन्न करने के सिवा परिवार के लोगों, भृत्यों, परोसियों और नौकर-चाकरों तक को संतुष्ट रखना उसका कर्तव्य होता था। तात्पर्य यह कि अंतःपुर स्त्री का राज्य था, और उसी के भीतर रहकर वह अपनी प्रकृति-प्रदत्त योग्यता से छोटे और बड़े सभी कर्तव्यों का पालन करती थी। आप आज स्त्री-जाति की क़दर करना सीखिए, उन्हें आदर के साथ अपने बराबर जगह दीजिए; देखिएगा, सभी कार्यों में उनकी सहायता आपको बहुमूल्य जान पड़ेगी, सभी कार्यों में सफलता आपके आगे हाथ-जोड़े खड़ी रहेगी। अर्द्धांग (स्त्री) को काम के लायक़ बनाइए, काम में लगाइए; फिर अपनी, परिवार की, जाति की, समाज की और

देश की, चाहे जिसकी उन्नति करने में हाथ डालिए, वह सहज ही सुसंपन्न हो जायगी ।

× × ×

३. स्त्रियों की शिक्षा

स्त्रियों को शिक्षा देनी चाहिए, यह तो अब सर्व-मान्य सिद्धांत हो चुका है । किंतु एक प्रश्न अभी जैसे-का-तैसा पड़ा हुआ है; उसकी कुछ संतोषजनक मीमांसा नहीं हुई । वह प्रश्न यह है कि स्त्रियों को कैसी और कितनी शिक्षा दी जानी चाहिए ? इस विषय में नाना मुनियों के नाना मत हैं । कुछ लोग, जिनकी संख्या काफ़ी है, कहते हैं कि स्त्रियों को पुरुषों के समान बी०ए०, एम्०ए० तक अँगरेज़ी की शिक्षा देनी चाहिए, और अँगरेज़-जाति की स्वतंत्र लेडियाँ ही उनका आदर्श हों । कुछ लोग, जिनकी संख्या कम है, संस्कृत की उच्च शिक्षा देने के पक्षपाती हैं। वे कहते हैं, स्त्रियों को इतनी शिक्षा मिलनी चाहिए कि वे मनु-याज्ञवल्क्य की स्मृतियों को पढ़कर अपने कर्तव्य और धर्म की सूक्ष्म गति का ज्ञान प्राप्त कर सकें । कुछ लोग ऐसे भी हैं, जो कहते हैं, स्त्रियों को केवल थोड़ी-बहुत हिंदी पढ़ाना ही यथेष्ट होगा, जिसमें वे मा-बाप को पत्र लिख सकें, और अधिक-से-अधिक तुलसी-कृत रामायण पढ़ लें। अंगरेज़ी की उच्च शिक्षा पाकर न तो उन्हें नौकरी ही करनी है, और न संस्कृत की उच्च शिक्षा पाकर उन्हें कथा बाँचना या व्याख्यान देना है ।

किंतु मेरी समझ में यह विषय इतना गहन नहीं है कि उसकी मीमांसा में इतना मत-भेद हो । स्त्रियों को दो तरह से शिक्षा दी जा सकती है । एक तो पुस्तकें पढ़ाकर, और दूसरी मायके में मा के द्वारा और सुसराल में सास के द्वारा । हमारे देश में पुस्तकों द्वारा शिक्षा दी जाय, तो उसमें कोई आपत्ति नहीं । अगर पिता, पति या भाई उसे पढ़ा सकते हों, तो उनके द्वारा स्त्री चिर-काल तक पुस्तकों की शिक्षा प्राप्त कर सकती है । स्यानी या तरुणी होने तक पाठशाला जाकर भी पढ़-लिख सकती है। लेकिन असल में स्त्री-जाति की मुख्य शिक्षा मौखिक ही हुआ करती थी । गार्गी और मैत्रेयी २-४ भले ही निकल आएँ, परंतु सीता, जिन्हें अनसूया ने अपने आश्रम में शिक्षा दी थी, हरएक स्त्री का आदर्श हो सकती हैं । हम हिंदुओं के यहाँ माता अपनी कन्या को गृहस्थी के काम-धंधों की, कर्तव्य-पालन की, गुरुजन का सम्मान करने की, अदब-लिहाज़ की—इस तरह सभी आवश्यक बातों की—शिक्षा, उसके बचपन से विवाह-पर्यंत, दिया करती थीं । विवाह के उपरांत वही काम उसकी सास के सिर पड़ता था । यह क्रम प्राचीन है । अनेक ऊँचे दर्जे के उपदेश और शिक्षाएँ इसी क्रम से हिंदू-जाति की स्त्रियों में परंपरा से चली आती हैं । स्त्री के लिये मुख्य शिक्षा यही है । इसके उपरांत अगर अवकाश हो, और पिता, पति, भाई आदि से पढ़ने का सुभीता हो, तो पुस्तकें पढ़ना और हिंदी के अतिरिक्त संस्कृत, अँगरेज़ी, उर्दू आदि भाषाएँ सीखना भी बुरा नहीं है ।

परंतु, पाठक-पाठिका मुझे क्षमा करें, एक सत्य बात कहे बिना मुझसे नहीं रहा जाता । आज-दिन पाठशालाओं में २-४ पुस्तकें पढ़ी हुई अधिकांश बहनों में एक प्रकार की बेअदबी का भाव बड़े ज़ोर से फैलता नज़र आता है। वे अपढ़ सास को तुच्छ समझती हैं । सास-नंद से लड़ना-झगड़ना और पति से न दबना ही उनकी दृष्टि में सच्ची स्वतंत्रता है । उनमें स्त्री-जाति-सुलभ लज्जा, संकोच की मात्रा भी बहुत ही कम देख पड़ती है । आजकल के अनेक भेड़िया-धसान लेखकों के उत्तेजक लेख पढ़कर उनके हृदय में यह धारणा जम जाती है कि सभी सास, ससुर, पति आदि ने सभी स्त्रियों पर अत्याचार कर रक्खा है, उन्हें पैर की जूती समझ रक्खा है, उन्हें परदे की काल-कोठरी में डाल रक्खा है—इत्यादि । यह एक ऐसा कारण है, जो स्त्री-जाति की नई पौध के हृदय में घोर हलाहल भर रहा है । अगर ऐसे अविवेकी, स्थूलदर्शी, नक़ाल लेखकों के हाथ से विष वमन करनेवाली लेखनी न छीन ली गई, तो इस उपेक्षा के लिये एक दिन अवश्य ही समाज को पछताना पड़ेगा ।

इस संबंध में अभी बहुत कुछ कहना है । मुझे जान पड़ता है, मैं अपने वक्तव्य को पूर्ण रूप से स्पष्ट नहीं कर सकी । ख़ैर, इस बार इतना ही सही । फिर कभी देखा जायगा।

× × ×

४. एक किशोरी की चित्र-कला में निपुणता

मिस इलिन शोपर ने १३ वर्ष की अवस्था में चित्र बनाना शुरू किया था । थोड़े दिन हुए, लंदन की शाही चित्र-शाला (Royal Academy of Arts) में

जो वसंत-ऋतु की चित्र-प्रदर्शिनी हुई थी, उसमें मिस इलिन ने अपने बनाए दो चित्र भेजे थे। इस समय

मिस इलिन शोपर

बेड़ा नहीं, घर

(रायल एकाडेमी की नुमाइश में स्वीकृत इलिन का बनाया पहला चित्र)
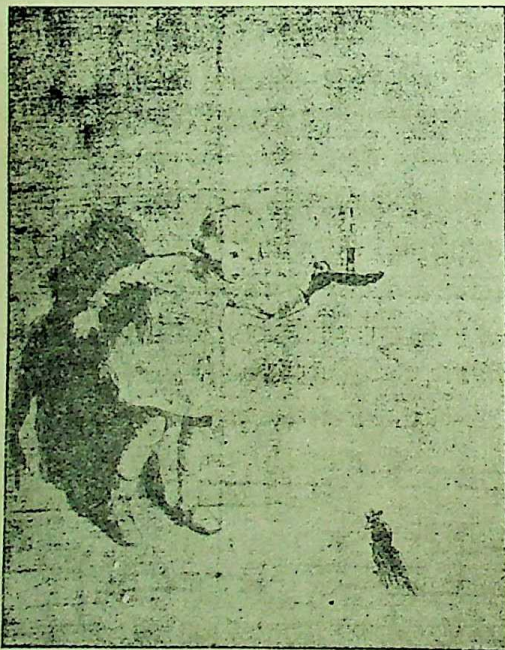
लड़की

(इलिन ने १३ वर्ष की अवस्था में यह चित्र बनाया था)

सरदार ख़ानसामा

(रायल एकाडेमी की नुमाइश में इस चित्र पर प्रथम पुरस्कार दिया गया था। इस चित्र के चित्रकार मि० आर्पेन हैं। यह चित्र पैरिस के चैथम-होटल के ख़ानसामा यूजिन ग्रोसरीडर का है)

इलिन की अवस्था १६-१७ साल की होगी। जब चित्र भेजे थे, तब १५ वर्ष की थी। उक्त प्रदर्शिनी में १२००० निपुण चित्रकारों ने अपने चुने हुए चित्र भेजे थे। किसी को यह भी आशा न थी कि इतने उस्ताद चित्रकारों के चित्रों के बीच इस कम-सिन लड़की के चित्र भी स्थान पावेंगे। परंतु निर्णय करनेवालों ने इलिन के दोनों चित्रों को प्रदर्शिनी के लिये स्वीकृत ही नहीं किया, बल्कि उन्हें पुरस्कार के योग्य भी ठहराया। इस ख़बर से इलिन के आत्मीय, बंधुगण और जान-पहचान के आदमियों को बड़ा ही विस्मय और असीम आनंद हुआ। उसी दिन से मिस इलिन का नाम और यश संसार में फैल गया। इतनी छोटी अवस्था में इतना भारी सम्मान, स्त्री की कौन कहे, किसी पुरुष चित्रकार को भी कभी कहीं नसीब नहीं हुआ। विशेषता तो यह है कि मिस इलिन ने कभी किसी आर्ट-स्कूल में शिक्षा नहीं पाई। उसने चित्रकारी की कला अपने पिता से ही सीखी है। उसके पिता का नाम जार्ज शोपर आर० ई० है। वह एक प्रसिद्ध चित्रकार हैं।

इस वासंती प्रदर्शिनी में प्रथम पुरस्कार मिला है, सुप्रसिद्ध चित्रकार मि० आर्पेन को। मित्रों की विजय और जर्मनी की पराजय के बाद हेग में जो शांति-सभा (Peace Conference) बैठी थी, उसके अधिवेशन में सब देशों के प्रतिनिधि—बड़े-बड़े आदमी—जमा हुए थे। मि० आर्पेन उन्हीं के चित्र अंकित करने के लिये फ़्रांस गए थे। पेरिस में जिस होटल में वह ठहरे थे, उसके एक ख़ानसामा के चेहरे ने विशेष-रूप से उनकी दृष्टि को आकृष्ट किया। उन्होंने उसका एक चित्र बना डाला। वह चित्र इतना उत्कृष्ट हुआ कि प्रदर्शिनी में सर्वश्रेष्ठ समझा गया।

× × ×

५. स्त्रियों की उन्नति के कुछ समाचार

(क) भारतीय सरकार ने बर्मा की स्त्रियों को छोटे लाट की काउंसिल के चुनाव पर वोट देने का अधिकार दे दिया है और साथ ही वहाँ की काउंसिल को यह अधिकार भी प्राप्त हो गया है कि वह जब चाहे, प्रस्ताव पास करके औरतों को काउंसिल की सभ्या बन सकने की अनुमति दे दे। भारतवर्ष की स्त्रियों को अभी यह सौभाग्य नहीं प्राप्त हुआ।

(ख) अमेरिका में अभी हाल में कुमारी टॉम्मी वाडा नाम की एक जापानी-स्त्री को डॉक्टर-ऑफ़-फ़िलॉसफ़ी की डिगरी मिली है। इतनी ऊँची उपाधि प्राप्त करनेवाली अमेरिका की यह पहली ही स्त्री है। अमेरिकन विश्व-विद्यालयों में इन्होंने अध्यात्म-विद्या का विशेष अध्ययन किया है।

(ग) अमेरिका के संयुक्त-राज्य में पुरुषों ही की तरह स्त्रियों को भी वोट देने का अधिकार प्राप्त हो गया है। इस विषय का क़ानून तो सन् १९१९ में ही बन गया था, लेकिन उसका व्यवस्थानुरूप होना विवाद-ग्रस्त विषय था। अब सर्वोच्च न्यायालय ने भी उसको क़ानूनन जायज़ क़रार दे दिया है।

(घ) फ़ॉलिन मूलज़ी मेयर ही वायना की अदालतों में वकालत करने का अधिकार प्राप्त करनेवाली प्रथम स्त्री है। थोड़े ही दिन हुए, उसने क़ानून का अध्ययन समाप्त किया है, और वह क़ानून में डॉक्टर की उपाधि से शीघ्र ही विभूषित होनेवाली है।

(ङ) ऑस्ट्रिया के प्राचीन शासन के अनुसार स्त्रियों को क़ानून पढ़ने की आज्ञा नहीं थी। सबसे पहले प्रजा-तंत्र-राज्य ने ही यह अधिकार दिया।

(च) सन् १९०१ से लेकर अब तक हालैंड में लग-भग १०० स्त्रियों ने इंजीनियरी की उच्च परीक्षा पास की है।

(छ) सेनोरिटा कारमेन लिअन नाम की स्त्री ही सबसे पहली स्त्री है, जो स्पेन की पार्लियामेंट की सदस्या चुनी गई है।

कृष्णकुमारी

विविध विषय

१. कृष्ण-जयंती

नातन-धर्म के सत्य सिद्धांतों को माननेवाले हम हिंदुओं की यह ध्रुव धारणा है कि जब धर्म की हानि और अधर्म का अभ्युदय होता है, जब दुष्ट लोग प्रबल होकर सज्जनों पर अत्याचार करने लगते हैं, तभी भू-भार उतारने के लिये—धर्म की रक्षा के लिये—पृथ्वी पर जगदीश्वर का अवतार होता है। इस सिद्धांत को अपने श्रीमुख से कहकर पुष्ट करनेवाले भगवान् श्रीकृष्णचंद्र उन सब

अवतारों में सर्वश्रेष्ठ हैं। और सब अंशावतार या कलावतार हैं, परंतु कृष्णचंद्र पूर्णावतार हैं—"कृष्णस्तु भगवान् स्वयम्।" ख़ैर, यह तो हमारा धार्मिक विश्वास है ; किंतु यदि कोई यह प्रश्न करे कि संसार में सब से बड़ा शक्तिशाली, प्रतिभाशाली, राजनीतिज्ञ, दूरदर्शी, ज्ञानी, योगी और आदर्श महापुरुष कौन हुआ है, तो भी हम निस्संदेह होकर दृढ़ता के साथ यही उत्तर देंगे कि वह नर के सखा नारायण पुरुषोत्तम कृष्णचंद्र ही हैं ! कोई ऐसा हिंदू न होगा, जो कृष्ण-कथा से अपरिचित हो, या उन्हें चरम सम्मान की दृष्टि से देखकर सिर न नवाता हो। आज भी भारत-भर में शहर-शहर, घर-घर कृष्णचंद्र की मूर्ति विराजमान है, आज भी प्रतिवर्ष कृष्णचंद्र की जयंती घर-घर मनाई जाती है। मगर खेद है कि हम ठीक ढंग से उन इष्ट-देव की जयंती नहीं मनाते। केवल अंधे की तरह लकीर पीटते चले जाते हैं, और इसी कारण ऐसे महापुरुष के अनुयायी होकर भी आज हम दीन-हीन हो रहे हैं। हम कृष्णचंद्र को अपना आदर्श मानकर गो-पालन और गो-रक्षा में तत्परता नहीं दिखाते, दुष्टों के दमन और शिष्टों के पालन का प्रयत्न नहीं करते, अन्याय का विरोध नहीं करते, अपने पास-परोसियों की सहायता कैसी, भाई को भी करावलंब देने से मुँह मोड़ लेते हैं। फिर क्यों न हम दिन-ब-दिन अवनति के गड्ढे में गिरते चले जायँ ? कृष्णचंद्र ने कंस का विध्वंस करके हमें शिक्षा दी है कि अगर अपना सगा और नातेदार भी अन्याय-अत्याचार करता हो, तो उसका दमन करने में हिचकना न चाहिए। उन्होंने भारत-युद्ध के समय अर्जुन को जिस कर्मयोग की, निष्काम कर्म करने की, कर्तव्य-पालन की शिक्षा दी है, वह अमूल्य है। आज हममें से अधिकांश लोग गीता का पाठ करते हैं, पर बहुत-से तो उसके रहस्य को समझते ही नहीं, और जो कुछ समझते भी हैं, वे उसके अनुसार कार्य नहीं करते। ठाकुरद्वारों में कृष्ण-जयंती (जन्माष्टमी) के अवसर पर रास-लीला आदि कराकर जो द्रव्य नष्ट किया जाता है, वही यदि गो-रक्षा में, राष्ट्रीय शिक्षा के प्रचार में, या ग़रीब भाइयों की सहायता में ख़र्च किया जाय, तो अवश्य ही उससे देश का भला हो, और हमारे इष्टदेव देवकी के दुलारे, यशोदा के प्यारे, नंदनंदन, आनंदकंद ब्रजचंद्र की कृपा-दृष्टि हम पर हो।

× × ×

२. भारतेंदु-जयंती

हिंदी के साहित्य से प्रेम और परिचय रखनेवाला ऐसा कोई न होगा, जिसे गोलोकवासी बाबू हरिश्चंद्र जी 'भारतेंदु' के विषय में कुछ जानकारी न हो। क्षणजन्मा, पुण्यश्लोक भारतेंदुजी मातृभाषा को अपनी अनूठी, रुचिर रचना-रूप रत्नों से अलंकृत करके अपना नाम अमर कर गए हैं। उनको आधुनिक परिमार्जित गद्य का जन्म-दाता कहना कुछ अत्युक्ति नहीं। जिस समय आप कार्य-क्षेत्र में
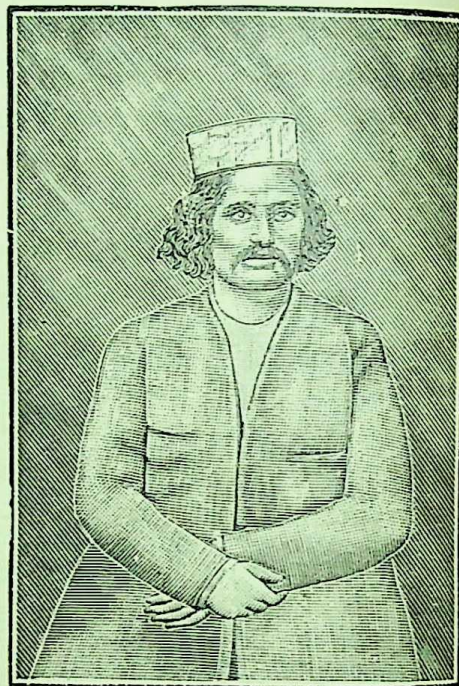
हिंदी के महाकवि
स्वर्गीय भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र

आए थे, उस समय अँगरेज़ी और उर्दू का बहुत प्रचार था। लोगों को हिंदी पढ़ने-लिखने का बहुत कम शौक़ था। हिंदी के लेखक और कवि भी कुछ इने-गिने ही थे। भारतेंदुजी घर के मालदार थे। साथ ही शौक़ीन और तबियतदार थे। उन्होंने अपनी अधिकांश संपत्ति और समय हिंदी और हिंदी के सेवकों की सेवा में लगा दिया। जो उनकी सोहबत में आया, वही अपनी योग्यता के अनुसार हिंदी का लेखक, कवि अथवा हिंदी-साहित्य का प्रेमी बन बैठा। उनके आदर्श को सामने रखकर, उनसे उत्साह पाकर प्रेमघन, प्रताप, गोस्वामी, पाठक और भट्ट-सरीखे प्रथम श्रेणी के लेखकों और कवियों ने हिंदी-प्रचार के पथ को परिष्कृत,

प्रशस्त बनाया। हमें और हमारी हिंदी को हरिश्चंद्र का गर्व है और उनकी रचना किसी भी भाषा के लिये गौरव की सामग्री हो सकती है।

माधुरी की यह संख्या भारतेंदु-जयंती के दिन ही निकल रही है। हमारी सम्मति है कि हिंदी-साहित्य-सम्मेलन की ओर से प्रत्येक प्रांत में उनकी जयंती मनाने का प्रचलन होना चाहिए। इस तरह 'एक पंथ, दो काज' होंगे। उनका एक अमर स्मारक भी क़ायम हो जायगा, और उन्हें श्रद्धा, भक्ति, सम्मान की पुष्पांजलि अर्पण करने का जो हमारा कर्तव्य है, उसका भी पालन होगा। यों तो काशी, प्रयाग आदि दो-चार स्थानों में अब भी उनकी जयंती मनाई जाती है, पर हम अधिक व्यापक और विस्तृत रूप में, असर डालनेवाले—उत्साह बढ़ानेवाले—रूप में, उसका मनाया जाना देखना चाहते हैं।

× × ×

३. हिंदुस्तान की रेल-गाड़ियाँ

इंडियन और ईस्टर्न इंजिनियर लिखता है कि सन् १९१९-२० में भारत-भर की रेल-गाड़ियों ने सब दर्जों के मुसाफ़िरों द्वारा ३३ करोड़ और १६ लाख रुपए कमाए। लेकिन इसका अधिकांश, कोई २७ करोड़ और ६९ लाख रुपए, तीसरे दर्जे के यात्रियों से ही मिले। इसके बाद दूसरे दर्जे का नंबर रहा, जिसने २ करोड़ १८ लाख रुपए दिए। लेकिन पहले और ड्योढ़े दर्जे से केवल २-२ करोड़ रुपयों का ही लाभ हुआ।

कैसे खेद की बात है कि हिंदुस्तान की वे रेलवे-कंपनियाँ जिनकी अधिकांश आमदनी तीसरे दर्जे के यात्रियों से ही होती है, अथवा यों कहिए कि जिनका अस्तित्व ही बेचारे ग़रीब किसानों पर है, उनके आराम, सहूलियत और ज़रूरत की ओर कुछ ध्यान ही नहीं देतीं। आराम की ओर ध्यान देना तो दूर, उलटे उन्हें गाड़ियों में ठूँस-ठूँसकर भरती हैं। अफ़सोस!

× × ×

४. नालंदा-विश्व-विद्यालय

बौद्ध-कालीन भारतवर्ष में नालंदा-विश्व-विद्यालय नाम का एक बहुत ही भारी विश्व-विद्यालय था। कुछ शताब्दियों में ही यह उन्नति के शिखर पर पहुँच गया और सैकड़ों विद्यार्थी सुदूर देशों तक से इसमें आने लगे। इस समय बौद्ध-मत का भारतवर्ष में पूर्ण प्रचार था। उसके लाभदायक प्रभाव के कारण जाति-भेद का मूलोच्छेद और विदेश-यात्रा की रुकावटों का लोप हो चुका था। इसीलिये तिब्बत, चीन और जापान आदि देशों के और भारतवर्ष के निवासियों का ज़ोर-शोर से समागम होने लगा। इन सुदूर देशों से भी विद्यार्थी और यात्री लोग पढ़ने और बौद्ध-साहित्य इकट्ठा करने के लिये नालंदा आने लगे।

नालंदा-युनिवर्सिटी में संन्यासी और विद्यार्थी कुल मिलाकर १० हज़ार मनुष्य रहते थे। १२ हाथ लंबे और ८ हाथ चौड़े छोटे-छोटे हज़ारों कमरों में तो वे लोग वास करते थे, और बड़े-बड़े व्याख्यान-भवनों में पढ़ाई होती थी। विद्यार्थियों को हिंदू और बौद्ध-साहित्य, दर्शन-शास्त्र, वैद्यक, शिल्प और अन्य कलाएँ सिखलाई जाती थीं। ताल-पत्र और भोज-पत्र पर लिखी हुई हस्तलिखित पुस्तकों का वहाँ एक विशाल पुस्तकालय था।

जो विद्यार्थी विश्व-विद्यालय में भरती होने की इच्छा से रात को नालंदा पहुँचते थे, उन्हें मुख्य द्वार (फाटक) के बाहर अतिथि-शाला में ठहरना पड़ता था। आए हुए विद्यार्थियों की परीक्षा लेकर उन्हें भरती किए जाने के योग्य ठहराना द्वार-रक्षक का काम था। इसीलिये किसी धुरंधर विद्वान् पर ही द्वार-रक्षण का भार डाला जाता था। इस परीक्षा में जो अनुत्तीर्ण होते थे, उन्हें उलटे-पावँ अपने देश को लौट जाना पड़ता था। जिनकी बुद्धि तीव्र होती थी, वे ही—केवल वे ही—इस विश्व-विख्यात विश्व-विद्यालय में प्रवेश पा सकते थे। उपर्युक्त कसौटी पर जो खरे उतरते थे, वे, चाहे जिस मत या जाति के हों, आँख मूँदकर भरती कर लिए जाते थे।

वहाँ के नियम बड़े कड़े थे। संन्यास-जीवन का सार संयम और सरल स्वभाव समझा जाता था; इसीलिये असंयम की प्रवृत्ति कठोरता के साथ तत्काल दबा दी जाती थी। पौ फटते ही संन्यासी अपनी प्रार्थना का गान करते और कई दलों में होकर स्नानार्थ बाहर जाते थे। सारा दिन पठन-पाठन में व्यतीत होता था। चावल, तेल, मक्खन, खजूर आदि ही उनका भोजन था। वहाँ कमनीय कमल-कासार-समेत बड़े-बड़े रसाल-उपवन और बाग़ थे, जो दिन-भर की थकन मिटाकर जी बहलाने की उत्कृष्ट सामग्री थे।

इस विश्व-विद्यालय को धन की ज़रा भी कमी नहीं थी। कारण, अनेक राजों-महाराजों ने इसे २००

से ऊपर गाँव दान में दे दिए थे। उनकी आय से इसका काम भली भाँति चला जाता था। नवीन खोजों से पता चला है कि पटना-ज़िले में जहाँ बड़ागाँव (Bada-gaon) है, वहीं नालंदा था। यहाँ इस सुप्रसिद्ध विश्व-विद्यालय के कुछ भग्नावशेष ज़मीन से, खोदने पर, निकले हैं। उनमें से एक शिला-लेख पर यह लिखा है—"श्री-नालंदामहाविहारे आर्यभिक्षुसंघस्य।"

× × ×

५. चलता-फिरता घर

'अलाउद्दीन' के क़िस्से में लिखा है कि एक जादूगर जादू के चिराग़ के ज़ोर से अलाउद्दीन के महल को सैकड़ों कोस पर उठा ले गया था। मगर हम आज जो चलते-फिरते घर का हाल लिख रहे हैं, वह जादू की करामात या कपोल-कल्पित कहानी नहीं है। यह घर ईंट-चूने की बनी इमारत भी नहीं है। अमेरिका के पूर्वी प्रदेश में रहनेवाले एक सज्जन ने, जो पहले खेती का धंधा करते थे, एक भारी मोटर-गाड़ी के भीतर यह चलने-फिरनेवाला घर बनवाया है। इसमें पचास हज़ार रुपए के लगभग लागत आई है। गाड़ी (अर्थात् वह चलता-फिरता घर) ३० फ़ीट लंबी है। पीछे की तरफ़ एक खुला हुआ बरामदा है। भीतर का सब हिस्सा रहने के लायक़ बना लिया गया है। ड्राइवर के बैठने के लिये अलग कोई जगह नहीं रक्खी गई, घर के भीतर ही एक घूमनेवाली कुर्सी (Revolving chair) पर वह बैठता है। जिस समय गाड़ी को चलाने की ज़रूरत नहीं रहती, उस समय वह घूमकर बैठ जाता
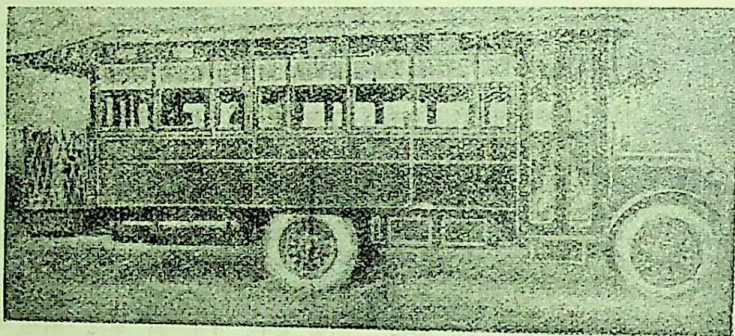
चलते-फिरते घर का बाहर का दृश्य

चलते-फिरते घर का भीतर का दृश्य
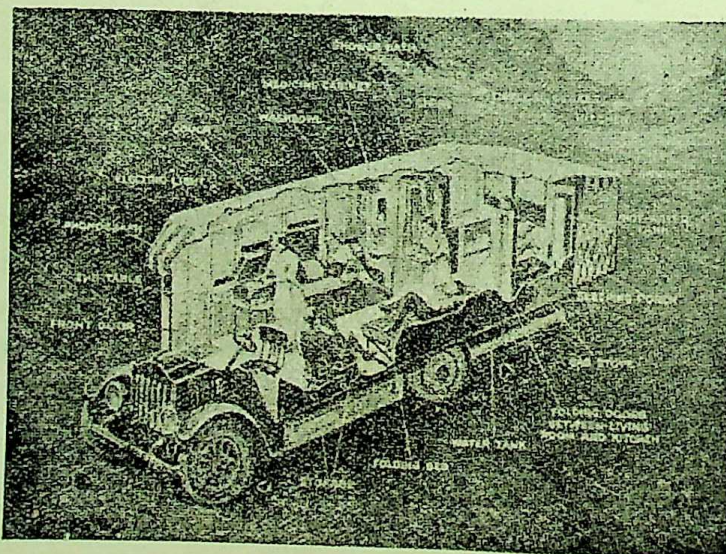
है, और उसमें रहनेवाले परिवार के लोगों से बातचीत करता है, गपशप लड़ाता है। इस किफ़ायत से भीतर के घर में ८ फ़ीट चौड़ी और २० फ़ीट लंबी जगह और निकल आई है। घर के भीतर एक तरफ़ एक छोटा-सा रसोई-घर है। सोने के लिये टूट की चारपाई, ईज़ी-चेयर, कौच, टूट का डिनर-टेबिल, छोटी-छोटी कुर्सियां वग़ैरह गिरस्ती की सभी ज़रूरी चीज़ें क़ायदे से रक्खी रहती हैं। घर के फ़र्श में एक तहख़ाना-सा बना है। उसी के भीतर ट्रंक, सूट-केस आदि असबाब रक्खे रहते हैं। पीछे बरामदे की ओर नहाने की जगह, पाख़ाने की जगह वग़ैरह हैं। रसोई-घर में गैस का स्टोव, कुकर, गर्म जल की टंकी, बरफ़दान वग़ैरह का सुंदर प्रबंध है। गाड़ी के नीचे रसोई बनाने और गर्मी पहुँचाने के लिये गैस से भरा एक बड़ा-सा नल लगा है। स्नान-गृह में ठंडे और गर्म जल का पंप, स्नान के लिये फुहारा और हाथ-मुँह धोने के लिये शीशे का बना गमला
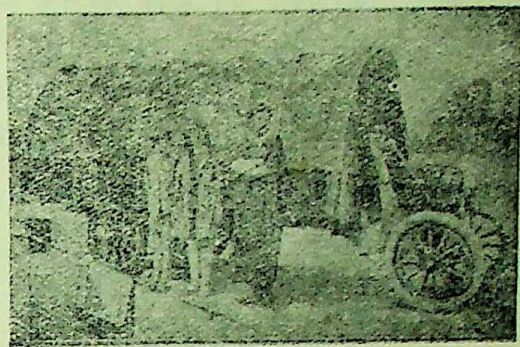
सस्ते में चलता-फिरता घर

(एक बड़ी मोटर-लारी के पाँच विभाग करके उनमें सोने का कमरा, भोजन करने का स्थान, बैठकख़ाना, लाइब्रेरी और रसोई-घर बनाया गया है। समग्र गाड़ी के ऊपर एक तिरपाल डालकर उसकी छत बनाई गई है। एक छः आदमियों का परिवार इसमें सुख-पूर्वक रह सकता है)
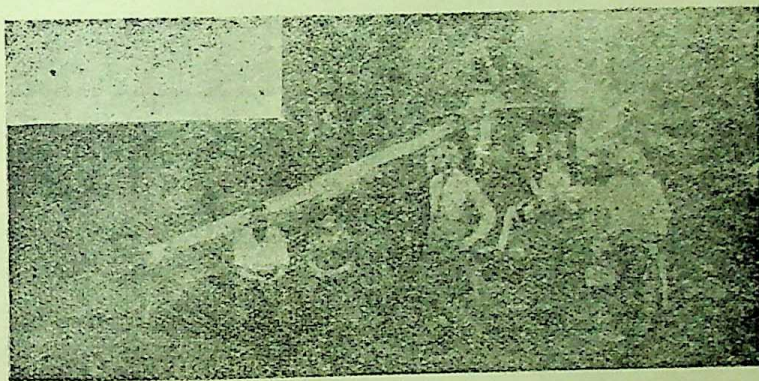
चलते-फिरते घर में रात को रहना

(एक साधारण मोटर-गाड़ी में ही एक परिवार का निवास है। इस सस्ते चलते-फिरते घर को रात्रि के समय एक जगह खड़ा करके, गाड़ी में लगा हुआ एक तंबू तानकर, उसके तले टूट की चारपाई बिछाकर सोना होता है। रसोई और भोजन आदि भी गाड़ी को खड़ा करके उतरकर बाहर करना होता है)

है। सब मिलाकर बाईस बत्तियाँ जलाने के लायक़ एक बिजली बनानेवाला छोटा-सा इंजिन भी गाड़ी में शामिल है।

इस गाड़ी, या चलते-फिरते घर, में बैठकर इसका स्वामी, अपने परिवार और दो अतिथियों के साथ, यूनाइटेड् स्टेट्स की सैर करने निकला है। यह यात्रा लगभग दो वर्ष में पूर्ण होगी। इसे देखकर और भी अनेक अमेरिकनों ने चलते-फिरते घर में रहने की

व्यवस्था की है। किंतु पूर्वोक्त धनी कृषक की तरह इतना ख़र्च और ऐश-आराम का प्रबंध सब नहीं कर सके। उन्होंने महज़ शौक़ से वैसा नहीं किया। कारण, अमेरिका में ज़मीन इतनी महँगी और दुर्लभ है कि ज़मीन ख़रीदकर घर बनवाना मध्यवित्त लोगों के लिये क्रमशः असंभव होता जा रहा है।

× × ×
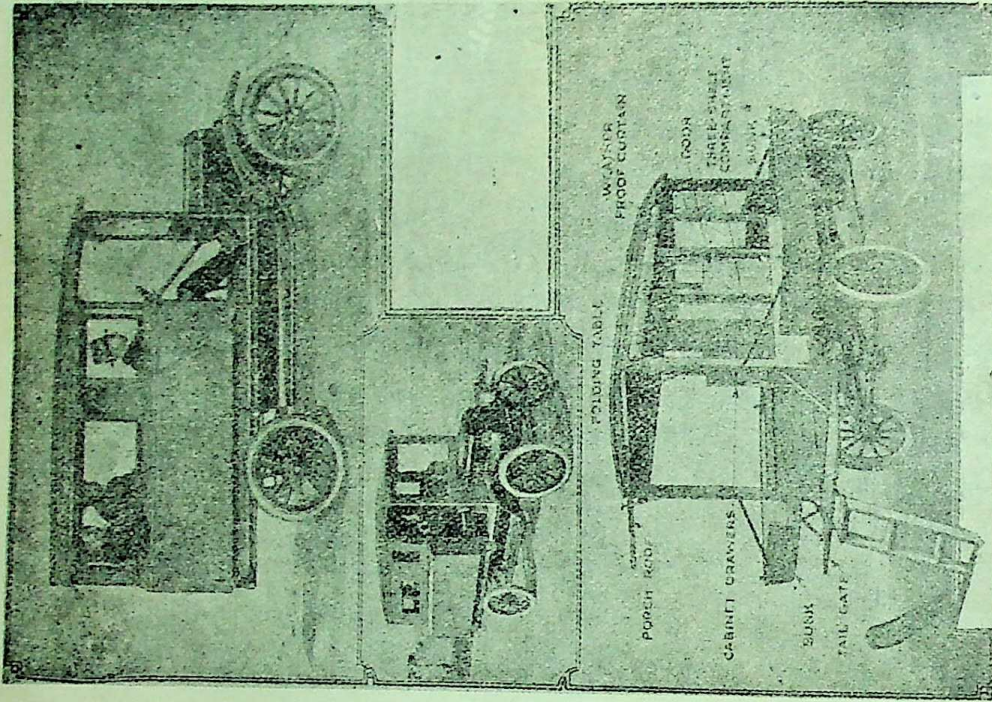
गाड़ी का घर (दिन को)

(तीन तरफ़ के अतिरिक्त आसन को उठाकर दिन को गाड़ी के रूप में इसका इस्तेमाल किया जाता है। रात को तीन तरफ़ का अतिरिक्त आसन खोलकर परदा खींच देने से ही गाड़ी घर का रूप धारण कर लेती है)
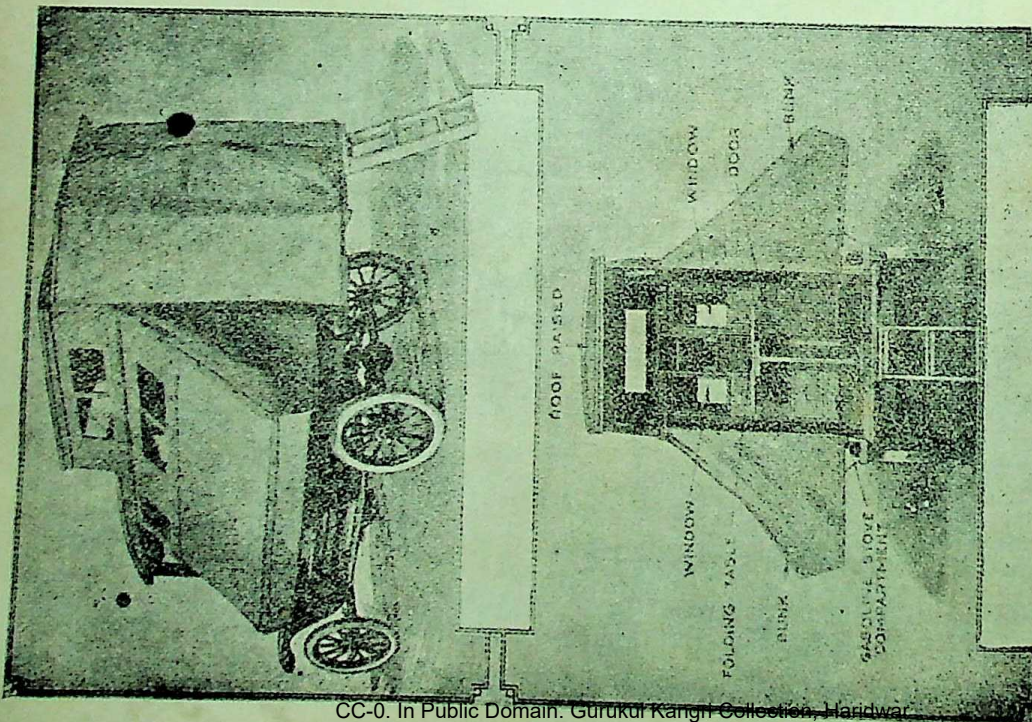
गाड़ी और घर

(तीन तरफ़ का अतिरिक्त आसन खोल दिया गया है)

साहित्य-सूचना

इस कालम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुभीते के लिये हर मास नई-नई उत्तमोत्तम पुस्तकों के नाम देते हैं। गत मास में नीचे-लिखी पुस्तकें अच्छी निकलीं—

(१) कन्हैयालाल अग्रवाल-लिखित 'गृहिणी-चिकित्सा' अर्थात् औरतों और बच्चों के रोगों का इलाज। मूल्य २॥)

(२) स्व० कुमार देवेंद्रप्रसाद जैन की अंतिम रचना 'महिलाओं का चक्रवर्तित्व'। मूल्य

(३) आलम-कवि-रचित तथा लाला भगवानदीन द्वारा संपादित 'आलम-केलि'। मूल्य १)

(४) वर्तमान-संपादक पं० रमाशंकर अवस्थी-लिखित सचित्र 'बोल्शेविक रूस'। मूल्य ।)

(५) श्रीशिवनारायणजी द्विवेदी-लिखित 'माता' और 'गल्पांजलि'। मूल्य ≈) तथा ॥)

(६) 'मानस-मंजूषा'—गोस्वामी तुलसीदास-कृत रामचरित-मानस पर हृदयग्राही भाव-रत्नों से भरा हुआ अमूल्य ग्रंथ। मूल्य १॥)

(७) ठाकुर प्रसिद्धनारायण सिंह बी० ए०-रचित 'योग की कुछ विभूतियां'। मूल्य ॥)

(८) श्रीयुत व्रजमोहन मिहिर-लिखित 'दंपति-कर्तव्य-शास्त्र'। मूल्य १।)

(९) युधिष्ठिरप्रसाद सिंहानिया व श्रीगोपाल नेवटिया-लिखित 'छात्रोपहार'। मूल्य ।-)

(१०) पं० गौरीशंकर मिश्र-लिखित 'किसानो उठो!'। मूल्य ।)

(११) ठाकुर महताबसिंह वर्मा-लिखित 'भारतीय जेल'। मूल्य ॥)

(१२) पं० गोकुलचंद्र शर्मा-लिखित 'तपस्वी तिलक'। मूल्य २), रेशमी जिल्द २॥)

(१३) श्रीमहावीरप्रसाद गहमरी द्वारा अनुवादित 'स्वर्ग की सीढ़ी'। मूल्य २)

(१४) पं० मातासेवक पाठक द्वारा अनुवादित तथा म० गाँधीजी-लिखित भूमिका-सहित 'स्वतंत्रता का अधिकार'। मूल्य ॥≈)

(१५) लाला भगवानदीनजी-लिखित 'सोना रानी' नाटक। मूल्य ॥)

(१६) पं० श्यामलाल पाठक-रचित 'पद्य-पुंज' का प्रथम भाग। मूल्य ॥)

(१७) चंद्रराज भंडारी-लिखित 'सिद्धार्थ-कुमार' अर्थात् महात्मा बुद्ध-नाटक। मूल्य १।)

(१८) 'भारत-गौरव' सचित्र ऐतिहासिक नाटक। मूल्य १॥)

(१९) 'आनंद-मठ' का सस्ता और सुंदर नया संस्करण। मूल्य ॥)

(२०) 'चित्रमय श्रीकृष्ण' सचित्र पुस्तक। मूल्य ४)

(२१) पं० रामजीलाल शर्मा द्वारा अनुवादित 'हिंदी-गीता'। मूल्य ॥)

(२२) 'आगरा-जेल का मुशायरा'। मूल्य ॥)

(२३) 'टापू की रानी'। सचित्र जासूसी उपन्यास। मूल्य १॥)। अनुवादक, पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा।

(२४) योगिराज श्रीअरविंद घोष-लिखित 'जातीयता' मूल्य ।≈)

चित्र-चर्चा

इस संख्या में सादे चित्रों की संख्या पहले से अधिक है। हम आगे चलकर सादे चित्रों की संख्या को और भी बढ़ाने की चेष्टा करेंगे।

दोनों रंगीन चित्र श्रीमान् विष्णुनारायणजी भार्गव की चित्रशाला के हैं। पुराने ज़माने के कारीगरों की क़लम से बने हुए ये दोनों चित्र दर्शनीय हैं। 'केश-रचना'-नामक चित्र में कोई सुंदरी स्नान के उपरांत केश सँवार रही है। एक सखी सामने आईना लिए खड़ी है। दूसरी सखी पीछे प्याली में सुगंध-तैल लिए उपस्थित है। रूप-सौंदर्य और सफ़ाई देखकर पाठक स्वयं अनुमान कर सकते हैं कि चित्र की कारीगरी किस दर्जे की है।

'तांबूल-दान'-चित्र में यह दिखाया गया है कि पति को उसकी पत्नी सम्मान और स्नेह के साथ पान खिला रही है। पति ने पान लेने को हाथ फैलाया है, परंतु पत्नी अधिक अनुराग के मारे पान हाथ में न देकर अपने ही हाथ से खिलाती है।

अगली संख्याओं के लिये कई अपूर्व रंगीन चित्र तैयार किए जा रहे हैं। तीसरी संख्या के चित्र इनसे भी अच्छे होंगे।
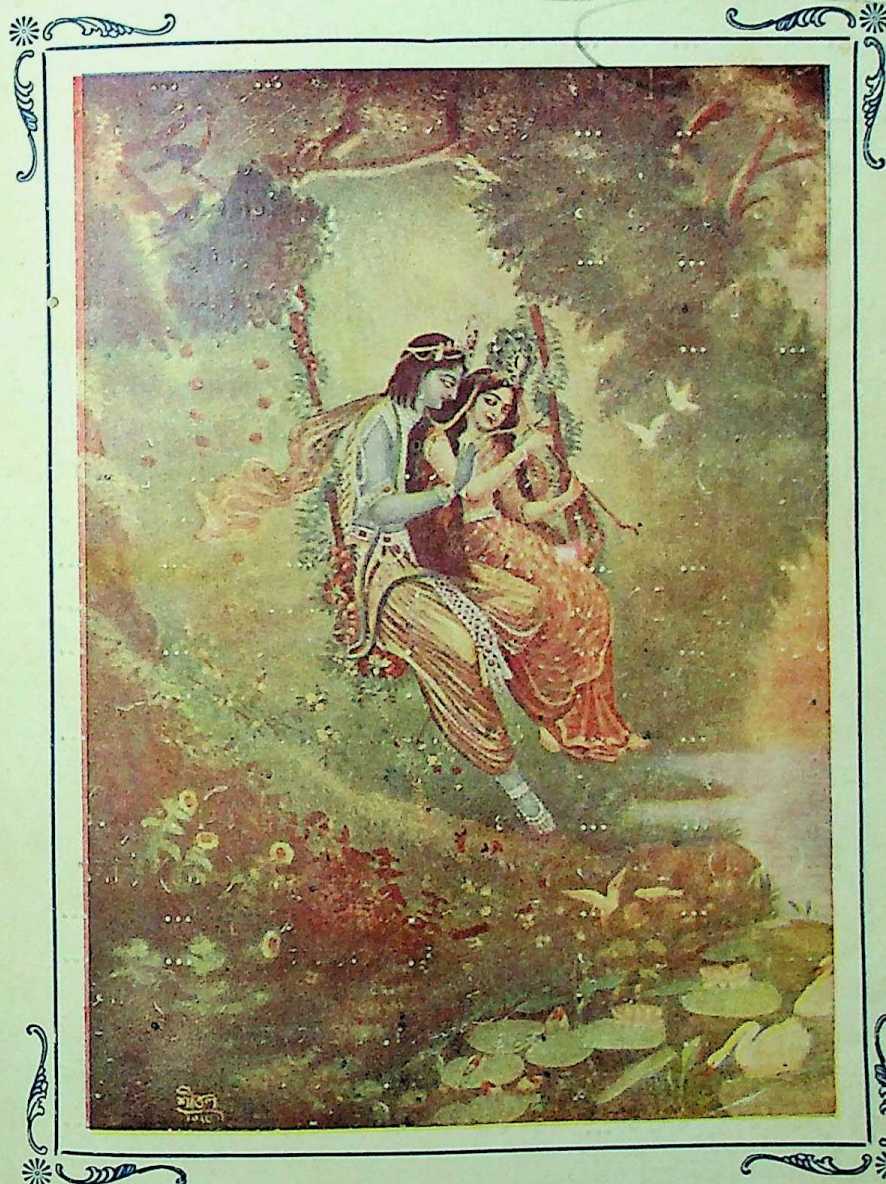
वर्ष १ ; खंड १]
कार्त्तिक, २९९ तुलसी-संवत
[संख्या ४; पूर्ण संख्या ४
माधुरी
संपादक—
श्रीदुलारेलाल भार्गव
श्रीरूपनारायण पांडेय
वार्षिक मूल्य ६॥)
प्रति संख्या ।॥)
नवलकिशोर-प्रेस, लखनऊ से छपकर प्रकाशित

लेख-सूची

पृष्ठ

१. फूल की कहानी (कविता)—[लेखक, पं० बदरीनाथ भट्ट बी० ए० (हिंदी-लेक्चरार लखनऊ-विश्व-विद्यालय) ३१७
२. मन का संयम—[लेखक, श्रीयुत संपूर्णानंद बी० एस्-सी०, एल्० टी० (मर्यादा-संपादक) ३१७
३. भारतवर्ष के संबंध में चीनी यात्रियों का कुछ कथन--[लेखक, बाबू शिवनंदन-सहाय ३२४
४. आलोचक के प्रति (कविता)—[लेखक, बाबू मैथिलीशरण गुप्त ३३०
५. ग़रीबी का प्रश्न—[लेखक, पं० छविनाथ पांडेय बी० ए०, एल्-एल्० बी० (साहित्य-संपादक) ३३०
६. तीर्थ-यात्रा (कहानी)—[लेखक, श्रीयुत सुदर्शन ३३४
७. प्राचीन और नवीन भारत की महिलाएँ—[लेखिका, श्रीमती विद्यावती सेठ बी० ए० (ज्योति-संपादिका) ... ३३६
८. उषा (कविता)—[लेखक, पं० अयोध्या-सिंह उपाध्याय ३४३
९. पृथ्वी पर का अमृत दूध—[लेखक, लाला संतराम बी० ए० ... ... ३४४
१०. उद्यान—[लेखक, पं० शंकरराव जोशी, एग्रीकल्चर ऑफ़िसर ३५०
११. उपन्यास-रचना—[लेखक, श्रीयुत प्रेम-चंद बी० ए० ... ... ३५४
१२. मानिनि राधे! (कविता)—[लेखिका, श्रीमती सुभद्राकुमारी चौहान ३५६
१३. भारत के प्राचीन विद्या-पीठ—[लेखक, श्रीयुत नरेंद्रदेव एम्० ए० (प्रोफ़ेसर काशी-विद्या-पीठ) ३५६
१४. प्रेमाश्रम (समालोचना)—[लेखक, बाबू कालिदास कपूर एम्० ए०, एल्० टी० ... ३६४
१५. अमेरिका की वर्तमान अवस्था—[लेखक, श्रीयुत सूर्यकुमार वर्मा ३६६
१६. मौन (कविता)—[लेखक, श्रीयुत नवीन ३७३
१७. कबीर और बिहारी—[लेखक, पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी० ३७४
१८. पाश्चात्य नगरों की सजावट ... ३७७
१९. देवी दुर्गावती—[लेखक, पं० रघुवर-प्रसाद द्विवेदी बी० ए० (भूतपूर्व हितकारिणी-संपादक) ३८२
२०. इंद्र-धनुष—[लेखक, पं० रामाज्ञा द्विवेदी बी० ए० (ऑनर्स)... ... ... ३८८
२१. विज्ञान-वाटिका—[लेखक, श्रीयुत रमेश-प्रसाद बी० एस्-सी० और श्रीयुत महावीर-प्रसाद श्रीवास्तव बी० एस्-सी०, एल्० टी०, विशारद ३९०
२२. सुमन-संचय—[लेखक, श्रीयुत महावीर-प्रसाद श्रीवास्तव बी० एस्-सी०, एल्० टी०, विशारद, पं० विजयानंद त्रिपाठी "श्रीकवि", पं० देवीदत्त शुक्ल (सहायक सरस्वती-संपादक), श्रीअवधवासी लाला सीताराम बी० ए० और पं० शिवाधार पांडेय एम्० ए०, एल्-एल्० बी० (प्रोफ़ेसर प्रयाग-विश्व-विद्यालय) ३९४
२३. महिला-मनोरंजन—[लेखिका, श्रीमती कृष्णकुमारी और श्रीमती जनकदुलारीदेवी पांडेय ४०३
२४. विविध विषय ४०५
२५. पुस्तक-परिचय ४१५
२६. साहित्य-सूचना ४१६
२७. चित्र-चर्चा ४२०

चित्र-सूची

(क) रंगीन

१. लैला-मजनूँ ३१७
२. सद्यःस्नाता ३५६

(ख) सादे

१-२१. पाश्चात्य नगरों की सजावट-संबंधी २१ चित्र ३७७
२२. फ़ायर-ब्रिगेड बुलाने के लिये बिजली का घंटा ३८२
२३. टैक्सी-पुकार-कल ३८२

लेखकों से प्रार्थना

छठी संख्या के लिये लेख १५ नवंबर तक आ जाने चाहिए।

माधुरी-संपादक

[मुग़ल-दरबार के किसी कुशल कारीगर द्वारा अंकित]

लैला-मजनूँ

विश्व-विदित प्रेमी-जुगल तन्मय आठो जाम ;
एक प्रान है देह ये लैला-मजनूँ-नाम ।
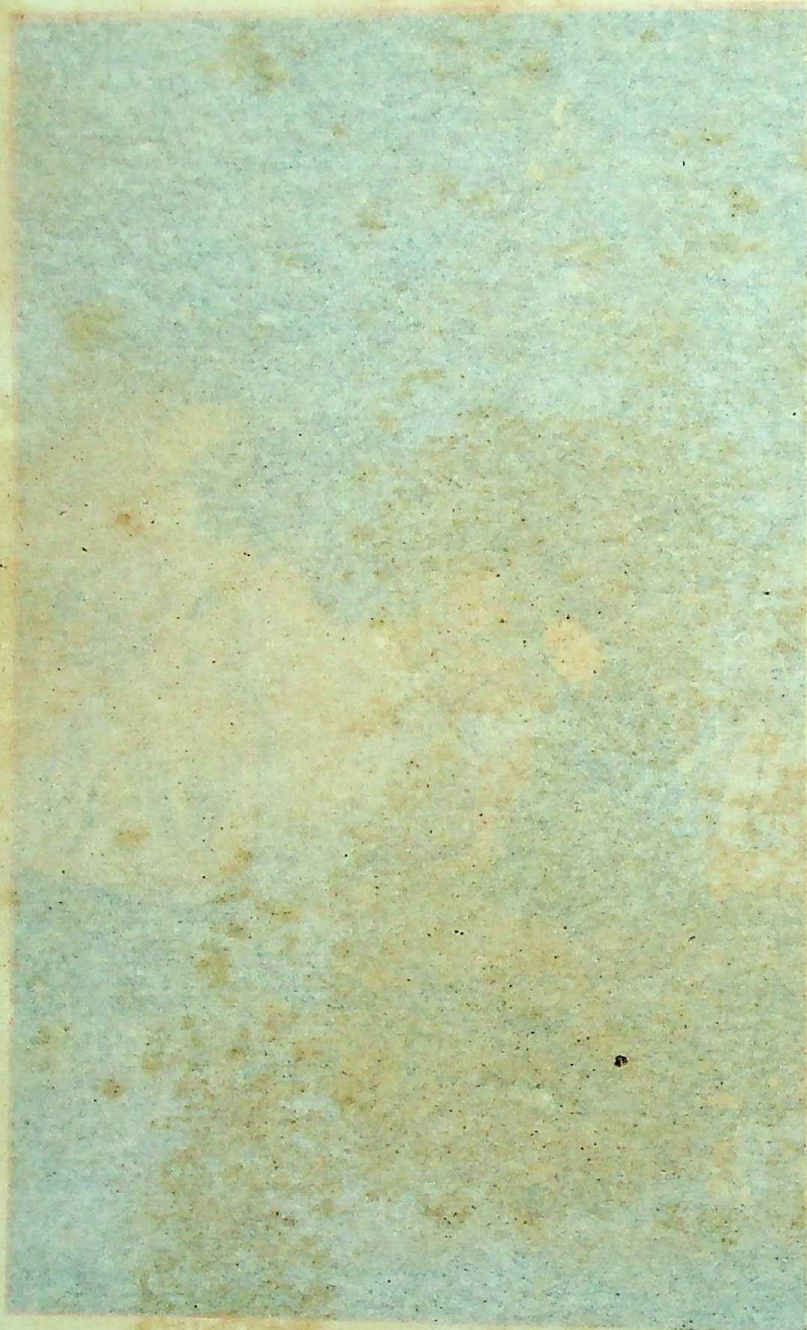
श्रीः

[विविध विषय-विभूषित, साहित्य-संबंधी, सचित्र, मासिक पत्रिका]

सिता, मधुर मधु, सुधा, तिय-अधर-माधुरी धन्य ।
पै नव-रस-साहित्य की यह माधुरी अनन्य !

वर्ष १ खंड १	कार्त्तिक-शुक्ल ७, २९९ तुलसी-संवत् (१९७९ वि०)— २७ ऑक्टोबर, १९२२ ई०	संख्या ४ पूर्ण संख्या ४

फूल की कहानी

दो दिन खेल गया उपवन में ।
रूप अनोखा लेकर आया,
खेला-कूदा हँसा-हँसाया,
दिव्य सुरभि से वन महँकाया,
इससे बढ़कर भला और क्या रक्खा है जीवन में ?
गुण-सौंदर्य देखकर प्यारा,
रीझ गया माली हत्यारा,
और किया डाली से न्यारा,
तोड़ ले चला दुष्ट बेचने, दया न आई मन में ।
जीवित सबने सीस चढ़ाया,
मृत हो जाने पर ठुकराया,
घर से बहुत दूर फिकवाया,
लगी रही दुनिया सदैव-सी अपने मन के धन में ।

बदरीनाथ भट्ट बी० ए०

मन का संयम *

मन का संयम संसार में सफलता का महान् साधन है । काम पारलौकिक हो या ऐहिक, जिस मनुष्य का मन † संयत नहीं, वह कदापि उसमें सफलता नहीं प्राप्त कर सकता । किसी मनुष्य में कितना ही बल हो ; उसकी बुद्धि कितनी ही प्रखर हो ; उसके पास कितना ही वैभव हो ; पर यदि उसका चित्त संयत नहीं, तो वह कदापि अपने बल आदि का अच्छा उपयोग नहीं कर सकता ।

---

* मन के संयम या चित्त-वृत्ति निरोध को ही योग माना है—"योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः" ।—संपादक

† यहाँ मन-शब्द को चित्त का पर्याय मानकर, उसका प्रयोग किया गया है । इसी लिये यद्यपि निबंध का शीर्षक 'मन का संयम' है, पर स्थान-स्थान पर चित्त-शब्द का भी प्रयोग हुआ है ।—लेखक

संयत चित्त का लक्षण यह है कि वह जब जिस विषय की ओर भेजा जाय, तब उसी पर एकाग्र होकर लग जाय। यह आवश्यक नहीं कि ऐसी अवस्था में पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो ही जाय। यदि दो मनुष्य एकाग्र-चित्त होकर किसी समस्या को सुलझाना चाहें, तो यह आवश्यक नहीं कि दोनों को ही सर्वथा उपयुक्त युक्ति सूझ जाय। यह तो बुद्धि पर निर्भर है। जिसकी बुद्धि जितनी ही शास्त्र-ज्ञान, सत्संग, अनुभव और अभ्यास-द्वारा मार्जित होगी, उसकी प्रतिभा भी वैसी ही होगी। पर हाँ, यह निश्चित है कि कोई भी मनुष्य एकाग्रावस्था में ही अपनी शक्तियों का अधिकाधिक उपयोग कर सकता है। साधारणतः लोग समझते हैं कि हमको बाह्य विषयों का ज्ञान त्वक् आदि ज्ञानेंद्रियों से होता है; पर यह भूल है। जब तक मन का इंद्रियों के साथ संयोग न हो तब तक केवल इंद्रियों से कभी ज्ञान नहीं हो सकता। बेहोशी की दशा में आँख और कान भले ही खुले हों, पर न कुछ देख पड़ता है, न सुन पड़ता। साधारण जाग्रत अवस्था में भी ऐसा बहुधा होता है कि यदि हम किसी विचार में संलग्न हों, तो हमारे सामने की बातें हमें देख नहीं पड़तीं, निकट के शब्द सुन नहीं पड़ते। यदि शोकादि मनोवेगों से चित्त क्षुब्ध हो, तो बाह्य विषयों में रस नहीं मिलता। अतः हम जितना ही मनोयोग दे सकेंगे, उतना ही हमारी इंद्रियाँ हमारी सेवा कर सकेंगी। यह दशा केवल ज्ञानेंद्रियों की ही नहीं है। वाक् आदि कर्मेंद्रियाँ भी अपने-अपने काम में तभी प्रवृत्त हो सकती हैं, जब मन उनको बुद्धि-निर्णीत मार्ग पर चलावे। साधक को, राज-पुरुष को, विद्वान् को, विषयोपभोगी को—सब को मानसिक एकाग्रता की आवश्यकता होती है।

असंयत चित्त अनेक प्रकार के रूप दिखलाकर हमारे कामों में विघ्न डाला करता है। इनमें से स्त्यान, प्रमाद और अविरति * प्रधान हैं।

स्त्यान कहते हैं अकर्मण्यता को। यह मानसिक आलस्य का पूर्ण रूप है। चाहे कोई काम हो, जी नहीं लगता। यदि हठ-पूर्वक उसे किसी ओर लगाना भी चाहते हैं, तो वह भाग खड़ा होता है। कोई महत्त्व-पूर्ण प्रश्न सामने है, पर चित्त कहता है—"उहूँ, देखा जायगा; पीछे सोचेंगे।" पर यह 'पीछे' कभी नहीं आता। चित्त को शून्य-सा बनाए रहने में ही सुख मिलता है। नाम को जागते हैं, पर चित्त सो रहा है। जब तमोगुण का पूरा प्रकोप होता है, उस समय चित्त स्त्यान-ग्रस्त होता है। ऐसा चित्त दिन-दिन दुर्बल होता जाता है। वह आपत्ति के समय कायर सिपाही की भाँति भाग खड़ा होता है; कोई मार्ग नहीं स्थिर कर सकता।

प्रमाद रजोमिश्रित तमोगुण का लक्षण है। प्रमादी चित्त स्त्यान-ग्रस्त के समान निकम्मा तो नहीं है, पर उसकी दशा यथोचित भी नहीं है। कभी-कभी कुछ-न-कुछ एकाग्र होता, परंतु शीघ्र ही विचलित हो जाता है। ऊपर चढ़ना शुरू तो कर देता है, पर थोड़ी ही देर में फिसल पड़ता है। जब कोई टेढ़ा अवसर उपस्थित होता है, तो प्रमादी मन उसके महत्त्व को समझ लेता है, और तदनुकूल कार्य भी करने में प्रवृत्त हो जाता है। पर उसकी यह फुर्ती थोड़ी ही देर तक ठहरती है; फिर वही शिथिलता आ घेरती है। आलस्य-सागर से एक छलाँग मारकर बाहर निकलता है; परंतु फिर उसी में जा गिरता है। कर्तव्य-पथ निश्चित हो जाता है; पर यदि वह लंबा है, तो उसपर चलने की सामर्थ्य नहीं है। प्रमादी मनुष्य का ऐसा करना केवल धृति के अभाव से नहीं होता। वह यह नहीं कहता कि 'मुझसे इतना परिश्रम न होगा,' बल्कि उसका चित्त वही 'उँह, देखा जायगा'-वाला भाव धारण करके धीरे-धीरे सो जाता है। प्रमादी मनुष्य कभी बड़ा ही शूर-वीर कर्मयोगी-सा प्रतीत होता है; परंतु क्षण-भर बाद ही महा निकम्मा हो जाता है। स्त्यान और प्रमाद को वेदांत में 'मल'-दोष कहते हैं। इनसे व्याप्त चित्त को योग के आचार्य 'मूढ़ चित्त' कहते हैं।

अविरति शुद्ध रजोगुण का लक्षण है। इसे निरंतर प्रवृत्ति का पर्याय कह सकते हैं। जहाँ स्त्यानी और प्रमादी को सोने-सोने की पड़ी रहती है, वहाँ अविरत चित्त को दौड़ने से ही छुट्टी नहीं मिलती। वह एक विषय पर जमने ही नहीं पाता कि झटपट दूसरे की ओर भाग खड़ा होता है। इसी को 'एक सर, हज़ार सौदे' कहते हैं। प्रवृत्ति है; पर नियमित नहीं। बाह्य परिणाम प्रायः प्रमाद या स्त्यान-सा ही हो जाता है;

* ये शब्द हैं तो योग-दर्शन से लिए गए, पर यहाँ पर इनकी परिभाषा कुछ भिन्न प्रकार से की गई है।

परंतु कारण बिलकुल ही जुदा है । वहाँ तो चित्त काम करना नहीं चाहता, किंतु यहाँ एकसाथ इतने काम करना चाहता है कि कुछ भी नहीं कर पाता । इसको वेदांत की भाषा में 'विक्षेप'-दोष कहते हैं । अविरत चित्त को योग के आचार्य 'क्षिप्त' चित्त कहते हैं ।

जब अविरत चित्त पर सत्त्व-गुण का कुछ छींटा पड़ जाता है, तो वह एक और रूप धारण कर लेता है । वह किसी विषय-विशेष की ओर अत्यंत आग्रह के साथ झुक जाता है । उस विषय से इतना प्रेम हो जाता है कि अन्य विषयों की ओर चित्त लगाया ही नहीं जा सकता । यह शुद्ध सात्त्विक एकाग्रता नहीं है । वास्तविक एकाग्रता में ऐसा हो सकता है कि मनुष्य तुलनात्मक विचार के पश्चात् यह स्थिर करे कि मुझे अमुक विषय पर ही ध्यान देना चाहिए, और वह उसके विरुद्ध और विषयों को अंतःकरण में स्थान न दे । किंतु ऐसे मनुष्य की विषयांतर-विचार की सामर्थ्य छिन नहीं जाती । परंतु अविरत चित्त तो सिवा एक विषय के औरों को अपने ध्यान-केंद्र में ला ही नहीं सकता । ऐसे चित्तवाला मनुष्य एक क्षेत्र में तो महारथी होगा, परंतु अन्य क्षेत्रों में सर्वथा व्यवहार में अकुशल पाया जायगा । ऐसे चित्त को योग-शास्त्र में 'विक्षिप्त' चित्त कहते हैं । यह वेदांत के अनुसार विक्षेप के ही अंतर्गत है ।

स्त्यान, प्रमाद और अविरति को चित्त के 'त्रिदोष' कह सकते हैं । इनसे जो हानियाँ हो सकती और होती हैं, वे इनके वर्णन-मात्र से ही समझ में आ जाती हैं । चित्त का सदा मुर्दा-सा बना रहना, या क्षण-भर के लिये प्रातः-प्रदीप-सम प्रज्वलित होकर फिर सो जाना, या किसी एक ही विषय की टेक पकड़ लेना, ये व्यवहार में सफलता प्राप्त करने के मार्ग में दुर्गम बाधाएँ हैं । जो मनुष्य इनके वश में है, वह समुद्र-तरंगों पर पड़े हुए काष्ठ-खंड की भाँति सदैव बाह्य परिस्थितियों का खिलौना बना रहेगा; वह घटना-चक्र का दास बना हुआ इधर-से-उधर फेंका-फेंका फिरेगा ।

बहुत-से लोग ऐसे हैं, जो अपने चित्त की इन दुर्बलताओं को जानते हैं; परंतु भ्रम-वश ऐसा समझ बैठते हैं कि ये अपरिहार्य हैं । उनकी ऐसी धारणा है कि किसी का चित्त जन्म से ही सबल और किसी का चित्त जन्म से ही निर्बल होता है; और सहज-स्वभाव अपरिणामी होता है । यह धारणा निपट मिथ्या नहीं है । यह सत्य है कि सबका मनोबल एक-सा नहीं होता; प्राक्तन संस्कार-वश किसी के मन का विकास अधिक होता है, और किसी का कम; परंतु यह भी सत्य है कि संस्कार जड़ हैं और आत्मा चैतन्य । इसलिये मनुष्य संस्कारों का पूर्ण दास नहीं है । यदि वह चाहे, तो अपने को सुधार सकता है । प्रारब्ध और प्रयत्न में यदि संघर्ष होगा, तो प्रारब्ध के प्रबल होते हुए भी प्रयत्न अपना रंग लावेगा । जितना ही प्रयत्न किया जायगा, दौर्बल्य क्षीण होता जायगा । अपने-को निस्सहाय और दुर्बल मानकर जितना ही हाथ-पर-हाथ रक्खे बैठा जायगा, उतना ही दौर्बल्य बढ़ता जायगा । अपने को दुर्बल माननेवाले से बढ़कर दुर्बल कोई नहीं है । खेद की बात है कि पाठशालाओं में इस ओर ध्यान नहीं दिया जाता । बीसों विषय पढ़ाए जाते हैं; शारीरिक स्वास्थ्य की ओर भी ध्यान दिया जाता है; पर यह कोई नहीं सोचता कि छात्रों को संयत-चित्त बनाना भी शाला का काम है । यों तो साधारण पठन-पाठन से भी चित्त की दुर्बलता का कुछ-न-कुछ ह्रास होता ही है; परंतु यदि इसी को लक्ष्य करके कोई शिक्षा-क्रम रक्खा जाय, तो और अधिक फल हो ।

अब यहाँ पर मन को संयत करने के कुछ उपायों पर विचार करना आवश्यक है । उपाय अनेक हैं; परंतु व्यावहारिक दृष्टि से उनमें कुछ प्रधान हैं, शेष गौण । यहाँ मैं उन्हीं का उल्लेख करूँगा, जो मेरी समझ में प्रधान हैं ।

सबसे पहले हमको स्वतंत्र विचार करने का अभ्यास करना चाहिए । हममें से बहुतों की यह आदत होती है कि दूसरों की सम्मति मान लिया करते हैं । यदि हमारे संबंधी या मित्र किसी संप्रदाय या सभा-विशेष में सम्मिलित होते हैं, तो हम भी उसमें सम्मिलित हो जाते हैं । हम जिस समाचार-पत्र को नित्य पढ़ते हैं, उसके राजनीतिक मत को वेद-वाक्य मान लेते हैं । अधिकांश लोग जिसकी प्रशंसा या निंदा करते हैं, हम भी उसकी प्रशंसा या निंदा करने लग जाते हैं । ऐसा करने से सोचने का परिश्रम तो बचता है, पर मन अत्यंत दुर्बल हो जाता है । यह ठीक है कि हम, सर्वज्ञ होना तो दूर रहा, प्रत्येक विषय के बहुज्ञ भी नहीं हो सकते । इसलिये हमको बहुत-सी बातों में उस-उस विषय के विशेषज्ञों की सम्मति मान लेनी होगी । पर इसका तात्पर्य यह नहीं कि हम अपने मस्तिष्क को स्थायी छुट्टी दे दें । संभव है, हम

में इतनी मौलिकता न हो कि कोई नवीन सिद्धांत स्थिर कर सकें; परंतु जो सिद्धांत कोई अन्य व्यक्ति हमारे सामने रखता है, उसकी यथार्थता का विचार करना असंभव नहीं । मनुष्य को चाहिए कि जो-जो प्रश्न उसके जीवन से व्यावहारिक संबंध रखते हों, उन पर अपनी बुद्धि के अनुसार विचार करे । चित्त परिश्रम से भागेगा; पर उसे खींचकर लगाना चाहिए । चाहे काम उन्हीं लोगों के आदेशों के अनुसार किया जाय, जो विशेषज्ञ माने गए हैं; परंतु विचार अवश्य किया जाय । सिपाही का कर्तव्य है कि सेनापति की आज्ञा के अनुसार काम करे; पर इसका यह अर्थ नहीं कि वह अपनी विचार-शक्ति से काम न ले । सुसंयत सेना का यही तो प्रशंसनीय गुण है कि अवसर पड़ने पर, उसके सैनिक, यह जानते हुए भी कि हमारा अफ़सर भूल कर रहा है, उसकी आज्ञा का पालन करते हैं । हमारे सामने एक काव्य आता है । सब लोग उसकी प्रशंसा करते हैं; पर हमें उसमें रस नहीं मिलता । ऐसी दशा में हम यह क्यों कहें कि काव्य अत्युत्तम है ? हमको करना यह चाहिए कि स्वयं अपनी बुद्धि के अनुसार उसके गुण-दोषों पर विचार करें; परंतु साथ ही यह जानने और समझने का भी प्रयत्न करें कि दूसरे लोग उसे क्यों अच्छा कहते हैं । ऐसा करते-करते हमारी बुद्धि आप ही तीव्र हो जायगी, और चित्त के सामने जो विषय आवेगा, उससे जी चुराने की जगह वह आप उसमें प्रवेश करने की इच्छा करेगा ।

इरादा करना भी अभ्यास से आता है । यह कहना तो सरल है कि मैं अब से अमुक काम करूँगा, या न करूँगा, परंतु इस व्रत को निबाहना कठिन है । लोग आवेश में आकर संकल्प कर बैठते हैं; परंतु थोड़ा-सा विघ्न पड़ते ही मुँह मोड़ लेते हैं । कभी-कभी तो विना किसी बाहरी विघ्न के ही चित्त अपने संकल्प से विरत हो जाता है । मनुष्य का मन बड़ा ही दुष्ट है । ऐसा प्रतीत होता है कि इसे अपने स्वामी को धोखा देने में कोई विशेष सुख मिलता है । दो-चार दिन के पीछे यह आप ही लंबे-चौड़े तर्क करने लग जाता है । जैसे—"इस संकल्प से लाभ ही क्या है ? अवसर पड़ने पर जैसे और लोग कठिन-से-कठिन कार्य का संपादन कर सके हैं, वैसे ही मैं भी कर सकूँगा । इस व्यर्थ के कष्ट को मोल लेने से क्या सिद्ध होगा ? मेरे ऐसा करने से दूसरों का ध्यान मेरी ओर आकृष्ट होता है, और मैं एक प्रकार का तमाशा-सा बन जाता हूँ ।"

इस प्रकार के कुतर्कों का फल यह होता है कि व्रत टूट जाता है; व्रत पर दृढ़ रहने की शक्ति घटती जाती है । प्रत्येक मनुष्य को संकल्प करने का अभ्यास करना चाहिए । संकल्प ऐसा हो, जो नीति-संगत और धर्म-संगत हो, और जिससे दूसरों को कष्ट न पहुँचे । "मैं अमुक दिन व्रत रहा करूँगा; अमुक-अमुक समय पर अमुक वस्तु का सेवन न करूँगा; अमुक समय में अमुक विषय का अध्ययन अवश्य करूँगा; अमुक समय में इतनी देर तक अवश्य देवोपासन करूँगा ।", ये सब प्रारंभिक संकल्प हैं । इनसे विचलित न होना चाहिए। यदि कोई संबंधी या मित्र सहायता देने को तत्पर हो जाय, तो और भी अच्छा हो । उसको यह अधिकार होना चाहिए कि जहाँ तुमको मार्ग से भ्रष्ट होता देखे, टोंक दे; और तुमको चाहिए कि उसकी बात मानो । संकल्प को हठ या दुराग्रह न बनाओ; पर धीरे-धीरे आदत डालते चलो । धर्म-शास्त्रों में ऐसी बहुत-सी व्रत-उपवास आदि प्रक्रियाएँ बतलाई गई हैं, जिनके आधार पर संकल्प का अभ्यास डाला जा सकता है ।

तीसरा साधन प्रवृत्ति या कर्मण्यता है । जब कोई ऐसा काम अपने सामने आवे, जिसे अपनी बुद्धि अच्छा समझे, तो उसमें लग जाना चाहिए । देर करना भूल है । दान करने की इच्छा हुई, दान कर डालो । यह संभव है कि दान कुपात्र को मिल जाय; पर देने से तुम्हारा कल्याण होगा । दान देने में एक प्रकार का आनंद मिलता है । उस आनंद का जहाँ चसका पड़ा कि फिर दान दिए विना न रहा जायगा । पात्र-कुपात्र का विचार पीछे कर लेना; पर प्रथम-प्रथम तो यही उचित है कि यदि कोई सत्संकल्प चित्त में उठे, तो उसे तुरंत कर डालो । मन को पीछे हटने का अवसर ही न दो । जब एक बार चित्त किसी सत्कार्य के प्रवाह में पड़ जाता है, तो फिर उसका निकलना कठिन होता है; आगे बढ़ने के सिवा कोई दूसरी गति ही नहीं होती । काम को पकड़ लो, फिर काम तुमको आप ही न छोड़ेगा । लोक-लज्जा और काम की आकर्षण-शक्ति, इन दोनों से छूटना कठिन है । जब एक बार मनुष्य अकर्मण्यता की कीचड़ से निकल आता है, तो फिर उसे लोक-लज्जा आदि की अपेक्षा नहीं

होती। वास्तव में कर्म करने में एक विचित्र स्वाद है। वह स्वाद स्वयं कर्म में है। वह सफलता की भी प्रतीक्षा या अपेक्षा नहीं करता। जो कर्मयोगी है, वह चाहे मार्ग में सैकड़ों विघ्न-बाधाएँ हों, कर्म मार्ग से विचलित नहीं होता। आजकल 'निष्काम-कर्म' और 'निष्काम कर्म' का नाम सुनते-सुनते लोग ऊब-से गए हैं; परंतु ऐसा न होना चाहिए। निष्काम कर्म जीवन-यात्रा का एक-मात्र अचूक सहचर है। लोक-हित करो, पर इस भाव से नहीं कि लोक पर कोई उपकार कर रहे हो; बल्कि यह समझ कर कि यह अपना कर्तव्य है। लोक-हित वास्तव में लोक-सेवा है, और बिना लोक-सेवा के जीवन नष्ट है। जो मनुष्य लोक सेवा-रत नहीं, वह बेईमानी का जीवन बिता रहा है। वह लोक से लाभ तो उठाता है, परंतु सामर्थ्य रखकर भी प्रत्युपकार नहीं करता। ऐसा कोई मनुष्य है ही नहीं, जो लोक-सेवा में असमर्थ हो। कोई कितना ही अपढ़-निरक्षर हो, कोई उससे भी कम अनुभववाला अवश्य होगा। कोई कैसा ही धन-हीन हो, कोई उससे भी निर्धन होगा। कोई कैसा ही बल-हीन हो, कोई उससे भी दुर्बल निकल आवेगा। इतना ही नहीं, विद्वान्, धनी और बलवान् भी अविद्वान्, निर्धन और बल-हीन के आश्रित हैं। जगत् का उपकार मानो कि वह तुम्हारी सेवा स्वीकार करके तुमको आत्मोन्नति का अवसर देता है। जब तक संसार में अधर्म है, अन्याय है, कुरीति है, अविद्या है, अभद्रता है, तब तक लोक-सेवा के लिये सुविस्तृत क्षेत्र पड़ा है। प्रत्येक मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह इस बात का प्रयत्न करे कि उसके द्वारा संसार कुछ-न-कुछ उन्नत हो। सारे संसार को तो ऋषि-पैग़ंबर भी नहीं सुधार सकते। परंतु अपनी शक्ति-भर सबको चेष्टा करनी चाहिए। जो एक देश, एक जाति, एक ग्राम, एक व्यक्ति तक का भी कुछ उपकार कर लेता है, वह उस सीमा तक कृतकृत्य है। निष्काम कर्म करना सरल नहीं। दंभ, महत्त्वाकांक्षा, चपलता, सफलताकांक्षा इत्यादि पग-पग पर दबाते हैं; परंतु अभ्यास ही सिद्धि की कुंजी है। अपनेको कर्म-प्रवाह में छोड़ दो; फिर दोष आप ही धीरे-धीरे दूर हो जायँगे।

परंतु इस संबंध में एक बात का ध्यान रखना चाहिए। कर्मासक्त रहने की भी आवश्यकता नहीं है। शरीर से भले ही कर्म होता रहे, परंतु चित्त को तटस्थ कर लो। संसार में इतनी बुराइयाँ हैं कि कोई उन सबका मूलोच्छेदन कर ही नहीं सकता। इसके अतिरिक्त बहुत-सी बातें ऐसी हैं, जो हमको बुरी, पर दूसरों को भली लगती हैं। उनकी भलाई-बुराई नीति या न्याय पर नहीं, बल्कि परंपरागत व्यवहार पर निर्भर है। ऐसी छोटी-छोटी बातों के पीछे पड़ना निष्काम कर्म करना नहीं है। जो मनुष्य अपने को खुदाई फ़ौजदार समझकर हरएक ऐसी बात को, जो उसे बुरी लगती है, मिटा देना चाहता है, वह पागल है। मौलिक बातों को देखो; छोटी बातें आप ही सुधर जायँगी।

जहाँ किसी ने कोई अनुचित बात कही कि टोंक दिया; जहाँ कोई अनुचित बात देखी कि लड़ पड़े; ये मूर्खों के लक्षण हैं। समझदारों के तेवर पर यों बात-बात में बल नहीं पड़ा करते। सच्चा कर्मयोगी यह चाहता है कि मैं ऐसी परिस्थिति उत्पन्न कर दूँ, जिसमें छोटी-छोटी बुराइयाँ आप ही नष्ट हो जायँ। घर के एक-एक कोने में दिया जलाने की अपेक्षा उसमें सूर्य का प्रकाश लाना अधिक श्रेयस्कर है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि दूसरों के अधिकार हमसे कम नहीं हैं। हम अपनी बुद्धि के अनुसार काम करते हैं, वे अपनी बुद्धि के अनुसार। चारों ओर से बुद्धि-संघर्ष होता है। अंत को जो कुछ होता है, वह इसी संघर्ष का परिणाम होता है। इसलिये यदि दूसरे कोई ऐसा काम करते हैं, या ऐसी बात कहते हैं, जो तुम्हारी इच्छा के प्रतिकूल है, तो रुष्ट न हो। काम करनेवाले में यह गुण होना चाहिए कि वह मत-वैषम्य, लोकापवाद, निंदा और विरोध आदि को हँसता हुआ झेले। यह संसार एक नाट्यशाला है। इसमें हम सभी नट की तरह अभिनय कर रहे हैं। बिना अभिनय किए जीवन-निर्वाह नहीं हो सकता; क्योंकि जीवन ही अभिनय है। परंतु दो बातें हमारे हाथ में हैं। एक तो यह कि इस अभिनय को व्यर्थ दुःखमय न बनाएँ। जो कुछ दुःख-सुख भुगतना पड़ेगा, वह तो पड़ेगा ही, पर चिंता कर-करके, क्रोध कर-करके, दुःख को और क्यों बढ़ाएँ? यह तो हार मान लेना है। 'पद्मपत्रमिवांभसि' रहकर चित्त को इन बातों के ऊपर रक्खो। दूसरी बात जो हमारे हाथ में है, वह आंशिक तटस्थता है। यह ठीक है कि हम बराबर कर्म-हीन नहीं रह सकते—रहना चाहिए भी नहीं—परंतु निरंतर कर्मासक्त रहने की भी आवश्यकता नहीं है। शरीर से भले ही कर्म होता रहे, परंतु चित्त को तटस्थ कर लो।

फिर इस नाट्य-शाला का तमाशा देखो । जो स्वयं अभिनय कर रहा है, वह यह नहीं कह सकता कि खेल अच्छा हो रहा है या बुरा । पर जो द्रष्टा होता है, वह ये सब बातें देख सकता है । तटस्थ बनने से तुमको पात्रों की भूलों का, उनकी उत्तमता का, उनके भावों का ज्ञान होगा । फिर तुम अपने खेल सुधार सकोगे । दूसरों के सामने सत् आदर्श रखने का भी यही उपाय है ।

यह नियमित प्रवृत्ति चित्त के सहस्रों रोगों की औषध है । न तो पागलों की तरह दिन-रात काम में डूबे रहना, बात-बात पर दूसरों के सुधार का नाम लेकर लड़ते फिरना, बे-सोचे-समझे जिधर लोग दौड़ें उधर दौड़ पड़ना ही सत्प्रवृत्ति है, और न कर्म-क्षेत्र से भागकर केवल अपने वैषयिक सुख में डूबे रहना, और यह समझ लेना कि जगत् ईश्वर का है—वह जाने, उसका काम जाने, तथा दूसरों के प्रयत्न से जो सुखमय परिस्थिति उत्पन्न हो, उससे लाभ उठाना, पर उसके उत्पादन तथा संरक्षण में हाथ न बँटाना ही कर्म-त्याग है । जो मार्ग मनुष्य के लिये श्रेयस्कर है, वह इन दोनों के बीच में है । वह अभ्यास करते-करते पकड़ में आता है । जो इस मार्ग पर चलता है, वह सहस्र-सहस्र भूलों, पापों और उद्वेगों से बच जाता है । उसी को सच्ची शांति मिलती है, कर्म-हीनों को नहीं । वह और लोगों की भाँति हँसता-बोलता, खाता-पीता तथा सभी जगत् के व्यवहार करता देख पड़ता है; परंतु उसका चित्त कहीं और ही रहता है । वह उस पर्वत-शृंग की भाँति है, जिस पर सूर्य का निर्मल प्रकाश पड़ रहा है, अथच उसकी तरहटी मेघाच्छन्न हो रही है । कर्म करना चित्त-संयम का सुकर मार्ग है । जो कर्म करेगा, उसे समय-समय पर एकाग्रता, आशु-निश्चय, संकल्प आदि की आवश्यकता पड़ती ही रहेगी, और ज्यों-ज्यों अभ्यास बढ़ता जायगा, त्यों-त्यों श्रम न जान पड़कर सुख मिलने लगेगा ।

मनःसंयम के महा शत्रुओं में इंद्रियों की गुलामी का स्थान प्रथम है; यही चित-चांचल्य का मूल-कारण है । हम वासनाओं के क्रीत दास बने हुए हैं । और, वासनाएँ एक नहीं, अनेक हैं । उनमें कोई किसी से घटकर नहीं । सब अपनी-अपनी ओर खींचती हैं । संभव है, थोड़ी देर के लिये कोई वासना सुप्त हो जाय ; पर अवसर पाते ही वह फिर सजग हो जायगी—जग उठेगी । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध तथा काम, क्रोध, मोह, लोभ, अभिमान के हाथों में मनुष्य गेंद-सा उछलता फिरता है। कहीं एक ओर झुका कि वैसे ही दूसरी ओर से थपकी पड़ती है। चैन कहीं नहीं मिलती; विश्राम की कहीं आशा नहीं । इसका कारण यह है कि स्वामी और सेवक में पद-परिवर्तन हो गया है । इंद्रियों को प्रभुत्व और बुद्धि को दास्य दे दिया गया है । यह अवस्था अनर्थकरी है।

यह विश्व बहुत बड़ा है । यदि कोई चाहे कि इसके सारे सुखों का उपभोग कर ले, तो असंभव है । यदि कोई समस्त विद्याओं का पंडित होना चाहे, तो हो नहीं सकता । हमारी आयु और हमारी शक्ति परिमित है। यह विश्व एक ऐसा गोला है, जिसका केंद्र सर्वत्र है; पर परिधि कहीं भी नहीं । कितना ही आगे बढ़ो, आगे-पीछे, दाहने-बाएँ, अनंत विस्तार है । इसलिये भोग्य और ज्ञेय का कदापि अंत न होगा । जो मनुष्य प्रत्येक बात को जानने की और प्रत्येक सुख को भोगने की इच्छा से इधर-उधर दौड़ता फिरता है, वह पागल है । दूसरों के अनुभव और अपनी बुद्धि से काम लो । इस बात पर विचार करो कि तुम जिस परिस्थिति में हो, उसमें विकास पाने के लिये तुम्हें किस-किस वस्तु की आवश्यकता है । इस बात पर विचार करो कि इस समय तुम किस प्रकार संसार की सेवा कर सकते हो, और उस सेवा के लिये तुम्हें किन साधनों की आवश्यकता है । सत्संग से, सत् शास्त्रों के अवलोकन और मनन से, तुम इन बातों का निश्चय कर सकोगे । फिर जब निश्चय हो जाय, तब अपनी इंद्रियों को उनके योग्य कामों में लगाओ । यह उलटी बात है कि बुद्धि बेचारी इंद्रियों के पीछे-पीछे दौड़ती फिरे । यह तो पतन का मार्ग है । होना यह चाहिए कि इंद्रियाँ बुद्धि-निर्दिष्ट मार्ग पर चलें । साधारणतः मनुष्य को आहार-विहार, परिश्रम, विश्राम आदि सभी की आवश्यकता होती है । पर कौन-कौन-से आहार-विहार श्रेयस्कर हैं, और उनका किस सीमा तक सेवन करना चाहिए, कब और कितना परिश्रम और विश्राम करना चाहिए, इन बातों का निर्णय अंधी इंद्रियों पर नहीं छोड़ा जा सकता । यह काम बुद्धि का है । वह ज्यों-ज्यों अभ्यास से शुद्ध होती जायगी, त्यों-त्यों भ्रांति के स्थल कम होते जायँगे । पर यदि उसे इंद्रियों की दासी बना दिया जायगा, तो सदैव धोखा होता रहेगा । दस इंद्रियों के स्वतंत्र खिंचाव में कदापि चैन न मिलेगा। एक स्वामी दस सेवकों से काम

ले सकता है, और वह भी इस प्रकार, जिसमें उसका, सेवकों का और अन्य लोगों का भी कल्याण हो । परंतु एक सेवक यदि दस स्वतंत्र स्वामियों की सेवा करना चाहे, तो उसके दुःसाहस से सबकी क्षति ही होगी ।

वासना-शुद्धि में एकांत-सेवन और आत्म-पर्यालोचन से बड़ी सहायता मिलती है । कुछ लोगों की कुछ ऐसी बुरी आदतें पड़ जाती हैं कि वे अकेले रह ही नहीं सकते । ऐसे मनुष्यों को यदि कुछ समय के लिये अकेले बंद कर दिया जाय, तो शायद वे पागल हो जायँ । परंतु भीड़-भाड़ कर्म-निष्ठा के लिये अनिवार्य नहीं । अकेले रहना और अकेले काम करना महापुरुषों का लक्षण है । दौड़-दौड़कर बहुत-से लोगों से मिलना, बिना किसी काम के मित्र ढूँढ़ते फिरना, व्यर्थ सभा-समाजों में सम्मिलित होना, प्रत्येक काम में सम्मिलित होकर श्रेय (वाहवाही) लेने की इच्छा रखना, हानिकारक है ।

आत्म-पर्यालोचन कहते हैं, अपने कामों पर तटस्थ होकर विचार करने को । प्रत्येक मनुष्य को चाहिए कि वह कम-से-कम एक बार—रात में सोते समय सबसे अच्छा है—अपने दिन-भर के कामों की आलोचना कर डाले । जैसे—आज मैंने क्या-क्या किया ? जब सोकर उठा था, तब से किसी प्रकार की उन्नति की या नहीं ? कोई नई विद्या भी सीखी, कोई नया तत्त्व भी जाना, कोई सत्कार्य भी किया ? अपनी वाणी या कर्म से किसी को अकारण कष्ट तो नहीं पहुँचाया ? किसी प्रकार की लोक-सेवा भी की ? किसी को कोई सुख भी पहुँचाया ? जो अच्छा काम मुझसे हुआ उसके करने में मेरा क्या उद्देश्य था ? मैंने उसे निष्काम-भाव से किया, या प्रत्युपकार की आशा से, या दिखावे के लिये, या भय आदि के वशवर्ती होकर ? मैं अपने अनुभव से कह सकता हूँ कि इस प्रकार की पर्यालोचना अत्यंत उपयोगी होती है । अपना चित्त आप बतला देता है कि दिन का सदुपयोग किया गया या दुरुपयोग । हम दूसरों से बहुत-सी बातें छिपा सकते हैं ; पर अपने से कुछ भी नहीं छिपा है । अपने चित्त के न-जाने कितने छिपे पाप सामने आते हैं । दूसरे लोग हमारे केवल बाह्य कर्मों ही को देखते हैं । साधारणतः हम भी अपनेको धोखा दे लेते हैं ; अपनेको बहुत ही निष्कपट तथा उदार मान लेते हैं । परंतु पर्यालोचना करने से गुप्ततम उद्देश्य भी प्रकट हो जाते हैं । हम अपने दंभ, कपट, नीचता और स्वार्थ को देखकर आप ही थर्रा उठते हैं । बिना इसके इस बात का ज्ञान ही नहीं होता कि हम इस अमूल्य जीवन को किस प्रकार नष्ट कर रहे हैं । पर्यालोचना में जो अपने दोषों का दर्शन होता है, वही सच्चे वैराग्य, सच्ची उन्नति और सच्चे सुधार की कुंजी है ।

मन के संयम का एक साधन और है । परंतु आज-कल शिक्षित-समाज में उसका अनादर होता देख पड़ता है । वह साधन है, ईश्वरोपासना । यों तो उपासना का प्रधान अंग श्रद्धा है, और भक्त पुरुष जब जिस समय जिस प्रकार ईश्वर की उपासना करेगा, उसे फल मिलेगा ; परंतु ऐसी उपासना मन के संयम के लिये साधक नहीं हो सकती । वह तो ऐसे पुरुष के लिये उपयुक्त है, जो सिद्ध है ; अर्थात् जिसका चित्त इतना संयत है कि वह उसे जब चाहे तभी एकाग्र कर ले । परंतु नियत समय पर नियत रूप से उपासना करना अत्यंत लाभदायक है । प्रत्येक धर्म में जो संध्या, नमाज़ आदि नित्य-उपासना के ढंग बताए हैं, उनसे एक यह भी लाभ है । परंतु उपासना को बेगार टालने की तरह बेमन न करना चाहिए । जो जप हो, जो ध्यान हो, उस पर ध्यान देना चाहिए, मन लगाना चाहिए । थोड़े ही समय में, इस क्रिया में, एक प्रकार का अद्भुत सुख मिलने लगेगा और मन वश होने लगेगा ।

ऊपर जितने उपाय बतलाए गए, वे सब अनुभव-सिद्ध हैं । उनका पालन करने से चित्त विवश होकर वशीभूत होता है । तब यह सामर्थ्य हो जाती है कि उसे जब जिस विषय में चाहें, लगाएँ, और जब जिस विषय से चाहें, खींच लें । इसका परिणाम यह होता है कि मनुष्य अपने सुख के लिये स्वाधीन-प्राय हो जाता है । बाहरी विषयों और घटनाओं में यह सामर्थ्य नहीं रह जाती कि वे उसे व्यथित अथवा विक्षिप्त कर सकें । उसे सुख भी अधिक मिलता है । कारण, वह तटस्थ बनकर जगत् की लीला को साक्षी की तरह देख सकता है । हर्ष, शोक, चिंता आदि उसे सता नहीं सकते । इसलिये वह सफलता भी अधिक प्राप्त कर सकता है । ऐसा मनुष्य अपना और जगत् का अधिकाधिक कल्याण कर सकता है ।

संपूर्णानंद बी० एस्०-सी०, एल्० टी०

भारतवर्ष के संबंध में चीनी यात्रियों का कुछ कथन

यूनानी लेखकों के समान चीन देश के बौद्ध यात्रियों के यात्रा-विवरणों से भी भारतवर्ष के पुरावृत्त का बहुत कुछ पता चलता है। यूनानी यदि हमें ईस्वी सन् के ३०० वर्ष पहले के भारतवर्ष का दृश्य दिखाते हैं, तो चीनी ईस्वी सन् के ४०० वर्ष बाद के भारतवर्ष का चित्र हमारी आँखों के आगे उपस्थित करते हैं।

महात्मा बुद्ध-देव की जन्म-भूमि, लीला-क्षेत्र और निर्वाण-स्थान होने के कारण चीन देश के लोग हमारे देश को परम पवित्र मानते थे। वे तीर्थाटन, धर्मार्जन और विद्याध्ययन के लिये यहाँ बहुत आया करते थे। उनमें फ़ा-हियान, संग-युन, हियन-सांग तथा इत्सिंग मुख्य और विख्यात हैं। ४००-६५० ई० के बीच ये लोग यहाँ आए थे।

अपने देश के धर्म-ग्रंथों की अपूर्णावस्था से दुःखित होकर पहले फ़ा-हियान कुछ लोगों के साथ ३६६ ई० में चीन से चलकर ईसा की ५ वीं शताब्दी के आरंभ में भारत पहुँचा था। इसका असल नाम कुंग था। बौद्ध संन्यासी होने पर इसने अपना नाम शिः फ़ा-हियान रक्खा था। शिः का अर्थ है शाक्य-पुत्र या शाक्य-शिष्य।

इसके आगमन-काल में, इस देश में, गुप्त-वंशी राजों का डंका बजता था। यद्यपि इस वंश के आदि-संस्थापक का ठीक पता नहीं, तो भी महाराज अशोक के पीछे इसी वंश के राजा लोग प्रबल और प्रतापी पाए जाते हैं।

इस राज-वंश का मौर्य चंद्रगुप्त से कुछ संबंध नहीं था; परंतु विंसेंट साहब के कथनानुसार 'पाटलिपुत्र' * से अवश्य सरोकार था। उनके मत से पाटलिपुत्र के आस-पास के चंद्रगुप्त (प्रथम) नामक एक राजा ने तिर्हुत के अंतर्गत वैशाली के सुप्रसिद्ध प्राचीन लिच्छवि-वंश की राज-कन्या कुमारी देवी से विवाह कर उसी संबंध के साहाय्य और प्रभाव से पीछे मगध तथा निकटवर्ती अन्य प्रदेशों में अधिकार जमाते-जमाते अपने राज्य को गंगा के किनारे-किनारे पश्चिम-प्रांत में प्रयाग तक पहुँचा दिया था। संभवतः पुरानी राजधानी पाटलिपुत्र उस समय लिच्छवि-वंशियों के ही अधीन था।

निस्संदेह चंद्रगुप्त (प्रथम) प्रतापी राजा था। इसने अपना नाम "विक्रमादित्य" रखकर, चक्रवर्ती पद धारण कर, गुप्त-संवत् चलाया था, जिसकी गणना ३१९-२० ई० से की जाती है।

इसका पुत्र समुद्रगुप्त इससे भी अधिक प्रतापी हुआ। उसे लोग भारतीय नेपोलियन कहते हैं। उसी के पुत्र द्वितीय चंद्रगुप्त (विक्रमादित्य) के शासन-काल (३७५-४१३ ई०) में साधु फ़ा-हियान का यहाँ आगमन हुआ था।

संग-युन, ह्वित्सांग के संग, धर्म-ग्रंथ प्राप्त करने की इच्छा से ही ५१७-१८ ई० में चीन से चला

* साहब कहते हैं कि "क़न्नौज का गुप्त राज्य" कहना बड़ी भूल है। वह नगर इस वंश की राजधानी कभी नहीं था। द्वितीय चंद्रगुप्त ने अयोध्या को अपनी राजधानी बनाया था। हम समझते हैं, क़न्नौज राजधानी न हो, तथापि जैसे आजकल दिल्ली राजधानी होने पर भी कलकत्ता, बंबई और पटना प्रभृति राज-शासन के प्रधान स्थान हैं, वैसे ही क़न्नौज भी उस समय होगा, और समय-समय पर गुप्त-राजा वहाँ जाकर रहते भी होंगे।—लेखक

था। किंतु ये लोग पेशावर ही से महायान * के प्रधान-प्रधान पुस्तकों की १७० प्रतियाँ हस्तगत कर अपने देश को लौट गए।

तव यात्रियों का सिरमौर हियन-सांग ६२६ ई० में स्वदेश से प्रस्थान कर यहाँ आया, और भिन्न-भिन्न स्थानों में भ्रमण कर बहुत-सी मूर्तियाँ, महायान के १२४ सूत्र-ग्रंथ तथा अन्यान्य अनेक वस्तुएँ, २२ घोड़ों पर लादकर, ६४५ ई० में, इस देश से बाहर निकल गया।

इत्सिंग ने ६४८-६५६ तक भारत में यात्रा की।

इन यात्रियों ने इस देश में जो कुछ देखा-सुना, उसे उन्होंने लेख-बद्ध किया है। परंतु फ़ा-हियान तथा हियन-सांग के यात्रा-विवरण सुवृहत् और मनोरंजक हैं।

फ़ा-हियान मथुरा, क़न्नौज, शाची (शाखे, साकेत), श्रावस्ती (बुद्ध-देव का जन्म-स्थान), कपिलवस्तु (निर्वाण-स्थान), कुशीनगर, वैशाली, पाटलिपुत्र, राजगृह, गया, बनारस और (भागलपुर के निकटस्थ) चंपानगर की यात्रा समाप्त कर ताम्रलिप्ति (हुगली के मुहाने का वर्तमान तामलूक) गया। उस समय चीन तथा लंका में सामुद्रिक वाणिज्य का यह सुप्रसिद्ध अड्डा (बंदरगाह) था। यहाँ दो वर्ष ठहरकर ४१४ ई० में यह लंका चला गया, और वहाँ से "योपोटी" (जावा) पहुँचा; जहाँ उसके लेखानुसार बहुत-से ब्राह्मण बसे थे, और हिंदू-धर्म का खूब प्रचार था। फिर वहाँ से स्वदेश को रवाना हुआ। लंका से जावा जाते समय भी इसे तूफ़ान का सामना करना पड़ा था। देश जाते भी इसे भयंकर तूफ़ान मिला। उस जहाज़ पर जो ब्राह्मण थे, वे कहते थे कि इसी बौद्ध के कारण सब-के-सब कष्ट भोग रहे हैं; इसे किसी टापू में छोड़ देना चाहिए। परंतु श्रीबुद्ध-देव की कृपा से यह कुशल-पूर्वक घर पहुँच गया।

हियन-सांग ने इन सब स्थानों के अतिरिक्त ग़ाज़ीपुर, बलिया, आरा ज़िले में हमारे गाँव से १½ कोस पश्चिम मसाढ़, छपरे के रिविलगंज, मुंगेर, कामरूप, उड़ीसा, द्राविड़, वल्लभी और उज्जैनी आदि अन्य कई स्थानों में भ्रमण किया था। इसने इन स्थानों की प्राकृतिक छवि, अन्न-जल, फल-फूल, वहाँ के अधिवासियों की रहन-सहन, आचार-व्यवहार, रंग-रूप, डील-डौल तथा शासन-पद्धति इत्यादि का विस्तार-पूर्वक वर्णन किया है। यात्रा-पुस्तक के द्वितीय भाग के आरंभ में भी एकत्र इन सब बातों का उल्लेख किया गया है। इन यात्रियों के ग्रंथों में जिन दंत-कथाओं का समावेश हुआ है, वे बहुत ही मनोरंजक हैं; और कोई-कोई सदुपदेश देनेवाली भी हैं।

फ़ा-हियान संस्कृत पढ़ने और बोलने का अभ्यास एवं प्राप्त पुस्तकों की नक़ल करता हुआ तीन वर्ष तक पाटलिपुत्र में ठहरा रहा। हियन-सांग ५ वर्ष तक नालंद के विख्यात विश्वविद्यालय में रहा था। विहार क़सबे और राजगिरि के मध्यस्थ वर्तमान बड़गाँव को प्राचीन नालंद बताते हैं। यहाँ बुद्ध-देव की विशाल मूर्ति है। पास ही एक तालाब है। प्रति रविवार को वहाँ मामूली मेला होता है, और लोग इसी तालाब में स्नान करते हैं।

उस संघाराम और वहाँ के निवासियों की इसने बड़ी प्रशंसा की है। उस समय देश-देश से विद्याध्ययन के अनुरागी छात्र पढ़ने के लिये और अल्प-काल में तर्क में प्रसिद्धि प्राप्त करने के

* बौद्ध-धर्म की १८ शाखाओं में "महायान" प्रधान है, और इसके बाद "हीनयान" का स्थान है।

अभिलाषी पंडितगण शंका-समाधान के लिये झुंड-के-झुंड वहाँ आया करते थे। प्रश्नोत्तर के लिये बहुतों को अवकाश ही नहीं मिलता था। वहाँ के छात्र या वहाँ के पंडित कहलाने में लोग अपनी प्रतिष्ठा समझते थे। वहाँ से विद्या का स्रोत सब दिशाओं में प्रवाहित होता था।

डॉक्टर फ़र्गुसन का कथन है कि मध्य-युग में फ्रांस के लिये जैसे क्लुनी (Cluny) और क्लेयरवान (Clairvaun) थे, वैसे ही भारतवर्ष के लिये नालंद का विश्वविद्यालय था। यहीं से सब देशों में विद्या का प्रचार होता था। इसके निर्माण तथा सजने-सजाने में चार नरेशों ने प्रचुर धन प्रदान किया था। दो-दो हज़ार मीलों से लोग यहाँ पढ़ने आया करते थे।

नालंद का विवरण "माधुरी" में कुछ प्रकाशित भी हो चुका है।

फ़ा-हियान के समय पाटलिपुत्र की घटती कला थी, और हियन-सांग के समय उसका सर्वथा पतन हो गया था। गया को दोनों ने उजाड़ पाया था। श्रावस्ती, कपिलवस्तु, और कुशीनगर की भी अवस्था अच्छी नहीं थी।

भारतवर्ष की सीमा पंजाब-प्रदेश से उत्तर ओर बहुत दूर तक चली गई थी; क्योंकि सुभवस्तु (स्वात) के समीपस्थ ऊचंग (उद्यान) के वर्णन में फ़ा-हियान ने लिखा है कि मध्य-भारत की भाषा वहाँ बोली जाती थी, और वहाँ की जनता का अशन-वसन भी एतद्देशियों के समान ही था।

उस समय मथुरा से लेकर मगध (विहार) तक मध्य-प्रदेश कहलाता था। मा-तो-लो (मथुरा) के वर्णन में फ़ा-हियान कहता है, भारतवर्ष के सभी प्रदेशों के राजा संन्यासी-समूह का बहुत आदर-सम्मान करते हैं; मुकुट उतारकर उनकी पूजा और प्रतिष्ठा करते हैं। वे सपरिवार तथा मंत्रियों-सहित स्वयं परोसकर उन्हें भोजन कराते हैं; उनके सामने नंगे सिर एक आसनी विछाकर बैठते हैं; कभी उच्चासन पर नहीं बैठते। पूजा-भेंट की प्रथा तथा नियम बुद्ध-देव के समय के सदृश ही हैं।

मध्य-देश में गर्मी और सर्दी समान पड़ती है। ओले-पाले का कष्ट नहीं होता। जन-संख्या अधिक है, और लोग सुखी पाए जाते हैं। न इन्हें अपनी चीज़-वस्तुओं की रजिस्टरी करानी पड़ती है, और न किन्हीं हाकिमों के आदेश पालना या उनके नियमों के अनुसार काम ही करना पड़ता है। जो लोग राजकीय भूमि जोतते हैं, वे उसकी उपज का कुछ अंश राजा को देते हैं। यदि चले जाना चाहें, चले जायँ; रहना चाहें, रहें। किसी में कोई बाधा नहीं। अपराधियों को अपराधानुसार न्यूनाधिक अर्थ-दंड ही होता है। घृणित विद्रोह के लिये वारंवार चेष्टा करने पर भी अपराधी को फाँसी नहीं दी जाती। उसका दाहना हाथ काट लिया जाता है। अन्य अपराधों के लिये भी शारीरिक दंड नहीं होता। राजा के रक्षक और मुसाहब वेतन पाते हैं।

समस्त देश में न तो कोई किसी जीव का वध करता है, न मादक वस्तु का सेवन। न लहसुन-प्याज़ ही कोई खाता है। केवल चंडाल ही इन सबका सेवन करते हैं। वे नगरों के बाहर रहते हैं, और नगर या बाज़ार के फाटक के भीतर-बाहर आने-जाने के समय लकड़ियाँ बजाते हैं; जिसमें लोग उनसे हटे रहें, छुआछूत न हो। बाज़ारों में क़साई की या मदिरा की दूकानें नहीं देखी जातीं। कोई सुअर और मुर्ग़ा नहीं पालता। जीवित

पशुओं (मवेशियों) को नहीं वेंचते। केवल चंडाल ही मछली मारते, शिकार करते और मांस बेचते हैं। क्रय-विक्रय में कौड़ी काम में लाई जाती हैं।

पुरातन दान-पत्रों के रद करने का कोई साहस नहीं करता। गृहस्थ साधुओं को बहुत पूजा-भेंट देते हैं। वे लोग भी प्राप्त वस्तुएँ किसी को देकर महान् सुख का अनुभव करते हैं।

संन्यासी लोग सदा तत्त्व के अनुशीलन और पठन-पाठन में लगे रहते हैं। नवागंतुकों की योग्यता तथा अवस्था के अनुसार उनकी सब प्रकार से सेवा और सत्कार किया करते हैं।

इस समय मध्य-प्रदेश में ९६ मत प्रचलित थे; परंतु इसने उनका नाम नहीं दिया। ७२ मज़हबों की बात मुसलमान-कवियों के मुख से भी सुनने में आई है। यथा—"इसरारे-हक़ीक़त के खबरदार जो होते। हफ़ताद दो मिल्लत में कभी जंग न होता॥"

फ़ा-हियान पाटलिपुत्र में रथयात्रा के अवसर पर आया था। इसने रथ की बनावट और सजावट का वृत्तांत सविस्तर लिखा है। सारांश यह है कि लोग बहुमूल्य वस्तुओं, रत्नों और वस्त्रों से सुसज्जित चार पहियोंवाला पँच-मंज़िला रथ बनाते थे, और बीसों रथ निकालते थे। रथ-यात्रा बड़ी धूमधाम और समारोह से होती थी। दो रात दीप-मालिका, गान-वाद्य और पूजा-पाठ का महा आनंद रहता था। ब्राह्मण लोग सादर निमंत्रित कर बौद्ध संन्यासियों को नगर के भीतर ले जाते थे। अन्य नगरों में भी रथयात्रा का उत्सव मनाया जाता था।

पाटलिपुत्र के भंगोन्मुख दुर्ग की पच्चीकारियाँ और नक़्क़ाशियाँ देख इसे महा आश्चर्य हुआ, और यह कह उठा कि "क्या यह मनुष्य के हाथों का काम है ?"

इसके कथनानुसार मध्य-प्रदेश के सबसे बड़े नगर इसी प्रांत में थे। लोग धन-धान्य-संपन्न और सुखी थे। दान-पुण्य, सदाचार तथा परोपकार में एक दूसरे से स्पर्धा रखते थे। नगरों में वैश्यों की स्थापित धर्म-शालाएँ और चिकित्सालय थे। वहाँ दीन-दुखिया, अनाथ बालक, निःसंतान नर-नारियाँ, विधवाएँ, लँगड़े-लूले और रोगी जाते और सब प्रकार की सहायता पाते थे। उन्हें भोजन-वस्त्र मिलता था, उनके रोगों का इलाज होता था, और उन्हें कोई कष्ट नहीं होने पाता था। भले-चंगे होने पर वे आप ही घर चले जाते थे।

मगध-देश के संबंध में हियन-सांग का कथन है कि शहर-पनाहवाले नगरों में अधिवासी कम पाए जाते हैं। दिहातों और क़सबों में आबादी घनी है। धरती उपजाऊ है; कृषि का काम खूब चलता है। यहाँ एक प्रकार का बासमती चावल* बहुत अच्छा होता है। अमीर लोग उसे खाते हैं। भूमि नीची होने के कारण लोग ऊँचे-ऊँचे स्थलों पर गाँव बसाते हैं। बरसात में नौकाएँ काम में लाई जाती हैं।

इसके आगमन-काल में क़न्नौज का परम विद्यानुरागी दान-वीर सुप्रसिद्ध हर्षवर्द्धन (द्वितीय शिलादित्य) सर्व-प्रधान राजा था। नालंद से कामरूप के राजा कुमारराज के संग, चंपा से ६० मील पर, यह हर्षवर्द्धन से, उनके कैंप ही में, मिला, और उनके साथ क़न्नौज गया था। वहाँ राजा ने बड़े समारोह से पंच-वार्षिक उत्सव मनाया था; जिसमें २० करद राजा उपस्थित थे, और दर्शकों का भारी जमाव हुआ था। वहाँ से फिर लोग प्रयाग गए। वहाँ

* आज भी मगहिया चावल और मिर्चें बहुत प्रसिद्ध और उत्तम होते हैं।

राजा ने ब्राह्मण, बौद्ध आदि सब मतों के साधु-महात्माओं को अपना सर्वस्व दान कर अपने लिये केवल एक लँगोटी रख ली थी। ऐसा वह प्रति पाँचवें वर्ष करता था।

ह्वियन-सांग कहता है, राजा गुणियों और कवि-कोविदों का बड़ा सम्मान करता है। दुराचारी देश के बाहर कर दिए जाते हैं। क़साई, मछुए, मेहतर, नर्तक-नर्तकी गाँवों और नगरों के बाहर रहते हैं। वे जाने-आने के समय अन्य लोगों को दाहनी ओर करके चलते हैं। चार वर्णों में ब्राह्मण-वर्ण ही श्रेष्ठ है, और इसी से यह ब्राह्मणों का देश कहलाता है। पवित्रता और अपवित्रता का विचार ही वर्णाश्रम-विचार का कारण है।

राजा क्षत्रिय होते हैं, और सेना चतुरंगिणी। वीर पुरुषों में से सैनिक चुने जाते हैं। यहाँ सब काम वंश-परंपरा से होने के कारण ये लोग युद्ध-विद्या में शीघ्र ही निपुण हो जाते हैं। युद्ध में भाला, धनुष-बाण, ढाल-तलवार और फर्सा आदि नाना प्रकार के अस्त्र-शस्त्र काम में लाते हैं। शांति के समय दुर्ग के भीतर राज-भवन के चारों ओर सेना पड़ी रहती है। सैनिकों को वेतन दिया जाता है। मंत्री तथा राज-कर्मचारियों के जीविका-निर्वाहार्थ भूमि निकाल दी जाती है।

अपराधी तथा राजद्रोही बहुत कम देखे जाते हैं। यदि कभी कोई शासन-नियम-भंग करता है, तो पूरी जाँच के बाद उसे कारावास का दंड दिया जाता है। जाँच के समय प्रमाण तैयार करने के लिये मार-पीट नहीं की जाती। साफ़-साफ़ कह देने से सज़ा भी हिसाब ही से होती है। शारीरिक दंड की प्रथा नहीं है। पर औचित्य और न्याय के नियमों का उल्लंघन करने से अथवा पातिव्रत्य, स्वामि-भक्ति या पितृ-भक्ति में चूक होने से अपराधी को कुछ अंग-भंग कर उसे देश से निकाल देते हैं। अन्य अपराधों में केवल अल्प अर्थ-दंड ही होता है।

शासन-पद्धति उदार नियमों पर स्थित होने के कारण कर्मचारियों की संख्या भी साधारण ही है। जनता का नाम रजिस्टर में दर्ज नहीं होता। किसी से ज़बरदस्ती कोई काम नहीं लिया जाता, और जब कोई काम कराने की बारी आती है, तो उचित मज़दूरी दे दी जाती है।

कर हलका है। राजकीय भूमि की उपज का छठा अंश राजा पाता है। वाणिज्य-व्यापारवालों को जल-पथ और सड़कों के लिये अल्प शुल्क देना पड़ता है। राजकीय आमदनी राज-काज, यज्ञ-पूजा, राज-कर्मचारियों की धन से सहायता, योग्य पुरुषों के सत्कार तथा धर्म-संस्थाओं में ख़र्च की जाती है।

नगरों तथा ग्रामों के राज-पथों में सदावर्त की व्यवस्था है; जहाँ यात्रियों तथा दीन-दुखियों की सहायता के लिये दवा-दारू के साथ वैद्य भी रक्खे गए हैं।

प्रत्येक सूबे में घटनावली लिखने के लिये पृथक्-पृथक् नौकर हैं। ये लोग भली-बुरी सभी घटनाएँ लिखा करते हैं। इस खाते को लोग "नील-पीत" कहते हैं।

सब जगहों की ख़बरें देते रहने के निमित्त गुप्तचर (जासूस) भी रक्खे गए हैं। कहीं से कुछ गड़बड़ समाचार पाते ही राजा वहाँ स्वयं पहुँचकर सब ठीक कर देता है।

बौद्ध धर्मानुयायी होने पर भी राजा सब संप्रदायों का शुभ-चिंतक है।

लोग सीधे और ईमानदार हैं; कपटी और

कार्तिक
विश्वास
पालन
करते।
हैं। पर
वस्तुओं
पूज
का वि
देह ध
पूर्व पाँ
खोदक
फिर न
वर्तन
चाँदी
यह
मलाई
पूरी इ
ता
मांस
खाना
घृणा
पर
अपने
की म
को प्र
मांस
वर्ग-वि
और
रु
हैं।
राजा
भिन्न
व्यव

विश्वास-घाती नहीं हैं। वे शपथ तथा प्रतिज्ञा का पालन करते हैं। लेन-देन में छल-पाखंड नहीं करते। विद्या का आदर और धर्म का मान करते हैं। परलोक का भय रखते हैं, और सांसारिक वस्तुओं को तुच्छ समझते हैं।

पूजा के पहले स्नान होता है। शारीरिक शुद्धि का विशेष ध्यान रहता है। लघुशंकादि के अनंतर देह धोकर चंदन लगाते हैं। भोजन के पूर्व पाँव धोते और पीछे खरका करके (दाँत खोदकर) मुँह-हाथ धो डालते हैं। अवशिष्ट अन्न फिर नहीं खाया जाता। मिट्टी तथा पत्थर के बर्तन भोजन के बाद तोड़ डाले जाते हैं। सोने-चाँदी और लोहे के पात्रों को माँज डालते हैं।

यहाँ के लोगों के भोज्य पदार्थ दूध, घी, मक्खन, मलाई, चीनी, मिसरी, सरसों का तेल, रोटी, भात, पूरी इत्यादि हैं। लहसुन-प्याज़ बहुत कम खाते हैं।

ताज़ी मछली और भेड़ तथा मृग का ताज़ा मांस खाया जाता है। बैल घोड़े आदि का मांस खाना मना है। इन मांसों के खानेवालों से लोग घृणा करते हैं, और वे नगर के बाहर रहते हैं।

परंतु इसने ऐसा भी लिखा है कि हर्षवर्द्धन ने अपने राज्य-भर में जीव-हिंसा एवं मांस-भक्षण की मनाही करा दी थी। यह आज्ञा तोड़नेवाले को प्राण-दंड दिया जाता था। तब भक्षाभक्ष्य मांस की बात कैसी? कदाचित् यह किसी वर्ग-विशेष के विषय में कहा है, जो इस आज्ञा और हर्ष के अधिकार के बाहर होंगे।

रुई, रेशम, ऊन और पाट के वस्त्र पहने जाते हैं। बौद्ध संन्यासी, अन्यान्य संप्रदायों के साधु, राजा-बाबू, ब्राह्मण, क्षत्रिय सबका पहनावा भिन्न-भिन्न प्रकार का होता है। लोग आभूषणों का भी व्यवहार करते हैं।

बड़े-बड़े आदमी कारचोबी के ग़लीचे काम में लाते हैं। साधारण लोगों के ग़लीचे साधारण होते हैं। सिंहासन रत्न-जटित, और उनके पाए रत्नों से भूषित हैं। सरदार लोग अपनी-अपनी रुचि के अनुसार चित्रित आसनों का उपयोग करते हैं।

पुनर्विवाह की प्रथा प्रचलित नहीं है।

रोग-ग्रस्त होने पर लोग सात दिन उपवास करते हैं। इसी से बहुत-से मनुष्य नीरोग हो जाते हैं। यदि इससे बीमारी दूर न हुई, तो चिकित्सक की शरण लेनी पड़ती है। रोगों की जाँच तथा चिकित्सा में भिन्न-भिन्न वैद्यों का जुदा-जुदा ढंग देखा जाता है।

मरने पर शव को लोग जलाते, जल में बहाते या जंगल में फेंक देते हैं।

सोना-चाँदी आदि खनिज द्रव्य खानों से निकलते हैं। रत्न-समूह का संग्रह समुद्र के टापुओं से किया जाता है; वाणिज्य में अन्य पदार्थों से लोग इन्हें बदलते हैं।

इमारतों और मकानों के बनाने की बातें वर्णन करते हुए इसने लिखा है कि चूने और मिट्टी से दीवारें पोतते हैं, और पवित्रता के लिये गोबर से लीपते हैं। भिन्न-भिन्न भवन चीन-देशीय मकानों के सदृश होते हैं। संघारामों के निर्माण में विचित्र कारीगरी और शिल्प-कुशलता दिखाते हैं। गलियाँ तथा सड़कें टेढ़ी-मेढ़ी होती हैं; परंतु सड़कों के दोनों ओर यथोचित चिह्नों से चिह्नित (अर्थात् साइनबोर्डों के साथ) दूकानें सजी जाती हैं।

हाँ, हिंदी के विषय में भी इसने एक बात कही है। वह यह है कि प्रांत-भेद से वर्ण-माला के उच्चारण में कुछ-कुछ विभिन्नता आ गई है, और इसकी कई एक शाखाएँ हो गई हैं। किंतु वास्तव

में बहुत प्रभेद नहीं है । मध्य-प्रदेश में भाषा की आदिम वर्ण-माला पूर्ण-रूप से सुरक्षित रक्खी गई है। यहाँ इसका उच्चारण देववाणी के समान सरल और सुखद है । इनके द्वारा शब्दों का उच्चारण स्पष्ट होता है। यह वर्ण-माला सब मनुष्यों के लिये आदर्श बनाने के योग्य है । नागरी-लिपि के विरोधी इस प्रदेश के लोग इस निरपेक्ष यात्री के कथन पर अवश्य ध्यान देंगे ।

× × ×

इन वर्णनों से यह स्पष्ट विदित होता है कि उस समय ब्राह्मणों तथा बौद्ध लोगों में वैमनस्य की मात्रा बहुत कम हो गई थी । भारतवासी जहाज़ों से अन्य देशों के साथ वाणिज्य-व्यवहार करते थे । ब्राह्मण लोग भी समुद्र-यात्रा किया करते थे । वे जावा और सुमात्रा के टापुओं में निवास करते थे, और वहाँ हिंदू-धर्म का खूब प्रचार था ।

ख़ैराती अस्पताल यहाँ उस समय नियत हो चुके थे, जबकि संसार की किसी जाति को इसका ख़याल भी नहीं आया था । योरप का, पेरिस का, सबसे पुराना अस्पताल "मेसन डियु" (Maison Dieu) ईसा की सातवीं शताब्दी में संस्थापित हुआ था ।

पितृ-भक्ति तथा पातिव्रत्य का निरादर गुरुतर अपराध, कठोर दंड के योग्य, समझा जाता था।

आजकल की तरह बात-बात में न्यायालय की शरण लेनी नहीं पड़ती थी । न "एफ़िडेविट" नाम से १) फ़ीस देकर लोग दिल खोलकर झूठ की अप्रतिहत धारा ही बहाते थे, और न हलफ़ लेकर "गंगा पिया" करते थे। आज से १६०० वर्ष पूर्व भी गोबर पवित्र समझा जाता था ।

कितनी बातें आज से अच्छी या बुरी थीं, यह प्रिय पाठक स्वयं विचार सकते—हमसे अधिक समझ सकते—हैं ।

शिवनंदनसहाय

आलोचक के प्रति

"कोकिल, तू क्यों 'कु-ऊ–कु-ऊ' रटता रहता है ?
करके उसमें संधि क्यों न 'कू-कू' कहता है ?"
"आलोचकजी, रीति मुझे भी यह जचती है ;—
बात वही है और एक मात्रा बचती है ।
सुनिए वह घुग्घू यह विषय कैसा अच्छा जानता
है 'घु-ऊ–घु-ऊ' कहकर न जो 'घू-घू' मात्र बखानता !"

मैथिलीशरण गुप्त

ग़रीबी का प्रश्न

योरप के प्रसिद्ध दार्शनिक और तत्ववेत्ता हर्बर्ट स्पेंसर ने एक जगह पर लिखा है कि बुराई में भी भलाई का अंश रहता है, अर्थात् जिन उपकरणों को हम बुरा समझते हैं—समाज के लिये भयावह और हानिकर समझते हैं—उनकी भी यदि विवेचना करें, तो विदित होगा कि उनमें कुछ ऐसी बातें हैं, जो समाज की स्थिति, उसके विकास और उसकी भलाई के लिये सर्वथा उपयुक्त हैं। पर गवेषणा करने से हम एक ऐसे सिद्धांत पर पहुँचते हैं, जो उनके मत से एकदम विपरीत है; अर्थात् हम देखते हैं कि मनुष्य जिन उपकरणों को समाज की भलाई के लिये निपट उपयोगी और अतीव आवश्यक समझते हैं, उन्हीं के द्वारा समाज की बड़ी हानि हो रही है; बल्कि यह कहना ठीक होगा कि समाज का अंग-भंग हो रहा है ?

हमारे उपर्युक्त कथन में कदाचित् किसी को अत्युक्ति प्रतीत होती हो, इससे दृष्टांत के द्वारा हम इसकी सार्थकता को प्रमाणित करने की चेष्टा करते हैं। आधुनिक सभ्यता ही को लीजिए। यहाँ हमारा मतलब पाश्चात्य सभ्यता है। इसकी बरकतों पर हमारे देश-वासी लट्टू हैं। इसके सुंदर सौम्य स्वरूप पर इतने मुग्ध हो गए हैं कि सर्वस्व वारकर इसके दास हो गए हैं। अधिकांश शिक्षित-समाज की यही दशा है। यह क्यों? इस-के आविष्कारों ने संसार में चकाचौंध फैला दी है। कहाँ हम दिये की टिमटिमाती रोशनी में अपना सारा काम-धंधा करते थे, तेल रखने के लिये ताक गंदा करते थे, जलाने के लिये हाथ गंदे करते थे, दिया रखने के लिये कमरे का एक स्थान गंदा करते थे; कहाँ आज आराम-कुर्सी पर बैठे-ही-बैठे बटन दबा देते हैं और "अलादीन के चिराग़" के चमत्कार की भाँति सारा घर पल-भर में जगमगाकर चमक उठता है! इसी तरह के और सब आराम के साधन हैं, जिनका स्वप्न में भी हम अनुमान नहीं कर सकते थे। यह सब भौतिक विज्ञान के विकास का प्रसाद है। दूसरी ओर डॉक्टरों ने मानव-शरीर का विनाश करनेवाली अनेक प्रकार की अज्ञात बीमारियों का, अनुसंधान द्वारा, पता लगाकर और उनके निवारण के उपाय बताकर मानव-जीवन के रक्षण और परिवर्द्धन का यत्न किया है। यह सब तो ठीक है, परंतु इसके साथ ही समाज में जो भीषण बुराई आ गई है, और जिसके कारण समाज धीरे-धीरे छिन्न-भिन्न होता चला जा रहा है, उसका शायद हम लोग अनुमान ही नहीं कर रहे हैं। यही इस भलाई के भीतर छिपी हुई बुराई है। उस बुराई का नाम है ग़रीबी की मार। उसके निवारण का कोई उपाय नहीं किया जा रहा है। इसकी तरफ़ किसी का ध्यान ही नहीं जा रहा है। परिणाम यह दिखाई पड़ रहा है कि वह अपना ख़ूँ-ख़ार पंजा इस तरह जमाती जा रही है कि समाज भीतर-ही-भीतर सार-हीन होता चला जा रहा है, और इसका किसी को पता नहीं। साधारण-से-साधारण बीमारी में लाखों प्राणी काल के कवल हो जाते हैं।

लोग अक्सर यही समझते हैं कि 'बीमारियों का शिकार केवल ग़रीब ही होते हैं; क्योंकि यथेष्ट साधन न होने के कारण वे उनका कुछ प्रतीकार नहीं कर सकते, और इस प्रकार अपनी रक्षा करने में असमर्थ होने के कारण सहज ही प्राण गँवा देते हैं। पर धनवानों को इन रोगों की आँच नहीं लगती।' यह ख़याल अधिकांश सच है, लेकिन बिलकुल नहीं। बीमारियों की शुरुआत ग़रीबों से ही होती है। सबसे पहले वे ही उन-की चपेट में आते हैं। पर धीरे-धीरे वे उनको भी गले से लगा ही लेती हैं, जो अपने को हर तरह से सुरक्षित समझते हैं। जिस समय किसी स्थान में हैजे, प्लेग या चेचक का प्रकोप होता है, तो ग़रीबों की ही अधिक क्षति होती है; पर इनसे धनी और शिक्षित जन भी नहीं बचते। इन आपदाओं का जब कभी प्रतीकार किया गया, तो वह सदा अपर्याप्त और क्षणिक रहा। व्याधि का प्रकोप शांत होते ही उसकी शांति का उपाय भी छोड़ दिया जाता है। उदाहरण के तौर पर प्लेग के निवारणार्थ टीका आदि लगाने के अनेक तरह के उपायों को ही ले लीजिए। वे काम में लाए गए, और बराबर लाए जाते हैं, पर प्लेग के प्रकोप को ही असंभव कर देने का एक बार भी प्रयत्न नहीं किया गया। समय पाकर प्लेग

देवता आ ही जाते हैं, और अपने विकराल मुख में हज़ारों-लाखों को दबाकर ले ही जाते हैं। जन-समाज सदा भीत और त्रस्त रहता है। पर इस विकट व्याधि को जड़ से मिटाने की चेष्टा कभी नहीं की गई।

इस प्रकार की बीमारियों का प्रकोप प्रायः उन्हीं नगरों में अधिक होता है, जहाँ की जन-संख्या अति अधिक होने के कारण बस्ती घनी रहती है, और खुलासा जगह की कमी पाई जाती है। ऐसे स्थानों में ग़रीबों की ही संख्या अधिक देख पड़ती है। इसलिये समाज के उद्धार की, उसके हित-साधन की, कोई भी व्यवस्था—चाहे वह कितनी उन्नत और समृद्ध क्यों न हो—तब तक कदापि सफल नहीं हो सकती, जब तक कि उसका प्रधान लक्ष्य ग़रीबी को मिटाना न होगा। जब तक इस देश के लाखों-करोड़ों प्राणी दरिद्रता से उत्पन्न विविध आपदाओं को भोगते रहेंगे, तब तक इस देश का आर्थिक विकास हो ही नहीं सकता। यदि विचार-पूर्वक देखा जाय, तो स्वीकार करना पड़ेगा कि आर्थिक ही नहीं, बल्कि व्यवसाय और कृषि तथा समाज और चरित्र का सुधार भी ग़रीबी के हटे बिना असंभव है। चाहे जिस पहलू से देखिए, ग़रीबी का प्रश्न हम लोगों के लिये सबसे पहला या प्रधान प्रश्न है, और आर्थिक तथा सामाजिक दृष्टि से इसको मिटाना सर्व-प्रधान कर्तव्य है। अगर धार्मिक दृष्टि से देखिए, तो भी इन ग़रीब भाइयों के दुःख-निवारण से बढ़कर, हम लोगों के लिये, दूसरा पवित्र काम भी नहीं हो सकता। और, स्वार्थ की दृष्टि से भी यही सर्वोपरि है; क्योंकि इसका निवारण किए बिना हमारा उद्धार भी नहीं हो सकता।

अब हमें देखना यह है कि हममें कौन-सी प्रधान अयोग्यताएँ हैं, जिनके कारण लोगों का ग़रीबी के चंगुल से उद्धार नहीं होने पाता। प्रधान अयोग्यताएँ निम्न-लिखित हैं—१—निरक्षरता, २—अस्वास्थ्यकर रहन-सहन, ३—अनेक तरह की कुप्रथाओं का निवास, तथा ४—धनी और शिक्षित-वर्ग की उनके प्रति उदासीनता। यहाँ पर हम संक्षेप में यह दिखलाने की चेष्टा करेंगे कि प्रत्येक व्यक्ति का, समाज में इस ग़रीबी को स्थायी बना रखने में, कितना हाथ है।

१.—निरक्षरता

यह सर्व-सम्मत है कि निरक्षरता के कारण ग़रीबों में अंध-विश्वास, मूर्खता आदि ऐसे अनेक दोष आ गए हैं, जो उनकी दशा के परिवर्तन में प्रधान बाधा या रुकावट हैं। अतएव सबसे प्रधान उपाय और कर्तव्य शिक्षा का प्रचार है। इससे अन्य अनेक बुराइयों का विनाश हो जायगा। परंतु शिक्षा का प्रश्न दो बातों के अधीन है। पहले तो द्रव्य की आवश्यकता; दूसरे, समय की प्रतीक्षा। अतः शिक्षा का योग शनैः शनैः सफल हो सकता है। बरसों के लगातार परिश्रम के बाद ही प्रत्येक झोपड़ी में इसकी निर्मल ज्योति अपना प्रकाश फैला सकती है। किंतु एक सुविधा है, और वह यही कि वर्तमान युग हमारे अनुकूल है। इस समय जो हवा चल रही है, उसकी सहायता से हम बहुत कुछ कर सकते हैं। शिक्षा की ओर लोगों की चाह और उत्साह की बहुत कुछ वृद्धि हो रही है। बड़ोदा और मैसूर आदि देशी राज्यों ने अनिवार्य शिक्षा का नियम चलाकर उसका तरीक़ा भी ठीक कर दिया है। इनकी सहायता से अनिवार्य शिक्षा जारी करके हम लोग ग़रीबों का बहुत कुछ सुधार और उपकार कर सकते हैं।

२—अस्वास्थ्यकर रहन-सहन

दूसरा कारण उनकी रहन-सहन की अनुपयुक्तता है। क्या दिहातों में और क्या शहरों में, ग़रीबों के रहने के घरों को देखकर तरस आता है। नगर का सबसे गंदा और तंग स्थान उन्हीं के लिये रिज़र्व रहता है। कबूतरों के दरबे और सुअरों के भट्ठे भी उन घरों से बड़े और चौड़े रहते हैं। एक चार फ़ुट चौड़े और ६ से ८ फ़ुट लंबे कमरे में एक कुटुंब अपनी सारी गृहस्थी के साथ रहता है; उसी में भोजन बनाता है, उसी में अपने बाल-बच्चों के साथ सोता है। गरमी में वही ठंडा है, जाड़े में वही गरम है, बरसात में वही आश्रय है। इन झोपड़ियों की बनावट देखकर बुद्धि चकरा जाती है कि क्या ये मनुष्य के रहने के लिये बनाए गए हैं। बरसात के दिनों में शायद ही कोई बूँद ओरी से होकर गिरती हो। ज़मीन की सर्दी इतनी प्रबल और अधिक होती है कि उस पर रक्खी चीज़ों में फफूँदी सहज में ही फैल जाती है। नगर की म्युनिसिपल्टियाँ भी इन महल्लों की तरफ़ से उतनी ही उदासीन रहती हैं, जितनी कि उनके ऊपर ईश्वर का प्रकोप। इन महल्लों की गंदगी और कूड़े-कर्कट के निकलने आदि का ठीक और काफ़ी इंतिज़ाम इनके द्वारा नहीं होता। मोरी-नालियाँ भी ठीक तरह से नहीं बनी होतीं, जिससे घरों का पानी बाहर निकल जाया करे। इस कूड़े-कर्कट के सड़ने से तरह-तरह के कीड़े पैदा होते हैं और बीमारी फैल जाती है। नतीजा यह होता है कि इसका बुरा असर सारे नगर पर पड़ता है। इन अनेक बार के प्लेग के आक्रमणों से जो अनुभव प्राप्त हुआ है, उसके आधार पर यही कहना पड़ता है कि प्लेग का आरंभ पहले उन्हीं गंदे महल्लों से होता और फिर वहाँ से वह सारे नगर में फैलता है।

मृत्यु-संख्या की जाँच करने से भी यही परिणाम निकलता है कि बेचारे ग़रीब निर्धन ही अधिक संख्या में इसके शिकार होते हैं। प्लेग का प्रकोप बढ़ जाने पर उसके निवारण के प्रयत्न में प्रत्येक बार लाखों रुपए ख़र्च कर दिए जाते हैं। स्थान-स्थान पर टीका लगाने के दफ़्तर खोले जाते हैं, नगरों के बाहर झोपड़ियाँ बनवाई जाती हैं, मकानों को धोने आदि का प्रबंध किया जाता है। इस प्रकार लाखों रुपए भी ख़र्च किए जाते हैं और लाखों जानें भी जाती हैं। ऐसी दशा में उचित तो यही जान पड़ता है कि इसके मूल कारण को ही मिटाने की व्यवस्था क्यों न की जाय; अर्थात् उन गंदे स्थानों और गंदी झोपड़ियों को सदा के लिये उठाकर, उनके स्थान पर रहने लायक़ घर बना दिए जायँ। यह कोई कठिन काम नहीं है। मकानात बनवाने में जो रुपए लगेंगे, वे किराए के रूप में धीरे-धीरे वसूल हो जायँगे। फिर, इससे, सबसे भारी लाभ यह होगा कि नगर का स्वास्थ्य दिन-दिन अच्छा होता जायगा, ग़रीबों की दशा सुधरती जायगी। स्वास्थ्यकर साधनों की प्राप्ति से चंगे और मज़बूत लोग होंगे। बिना इसके आर्थिक सुधार असंभव है।

३—कुप्रथाओं का निवास

तीसरा कारण, हमने, उनके अंतर्गत अनेक प्रकार की कुप्रथाओं को बतलाया है। इनमें सबसे प्रथम स्थान नशेबाज़ी का है। अनुसंधान करने से पता लगता है कि इस देश में मज़दूरों की आधी से भी अधिक आमदनी ताड़ी और शराब बेचनेवालों के गल्ले में चली जाती है। साधारण-से-साधारण मज़दूर भी दिन-भर के कठिन परिश्रम से

कमाई हुई रक़म को शाम के वक्त कलवरिया में दे आता है, और फिर घर जाकर आधे पेट खाकर सो रहता है। इससे भी इनकी ग़रीबी दिन-पर-दिन भयानक होती चली जा रही है। परंतु इसके लिये वे किसी अंश तक क्षमा करने के योग्य हैं। एक दिन हमने एक ऐसे ही मज़दूर से इस विषय में बातचीत की थी। वह आदमी समझदार होकर भी इस दुर्व्यसन में बेतरह फँसा हुआ था। उसने अति खिन्न होकर उत्तर दिया—'बाबूजी, जिस दशा में हम लोगों को रहना पड़ता है, वह आपसे छिपी नहीं है। दिन-भर बैल की तरह जुटे रहते हैं; रात जिन घरों में काटनी पड़ती है, उनका स्मरण करें, तो एक दिन भी जीना कठिन हो जाय। इसी लिये नशा जमा लेते हैं, जिससे विचार-शक्ति का लोप हो जाता है, और घरपर जाकर बेहोश पड़ रहते हैं। धीरे-धीरे यह आदत इस तरह अपने वश कर लेती है कि फिर छुड़ाए नहीं छूटती।' उसकी इस करुण आत्म-कथा को सुनकर हमें अत्यंत खेद हुआ। लिखने का तात्पर्य यह है कि इस बुराई का कारण भी अधिकतर वही ग़रीबी की मार है। इससे इसके लिये दो बातों की आवश्यकता है। ग़रीबी मिटाने के प्रयत्न के साथ ही कलवरियों के कम करने का बंदोबस्त किया जाय, और मादक द्रव्यों का प्रचार रोका जाय।

४—धनी और शिक्षित-वर्ग की उदासीनता

यदि शिक्षित और धनी लोग चाहें, तो इन ग़रीबों का बहुत कुछ उपकार कर सकते हैं। पर इसके लिये श्रम करना उन्हें अभीष्ट नहीं। धनिक-वर्ग अपनी धन-लिप्सा में दूसरों का ख़याल एकदम भूल जाता है। रह गया शिक्षित-समाज, सो वह गंदे ग़रीबों को कब अपने पास फटकने देता है।

संक्षेप में हमने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि इस देश की ग़रीबी का प्रश्न सबके लिये समान-रूप से विचारणीय है, और बिना इसके हल किए इस देश की दशा पूर्ण-रूप से सुधर नहीं सकती।

छविनाथ पांडेय बी० ए०, एल्-एल्० बी०

तीर्थ-यात्रा

(१)

लाजवंती के कई पुत्र उत्पन्न हुए; परंतु सब-के-सब बचपन ही में मर गए। अंतिम पुत्र हेमराज उसके जीवन का आश्रय था। उसका मुख देखकर वह पहले बच्चों की मृत्यु का शोक भूल जाती थी। यद्यपि हेमराज का रंग-रूप साधारण दिहाती बालकों का-सा ही था, तथापि लाजवंती उसे सबसे सुंदर समझती थी। मातृ-वात्सल्य ने आँखों को धोखे में डाल दिया था। लाजवंती को उसकी इतनी चिंता थी कि प्रतिक्षण उसे छाती से लगाए रहती थी; मानों वह कोई दीपक हो, जिसे बुझाने के लिये शिशिर के तीक्ष्ण झोंके बार-बार आक्रमण कर रहे हों। वह उसे छिपा-छिपाकर रखती थी, कहीं उसे किसी की कुदृष्टि न लग जाय। गाँव के लड़के खेतों में स्वच्छंदता से खेलते फिरते हैं; परंतु लाजवंती हेमराज को घर से बाहर न निकलने देती थी। और, कभी निकल भी जाता, तो मतवाली-सी हुई उसे ढूँढ़ने लग जाती थी। गाँव की स्त्रियाँ कहतीं—"हमारे भी तो लड़के हैं, तू यों पागल क्यों बनी रहती है?" लाजवंती यह सुनती, तो उसकी आँखों में आँसू लहराने लगते और वह भर्राए हुए स्वर से उत्तर देती—"क्या कहूँ? मेरा जी डरता रहता है!"

इस समय उसे अपने मरे हुए पुत्र याद आ जाते थे।

परंतु इतना सावधान रहने पर भी हेमराज कुदृष्टि से न बच सका। प्रातःकाल था; लाजवंती दूध दुह रही थी। इतने में हेम जागा, और मुँह फुलाकर बोला—"मा!"

आवाज़ में उदासी थी। लाजवंती के हाथ से बर्तन गिर गया। दौड़ती हुई हेमराज के पास पहुँची, और प्यार से उसके सिर पर हाथ फेरकर बोली—"क्यों हेम, क्या है बेटा ?"

हेमराज की आँखों में आँसू डबडबा आए; रुक-रुककर बोला—"सिर में दर्द होता है।"

बात साधारण थी; परंतु लाजवंती का हृदय काँप गया। ये ही दिन थे, यही ऋतु थी, जब उसका पहला बच्चा मदन मरा था। वह भी इसी तरह बीमार हुआ था। उस समय भी लाजवंती ने उसकी सेवा-सुश्रूषा में दिन-रात एक कर दिया था। परंतु जो होना होता है, उसे कौन मेट सकता है। निर्दयी मृत्यु ने लाजवंती का सर्वस्व छीन लिया। लाजवंती उस समय इस दुख से अधमरी-सी हो गई थी। वही घटना इस समय उसकी आँखों के सामने फिर गई। क्या अब फिर—

लाजवंती के पैरों के नीचे से मिट्टी खिसकती-सी प्रतीत होने लगी। जिस प्रकार विद्यार्थी एक बार फ़ेल होकर दूसरी बार परीक्षा में बैठते घबराता है, उसी प्रकार हेमराज के सिर-दर्द से लाजवंती व्याकुल हो गई। गाँव में दुर्गादास वैद्य अच्छे अनुभवी थे। लोग उन्हें देवता समझते थे। सैकड़ों रोगी उनके हाथों से आरोग्य होते थे। आसपास के गाँवों में उनका बड़ा नाम था। लाजवंती उड़ती हुई उनके पास पहुँची। वैद्यजी बैठे एक पुराना साप्ताहिक समाचार-पत्र पढ़ रहे थे। लाजवंती को देखकर उन्होंने पत्र हाथ से रख दिया, और आँखों से ऐनक उतारकर बोले—"क्यों बेटी, क्या बात है ?"

वैद्यजी इस गाँव के रहनेवाले न थे। अवस्था भी पचास से ऊपर थी। अतएव गाँव की बहू-बेटियाँ उनसे पर्दा न करती थीं। लाजवंती ने चिंतित-सी होकर उत्तर दिया—"हेम बीमार है।"

वैद्यजी ने सहानुभूति के साथ पूछा—"कब से ?"

"आज ही से; कहता है, सिर में दर्द है।"

"बुख़ार तो नहीं ?"

"मालूम तो नहीं होता। आप चलकर देख लेते, तो अच्छा था।"

वैद्यजी का मनोरथ सिद्ध हुआ। उन्होंने जलदी से कपड़े पहने, और लाजवंती के साथ हो लिए। हेमराज बुख़ार से बेसुध पड़ा था। वैद्यजी ने नाड़ी देखी, माथे पर हाथ रक्खा, और फिर कहा—"कोई चिंता नहीं, दवा देता हूँ; बुख़ार उतर जायगा।"

लाजवंती के डूबते हुए हृदय को सहारा मिल गया। उसने दुपट्टे के आँचल से अठन्नी खोली, और वैद्यजी की भेंट कर दी। वैद्यजी ने मुख से 'नहीं-नहीं' कहा, परंतु हाथों ने मुख का साथ न दिया।

(२)

कई दिन बीत गए, हेम का ज्वर नहीं घटा। वैद्यजी ने कई औषधियाँ बदलीं; परंतु किसी ने अपना प्रभाव न दिखाया। लाजवंती की चिंता बढ़ने लगी। वह रात-रात-भर उसके सिरहाने बैठी रहती। लोग आते और धीरज दे-देकर चले जाते; परंतु लाजवंती का मन उनकी बातों की ओर न था। वह अपने मन की पूरी शक्ति से हेम की सुश्रूषा में लग रही थी।

एक दिन वैद्य से पूछा—"क्या कारण है, जो बुख़ार नहीं उतरता ?"

वैद्यजी ने एक कटाक्ष-विशेष से, जो प्रायः वैद्य लोग ही किया करते हैं, उत्तर दिया—"मियादी बुख़ार है।"

लाजवंती ने तड़पकर पूछा—"मियादी बुख़ार क्या ?"

"अपनी मियाद (अवधि) पूरी करके उतरेगा।"

"पर कब तक ?"

"इक्कीसवें दिन उतरेगा; इससे पहले नहीं उतर सकता।"

"आज ग्यारह दिन हो गए हैं।"

"बस दस दिन और हैं।"

लाजवंती का माथा ठनका; हिचकिचाते हुए बोली—"कोई डर तो नहीं है ?"

वैद्यजी थोड़ी देर चुप रहे। वह सोच रहे थे कि उसे साफ़-साफ़ बतलाना हानिकारक तो न होगा। सोचकर बोले—"देखो बुख़ार दुस्साध्य-सा है; हानिकारक भी हो सकता है। मेरी सम्मति में हेम के पिता को बुलवा लो।"

लाजवंती सहम गई। रेत के स्थलों को जल की नदी समझकर जब हरिण पास पहुँचकर देखता है कि नदी अभी तक उतनी ही दूर है, तो जो दशा उसके मन की होती है, वही दशा इस समय लाजवंती की हुई। उसे आशा नहीं, निश्चय हो गया था कि हेम एक-आध दिन

में स्वस्थ हो जायगा ; परंतु वैद्य की बात सुनकर उसका हृदय बैठ गया । उसका पति रामलाल सचदेव मुलतान में नौकर था । उसे पत्र लिखा गया ; वह तीसरे दिन पहुँच गया । चिकित्सा दुगनी सावधानी से होने लगी । यहाँ तक कि दस दिन और भी व्यतीत हो गए । अब अंतिम दिन सिर पर था । लाजवंती और रामलाल दोनों घबरा गए । हेम का शरीर अभी तक आग की तरह तप रहा था । क्या बुख़ार एकाएक एकबारगी उतरेगा ?

वैद्यजी ने आकर नाड़ी देखी, तो आतुर-से होकर बोले—"आज की रात बड़ी भयानक है ! सावधान रहना, बुख़ार एकाएक उतरेगा ।"

(३)

लाजवंती और रामलाल, दोनों चकित रह गए । वैद्य के शब्द किसी आनेवाले भय की पूर्व-सूचना थे । रामलाल दवाएँ सँभालकर बेटे के सिरहाने बैठे । परंतु लाजवंती के हृदय को कल न थी । उसने संध्या-समय थाल में घी के दीपक जलाए, और मंदिर की ओर चल पड़ी । इस समय उसे आशा अपनी पूरी जीवन-सामग्री के साथ सामने नृत्य करती हुई दिखाई दी । लाजवंती अनन्य भाव से मंदिर में पहुँची, और देवी के सामने गिरकर देर तक रोती रही । जब थककर उसने सिर उठाया, तो उसका मुख-मंडल शांत था, जैसे तूफ़ान के पीछे समुद्र शांत हो जाता है । उसको ऐसा प्रतीत हुआ, मानों कोई दिव्य वाणी उसके कान में कह रही है कि तूने आँसू बहाकर देवी के पाषाण-हृदय को पिघला दिया है । परंतु उसने इतने ही पर संतोष न किया ; मातृ-स्नेह ने भय को चरम-सीमा पर पहुँचा दिया था । लाजवंती ने देवी की आरती उतारी, फूल चढ़ाए, मंदिर की परिक्रमा की और प्रेम के बोझ से कंपित स्वर से मानता मानी कि "देवी माता ! मेरा हेम बच जाय, तो मैं तीर्थ-यात्रा करूँगी ।"

यह मानता मानने के बाद लाजवंती को ऐसा जान पड़ा, जैसे उसके हृदय पर से किसी ने कोई बोझ हटा लिया । उसे निश्चय हो गया कि अब हेम को कोई भय नहीं है । लौटी, तो उसके पाँव भूमि पर न पड़ते थे । उसके हृदय-समुद्र में आनंद की तरंगें उठ रही थीं । उड़ती हुई घर पहुँची, तो उसके पति ने कहा—"लो बधाई, तुम्हारा परिश्रम सफल होने को है ; बुख़ार धीरे-धीरे उतर रहा है ।

लाजवंती के मुख पर प्रसन्नता थी और नेत्रों में आशा की सुखमयी झलक । झूमती हुई बोली—"अब हेम को कोई डर नहीं है । मैं तीर्थ-यात्रा की मानता मान आई हूँ ।"

रामलाल ने तीर्थ-यात्रा के ख़र्च का अनुमान किया, तो हृदय बैठ गया ; परंतु पुत्र-स्नेह ने इस चिंता को देर तक न ठहरने दिया । उसने बादलों से निकलते हुए चंद्रमा के समान मुसकिराकर उत्तर दिया—"अच्छा किया, रुपए की क्या है, आता है और चला जाता है । परमेश्वर ने एक लाल दिया है, वह जीता रहे ।"

लाजवंती ने स्वामी को सुला दिया और आप रात-भर जागती रही । उसके हृदय पर ब्रह्मानंद की मस्ती छा रही थी । प्रभात हुआ, तो हेम का ज्वर उतर गया था । लाजवंती के मुख-मंडल से प्रसन्नता टपक रही थी, जैसे कि संध्या के समय गौओं के स्तनों से दूध की बूँदें टपकने लगती हैं ।

वैद्यजी ने आकर देखा, तो उनका मुख-मंडल चमक उठा । अभिमान से सिर उठाकर बोले—"अब कोई चिंता नहीं ।"

लाजवंती ने हेम के निढाल शरीर पर हाथ फेरते हुए कहा—"बच्चा क्या से क्या हो गया है ।"

वैद्य ने लाजवंती की ओर कृतज्ञता-भरी दृष्टि से देखा, और रामलाल की ओर झुककर बोले—"यह सब इसके परिश्रम का फल है ।"

लाजवंती ने उत्तर दिया—"देवी माता की कृपा से, अथवा आपकी औषध के प्रभाव से ही सब हुआ; मैंने क्या किया है ?"

"मैं तुम्हें दूसरी सावित्री समझता हूँ । उसने मरे हुए पति को जिलाया था, और तुमने पुत्र को मृत्यु के मुँह से निकाला है । तुम यदि दिन-रात एक न कर देतीं, तो हेम का बचना सर्वथा असंभव था ।"

रामलाल के होठों पर मुसकिराहट थी । इसके सातवें दिन वह अपनी नौकरी पर चले गए ।

(४)

तीन मास व्यतीत हो गए । लाजवंती तीर्थ-यात्रा के लिये तैयार हुई । अब उसके मुख पर फिर वही आभा थी ; आँखों में फिर वही चमक थी । हेम आँगन में इस प्रकार चहकता फिरता था, जैसे फूलों पर बुलबुल । लाजवंती उसे देखती, तो फूली न समाती थी । तीर्थ-यात्रा के

लिये जाने के पहले की रात को उसके आँगन में सारा गाँव इकट्ठा हो रहा था । झाँझें और करतालें बज रही थीं । ढोलक की थाप गूँज रही थी । कहीं पूरियाँ बन रही थीं, कहीं हलुआ । उनकी सुगंध से दिमाग़ तर हुए जाते थे । लाजवंती इधर-से-उधर और उधर-से-इधर आ-जा रही थी, मानों उसके यहाँ ब्याह है । एक ओर निचिंते साधु सुलफ़े के दम लगाकर गाँव की हवा को साफ़ कर रहे थे । उनकी ओर गाँव के लोग इस तरह देखते थे, जैसे किसान तहसीलदार की ओर देखते हैं । आँखों में श्रद्धा-भाव के स्थान में भय और आतंक कहीं अधिक छा रहा था । लाजवंती से कोई मैदा माँगता था, कोई घी । कोई कहता था, हलवाई खाँड़ के लिये चिल्ला रहा है । कोई पूछता था, अमचूर का बरतन कहाँ है ? कोई और समय होता, तो लाजवंती घबरा जाती ; पर इस समय उसके मुख पर खेद न था । सोचती थी, कैसा सौभाग्य है, जो यह दिन देखने में आया ।

परंतु सारा गाँव प्रसन्न हो, यह बात न थी । वहीं स्त्रियों में बैठी एक वृद्धा स्त्री असीम दुःख में डूबी हुई थी । यह लाजवंती की बूढ़ी पड़ोसिन हरो थी । अत्यंत दुःख से उसके कंठ से आवाज़ न निकलती थी । नगर होता, तो वह इस उत्सव में सम्मिलित न होती ; परंतु गाँव की बात थी । न आती, तो उँगलियाँ उठने लगतीं । आनंदमय हास-परिहास के बीच उसका मस्तिष्क दुःख और शोक के कारण खौल रहा था, जैसे ठंडे समुद्र में गर्म जल का स्रोत उबल रहा हो । वह स्रोत शेष समुद्र से कितना परे कितना अलग होता है ?

इसी प्रकार रात के चार बज गए ; लोग खा-पीकर विश्राम करने लगे । जो बच रहा, वह ग़रीबों को बाँट दिया गया । लाजवंती ने लोगों को विदा किया और चलने की तैयारी में लगी । उसने एक टीन के बक्स में आवश्यक कपड़े रक्खे, एक बिस्तर तैयार किया, कंठ में लाल रंग की सूती माला पहनी, मस्तक पर चंदन का लेप किया । गऊ पड़ोसिन को सौंपी, और उससे बार-बार कहा—"इसका पूरा-पूरा ध्यान रखना । मैं जा रही हूँ, मगर मेरा मन अपनी गऊ में लगा रहेगा ।" सहसा किसी की सिसकी भरने की आवाज़ सुनाई दी । लाजवंती के कान खड़े हो गए । उसने चारों ओर देखा, परंतु कोई दिखाई न दिया । इस समय सारा गाँव सुख-स्वप्न में अचेत पड़ा था । यह सिसकी भरनेवाला कौन है ? यह सोचकर लाजवंती चकित रह गई । वह आँगन में खड़ी हुई, और ध्यान से सुनने लगी । सिसकी की आवाज़ फिर सुनाई दी ।

लाजवंती छत पर चढ़ गई, और पड़ोसिन के आँगन में झुककर ज़ोर से पुकारने लगी—"मा हरो !"

कुछ देर तक तो सन्नाटा रहा, बाद को एक चारपाई पर से उत्तर मिला—"कौन है, लाजवंती ?"

आवाज़ में आँसू शामिल थे ।

लाजवंती जलदी से नीचे उतर गई, और हरो के पास पहुँचकर बोली—"मा, क्या बात है ?"

वह सचमुच रो रही थी ; परंतु अपना दुःख लाजवंती के सामने कहते हुए उसके नारी-दर्प को बट्टा लगता था, इसलिये अपनी वास्तविक अवस्था को छिपाती हुई बोली—"कुछ नहीं ।"

"रो क्यों रही हो ?"

हरो के रुके हुए आँसुओं की बाधा टूट गई : उसका दुःखी हृदय सहानुभूति की एक चोट को भी सहन न कर सका । वह सिसकियाँ भरकर रोने लगी ।

लाजवंती ने फिर पूछा—"मा, बात क्या है ?"

हरो ने कुछ उत्तर न दिया । वह सोच रही थी कि इस समय क्या करना उचित है ? प्रभात हो चला था ; कुछ-कुछ प्रकाश निकल आया था । लाजवंती चलने के लिये आतुर हो रही थी । परंतु हरो को क्या दुःख है, यह जाने बिना चले जाना उसके लिये कठिन था । उसने तीसरी बार फिर पूछा—"मा, बतला दो ना, तुम्हें क्या दुःख है ?"

हरो ने दुःखी होकर कहा—"क्या तुम उसे दूर कर दोगी ?"

"हो सका, तो दूर कर दूँगी ।"

"यह असंभव है ।"

"परंतु बतलाने में क्या हानि है ?"

हरो थोड़ी देर तक चुप रही ; फिर धीरे से बोली—"बेटी का दुःख खा रहा है ।"

"यह क्यों ? उसके ब्याह का ख़र्च तो तुम्हारे जेठ ने देना स्वीकार कर लिया है ।"

"ऐसे भाग होते, तो रोना काहे का था ?"

लाजवंती ने अकुलाकर पूछा—"तो क्या यह झूठ है ?"

"बिलकुल झूठ भी नहीं । उसने दो सौ रुपए के गहने बनवा दिए हैं ; परंतु मिठाई आदि का कोई प्रबंध नहीं है । अब चिंता यह है कि बरात आवेगी, तो उसके सामने क्या रक्खूँगी ?"

लाजवंती ने कुछ सोचकर उत्तर दिया—"क्या गाँव के लोग एक निर्धन ब्राह्मणी की कन्या का ब्याह नहीं कर सकते ?"

हरो की आँखें भर आईं । वह इस समय निर्धन थी सही, परंतु कभी उसने अच्छे दिन भी देखे थे । लाजवंती की बात से उसे अत्यंत दुःख हुआ, जैसे नया-नया भिखारी गालियाँ सुनकर पृथ्वी में गड़ जाता है । उसने धीरे-से कहा—"बेटी ! यह अपमान न देखा जायगा ।"

"परंतु इस तरह तो गाँव-भर की नाक कट जायगी ।"

हरो ने बात काटकर कहा—"मैं इसे सहन नहीं कर सकूँगी ।"

"तो क्या करोगी ? कन्या कुँवारी रक्खोगी ?"

"भगवान् की यही इच्छा है, तो मेरा क्या बस है ? कहीं निकल जाऊँगी ।"

लाजवंती ब्राह्मणी की करुणा-जनक अवस्था देखकर काँप गई । उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो कोई कह रहा है कि यदि यह हो गया, तो ईश्वर का कोप गाँव-भर को जलाकर ख़ाक कर देगा । लाजवंती अपने को भूल गई । उसका हृदय दुःख से पानी-पानी हो गया । उसने जोश से कहा—"चिंता न करो, तुम्हारा यह संकट मैं दूर कर दूँगी ।"

हरो ने वह सुना, जिसकी उसे आशा न थी । उसके नेत्रों में कृतज्ञता के आँसू छलकने लगे । लाजवंती तीर्थ-यात्रा के लिये अधीर हो रही थी । वह सोचती थी—हरद्वार, मथुरा, वृंदावन के मंदिरों को देखकर हृदय कली की तरह खिल जायगा । परंतु जो आनंद उसे इस समय प्राप्त हुआ, वह उस कल्पित सुख की अपेक्षा कहीं अधिक बढ़-चढ़कर था । वह दौड़ती हुई अपने घर गई, और ट्रंक खोलकर दो सौ रुपए लाकर हरो के सामने ढेर कर दिए । ये रुपए जोड़ते समय वह प्रसन्न हुई थी, पर उन्हें देते समय उससे भी अधिक प्रसन्न हुई ।

(५)

लाजवंती के तीर्थ-यात्रा का विचार स्थगित करने पर गाँव में आग-सी लग गई । लोग छिप-छिपकर कहते थे, लाजवंती ने बहुत बुरा किया । देवी माता का क्रोध उसे नष्ट कर देगा । स्त्रियाँ कहती थीं—किस बिसात पर रात को रतजगा किया था ? साठ-सत्तर रुपए ख़र्च हो गए, अब घर में बैठ गई है । नहीं जाना था, तो इस दिखाव की क्या आवश्यकता थी ? कोई कहती थी—देवी-देवतों के साथ यह हँसी अच्छी नहीं ; ले-देकर एक लड़का है, उसकी कुशल माँगे । जो बूढ़ी थीं, वे माला की गुरिया फेरते-फेरते बोलीं—कलजुग का पहरा है, जो न हो जाय, सो थोड़ा ! ऐसा तो आज तक नहीं सुना था ! पर असली भेद का किसी को पता न था । धीरे-धीरे ये बातें लाजवंती के कानों तक भी जा पहुँचीं । पहले तो उसने उनकी कुछ परवा नहीं की ; परंतु जब सब ओर यही चर्चा और यही बात सुनी, तो उसका चित्त भी डाँवाडोल होने लगा । वायु ने झकड़ का रूप धारण कर लिया था । अब यात्री घबरा रहा था ।

लाजवंती सोचती थी—मैंने बुरा क्या किया ? एक निर्धन ब्राह्मणी की बेटी के विवाह में सहायता देना क्या देवतों को पसंद नहीं ? और, मैंने तीर्थ-यात्रा का विचार तो छोड़ नहीं दिया, केवल कुछ काल के लिये स्थगित कर दिया है । इस पर देवी-देवता कुपित क्यों होने लगे ? परंतु दूसरा विचार उठता कि मैंने सचमुच भूल की । देवी-देवतों की भेंट किसी मनुष्य को देना अपराध नहीं, तो और क्या है ? यह विचार आते ही उसका कलेजा काँप जाता, और हेम के विषय में भयानक संशय उत्पन्न होने लग जाते । संसार बुराइयों पर पश्चात्ताप करता है ; पर लाजवंती भलाई पर पछता रही थी । दिन की चैन उड़ गई, रात की नींद हराम हो गई ! उसे वहम हो गया कि अब हेम की कुशल नहीं । उसे खेलता देखती, तो उसके हृदय पर कटारियाँ चल जाती थीं ।

इसी प्रकार कई दिन बीत गए । गाँव में चहल-पहल दिखाई देने लगी । हलवाई की दूकान पर मिठाइयाँ तैयार होने लगीं । गाँव की कुवाँरी कन्याओं के हाथों में मेंहदी रची हुई थी । रात के बारह-बारह बजे तक हरो की छत पर ढोलक बजती रहती, और स्त्रियों के दिहाती गीतों से गाँव गूँजता रहता । एक वह दिन था, जब लाजवंती प्रसन्न थी और हरो दुखी । और, आज हरो के यहाँ चहल-पहल थी, परंतु लाजवंती के यहाँ

उदासी बरस रही थी। समय के फेर ने काया-पलट कर दी थी।

रात्रि का समय था; मंदिर में घंटे बज रहे थे। लाजवंती ने आरती का थाल उठाया, और पूजा के लिये चली। परंतु दरवाज़े पर पहुँचकर पाँव रुक गए। उसे ऐसा प्रतीत हुआ, मानो देवी की मूर्ति उसे दंड देने के लिये नेत्र लाल कर रही है। लाजवंती का कलेजा धड़कने लगा। वह हारकर दरवाज़े पर बैठ गई, और रोने लगी, जिस प्रकार दुर्बल विद्यार्थी को परीक्षा के कमरे में जाने का साहस नहीं होता।

सहसा उसे ऐसा प्रतीत हुआ, जैसे कोई कुछ प्रार्थना कर रहा है। लाजवंती का रोम-रोम कान बन गया। उसे निश्चय हो गया था कि इस प्रार्थना का अवश्य ही मेरे साथ कुछ संबंध है, और घटना ने बतला दिया कि वह ग़लती पर न थी। कोई कह रहा था—

"देवी माता, उसे सदा सुहागिन बनाओ। उसके बेटे को चिरंजीव रक्खो! उसने एक असहाय ब्राह्मणी का मान रक्खा है, तुम उसको इसका फल दो! उसके बेटे और पति का बाल भी बाँका न हो! यह एक बूढ़ी ब्राह्मणी की प्रार्थना है, इसे सुनो और स्वीकार करो। जिस प्रकार उसने मेरा कलेजा ठंडा किया है, उसी प्रकार उसका भी कलेजा ठंडा रक्खो।"

यह ब्राह्मणी हरो थी। लाजवंती के रोम-रोम में हर्ष की लहर दौड़ गई। उसके सारे संदेह धुएँ के बादलों की तरह तितर-बितर हो गए। वह रोते हुए आगे बढ़ी, और बूढ़ी ब्राह्मणी के पैरों से लिपट गई।

रात्रि को स्वप्न में वह फिर देवी के सम्मुख थी। सहसा देवी की मूर्ति ने अपने सिंहासन से नीचे उतरकर लाजवंती को गले से लगा लिया, और कहा—"तूने जो कुछ किया है, वह लाख तीर्थ-यात्रा से भी बढ़कर है।"

लाजवंती की आँख खुल गई। इस समय उसे ऐसा आनंद प्राप्त हुआ, जैसा आज तक कभी न हुआ था। हेम उसके साथ सोया हुआ मुसकिरा रहा था।

"सुदर्शन"

प्राचीन और नवीन भारत की महिलाएँ
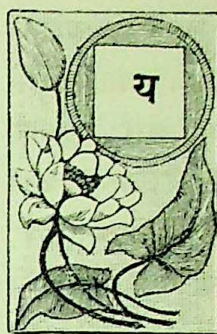
यद्यपि वर्तमान भारतीय युग में स्त्रियों के उद्धार का प्रश्न सबसे पहले महर्षि स्वामी दयानंद सरस्वती तथा श्रीयुत ईश्वरचंद्र विद्यासागर-जैसे संस्कृतज्ञ और प्राचीन भारतीय सभ्यताभिमानी महापुरुषों ने ही उठाया था, तथापि इस महत्त्वपूर्ण सुधार-आंदोलन के आधुनिक नेताओं ने पश्चिम को ही आदर्श मानकर उससे उत्तेजना ग्रहण की है। अन्य कई विभागों में यह आंदोलन पाश्चात्य प्रणाली का ही अक्षरशः अनुसरण कर रहा है; फिर चाहे परिस्थिति की विभिन्नता से भारत के लिये यह अनिष्टकर ही क्यों न हो। जातीय विकास की जड़ से पृथक् होकर, भारतीय परिस्थितियों से विभक्त और भारतीय परंपरागत रीतियों से विच्छिन्न होकर, यह महिला-सुधार का आंदोलन भारत के लिये ही नहीं, वरन् समस्त संसार के लिये अति भयंकर परिणाम उपस्थित कर रहा है। संसार की प्राचीन जातियाँ—रोम, यूनान, मिस्र देश, कैल्डिया, बैबिलोनिया इत्यादि की जातियाँ—उठीं और गिर पड़ीं; पुनः उन्हें संसार में मुँह दिखाने की नौबत न आई। परंतु भारत—वह पुण्य भारत, जो कभी समस्त संसार का पथ-प्रदर्शक और गुरु था, और अब भी जिसकी प्राचीनतम सभ्यता के प्रमाण सारे सभ्य संसार में वर्तमान हैं—अपने आदर्श सिद्धांतों और उच्च मर्यादा के कारण अब भी अपनी इस हीन दशा में अपना मस्तक ऊँचा किए खड़ा है; और सभ्य जातियाँ उसे आश्चर्य की दृष्टि से देख रही हैं।

इसका कारण क्या है ? यदि गहरी दृष्टि से देखा जाय, तो इसका एक-मात्र हेतु हमारी प्राचीन सभ्यता ही है। जिस सभ्यता के आधार पर हमारा मस्तक आज भी ऊँचा हो रहा है, उससे हटकर, अलग रहकर, क्या कोई सुधार-आंदोलन सफल हो सकता है ? भारत और पाश्चात्य देशों में कई प्रकार की विभिन्नताएँ हैं, और उनकी परिस्थिति भी भिन्न-भिन्न प्रकार की है; जिसका दिग्दर्शन-मात्र यहाँ कराया जाता है। प्रथम तो पाश्चात्य देशों में स्त्री-उद्धार-आंदोलन मुख्यतया राजनीतिक है। वहाँ पर—जैसा कि प्रत्येक शिक्षित नर-नारी जानते हैं—स्त्रियों की संख्या पुरुषों से बहुत अधिक है, और योरप के महाभारत के बाद तो और भी अधिक हो गई है। वहाँ पर सम्मिलित पारिवारिक जीवन की प्रथा भी नहीं है कि स्त्रियों की अनाथ असहाय अवस्था में उनका भरण-पोषण और उनकी रक्षा उनके निकटस्थ कुटुंबी-जन करें। पुरुष लोग श्रम के बाज़ार में स्त्रियों की स्पर्धा को सहन नहीं करना चाहते, इसलिये स्त्रियाँ भी राजनीतिक शक्ति या वोट-अधिकार प्राप्त कर, क़ानून बनवाकर, अपने न्याय-संगत आर्थिक अधिकारों की रक्षा करने का यथाशक्ति प्रयत्न करती हैं। उनके लिये कुछ और उपाय भी नहीं है। पूर्व समय में स्त्रियों के अधिकारों को सुरक्षित करना ही अभीष्ट था, जब कि (Moria Wolson Croft) मेरिया वुलसन क्राफ्ट और जॉन स्टुअर्ट मिल ने स्त्री-स्वातंत्र्य का प्रश्न उठाकर कोलाहल मचाया था। परंतु धीरे-धीरे अब उसी कोलाहल में मताभिलाषी नर और नारियाँ सम्मिलित हो गए हैं।

अब भारतवर्ष की ओर जब हम दृष्टिपात करती हैं, तब हमें पता लगता है कि यहाँ की दशा पश्चिम-जैसी नहीं है। यहाँ पर जन-समुदाय के लिये आर्थिक प्रश्न पश्चिम की तरह सम्मुख नहीं है, और संख्या में स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों का बाहुल्य है। अतः स्त्रियों को अपने जीवन-निर्वाह के लिये धनोपार्जन करना आवश्यक एवं अनिवार्य नहीं है। यहाँ पर स्त्रियाँ शिक्षा में बहुत पीछे हैं। उनकी मस्तिष्क की शक्तियों का होना उनके सांसारिक जीवन के लिये उपयोगी नहीं समझा जाता। और, बाल-विवाह, विद्यार्थी-जीवन व्यतीत करते हुए लड़कों के साथ विवाह, बुड्ढों का युवा या बाल-कन्याओं के साथ विवाह, अनुपयोगी वैधव्य जीवन इत्यादि सामाजिक कुरीतियों के कारण ही स्त्रियाँ हीन दशा में पड़कर दुःख झेलती हैं। अतः यहाँ पर स्त्रियों के अधिकारों के आंदोलन को आर्थिक स्वातंत्र्य या नैतिक अधिकारों का रूप न देकर आत्मिक उन्नति, मानसिक विकास और उच्च सामाजिक स्थिति का रूप देना चाहिए। श्रेष्ठ डॉक्टर या वैद्य वही कहलाता है, जो रोगी के रोग को पहचानकर उसी के अनुकूल चिकित्सा का विधान करता है। जो कोई एक-दो औषधियों का ही प्रयोग जानकर सब पर उन्हीं की आज़माइश करना चाहता है, वह बहुतों का प्राण-घात ही करता है। इसी से यह कहावत मशहूर है कि "नीम हकीम ख़तरे जान।" इसीलिये जो सुधारक पाश्चात्य देशों के लिये उपयोगी सुधार-आंदोलनों को भारतवर्ष में भी फैलाना चाहते हैं, वे उन्हीं अपढ़ वैद्यों के समान भारतीय सभ्यता और भारतीय जनता का घात ही करने का उपाय कर रहे हैं।

दूसरी बात यह है कि भारत और इँगलैंड में एक बड़ा भारी प्राकृतिक भेद भी है; जिसको भूल

नहीं जाना चाहिए। इँगलैंड में भोज्य पदार्थ उत्पन्न नहीं होते। वह प्रधानतया वस्तुएँ ही बनाता है: और हमारा भारतवर्ष कृषि-प्रधान देश है। भोज्य वस्तुओं की प्राप्ति के लिये इँगलैंड को अत्यावश्यक है कि वह वस्तुएँ बनावे, और उन्हें बेचकर संसार के बड़े-बड़े बाज़ारों पर आधिपत्य बनाए रक्खे। इसीलिये वहाँ पर दिनों-दिन मशीन-कलाओं की बढ़ती और उन्नति की जा रही है। इन फ़ैक्टरियों में स्त्रियों को भी काम करना पड़ता है: और वहाँ पर स्त्री-पुरुषों के एकत्र काम करने के कारण, अनियमित परस्पर के संपर्क से, उनके आचरण दूषित हो जाते हैं, तथा फ़ैक्टरी में काम करनेवाली गृहस्थ स्त्रियाँ अपने बच्चों के पालन-पोषण की ठीक-ठीक देख-रेख न करने के कारण उन्हें उत्तम नहीं बना सकतीं, अपने पतियों को सुखी नहीं कर सकतीं, और उनकी सारी कोमल शक्तियाँ नष्ट होकर उनका स्त्रीत्व ही लुप्तप्राय हो जाता है। फ़ैक्टरी की अत्यंत उष्णता के कारण गर्भवती स्त्रियों के गर्भ पेट में ही जलकर भस्म हो जाते हैं। वहाँ की नीच संगति में रहकर स्त्रियों के सतीत्व का नाश होता तथा व्यभिचार आदि दोष बहुधा देखे जाते हैं।

अब भारतवर्ष की ओर आइए। यहाँ पर ७३ फ़ी-सदी लोग खेती करके जीविकोपार्जन करते हैं। यहाँ पर जीवन-यात्रा की संपूर्ण सामग्री प्रकृति देवी की महती कृपा से विद्यमान है। भारत को दूसरे देशों पर निर्भर होने की तनिक भी आवश्यकता नहीं है। वह अपने पुरुषार्थ और परिश्रम से ही स्वावलंबी बन सकता है, और चर्खे तथा करघे द्वारा अपने बचे हुए समय को उद्योग-धंधों में लगाकर धनोपार्जन कर सकता है। इसलिये न तो यहाँ बड़ी-बड़ी फ़ैक्टरियों की ही आवश्यकता है, और न स्त्रियों को पुरुषों के साथ स्पर्धा में आकर उनसे लड़ने में कृत-कार्य होने के लिये नैतिक अधिकारों को प्राप्त करने की ही आवश्यकता रह जाती है।

तीसरी बात यह है कि पाश्चात्य देशों से भारत के सदाचार के आदर्श (Ideals of Morality) भी भिन्न हैं। भारतीय सभ्यता में आचरण की पवित्रता परम आवश्यक है; आचरण-भ्रष्ट जीवन व्यर्थ गिना जाता है। इतिहास साक्षी है कि यहाँ की स्त्रियाँ जीती हुई चिता में जल मरीं, परंतु अपने सतीत्व को नष्ट न होने दिया। अँगरेज़ी सभ्यता के यहाँ पर फैलने से पूर्व यहाँ के डाकू और ठग लोगों के विषय में भी यह प्रचलित था कि वे जिस असहाय अबला को एक बार माता, बहन या बेटी कह देते थे, वह उनसे सर्वथा सुरक्षित रहती थी; उसके सतीत्व के नाश का भय नहीं रहता था। किंतु आज हम पाश्चात्य देशों में इन स्वर्गीय दृश्यों का नाम-मात्र भी नहीं पाती हैं। वहाँ पर आचरण की पवित्रता का भी पैसों में मूल्य मिलता है। वहाँ पर किसी स्त्री का पति यदि न्यायालय में किसी पुरुष के विरुद्ध नालिश कर दे, और उसका दोष सिद्ध हो जाय, तो कोर्ट उसे उसकी पत्नी के उपपति से रुपए दिला देता है, और वह दुरात्मा धन देकर लोक-समाज के सम्मुख उज्ज्वल-मुख हो जाता है। भारतीय अभी इन 'सभ्य' बातों से अनभिज्ञ हैं।

अतः भारत के लिये बड़े-बड़े कल-कारख़ाने इत्यादि खोलना अभीष्ट नहीं है, और उनके न होने से स्त्री और पुरुष-जाति की परस्पर की विद्वेष-पूर्ण स्पर्धा के रहने की भी आवश्यकता न होगी। अतः वोट-अधिकार के झगड़े आप ही मिटे रहेंगे।

जहाँ तक इतिहासवेत्ताओं को पता मिला है, उससे तो यही सिद्ध हुआ है कि प्राचीन भारतीय सभ्यता के समय स्त्रियाँ साम्राज्य-नीति में कोई भाग नहीं लेती थीं; किंतु वे नगर-संघ की सदस्याएँ अवश्यमेव होती थीं * । स्त्रियों के लिये संतान की उत्पत्ति ही पुण्यतम जातीय कार्य समझा जाता था । मातृ-शक्ति का उचित प्रयोग ही उनका सर्वोत्तम अधिकार माना जाता था, और यही उनकी सर्व-श्रेष्ठ देश-सेवा थी । गर्भवती स्त्री के लिये यथासंभव मधुर और प्रशांत मानसिक जल-वायु उत्पन्न किए जाते थे, और उन्हें सब प्रकार की चिंताओं और कष्टों से बचाया जाता था । इसी लिये राजनीति के गहन और चिंताप्रद झंझटों में उनके लिये कोई स्थान नहीं रक्खा गया था ; क्योंकि उनके फेर में पड़कर सुकोमल ललनाओं को विश्राम और शांति प्राप्त करना दुर्लभ ही नहीं, वरन् असंभव था। परंतु इससे यह परिणाम नहीं निकलता कि स्त्रियाँ केवल बच्चे पैदा करने की मशीन समझी जाती थीं, और उन्हें घर-गृहस्थी के धंधों के सिवा कोई काम न था; और न वे उच्च शिक्षा प्राप्त करती थीं । शिक्षा के क्षेत्र में प्राचीन भारतीय देवियाँ अपनी वर्तमान पाश्चात्य बहनों से कहीं बढ़कर थीं । उन्हें अपना उत्कर्ष दिखलाने के लिये जो सुगमताएँ सुलभ थीं, वे इन्हें स्वप्न में भी प्राप्त नहीं हैं । ईसाई-मत के इतिहास में हमें एक भी इस बात का उदाहरण नहीं मिलता कि किसी गिरजे का विशप (सबसे बड़ा पादरी) कोई स्त्री बनी हो । किंतु, इसके प्रतिकूल, हम भारतीय सभ्यता में स्त्रियों को उच्च-से-उच्च धार्मिक पदों पर पाती हैं । इतिहास बतलाता है कि अपाला, लोपामुद्रा, विश्ववारा, इंद्रपत्नी, इंद्रमाता इत्यादि बहुत-सी ब्रह्मवादिनी देवियाँ वेद की ऋषिका हो चुकी हैं । गार्गी बड़ी प्रसिद्ध वेदांत-पारगामी और कई स्त्रियाँ वैयाकरण और दार्शनिक हो चुकी हैं।

सुशिक्षा-संपन्न देवियाँ गृहस्थी की अधिष्ठात्री होती थीं, और उनके लिये ही महाराज मनु ने कहा है "गृहदीप्तयः"; 'स्त्रियः श्रियश्च गेहेषु न विशेषोऽस्ति कश्चन" इत्यादि । वेद-मंत्रों में हम पढ़ते हैं कि गृहिणी स्त्रियों को कपड़े बुनना, गऊ दुहना और अपने बच्चों को दूध पिलाना चाहिए (१) गृहस्थी के कार्यों में दक्ष होना चाहिए (२) उन्हें सुस्वादु भोजन बनाने चाहिएँ और पानी के कलसे भरकर सिर पर रखकर उठाने चाहिए (३) दक्षिणी भारत की महिलाओं में हम इन बातों का प्रचार, बड़े घरानों में, अब भी पाते हैं । प्राचीन सभ्यता के अनुसार गृह धन-धान्य से, घी-दूध से परिपूर्ण हो (४) और प्रत्येक गृह की अधिष्ठात्री देवी उच्च-शिक्षा-प्राप्त महिला हो ; जिसके मधुर वाक्-चातुर्य हृदयग्राही हों (५) और देवी स्त्री अपने पति की अध्यक्षता में अपने बच्चों की शिक्षा का निरीक्षण करे (६)

यदि हम इन आदर्शों के साथ नवागत पाश्चात्य आदर्शवाले भारतीय गृहस्थों की तुलना करें, तो आकाश-पाताल का अंतर मिलता है। पाश्चात्य आदर्श को माननेवाले गृहस्थों का गृह स्त्री-पुरुष की मिश्रित धन-कंपनी (Joint Stock Concern) है, जिसे पति-पत्नी की निगरानी में

---

* देखो *Rys David's Budhist India*

(१) देखो यजुर्वेद अध्याय ८ मंत्र ५१ । (२) देखो यजुर्वेद अध्याय १० मंत्र ७ । (३) देखो यजुर्वेद अध्याय ११ मंत्र ५१ और ५९ । (४) अथर्व वेद कांड ३ सूक्त १२। (५) अथर्व वेद कांड ३ सूक्त ३० । (६) अथर्व वेद कांड २ सू० २८, ३० ।

नौकर-चाकर चलाते हैं। पति-पत्नी दोनों धनोपार्जन करते हैं, और बच्चों का पालन-पोषण नौकर-नौकरानियाँ; जिन्हें न तो उनसे प्रेम होता है और न अपने कर्तव्य का ही खयाल। केवल धनोपार्जन के लिये ही वे इस कार्य को करते हैं। इस अवस्था में भारत के सामने एक बड़ा भारी प्रश्न है। यदि वर्तमान हिंदुस्थान की सुधारक महिलाएँ अपने वर्तमान पथ पर आरूढ़ रहकर यही पाश्चात्य आदर्श स्त्री-जगत् के सम्मुख रक्खेंगी, तो भारत के लिये उत्थान की आशा दुराशा-मात्र है। भारत-वासियों को भारतीय और पाश्चात्य, दोनों आदर्शों में से एक चुन लेने का उपयुक्त समय है। जातीय जीवन के निर्माण-काल में उसी को लक्ष्य बनाकर जाति के बेड़ों को खे ले जाना है। भारतीयो, चुन लो अपने जातीय परंपरागत पथ को, उसी मार्ग पर चलो, और चलाने का यत्न करो। यही कल्याण का मार्ग है: इसी पर चलकर तुम पाश्चात्य जातियों के भी संकटाकीर्ण मार्ग को सुगम बना सकोगे, और पृथ्वी पर महाराज मनु का उपदेश—

"एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः॥"

अर्थात् इसी परम पवित्र भारत-भूमि के ब्राह्मणों-द्वारा पृथ्वी के समस्त जन अपने-अपने कर्तव्यों की शिक्षा को ग्रहण करें।, फिर चरितार्थ होगा; प्राचीन आर्य-सभ्यता की उज्ज्वल आभा दिग्-दिगंतों को उज्ज्वल करके वर्तमान धर्म-विहीन सभ्यता के गाढ़ अंधकार को शीघ्र ही छिन्न-भिन्न करने में समर्थ होगी। यदि इसके विपरीत तुम भी पाश्चात्य आदर्श के पीछे चल पड़े, तो अंधे के पीछे चलनेवाले अंधे की तरह तुम भी दुःखों के गढ़े में गिरकर नष्ट-भ्रष्ट हो जाओगे; संसार की नष्ट जातियों के साथ ही इतिहास में तुम्हारा भी नामोल्लेख हुआ करेगा। श्रेय और प्रेय दोनों पथ सामने हैं, जो चाहो चुन सकते हो। परंतु चुनो आँख खोलकर, पूर्वापर विचारकर, और खूब सोचकर, जिसमें पीछे पछताना न पड़े। "समय चूकि पुनि का पछिताने"।

विद्यावती सेठ बी० ए०

उषा

(चौपदे)

चंद्र-वदनी, तारकावलि-शोभिता,
रंजिता जिसको बनाती है दिशा,
दिव्य करती है जिसे दीपावली,
है कहाँ वह कौमुदी-वसना निशा ? १ ॥

क्या हुई तू लाल, उसका कर लहू ?
क्या उसी के रक्त से है सिक्त तन ?
दीन, हीन, मलीन कितनों को बना,
क्यों हुआ तेरा उषा उत्फुल्ल मन ? २ ॥

वह बुरी काली-कलूटी क्यों न हो,
क्यों न हो वह अति भयंकरता-भरी;
पर कलानिधि का वही सर्वस्व है,
है वही कल कौमुदी की सहचरी ॥ ३ ॥

मणि-जटित करती गगन को है वही;
उडु बिलसते हैं उसी में हो उदित ;
है चकोरों को पिलाती वह सुधा ;
है वही करती कुमुद-कुल को मुदित ॥ ४ ॥

है बिलसती तू घड़ी या दो घड़ी,
किंतु वह सोलह घड़ी है सोहती ;
है अगर मन मोहना आता तुझे,
तो रजनि भी कम नहीं मन-मोहनी ॥ ५ ॥

तू लसे पाकर परम कमनीयता,
लाभकर वर ज्योति जाए जगमगा ;
बंद आँखें खोल, आलस दूर कर ,
दे जगत् के प्राणियों को तू जगा ॥ ६ ॥

है उचित यह, है इसे चित मानता ;
किंतु है यह बात जी को खल रही ;

देख करके दूसरे का वर विभव,
किसलिये तू इस तरह है जल रही ? ७ ॥
लाल है, तो तू भले ही लाल रह ;
पर कभी मत क्रोध से तू लाल बन।
क्यों न मालामाल ही हो जाय तू,
पर किसी का मत कभी तू काल बन ॥ ८ ॥
उस समुन्नति को भली कैसे कहें,
और को जो धूल में देती मिला ?
दूसरा जो फूल-फल पाया न, तो—
किसलिये मुखड़ा कभी कोई खिला ? ९ ॥
देखकर तुझको परम आरंजिता,
था बिचारा प्यार से तू है भरी ;
विधु-विधायकता तुझे कैसे मिले,
जब प्रखर रवि की बनी तू सहचरी ? १० ॥

अयोध्यासिंह उपाध्याय

पृथ्वी पर का अमृत दूध

गदीश्वर ने मनुष्य के भोजन के लिये जितने पदार्थ संसार में उत्पन्न किए हैं, उन सबमें दूध अद्वितीय है। अपने दिव्य गुणों के कारण यह 'अमृत' कहलाता है। यह नर पर नारायण की विशेष कृपा का फल है; प्रकृति का दिया हुआ अद्भुत आहार है। गेहूँ का पौदा उगकर अपने दाने में भोजन की सामग्री उत्पन्न करता है; परंतु मनुष्य के बच्चों के लिये नहीं, बल्कि गेहूँ के बच्चों के लिये। मछली, अंडे, मुर्ग़ी, भेड़ और बकरी-बकरे उन जीवित जातियों के जीवन के एक भाग के रूप में उत्पन्न होते हैं; जिनके साथ उनका संबंध है। वह समय अब सदा के लिये बीत गया, जब इनकी उत्पत्ति केवल मनुष्य के उपभोग के लिये ही समझी जाती थी। यदि इस प्रश्न को बिलकुल छोड़ दें, तो भी हम समस्त 'प्रकृति' में देखते हैं कि, एक अपवाद को छोड़कर, सजीव प्राणियों का आमिष और वनस्पति-जनित भोजन पहले-पहल खाए जाने के लिये अस्तित्व में नहीं लाया गया था, बल्कि इसका अस्तित्व इसके अपने लिये—अपना जीवन व्यतीत करने के लिये—हुआ था। केवल एक ही बार प्रकृति ने आहार बनाया है—वह एक ऐसी वस्तु को अस्तित्व में लाई है, जो केवल आहार-सामग्री बनने के लिये ही विद्यमान है।

हमारे लिये यह आशा करना स्वाभाविक है कि प्रकृति का तैयार किया हुआ यह भोजन अन्य सब भोजनों से श्रेष्ठ होगा; इसमें जीवन के लिये आवश्यक प्रत्येक पदार्थ, ठीक प्रयोजनीय परिमाण में, विद्यमान होगा। हम पाते भी ठीक यही बात हैं। जितने प्रकार के दूध देनेवाले जंतु हैं, उतने ही प्रकार का दूध है। प्रत्येक जंतु के बच्चे की आवश्यकताएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। वह बच्चा चाहे ह्वेल मछली का हो, चाहे हिरन का हो, और चाहे मनुष्य का हो। ये विभिन्न परिस्थितियों और विभिन्न जल-वायु के देशों में विभिन्न जीवन व्यतीत करते हैं। उनकी वृद्धि का वेग भिन्न-भिन्न मात्रा में होता है, इसलिये उन जंतुओं को प्रकृति की ओर से मिले हुए दूध में भी उसी के अनुसार विभिन्नता होती है। फिर, वह दूध बच्चे के विकास की विभिन्न अवस्थाओं के प्रयोजनों के अनुसार प्रति सप्ताह और प्रति मास बदलता रहता है।

सब जीवधारियों की आवश्यकताएँ वास्तव में एक ही हैं। सभी प्रकार के दूधों में प्रोटीड (Proteid), शक्कर, मेद और विविध प्रकार के क्षार (Salt) होते हैं। परंतु इन वस्तुओं के

परिमाणों में अंतर होता है। अब यहाँ गऊ के दूध पर ही विचार किया जायगा; क्योंकि अधिकतर इसी का उपयोग (इस्तेमाल) किया जाता है। यद्यपि प्रत्येक दूध पूर्ण भोजन है, परंतु यह स्मरण रहे कि वह केवल उसी जीव के लिये पूर्ण भोजन है, जिसके लिये बनाया गया है। गऊ का दूध बछड़े के लिये बना है, और उसी के लिये वह पूर्ण और निर्दोष भोजन है। वह मनुष्य के बालक, या युवा पुरुष, यहाँ तक कि जवान बैल के लिये भी पूर्ण भोजन नहीं है। युवा मनुष्य के लिये गऊ का दूध केवल एक थोड़ी-सी बात के कारण ही आपत्ति-जनक है। वह बात यह है कि यह दूध पतला अधिक होता है। इसका अर्थ यह है कि इसमें जल की मात्रा उचित से अधिक होती है। फिर भी कोई दूसरा ऐसा आहार नहीं मिलता, जो युवा मनुष्यों के लिये भी गाय के दूध के समान पूर्ण और निर्दोष भोजन हो। लोग इस दूध के आधार पर जी सकते हैं, और भारी-से-भारी रोग के बाद, किसी दूसरी वस्तु की सहायता के बिना, केवल इसी 'अमृत' के सेवन से हृष्ट-पुष्ट हो जाते हैं। दूध और उससे बननेवाली दूसरी चीज़ें—ख़ासकर मलाई—बच्चों के भोजन का प्रधान अंश होनी चाहिए। कोई भी बालक दूध के बिना जीता नहीं रह सकता। और, उसकी आवश्यकताएँ, बड़े हो जाने पर भी, उतनी जल्दी नहीं बदलतीं, जितनी जल्दी कुछ लोग माने बैठे हैं। दूसरे, तीसरे और चौथे वर्ष में बालक को, काफ़ी दूध न देकर, अन्य पदार्थ खिलाना बड़ी भारी भूल है।

कुछ लोग उसी खाद्य को पौष्टिक और उपयोगी समझते हैं, जो ठोस हो। वे कहते हैं कि दूध क्या है? वह तो यों ही पानी-सा है, और मूत्र के मार्ग से बाहर निकल जाता है। शरीर में बल लाने और बढ़ाने के लिये कोई ठोस चीज़ खानी चाहिए। परंतु यह उनकी भारी भूल है। केवल तरल होने के कारण ही दूध को तुच्छ समझना कहाँ की बुद्धिमत्ता है? देखिए, हम मिसरी की डली पानी में डालते हैं। वह घुलकर अदृश्य हो जाती है। परंतु हम जानते हैं कि मिसरी का नाश या अभाव नहीं हुआ; वह जल में विद्यमान है। अब देखिए, दूध भी वास्तव में अनेक चीज़ों के मेल से बना है। उनमें कई पदार्थ मिसरी की डली के सदृश ही ठोस हैं। वे मिसरी की ही भाँति दूध में घुले हुए हैं। जब हम दूध पीते हैं, तब वह आमाशय में जाते ही चटपट जमकर ठोस बन जाता है। पेट में दूध को चक्का बनाने का काम एक ख़मीर करता है। जब हम दही जमाते हैं, तब भी वही ख़मीर उसे ठोस बनाता है। दही इस बात का एक पुष्ट प्रमाण है कि दूध 'ठोस आहार' है।

जब दूध आमाशय में, या बाहर, जमता है, तब उसका दही बन जाता है। दही में दूध की प्रोटीड (अन्न-सार) का बहुत बड़ा भाग और सारा-का-सारा मेद रहता है। ठोस दही को अलग कर लेने से जो शेष निर्मल जल (जिसे साधारण लोग दूध का पानी और अँगरेज़ी में 'व्हे' कहते हैं) रह जाता है। उसमें शक्कर, क्षार, और दूध के प्रोटीड का थोड़ा-सा भाग होता है। इससे यह परिणाम निकलता है कि केवल फाड़े हुए दूध के पानी पर भी जीना संभव है। इससे अनेक ऐसे बालकों के जीवन बचते हैं, जो किसी भी अन्य पदार्थ का आहार नहीं कर सकते। परंतु कोई भी मनुष्य केवल दही पर नहीं जी सकता। अब विचारणीय विषय यह है कि जीवन

के लिये आवश्यक वह कौन-सी वस्तु है, जिसका दही में अभाव है; किंतु वह, दही के निर्मल पानी में—जो दही के मुक़ाबले में बहुत घटिया समझा जाता है—पाई जाती है। यह विशेष वस्तु दूध का प्रोटीड है, जिसके बिना दूध का पानी कभी जीवन को बनाए न रख सकता। जब हम दूध को औटाते हैं, तब वह धीरे-धीरे कड़ा होने लगता है, और उसके ऊपर एक झिल्ली-सी आ जाती है। इस झिल्ली को अनेक युवा मनुष्य और बहुत-से बच्चे फेंक देते हैं। परंतु यह दूध में एक अतीव बहुमूल्य पदार्थ है। दूध की शक्कर एक ख़ास तरह की शक्कर है, जो अन्यत्र कहीं नहीं मिल सकती। वह ईख की शक्कर से कम मीठी होती है। उसमें एक बड़ा गुण यह है कि उसे कीटाणु, दूसरी शक्करों की तरह, सुगमता से तोड़ नहीं सकते। दूध के क्षारों (Salts) में, जिन पर हड्डियों और दाँतों का दार-मदार है, सदैव ये मूल-पदार्थ होते हैं—

पोटाशियम, सोडियम, कैलशियम, मैग्नीशियम, लौह, फ़ासफ़ोरस और क्लोरीन। पोटाशियम का परिमाण विशेष-रूप से बहुत अधिक होता है; क्योंकि मांस के बढ़ने के लिये इसका प्रयोजन है। फिर जितना चूना या कैलशियम दूध में होता है, उतना, अंडे की ज़रदी को छोड़कर, और किसी भोजन में नहीं होता।

दूध में सब प्रकार के असाधारण पदार्थ होने की बड़ी संभावना रहती है; क्योंकि दूध ही के द्वारा माता का शरीर इन वस्तुओं को बाहर निकालता है। क्रियात्मक-रूप से यह बात बड़े महत्त्व की है; क्योंकि यह सब प्रकार के दूधों पर चरितार्थ होती है। माता चाहे कोई भी हानि-कारक पदार्थ खाती है, वह दूध के द्वारा बच्चे के पेट में जाकर उसे भारी नुक़सान पहुँचाती है। सब प्रकार की औषधियाँ भी इसी तरह दूध के रास्ते बच्चे के पेट में चली जाती हैं। इसलिये बालक को औषध देने की सर्वोत्तम विधि यही है कि उसकी माता ही को उस औषध का सेवन कराया जाय।

ये सभी बातें गऊ पर घटित होती हैं। यदि गऊ को ख़राब चीज़ें खिलाई जायँगी, तो गऊ उन्हें दूध के रास्ते बाहर निकालने की चेष्टा करेगी। हज़ारों बालक प्रति वर्ष गऊ का बाज़ारू दूध पीकर केवल इसी कारण बीमार होते और मर जाते हैं कि उन गउओं को घोड़ों की लीद आदि हानिकारक चीज़ें खिलाई जाती हैं।

चिंता और अशांति का भी दूध की रचना पर हानिकारक प्रभाव पड़ता है। माता को क्रोध या चिंता की हालत में बच्चे को दूध पिलाने से बहुत बुरा परिणाम होता है। यही बात गउओं के बारे में भी है। यदि गऊ के दूध को बढ़ाना और स्वादिष्ठ बनाना हो, तो उसे हर तरह के डर, अशांति, दौड़-धूप और मार-पीट से बचाना चाहिए। गउओं के आपस में भिड़ने से, कुत्तों के उनके पीछे दौड़ने से, ग्वालों के उन पर मार-पीट करने या डराने से, उनके दूध में विकार उत्पन्न हो जाता है। दूध का उत्पन्न करने का काम आंशिक रूप से ज्ञान-तंतु-जाल (नर्वस सिस्टम) के अधीन है। इसलिये यदि मज्जा-तंतु-जाल में गड़बड़ हो जायगी, तो जो दूध उत्पन्न होगा, उसका असल में ज़हरीला हो जाना बहुत संभव है। यही कारण है कि संगीत से गऊ का दूध मीठा और अधिक हो जाता है। शायद भगवान् कृष्णचंद्र इसीलिये बाँसुरी बजाया करते थे। हमारे देश में आजकल लोग गो-पालन की विद्या को प्रायः भूल गए हैं।

इस समय देश में अच्छी जाति की गउओं का मिलना ही कठिन हो गया है। दुष्ट बालक गउओं को चराते समय उनकी अनेक बुरी-बुरी आदतें डाल देते हैं। उन्हें गंदा पानी और जूठा चारा दिया जाता है। उन्हें निर्दयता से पीटते और गालियाँ देते हैं। इस समय सौ में अस्सी गउएँ इसी कारण दुष्ट और मरकही मिलती हैं। इसका प्रधान कारण यह है कि हम इस बात को भूल गए हैं कि इन पशुओं पर भी मनुष्य ही के सदृश प्रेम और क्रोध का अच्छा और बुरा प्रभाव पड़ता है।

गऊ के दूध के संबंध में एक बड़ी कठिनाई यह है कि जब वह पेट में जाकर जमता है, तो उसका चक्का इतना घना और मोटा होता है कि बच्चा तो बच्चा, बहुत-से युवा भी उसे सुगमता से पचा नहीं सकते। बछड़े की पाचन-शक्ति हमारी अपेक्षा बहुत अधिक होती है। इसका उपाय यह है कि दूध में थोड़ा-सा सोडा-वॉटर या चूने का पानी मिला दिया जाय। इससे आमाशय में जो चक्का बनता है, वह हलका, ढीला-ढाला और रुई का फाहा-सा हो जाता है।

दूध में जो मेद (fat) होता है, वह सब मलाई में आ जाता है; परंतु यह समझ लेना कि यह सारा-का-सारा मेद ही है, भारी भ्रम है। प्रोटीड (अन्न-सार) का एक बड़ा अंश भी मलाई में पड़ा हुआ होता है। इस प्रकार, पूर्ण आहार न होने पर भी, मलाई एक बहुत गाढ़ा और उत्कृष्ट भोजन है। कोई भी दूसरी तरह का मेद—चाहे वह भेड़ की चरबी हो, चाहे वनस्पतियों की उपज हो, चाहे कॉड मछली के लीवर (पित्ताशय) का तेल हो—मलाई में पाए जानेवाले दूध के मेद का मुक़ाबला नहीं कर सकता। यदि सब बच्चों को काफ़ी मलाई, अथवा उत्तम दूध ही, मिले, तो बच्चे 'सूखा' और क्षयी आदि अनेक रोगों से, इतनी अधिक संख्या में, न मरें। इस अभागे देश में एक समय ऐसा था, जब दूध और घी की नदियाँ बहा करती थीं! तभी यहाँ के मनुष्य मार्कंडेय-से दीर्घजीवी, भीम-सरीखे बलवान् और व्यास-वाल्मीकि-सदृश प्रतिभाशाली होते थे! आज तो जिस बच्चे को आध सेर भी ख़ालिस दूध नित्य मिल जाय, उसे बड़ा भाग्यशाली समझना चाहिए।

मलाई से उतरकर दूसरे दर्जे पर मक्खन है। यह, मलाई की अपेक्षा सस्ता होने पर भी, बहुत महँगा है। इसमें, सौ में बयासी भाग, या मलाई से दुगना, मेद होता है। जितनी आसानी से मक्खन पच जाता है, उतनी आसानी से और कोई दूसरा मेद नहीं पचता। इसलिये इसकी जितनी भी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। गरम करने से इसमें कुछ परिवर्तन आ जाता है, जिससे यह उतना उपयोगी भी नहीं रहता। मक्खन में केवल सहज ही पच जानेवाले मेद की अधिकता ही नहीं होती; बल्कि एक गुण यह भी है कि अगर इसे बहुत अधिक मात्रा में खाया जाय, तो इसका दो सौ अंशों में एक भी अंश ऐसा न होगा, जो रुधिर तक न पहुँचे।

दूध की एक और उपज है पनीर। इसका उल्लेख न करने से विषय अधूरा ही रह जायगा। यह भी मक्खन के सदृश, कीटाणुओं की सहायता से, दूध से बनता है। यह बड़ा ही पौष्टिक होता है। जितना पोषण पनीर से होता है, उतना किसी मांस से भी नहीं होता। इससे शरीर का मांस और रक्त बढ़ता है; मस्तिष्क पुष्ट होता है।

दूध और उसकी उपजों पर अनेक बड़े-बड़े ग्रंथ लिखे जा चुके हैं। उनका लिखा जाना था भी स्वाभाविक। कारण, इससे बढ़कर पूर्ण और निर्दोष भोजन और कोई है ही नहीं। अनुभव से मालूम हुआ है कि दही की छाछ (मट्ठा) पीनेवाले लोगों की आयु दूसरों की अपेक्षा बड़ी होती है।

अब हमें इसका विचार करना है कि हमारे शरीर के मज्जा-तंतु-जाल (नर्वस सिस्टम) को दूध के सेवन से क्या लाभ पहुँचता है। मस्तिष्क और मज्जा-तंतुओं को पुष्ट करने के गुण में दूध एक अद्वितीय पदार्थ है। इस दृष्टि से कोई भी दूसरा आहार इसे नहीं पाता। जो चीज़ इस गुण में सबसे अधिक दूध के निकट पहुँचती है, वह हैं अंडे। परंतु इन दोनों का मूल्य आपको तब मालूम होगा, जब आप देखेंगे कि अंडे में जो चीज़ होती है, उससे, ताप और आक्सीज़न की क्रिया से, चूज़ों-ऐसे तुच्छ जीवों का मस्तिष्क बनता है; परंतु दूध वह भोजन है, जो उन सब पशुओं के मस्तिष्क के विकास के लिये तैयार किया गया है, जिनमें उच्चतम कोटि की बुद्धि होती है। सारे शरीर का स्वास्थ्य मस्तिष्क के ऊपर निर्भर है। शरीर में इसका विकास सबसे पहले होता है। फिर यह शरीर की वृद्धि में सहायक होता है। इसलिये दूध विशेष-रूप से मस्तिष्क-रचना के हितार्थ बनाया गया है। अतएव मस्तिष्क का काम करनेवालों, उन्निद्र-रोग से पीड़ितों और अन्य मस्तिष्क-रोगियों के लिये दूध और मलाई के समान उपयोगी और कोई भोजन नहीं है। कहें तो कह सकते हैं कि ऐसी अवस्थाओं में दूध ही एकमात्र दवा है।

कुछ लोग समझते हैं कि दूध बालकों का भोजन है; युवा मनुष्यों को मांस खाना चाहिए। परंतु जो लोग अपने मस्तिष्क से सर्वोत्तम काम लेना चाहते हैं, अथवा जो अपने को लंबी-लंबी दौड़ों के लिये तैयार करते हैं, वे दूध के गुणों को समझने लगे हैं। सफ़ेद दूध के बराबर और दूसरी कोई भी वस्तु उत्तम लाल रुधिर नहीं उत्पन्न करती। शरीर की रंगत को लाल करनेवाली चीज़ लोहा है। और, बच्चे के उपयोग के लिये जैसे पूर्ण निर्दोष-रूप में दूध में लोहा होता है, वैसे रूप में वह किसी भी दूसरे भोजन में नहीं मिलता।

जापान में अब तक दूध का सेवन बहुत कम किया जाता था। कारण, वहाँ गऊ, भैंस और भेड़-बकरी आदि दूध देनेवाले पशुओं की बहुत कमी थी। परंतु आधुनिक विज्ञान के अध्ययन से जापानियों को मालूम हो गया है कि दूध के मुक़ाबले में बाक़ी सब भोजन घटिया हैं। अब तक जापान में दूध बहुत कम मिलता था, और इसी कारण वहाँ के अधिवासी भोजन के रूप में इसका उपयोग भी बहुत कम करते थे।

अब जापानी लोगों का शरीर केवल छोटा और ठिंगना ही नहीं होता, बल्कि उनके बहुत छोटे बच्चों की मृत्यु का परिमाण भी बहुत अधिक है। परंतु जो बच्चे माता के दूध पर पलते हैं, उनके संबंध में यह बात नहीं है। जापानी लोग इन ख़राबियों को दूर और दूध का अधिक सेवन करके, जाति की समष्टि के रूप में, अपनी शक्ति बढ़ाने का यत्न कर रहे हैं। देखिए, दूसरे स्वतंत्र देश अपने बच्चों के कल्याण के उपाय कैसी तत्परता से सोचा करते हैं! भारत के जिन करोड़ों बच्चों को काफ़ी दूध और मक्खन नहीं मिलता, वे बड़े होकर दीर्घजीवी और दृढ़-काय नागरिक कैसे बन सकते हैं? गोचर भूमियों के जुत जाने से

इस देश में गो-वंश का नाश हो गया, और उसके साथ ही हमारी तंदुरुस्ती भी यहाँ से तशरीफ़ ले गई !

अब एक बात और ध्यान देने योग्य है। जीवधारियों की श्रेणी में जो जीव जितनी ऊँची सीढ़ी पर खड़ा है, जन्म-काल में, उसके बच्चे का जीवन उतना ही माता पर अधिक अवलंबित रहता है। मुर्ग़ी का बच्चा अंडे से निकलते ही फुदकने और दाना चुगने लगता है। फिर गऊ, भैंस और बकरी के बच्चे कुछ दिन दूध पर रहकर थोड़े ही महीनों के बाद घास-पात खाना शुरू कर देते हैं, और एक-दो साल में ही उन्हें माता की उतनी आवश्यकता नहीं रह जाती। परंतु मनुष्य का बच्चा जन्म के समय सबसे अधिक निरुपाय होता है। उसके दूध पीने का समय सबसे अधिक लंबा होता है। वह छः-सात वर्ष की आयु तक भी माता-पिता से जुदा होकर जी नहीं सकता। दूध एक और भी बड़ी बात—मातृत्व—का बाह्य और दृश्य चिह्न है। इससे यह शिक्षा मिलती है कि जीवन की श्रेणी में जीवधारियों का दर्जा ज्यों-ज्यों ऊँचा होता जाता है, त्यों-त्यों प्रकृति के नियमों से मातृत्व का महत्त्व और प्रयोजन बढ़ता जाता है, और इसी बात पर समस्त जीवित जातियों का भाग्य निर्भर है।

एक अतीव आश्चर्य-जनक सत्य यह है कि दूध जिस तरह मनुष्य के लिये पूर्ण भोजन है, उसी तरह कीटाणुओं का भी यह मन-माना ख़ज़ाना है। दूसरे खाद्य पदार्थों की अवस्था में तो जो एक भोजन में एक प्रकार के कीटाणु बढ़ और फैल सकते हैं तो दूसरे में दूसरे प्रकार के; परंतु दूध एक ऐसी वस्तु है, जिसमें सभी प्रकार के जीवाणु—क्या रोग-नाशक, और क्या रोगोत्पादक—घर बना-कर मज़े से संतान-वृद्धि कर सकते हैं। यह दूध में एक भयानक दोष है।

सब प्रकार के दूधों में जीवाणु होते हैं—एक आध नहीं, झुंड-के-झुंड। यदि दूध शुद्ध है, और सावधानी से तैयार किया गया है, तो उसमें के जीवाणु निर्दोष और हानि न करनेवाले होंगे। यदि दूध उबाल डाला गया है, तो जीवाणु मरे हुए होंगे; परंतु हर सूरत में वे उस में होंगे अवश्य। हाल में एक बहुत ही आश्चर्य की बात यह मालूम हुई है कि हमारे शरीर में और एक विशेष जाति के जीवाणुओं में एक ही प्रकार की कार्य-कारिणी व्यवस्था विद्यमान है। दूध इन जीवाणुओं का स्वाभाविक घर है। इस जाति का जीवाणु दूध की शक्कर पर जीता और उसे लेक्टिक एसिड (दुग्धाम्ल) में बदल देता है। दही की खटाई का कारण यही जीवाणु है। यह परिवर्तन कुछ-कुछ आमाशय में उत्पन्न होता है। स्वभाव से ही यह विशेष जीवाणु हमारे शरीर के भीतर रहता है, और उसके लिये बड़ा हितकारी है। जब हम नीरोग होते हैं, तब यह अनेक प्रकार के रोगोत्पादक जीवाणुओं को हमारे शरीरों में घर बनाने से रोकता है।

उत्तम दूध लेने के लिये यह आवश्यक है कि गउओं को साफ़-सुथरा रक्खा जाय, और उन्हें कोई हानिकारक या मैली चीज़ न खिलाई जाय। उन्हें ताज़ी हवा और सूर्य के प्रकाश में रक्खा जाय; जिसमें वे यक्ष्मा के भीषण रोग से बची रहें। दूध को दुहते समय हाथों को साफ़ करके साफ़ बरतन में दूध दुहना चाहिए। मैले हाथों से, मैले पात्र में, दूध दुहने से वह स्वच्छ, पवित्र और निर्दोष नहीं मिल सकता। दुहते समय दुहनेवालों को अपने केश और कपड़ों

को किसी ऐसे वस्त्र से ढक लेना चाहिए, जो गरम जल में पहले उबाला हुआ हो। गऊ का भी बड़ी सावधानी से ख़याल रखना चाहिए। गरमी के दिनों में दूध को चटपट उबालकर फिर ठंडा करके रख छोड़ना चाहिए। दूध को कभी खुला न रखना चाहिए। वैसे तो कोई भी भोजन खुला न रहने देना चाहिए, किंतु दूध के विषय में तो इस बात का और भी अधिक ध्यान रखना आवश्यक है।

इस समय लोगों की अज्ञता और असावधानता के कारण दूध नाना प्रकार के यक्ष्मा को फैलाता है। गरमियों में प्रतिवर्ष सहस्रों बालक इसके कारण मृत्यु का ग्रास बनते हैं। यह सान्निपातिक ज्वर (टाइफ़ाइड), अतिसार, डिफ़्थीरिया और स्कार्लेट-फ़ीवर आदि रोगों को फैलाता है। गऊ से, दूध के द्वारा, यक्ष्मा मनुष्यों में पहुँचता है, और प्रति-वर्ष भारी नर-संहार करता है। दूसरे, अनेक प्रकार के हानिकारक जीवाणु दूध में घर बना लेते हैं, और वे, ग्रीष्म में मक्खियों की तरह, अकाल ही में सहस्रों बालकों की जीवन-ज्योति बुझा देते हैं। यह सब बंद हो सकता है, और बंद होना चाहिए। इस का एकमात्र उपाय यही है कि दूध की शुद्धता पर विशेष ध्यान दिया जाय, और लोगों में शुद्ध दूध की प्राप्ति के साधनों का ज्ञान फैलाया जाय। आज-कल दूध बेचने का काम अनाड़ी और गंदे हलवाइयों के हाथ में है। ये लोग स्वास्थ्य और स्वच्छता के नियमों से सर्वथा अनभिज्ञ होते हैं। इनकी दूकान पर जाकर देखिए, आपको दूध की मटकियों में भरी हुई मक्खियाँ तैरती हुई मिलेंगी। ये मक्खियाँ भयानक रोगों के फैलने का एक बड़ा भारी ज़रिया हैं। आस्ट्रेलिया और अमेरिका आदि उन्नत देशों में दूध बोतलों में बंद बिकता है। उन बोतलों पर मुहर लगी रहती है, ताकि हलवाई उसमें कुछ मिलावट न कर सकें—उसे अपवित्र न कर सकें। इस से वहाँ के बच्चों को शुद्ध और पवित्र दूध मिलता है; वे प्रतिभाशाली और दृढ़-काय होकर दीर्घ आयु भोगते हैं। भगवान् कृपा करें कि इस दुखिया भारत-भूमि में भी फिर इसके अतीत काल की-सी शुद्ध दूध और मक्खन की अधिकता हो; जिससे हम और हमारे वंशज पूर्ण आयु को भोगते हुए सुख से जीवन व्यतीत कर सकें।

संतराम बी० ए०

उद्यान

(१)

रत-वर्ष में ही क्या, संसार के सभी देशों में बड़े-बड़े बग़ीचे पाए जाते हैं। हिंदुओं के पुराण-ग्रंथों में कई स्थानों पर पुष्प-वाटिकाओं का वर्णन आया है। प्रकृति-देवी ने भारत-वर्ष को सभी पदार्थों का आगार बनाया है। भारत-वर्ष में सब प्रकार की आब-हवा पाई जाती है, और सब देशों के वृक्ष-लतादि हिंदुस्थान के एक-न-एक भाग में सफलता-पूर्वक बोए जा सकते हैं।

ऊपर लिख आए हैं कि भारत-वर्ष में बड़े-बड़े उद्यान पाए जाते हैं। हमने कई बग़ीचे देखे भी हैं; किंतु उनमें से अधिकांश को बड़ी शोचनीय दशा में पाया है। अस्वच्छता के कारण सुंदर-से-सुंदर बग़ीचे भी आँखों में काँटे की तरह चुभने लगते हैं। इसका एक-मात्र कारण मालिक का नौकरों पर निर्भर रहना ही है। कई धनी और मध्यम श्रेणी के लोग अपने मकानों के पास बग़ीचे तो लगाते हैं, परंतु वे उद्यान-संबंधी ज्ञान से बिलकुल कोरे होते हैं, और यही कारण है कि उन्हें सब काम नौकरों पर ही छोड़ देने पड़ते हैं। फल यह होता है कि जो बग़ीचे शोभा और मनोरंजन के लिये लगाए जाते हैं,

वे ही आँखों में काँटे की तरह खटकने लगते हैं। अतएव प्रत्येक व्यक्ति के लिये उद्यान-संबंधी आवश्यक ज्ञान से परिचित होना अनिवार्य-सा है।

बग़ीचे कई प्रकार के होते हैं। यथा—१. फल के बग़ीचे, २. पुष्प-वाटिका, ३. मिश्र बग़ीचे (फल और फूल के बग़ीचे) और साग-भाजी के बग़ीचे। इस लेख में हम मिश्र बग़ीचों के स्थूल सिद्धांतों पर ही, संक्षेप में, विचार करेंगे।

बग़ीचा लगानेवाले व्यक्ति को सबसे पहले नीचे लिखे हुए विषयों पर विचार कर लेना चाहिए—

१—आब-हवा, २—ज़मीन।

आब-हवा

किसी प्रदेश की आब-हवा ताप-क्रम, वातावरण में तरी के परिमाण और वर्षा आदि पर निर्भर होती है। भारत-वर्ष के अधिकांश प्रांतों का जल-वायु जुदा-जुदा है। और, यही कारण है कि सारे भारत-वर्ष के लिये एक-से नियम नहीं बनाए जा सकते। इसके अलावा हरएक प्रांत की आब-हवा के अनुसार उद्यान-निर्माण पर विचार करना भी संभव नहीं। यही कारण है कि यहाँ मुख्य-मुख्य विषयों पर ही विचार किया गया है। हरएक आदमी को चाहिए कि अपने-अपने प्रांत की आब-हवा और अपने निज के अनुभव पर पूर्ण विचार कर अपनी बुद्धि का उपयोग करे, और तदनुसार दी हुई हिदायतों में योग्य परिवर्तन कर ले।

भारत-वर्ष में प्रधान तीन ऋतुएँ होती हैं—वर्षा, शीत और ग्रीष्म।

किसी प्रांत के ताप-क्रम से ही इस बात का निश्चय किया जा सकता है कि वहाँ कौन-कौन पौदे बोए जाने चाहिए। पृथ्वी के कई देश ऐसे हैं, जिनमें समान वर्षा होती है; किंतु ताप-क्रम में फ़र्क़ रहता है। जिन देशों या प्रांतों में एक-सा पानी बरसता है, उनमें स्थूल मान से एक ही वर्ग की वनस्पति पैदा होती है। परंतु उन देशों में पैदा होनेवाली जातियाँ जुदी-जुदी होंगी। भारत-वर्ष में पैदा होनेवाले अधिकांश पौदे पाले से मर जाते हैं। अतएव अन्य सब बातों में समानता होने पर भी एक पाले के कारण ही वे पौदे अन्य देशों में—उन देशों में जहाँ उतना ही पानी बरसता है, जितना कि भारत-वर्ष, उन पौदों की जन्म-भूमि, में बरसता है—अधिक समय तक जीवित नहीं रह सकेंगे। जिन प्रांतों में कम पानी बरसता है, उन प्रांतों में कृत्रिम साधनों से, सिंचाई द्वारा, वृक्ष जीवित रक्खे जा सकते हैं। किंतु ताप-क्रम की न्यूनाधिकता के कारण पौदे या तो फूलें-फलेंगे ही नहीं, और यदि कदाचित् फूले-फले भी, तो बहुत कम। कुछ पौदे तो गरमी के कारण शीघ्र ही मर जायँगे। इँगलैंड आदि पाश्चात्य देशों में काँच के मकानों में भिन्न-भिन्न देशों के पौदे लगाए जाते हैं, और कृत्रिम आब-हवा आदि के कारण पौदे जीवित भी रहते हैं। किंतु यह काम ज़्यादा ख़र्च और परिश्रम का है।

गरमी और वातावरण में तरी की मात्रा बढ़ जाने पर पौदे बढ़ने लगते हैं। यही अवस्था पौदों की बाढ़ के लिये अच्छी है। वर्षा-काल में ज़मीन और हवा गरम रहती है, और वातावरण में तरी भी अधिक परिमाण में होती है। यही कारण है कि बरसात में पौदों की ख़ूब बाढ़ होती है। तरी से ख़ाली गरमी की ऋतु में—उस ऋतु में, जिसमें वातावरण में तरी कम होती है—पौदे फूलते-फलते हैं, और तदनुसार ही वृक्षों की व्यवस्था की जाती है; अर्थात् वर्षा-ऋतु में बीज, क़लम, चश्मा लगाना आदि साधनों-द्वारा पौदे तैयार किए जाते हैं। और, इसी ऋतु में अधिकांश जाति के पौदे नरसरी या गमलों से हटाकर स्थायी स्थान पर लगाए जाते हैं। ठंडी आब-हवावाले देशों के पौदे, शीत-काल में ही ज़्यादा बढ़ते हैं, और इसी लिये वे शीत-काल में बोए जाते हैं।

चतुर माली आब-हवा की आवश्यकता के अनुसार ही अपना काम करता है, और तभी उसे सफलता भी होती है। वह शीत-काल में पौदों पर छाया कर देता है। कारण, सरदी-गरमी में शीघ्रता-पूर्वक परिवर्तन होने से पौदे को नुक़सान पहुँचता है। ऋतु के हेर-फेर के कारण थोड़े समय के लिये पौदों की बाढ़ रुक-सी जाती है। वह ऐसे समय में कम पानी देता है। पौदा ज़्यादा पानी का उपयोग नहीं कर सकता। इसलिये इस समय उसे उतना ही पानी दिया जाना चाहिए, जितने की उसे ज़रूरत हो। ज़रूरत से ज़्यादा पानी देने से पौदे को नुक़सान पहुँचता है। होशियार माली ये सब बातें अच्छी तरह जानता है, और उसी के अनुसार अपना काम भी करता है। गरमी की ऋतु में ज़मीन जल्दी सूखकर कड़ी हो जाती है। इसलिये वह पौदे को

खूब पानी देता है, और थाले की मिट्टी को गोड़कर ढीली बनाए रखता है। फलों के पौदे इस ऋतु में फलों से लदे रहते हैं, अतएव उनकी हिफ़ाज़त ज़रूरी है।

पानी बरसने के बाद हवा में नमी आ जाती है। वर्षा-ऋतु में वृक्षों के पत्तों से बहुत कम पानी भाप बनकर उड़ता है, और यही कारण है कि संकरीकरण द्वारा पौदे तैयार करने के लिये यही एक उपयुक्त ऋतु है। देशी पौदों को नरसरी से हटाकर स्थायी स्थान पर लगाने के लिये यही ऋतु अच्छी है।

इस ऋतु में पानी की बौछार और कड़ी धूप से नाज़ुक पौदों को बहुत नुक़सान पहुँचता है। खेतों या थालों में पानी भरा रहनेसे पौदे ख़राब हो जाते हैं। कभी-कभी मर भी जाते हैं। चतुर माली इन बातों से अच्छी तरह परिचित रहता है, और वृक्षों की रक्षा करने के लिये हरएक प्रकार के यत्न करने को सदा प्रस्तुत रहता है।

वह गमले में लगाए हुए पौदों को छाया में रख देता है। इस ऋतु में गमलों को बहुत कम पानी दिया जाता है। कारण, इस ऋतु में उनकी बाढ़ कुछ रुक जाती है, जिस से वे ज़्यादा पानी का उपयोग नहीं कर सकते।

ऑक्टोबर के बाद, अर्थात् शीत-काल का प्रारंभ होते ही, माली का सारा दिन काम करने में बीतता है। इसी ऋतु में उसे सबसे ज़्यादा काम रहता है। बाग़बानी का अधिकांश काम शीत-काल में ही करना होता है।

ज़मीन

पौदे ज़मीन से अपनी ख़ूराक लेते हैं। पौदों की जड़ें ठोस नहीं, महीन नली के समान पोली होती हैं। इन्हीं के द्वारा पौदा अपनी ख़ूराक सोखता है।

पौदे को अपने जीवन के लिये ये तत्त्व आवश्यक होते हैं—नाइट्रोज़न, हाईड्रोज़न, ऑक्सीज़न, पोटाश, फ़ासफ़रस, सलफ़र, कॅलशियम (चूना), नमक, लोहा, क्लोराइन, अलूमिनियम, सिलिकन, मेंगेनीज़ और मैग्नेशियम। इनमें से हाईड्रोज़न और ऑक्सीज़न तो पौदे को पानी में से मिल जाते हैं। कारबन वातावरण से प्राप्त होता है। अन्य शेष सब तत्त्व पौदे को ज़मीन की मिट्टी में से मिलते हैं। ये तत्त्व ज़मीन के पानी में घुले हुए क्षार के रूप में ही सोखे जाते हैं।

वृक्ष को हाईड्रोज़न से लगाकर फ़ासफ़रस तक के तत्त्व बहुत ज़्यादा दरकार होते हैं ; और वे सब ज़मीन से ही सोखे जाते हैं। अतएव यह ज़रूरी है कि सोखे हुए तत्त्वों को किसी-न-किसी रूप में ज़मीन को लौटा देना चाहिए। यदि ऐसा न किया जायगा, तो उन तत्त्वों का ख़ज़ाना घट जाने पर पौदा निर्बल पड़ जायगा।

पौदा ज़मीन की मिट्टी में ही बढ़ता है। उसकी जड़ें मिट्टी में ही फैलकर ख़ूराक चूसती हैं। इसलिये यह बहुत ज़रूरी है कि बग़ीचों की मिट्टी ऐसी हो, जिसमें पौदे अच्छी तरह बढ़ सकें, और उनकी जड़ें अधिक गहराई तक प्रवेश कर सकें ; अर्थात् पौदा ज़मीन में मज़बूत जम जाय।

बहुत कम फलों और फूलों के वृक्ष ऐसे हैं, जो चिकनी मटियार ज़मीन में ख़ूब फूलते-फलते हों। बग़ीचे की ज़मीन ऐसी होनी चाहिए, जिसमें बरसात का पानी भरा न रहे। वह कड़ी न हो, और हर तरह से पौदे बोने या लगाने के लायक़ हो।

बग़ीचों के लिये 'दुमट' या 'मटियार दुमट' ज़मीन अच्छी होती है; तथापि बड़े-बड़े बग़ीचों में सभी ज़मीन एक-सी नहीं होती, और यही कारण है कि कृत्रिम उपायों के द्वारा ज़मीन सुधार ली जाती है।

चिकनी मिट्टीवाली ज़मीन में हरी घाँस देने से वह बहुत कुछ भुरभुरी हो जाती है। कृत्रिम उपायों के द्वारा पानी के निकास की भी व्यवस्था की जा सकती है। इस पर आगे चलकर विचार किया जायगा।

किस पौदे को किस प्रकार की ज़मीन में बोना चाहिए, और गमलों के पौदों के लिये कैसी मिट्टी दरकार होती है, इन बातों पर आगे चलकर भिन्न-भिन्न वृक्षों की नियमावली पर लिखते समय विचार करेंगे।

खाद

संसार के प्रत्येक जीवधारी को भोजन की ज़रूरत होती है। पौदे जीवधारी तो हैं, किंतु हैं जड़—चल-फिर नहीं सकते। अतएव उन्हें भोजन-सामग्री देनी पड़ती है। जो लोग वृक्षों को बोते हैं, उन्हें ही यह काम करना होता है। इसी क्रिया को खाद देना कहते हैं। यहाँ यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जंगलों और अन्य स्थानों में खड़े हुए वृक्षों को ख़ूराक कौन जुटाता है? इस प्रश्न का सीधा-सादा उत्तर यही है कि प्रकृति-माता ही उन्हें

खिलाती-पिलाती है। बड़े-बड़े वृक्षों की जड़ें इतनी गहरी होती हैं और इतनी दूर फैल जाती हैं कि वे पौदे के लिये काफ़ी ख़ूराक ग्रहण कर सकती हैं।

खाद भिन्न-भिन्न वर्गों में बाँटी गई है। उन वर्गों पर यहाँ संक्षेप में कुछ लिखा जायगा—

(१) नाइट्रोज़न-युक्त खाद—गोबर, लीद, भेंड़-बकरीकी मेंगनी, सड़े पत्तों की खाद, हरी खाद, खली, विष्ठा, सोडियम नाइट्रेट, अमोनियम सलफ़ेट आदि नाइट्रोज़न-युक्त खाद हैं।

(२) फ़ासफ़रस-युक्त खाद—हड्डी का चूरा, हड्डी का कोयला, सुपर फ़ासफ़ेट और मछली की खाद।

(३) पोटाश-युक्त खाद—राख, सलफ़ेट ऑफ़ पोटाश।

ऊपर के वर्गीकरण से यह न समझ लेना चाहिए कि भिन्न-भिन्न वर्गों में दिए हुए पदार्थों में उस-उस वर्ग के तत्त्व के सिवा दूसरे तत्त्व होते ही नहीं। होते अवश्य हैं, किंतु अल्प परिमाण में। यथा—हड्डी फ़ासफ़रस-युक्त खाद के वर्ग में दी गई है, किंतु उसमें नाइट्रोज़न भी विद्यमान रहता है। इसी प्रकार अन्य खादों के संबंध में भी जानना चाहिए।

पूर्ण खाद वही है जिसमें नाइट्रोज़न, पोटाश और फ़ासफ़रस उपयुक्त परिमाण में मौजूद हों। जिस खाद में किसी एक खाद्य पदार्थ की अधिकता रहती है, वह 'विशेष खाद' कहाती है, और उस खाद्य पदार्थ को पूरा करने के लिये ही उसका उपयोग किया जाता है।

गोबर की खाद अति प्राचीन काल से काम में लाई जा रही है, और वह है भी सर्वोत्तम।

ऊपर दी हुई भिन्न-भिन्न खादों में कौन-कौन से तत्त्व, किस परिमाण में, पाए जाते हैं, इस पर स्थानाभाव के कारण यहाँ विचार नहीं कर सकते। इसके अलावा यह एक स्वतंत्र विषय है। यदि हो सका, तो इस पर स्वतंत्र लेख लिखने की चेष्टा की जायगी। यहाँ केवल इतना ही लिख देना काफ़ी होगा कि नाइट्रोज़न-युक्त खाद देने से पौदे की शाखाओं और पत्तों की खूब बाढ़ होती है। फ़ासफ़रस-युक्त खाद से फल अच्छे आते हैं, और वे पकते भी जल्दी हैं। पोटाश से फलों में मिठास आ जाती है।

हरी खाद—नील, सन, ढंचा, गुवार आदि को बोकर—फूल आने के पहले या बाद को—खेत की मिट्टी में गाड़ देने की क्रिया को हरी खाद देना कहते हैं। फलीदार फ़सलें ही इसके लिये उपयुक्त हैं।

पत्तों की खाद—पतझड़ की फ़सल में वृक्षों के पत्ते गिर पड़ते हैं। इन्हें इकट्ठा कर गढ़े में डाल देना चाहिए। गरमी की ऋतु में इन पर पानी छिड़कते रहना चाहिए; जिसमें जल्दी सड़ जायँ। वृक्षों की काटी हुई छोटी-छोटी टहनियाँ, पत्ते, घास-पतवार आदि भी इसी गढ़े में डालते रहना चाहिए। एक गढ़ा भर जाने पर दूसरे में डालना शुरू करना चाहिए। एक वर्ष के बाद खाद निकाल लेना चाहिए। यह एक उत्तम खाद है, और गमलों में लगाए जानेवाले पौदों के लिये तो इसके सिवा दूसरी खाद ही नहीं।

फ़र्न, ताड़ आदि सुंदर पत्तोंवाले पौदों के लिये भी पत्तों की खाद सर्वोत्तम है।

लकड़ी की राख—चीन में वनस्पति की राख बहुत अच्छी मानी जाती है। खर-पतवार और वृक्षों की शाखाएँ जलाकर राख खेत में डाली जाती है। राख का असर फ़सल पर साफ़ नज़र आता है।

नाइट्रेट ऑफ़ सोडा—इँगलैंड और अमेरिका में इसे गोबर और लीद की खाद की जगह काम में लाते हैं। अनुमान किया गया है कि १६५ सेर नाइट्रेट क़रीब ११५० सेर गोबर की खाद के बराबर है; अर्थात् ११४० सेर गोबर की खाद के बदले में १६५ सेर नाइट्रेट ऑफ़ सोडा डालने से काम चल सकता है। ख़ूबसूरती के वास्ते लगाए हुए पौदों के लिये यह खाद निरुपयोगी है। एक गैलन पानी में ½ औंस नाइट्रेट घोलकर गमलों में प्रति आठवें दिन देना अच्छा है। बड़े पेड़ों के लिये एक औंस काफ़ी है।

नाइट्रेट, फ़ासफ़ेट आदि खादें भारत-वर्ष में ज़्यादा काम में नहीं लाई जातीं, और बग़ीचों में तो इनका बहुत ही कम उपयोग होता है। यही कारण है कि हमने इन पर विस्तार-पूर्वक नहीं लिखा।

खाद का घोल

जिस समय पौदों की बाढ़ खूब हो रही हो, उसी समय खाद को, पानी में घोलकर, पौदों की जड़ों में डाल देना चाहिए। परंतु बहुत कम दी जानी चाहिए। ज़्यादा देने से पौदे को नुक़सान पहुँचता है। पानी में घोलकर दी हुई खाद का असर बहुत जल्दी पड़ता है।

साबुन—गमलों के पत्तों को साबुन के पानी से धोना फ़ायदेमंद है। कारण, कीड़ों से पत्तों की रक्षा होती है।

अवसर देखा गया है कि पत्तों को साबुन से धोने से रोगी पौदा शीघ्र ही नीरोग हो जाता है।

मिश्रित खाद—गोबर, मिट्टी, राख, चूने आदि के मिश्रण से बनाई हुई खाद भी बहुत अच्छी होती है। नीचे लिखे हुए मिश्रण को सात-आठ सप्ताह तक गढ़े में रखकर पानी छिड़कते रहना चाहिए। गमले के पौदों के लिये यह मिश्रण सर्वोत्तम है—

पत्तों की खाद सड़ी हुई	२ भाग
गोबर की खाद	२ ,,
हरे पत्ते सड़े हुए	२ ,,
लकड़ी की राख	१ ,,
रेत	१ ,,
चूना	१ ,,
ईंट का चूरा	१ ,,

खाद देने के कुछ नियम

खाद देते समय नीचे लिखी हुई बातों पर खूब ध्यान रखना चाहिए—

(१) अच्छी तरह न सड़ी हुई खाद को पौदों की जड़ में कदापि न डालो; हमेशा मिट्टी में मिला दो।

(२) खाद हमेशा थोड़ी-थोड़ी दो-तीन बार में दो।

(३) नाइट्रेट आदि की खादें पानी में घुल जाती हैं। इसलिये ये खादें तभी दी जायँ, जब पानी बरसने की संभावना कम हो।

(४) दूसरी खादें वर्षा-काल में, या उसी ऋतु में, दी जानी चाहिए, जब पौदों की बाढ़ हो रही हो।

शंकरराव जोशी, एग्रीकल्चर ऑफ़िसर

उपन्यास-रचना

भारत-निवासियों ने योरपियन साहित्य के किसी अंग को इतना नहीं ग्रहण किया, जितना कि उपन्यास को। यहाँ तक कि उपन्यास अब हमारे साहित्य का एक अविच्छेद्य अंग हो गया है। उपन्यास का जन्म १४वीं या १५वीं शताब्दी के लगभग इटली में हुआ। शेक्सपियर ने अपने कई नाटकों की रचना इटैलियन उपन्यासों ही के आधार पर की है। यह शैली इतनी सर्व-प्रिय हुई कि आज समस्त संसार में साहित्य पर उपन्यास ही का आधिपत्य है। गत ५० वर्षों में भारत-वर्ष की साहित्यिक शक्ति का जितना उपयोग उपन्यास-रचना में हुआ, उतना कदाचित् साहित्य के और किसी भाग में नहीं हुआ। बँगला ने बंकिम पैदा किया, गुजराती ने गोवर्धनराम, मराठी ने आपटे, उर्दू ने रतननाथ और शरर, जो संसार के किसी उपन्यासकार से घटकर नहीं हैं। हिंदी ने पहले अद्भुत रस के उपन्यास पैदा किए; पर अब धीरे-धीरे उसमें चरित्र-चित्रण, मनोभाव और जासूसी के उपन्यास भी प्रकाशित होने लगे हैं। और, आशा है, थोड़े ही दिनों में वह इस विषय में किसी प्रांतिक भाषा से दबकर नहीं रहेगी। वास्तव में उपन्यास-रचना को सरल साहित्य (light liteature) कहा जाता है, इसलिये कि इससे पाठकों का मनोरंजन होता है। पर उपन्यासकार को उपन्यास लिखने में उतना ही दिमाग़ लड़ाना पड़ता है, जितना किसी दार्शनिक को दर्शन-शास्त्र के ग्रंथ लिखने में। उसे सबसे पहले उपन्यास का 'विषय' खोजना पड़ता है। क्या लिखें? भौतिक वैभव की असारता दिखावें, या मनोभावों का पारस्परिक संग्राम? कोई गुप्त रहस्य चुनें, या किसी ऐतिहासिक घटना का चित्रण करें? लेखक अपनी रुचि और प्रकृति के अनुकूल ही इनमें से कोई विषय पसंद कर लेता है। विषय निर्धारित हो जाने के पश्चात् उसे प्लॉट की चिंता होती है। वह सोता हो या जागता, चलता हो या बैठा, इसी चिंता में डूबा रहता है। कभी-कभी उसे सोच-विचार में महीनों, बरसों लग जाते हैं। इस चिंता में लेखक जितना ही व्यस्त होगा, उतनी ही उत्तम उसकी रचना होगी।

उपन्यास की बुनियाद पड़ गई। अब हमें अपना भवन खड़ा करने के लिये मसाले की आवश्यकता होती है। उसके मुख्य साधन ये हैं—

१. अवलोकन, २. अनुभव, ३. स्वाध्याय, ४. अंतर्दृष्टि, ५. जिज्ञासा, ६. विचारांकण,

कहते हैं, अमेरिका के सुविख्यात साहित्यकार मार्क ट्वेन ने इस बात का अनुभव प्राप्त करने के लिये कि बिना टिकट रेल या ट्राम में सफ़र करनेवालों के चित्त की क्या दशा होती है, कई बार बिना टिकट सफ़र किया। ऐसे ही एक और सज्जन ने पेरिस के चकलों की तसवीर

खींचने के लिये महीनों शोहदों और गुंडों की संगति की। एक तीसरे महाशय ने चोर के हृदय के भावों को जानने के लिये स्वयं सेंद तक मारी। इसका मुख्य कारण यह जान पड़ता है कि पाश्चात्य देशों के लेखक कल्पना-शून्य होते हैं। उपन्यासकार को ऐसी दशाओं और मनोभावों के वर्णन करने में अपनी कल्पना-शक्ति ही सबसे बड़ी मददगार है। ऐसा बिरला ही कोई प्राणी होगा, जिसने बचपन में पैसे या मिठाई न चुराई हो, या चोरी से मेला या दंगल देखने न गया हो, अथवा पाठशाला में अध्यापक से बहाने न किए हों। यदि कल्पना-शक्ति तीव्र हो, तो इतने अनुभव को चोरों और डकैतों के मनोभाव चित्रित करने में कृतकार्य कर सकती है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि कृत्रिम अवस्थाओं में जो अनुभव प्राप्त होते हैं, वे स्वाभाविक नहीं हो सकते। फिर भी उपन्यास की सफलता के लिये अनुभव सर्व-प्रधान मंत्र है। उपन्यास-लेखक को यथा-साध्य नए-नए दृश्यों के देखने और नए-नए अनुभवों को प्राप्त करने का कोई अवसर हाथ से न जाने देना चाहिए।

प्राणियों के मनोभावों को व्यक्त करने के लिये दूसरा साधन अपने ही भावों को टटोलना है। सर फ़िलिप सिडनी का कहना था कि 'अपनी निगाह अपने हृदय में डालो, और जो कुछ देखो, लिखो'। लेखक अपने को कल्पना के द्वारा जितना ही भिन्न-भिन्न स्थितियों में रख सकता है, उतना ही सफल-मनोरथ होता है। तुलसीदास ने पुत्र-शोक कितनी सफलता से दिखाया है। विदित ही है कि उन्हें इस शोक का प्रत्यक्ष अनुभव न था। अपने को शोकातुर, वियोगी पिता के स्थान में रखकर ही उन्होंने उन भावों का अनुभव किया होगा।

स्वाध्याय से भी उपन्यासकार को बड़ी मदद मिलती है। एक ऋषि का कथन है कि स्वाध्याय मनुष्य को संपूर्ण बना देता है। कुछ लोगों का विचार है कि उपन्यास-लेखक को पढ़ना न चाहिए; इससे उसकी मौलिकता मारी जाती है। पर स्वर्गीय डी० एल्० राय ने कहा है—जिस लेखक की मौलिकता पुस्तकावलोकन से मारी जाती है, उसमें मौलिकता है ही नहीं। स्वाध्याय का उद्देश्य यह न होना चाहिए कि किसी कुशल लेखक के भाव और विचार उड़ाए जायँ, बल्कि अपने भावों और विचारों की अन्य लेखकों से तुलना की जाय, और उससे अच्छी रचना करने के लिये अपने को प्रोत्साहित किया जाय। अगर हमें किसी लेखक की रचना में ऐसा कोई स्थान दिखाई दे, जहाँ उसकी कल्पना शिथिल पड़ गई हो, तो हम प्रयत्न करें कि उसी के अनुरूप स्थान पर उससे अच्छा लिख सकें। लेखक को—और विशेषकर उपन्यास-लेखक को—विविध साहित्य का भली भाँति अध्ययन किए बिना क़लम न उठाना चाहिए। यह बात नहीं है कि बिना बहुत पढ़े कोई अच्छा उपन्यास लिख ही नहीं सकता। जिन्हें ईश्वर ने प्रतिभा दी है, उनके लिये बहुत पढ़ना अनिवार्य नहीं है। लेकिन जिस प्रकार बिना व्याकरण पढ़े हुए चाहे हम शुद्ध लिखें, पर अशुद्धियों से बचने के लिये हमारे पास कोई साधन नहीं रहता, उसी प्रकार तुलना और स्वाध्याय से हमें अपनी त्रुटियों का बोध होता है, हमारी बुद्धि विकसित होती है, और उन साधनों की झलक मिल जाती है, जिनके द्वारा किसी बड़े लेखक ने सफलता प्राप्त की।

कुछ लेखकों को भ्रम है कि अपनी रचनाओं के विषय में किसी से कुछ पूछने या राय लेने से उनका अपमान होता है। पर वास्तव में लेखक को जिज्ञासा की उतनी ही ज़रूरत है, जितनी कि किसी विद्यार्थी को। फ़्रांसिस बेकन के विषय में कहा जाता है कि वह सदैव ऐसे पुरुषों से जिज्ञासा करता रहता था, जो किसी विषय में उससे अधिक ज्ञान रखते थे। कोई आदमी, चाहे वह कितना ही प्रतिभाशाली क्यों न हो, सब विद्याओं का ज्ञाता नहीं हो सकता। उसे अगर किसी से कुछ पूछना पड़े, तो संकोच क्यों करे? डी० एल्० राय महोदय जब कोई ड्रामा लिखते थे, तो उसे अपने रसिक मित्रों को सुनाते थे, उनकी आलोचनाओं का उत्तर देते थे, और जहाँ कहीं क़ायल हो जाते थे, तो अपनी रचना में काट-छाँट कर देते थे। कभी उन्हें अध्याय-के-अध्याय और सीन-के-सीन बदलने पड़ जाते थे। लेखक को सदैव अपना आदर्श ऊँचा रखना चाहिए। उसके मन में यह धारणा होनी चाहिए कि या तो कुछ लिखूँगा ही नहीं, या लिखूँगा, तो कोई अच्छी चीज़, जिससे बढ़कर उसी विषय पर फिर जल्द कोई न लिख सके।

कभी-कभी ऐसा होता है कि रास्ता चलते-चलते कोई नई बात सूझ जाती है, अथवा कोई नया दृश्य आँखों के सामने से गुज़र जाता है। लेखक में यह गुण होना चाहिए कि वह ऐसे भावों और दृश्यों को स्मृति-पट पर अंकित कर ले, और आवश्यकता पड़ने पर उनका व्यव-

हार करे ! कुछ लेखकों की आदत होती है कि वे अपने साथ नोट-बुक रखते हैं, और ऐसी बातें उसमें तुरंत टाँक लेते हैं। जिस लेखक को अपनी स्मरण-शक्ति पर विश्वास न हो, उसे अपने साथ नोट-बुक अवश्य रखनी चाहिए। डायरी लिखना भी अपने विचारों को लेख-बद्ध करने की आदत डालता है।

प्लॉट उन घटनाओं को कहते हैं, जो उपन्यास के चरित्रों पर घटित हों। लेकिन केवल घटनाओं का वर्णन करने ही से कहानी में मनोरंजकता का गुण नहीं पैदा हो सकता। उन घटनाओं को कल्पना द्वारा ऐसा सजीव बनाना चाहिए कि उनमें वास्तविकता झलकने लगे। एक उपन्यासकार ने लिखा है कि उक़लेदिस की भाँति हम लोगों को अपनी कथा सामने रख देनी चाहिए, और तब उसके हल करने में प्रस्तुत हो जाना चाहिए। उक़लेदिस की विचार-शृंखला में कोई ऐसी युक्ति प्रविष्ट नहीं हो सकती, जिसके लिये वहाँ अनिवार्य-रूप से स्थान न हो। हम भी उसी का अनुसरण करके उच्च कोटि के उपन्यासों की रचना कर सकते हैं। साधारणतः प्लॉट वह कथा है, जो उपन्यास पढ़ने के बाद प्रत्येक पाठक के हृदय-पट पर अंकित हो जाती है। पुराने ढंग की कथाओं में सब प्लॉट-ही-प्लॉट होता था। उसमें रंग और रोग़न की मात्रा न रहती थी; इसी लिये वह चित्र इतना भड़कीला न होता था। आजकल ५०० पृष्ठों के उपन्यास की कथा दस-पाँच पंक्तियों में ही समाप्त हो जाती है। लेकिन इन्हीं दस-पाँच पंक्तियों के सोचने में उपन्यासकार को जितना मनन और चिंतन करना पड़ता है, उतना सारा उपन्यास लिखने में भी नहीं करना पड़ता। वास्तव में प्लॉट सोच लेने के बाद फिर लिखना बहुत आसान हो जाता है। लेकिन प्लॉट सोचने के साथ ही चरित्रों की कल्पना भी करनी पड़ती है; जिनके द्वारा यह प्लॉट प्रदर्शित किया जाय। चार्ल्स डिकिंस के विषय में लिखा है कि जब वह किसी नए उपन्यास की कल्पना करते थे, तो महीनों तक अपने कमरे को बंद कर विचार में मग्न पड़े रहते थे। न किसी से मिलते थे, न कहीं सैर करने ही जाते थे। जब दो-तीन महीने के बाद उनके किवाड़ खुलते थे, तो उनकी दशा किसी रोगी से अच्छी न होती थी; मुख पीला, आँखें भीतर को धँसी हुई, शरीर दुर्बल। थैकरे के विषय में लिखा हुआ है कि वह संध्या-समय किसी नदी के तट पर बैठकर अपने प्लॉट सोचा करता था। पर प्लॉट को जल्द या देर में कल्पित कर लेना लेखक की बुद्धि-सामर्थ्य पर निर्भर है। जॉर्ज सैंड फ्रांस की सुविख्यात लेखिका है। उसने १०० से कम उपन्यास नहीं लिखे। पर उसे प्लॉट सोचने में बुद्धि नहीं लड़ानी पड़ती थी। वह क़लम हाथ में लेकर बैठ जाती थी, और लिखने के साथ ही प्लॉट भी बनता चला जाता था। सर वाल्टर स्कॉट के बारे में यही मशहूर है कि वह प्लॉट सोचने में मस्तिष्क नहीं लड़ाते थे। कुछ कहानियाँ ऐसी भी होती हैं, जिनमें कोई प्लॉट ही नहीं होता। मार्क ट्वेन का Innocents abroad इसी ढंग का उपन्यास है।

प्लॉटों की कल्पना भिन्न-भिन्न प्रकार की होती है। साधारणतः उसके ये ६ भेद माने गए हैं—

(१) कोई अद्भुत घटना।
(२) कोई गुप्त रहस्य।
(३) मनोभाव-चित्रण।
(४) चरित्रों का विश्लेषण और तुलना।
(५) जीवन के अनुभवों को प्रकट करना।
(६) कोई सामाजिक या राजनीतिक सुधार।

(१) अद्भुत—कहानी वही अद्भुत होती है, जो प्रकृति के नियमों के विरुद्ध हो। प्राचीन कथाएँ बहुधा इसी क़िस्म की होती थीं। ऐसी कहानी का उद्देश्य केवल पाठकों का मनोरंजन है। पढ़ने से कल्पना की वृद्धि होने के कारण बहुधा बालोपयोगी कहानियों में यह प्रणाली उपयुक्त समझी जाती है। प्रौढ़ावस्था में ऐसी कहानियों में जी नहीं लगता। बहुधा नैतिक और आचरण-संबंधी उपदेश भी ऐसी कहानियों द्वारा दिए जाते हैं। इँगलैंड के विख्यात लेखक स्विफ़्ट ने "गुलियर की यात्रा" नाम की प्रसिद्ध पुस्तक में समाज पर व्यंग्य किया है। वह भी अद्भुत घटनाओं ही का आश्रय लेता है। बहुधा दृष्टांतों या "अलिगोरी" में अद्भुत घटनाओं द्वारा जीवन के गूढ़ तत्त्व हल किए जाते हैं। इँगलैंड में जान बनियन का "Pilgrim's Progress" अद्वितीय अलिगोरी है। हमारे यहाँ प्राचीन ऋषियों ने बहुधा दृष्टांतों ही द्वारा जन-साधारण को उपदेश दिए हैं। महाभारत, पुराण, उपनिषद् आदि में ऐसे दृष्टांत भरे पड़े हैं। वर्तमान समय में "टालसटाय" और "हॉथर्न" ने बहुत ही शिक्षा-प्रद और अनूठे दृष्टांत रचे हैं। अतएव

[पटने के किसी
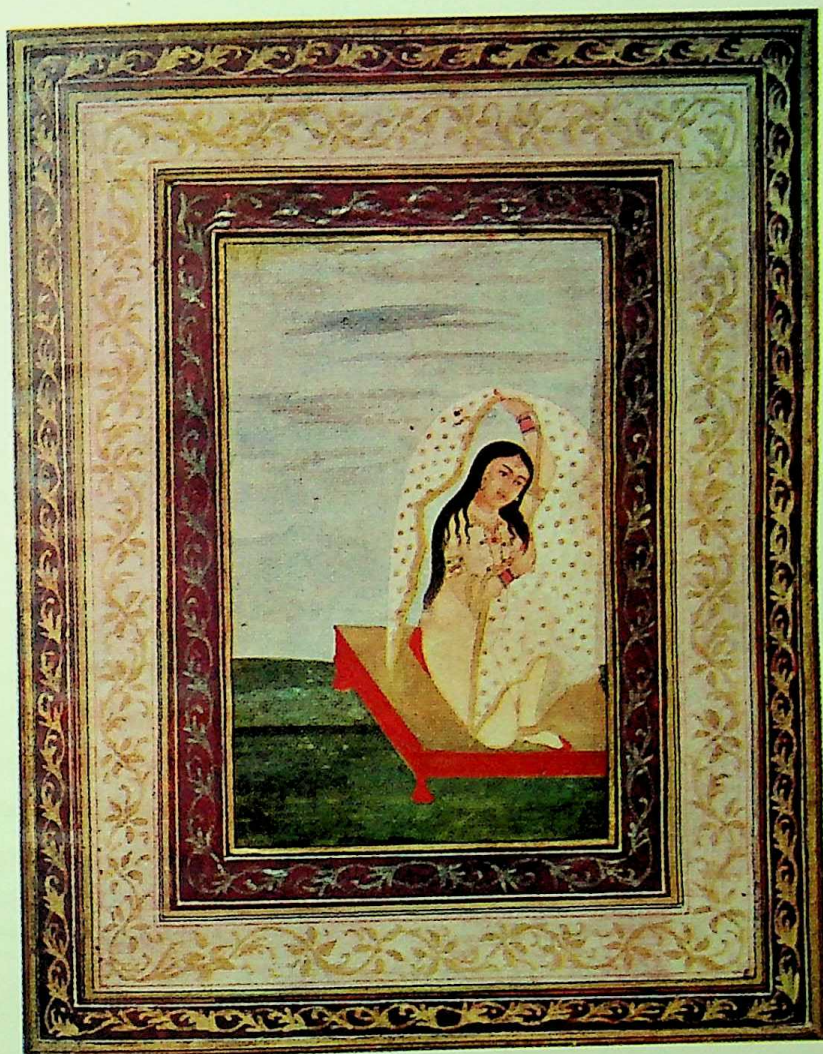
[पटने के किसी प्राचीन चित्रकार द्वारा अंकित]

सद्यःस्नाता

सद्यः स्नाता सुंदरी, झीने पट तन-कांति ;
होत आवरन-बीच थिर दीप-सिखा की भ्रांति ।

अप्राकृतिक घटना-प्रधान उपन्यासों की रचना यदि बहुत सरल है, तो उसके साथ अत्यंत कठिन भी है।

(२) गुप्त रहस्य—जासूसी के उपन्यास सब इसी श्रेणी में आते हैं। इस प्रकार के उपन्यास लिखने में लेखक को दो बड़ी शंकाओं का सामना करना पड़ता है। संभव है, रहस्य आरंभ ही से खुल जाय, अथवा लेखक का रहस्योद्घाटन पाठक को संतोषप्रद न हो। भारतवर्ष में पहले ऐसी कहानियों की प्रथा न थी। योरप में ऐसी कहानियों को लोग बड़े शौक़ से पढ़ते हैं। इधर कुछ दिनों से पैशाचिक घटनाएँ भी रहस्यों-द्वारा प्रकट की जाने लगी हैं। इँगलैंड में कानन डायल इस श्रेणी के उपन्यासकारों में बहुत सिद्ध-हस्त हैं। फ्रांस में मार्स लेब्लांक, और अमेरिका में पो। कानन डायल अभी जीवित हैं, और अब आध्यात्मिक विषयों की ओर उनकी अधिक प्रवृत्ति है। जासूसी उपन्यासों में लेखक कोई घटना सोचकर एक कल्पित जासूस को उसके सुलझाने में लगा देता है। ऐसे उपन्यासों में सर्व-श्रेष्ठ गुण यह है कि उस घटना या रहस्य का खोलना ज़ाहिरा असंभव प्रतीत हो, पर लेखक जब उसे खोल दे, तो पाठक को आश्चर्य हो कि मुझे यह बात क्यों न सूझी, यह तो बिलकुल साधारण बात थी। इसके साथ ही पाठक उस रहस्य को किसी दूसरी रीति से खोलने में असमर्थ हो। लेखक का कौशल इस बात में है कि जिस चरित्र को पाठक और स्वयं लेखक दोषी समझते हों, वह अंत में निरपराध सिद्ध हो जाय। ऐसे उपन्यास बहुत ही रोचक होते हैं, और उनके पढ़ने से बुद्धि तीव्र होती है; कठिन समस्याओं में दिमाग़ लड़ाने की शक्ति पैदा होती है। मगर उनका लिखना तो इतना कठिन है कि अब तक हिंदी में सिवा कानन डायल या अन्य लेखकों की कहानियों का अनुवाद करने के किसी ने स्वतंत्र कल्पना नहीं की।

(३) मनोभाव-चित्रण—ऐसे उपन्यासों में लेखक का ध्यान घटना-वैचित्र्य की ओर बहुत कम रहता है। वह ऐसी ही घटनाओं की आयोजना करता है, जिनमें उसके चरित्रों को अपने मनोभावों के प्रकट करने का अवसर मिले। घटनाएँ कम होती हैं, पात्रों के विचार अधिक। टाल्सटाय के उपन्यासों में यही गुण प्रधान है। ऐसे उपन्यासों को रचने के लिये आवश्यक है कि लेखक अपनेको विभिन्न अवस्थाओं में रख सके। इस प्रकार की कहानियों में लेखक को पाठकों के सामने अनिवार्यरूप से अधिकतर अपना ही हृदय खोलकर रखना पड़ता है। दूसरों के मनोगत भावों को जानने का उसके पास और क्या साधन हो सकता है? कोई अपने मन का भाव किसी से नहीं कहता, बल्कि और छिपाता है। अगर किसी को किसी मित्र के मनोभावों का ज्ञान हो भी सकता है, तो बहुत कम। इसलिये ऐसे उपन्यास लिखना लोहे के चने चबाना है। उपन्यासकार को नित्य अपने अंतर की ओर ध्यान रखना पड़ता है। जॉर्ज इलियट के उपन्यास अधिकतर इसी श्रेणी के हैं।

(४) चरित्रों का विश्लेषण, और (५) जीवन के अनुभवों को प्रकट करना—इन दोनों प्रकारों के उपन्यास लिखने के लिये ज़रूरी है कि लेखक में दिव्य कल्पना-शक्ति के साथ अवलोकन और निरीक्षण की भी प्रचुर मात्रा हो। इसीलिये कहा गया है कि उपन्यासकार को सभी श्रेणी के मनुष्यों से मिलना-जुलना आवश्यक है। उसे अपनी आँखें और कान सदैव खुले रखने चाहिए। एक ही परिस्थिति में दो भिन्न-भिन्न विचारों के व्यक्ति क्या करते हैं? एक ही घटना दोनों को किस तरह प्रभावित करती है, इसका निरूपण सहज नहीं है। अनुभव बाह्य जगत्-संबंधी भी होते हैं, और अंतर्जगत्-संबंधी भी। लेखक को प्राकृतिक दृश्यों का, विचित्र घटनाओं का, बड़े ध्यान से अवलोकन करना चाहिए। प्रातःकाल समीर के झोंकों में नदी के तरंगों की कैसी छटा होती है? आकाश कौन-कौन से रूप धारण करता है? ऐसे अगणित दृश्य सफलता के साथ वही लिख सकता है, जिसने स्वयं उनको ग़ौर से देखा हो। केवल कल्पना यहाँ काम नहीं दे सकती। लाज़िम है कि लेखक वही दृश्य दिखावे, उन्हीं चरित्रों की तुलना करे, जिनका उसने स्वयं अनुभव किया हो। जिसने समुद्र नहीं देखा, वह किसी बंदर का दृश्य क्योंकर लिखेगा? जिसने ग्रामीणों की संगति नहीं की, वह ग्रामीण-जीवन का चित्र क्योंकर खींच सकता है? यही सफलता प्राप्त करने के लिये योरप के कई विख्यात उपन्यासकारों ने वेष बदलकर उन स्थितियों का अध्ययन किया है, जिनके आधार पर वे अपना उपन्यास लिखना चाहते थे।

(६) कोई सामाजिक या राजनीतिक सुधार—किसी उद्देश्य-विशेष से लिखे गए उपन्यासों की संख्या आजकल, सभी भाषाओं में, बहुत अधिक है। उर्दू में

भी ऐसे कितने ही उपन्यास हैं। मुख्य भाषाओं का तो कहना ही क्या। आजकल सुधार-सुधार के घोर नाद से सारा वायु-मंडल निनादित हो रहा है। कहीं पुलिस के सुधार की चर्चा है, कहीं कारागारों की, कहीं न्यायालयों की, कहीं सामाजिक प्रथाओं की, कहीं शिक्षा-पद्धति की। यह विवादास्पद विषय है कि उपन्यास किसी उद्देश्य से लिखना चाहिए या नहीं। प्रवीण समालोचक-गण की राय में साहित्य का उद्देश्य केवल भाव-चित्रण ही होना चाहिए। उद्देश्य से लिखी हुई कहानियों में बहुधा लेखक को विवश होकर असंगत बातें कहलानी पड़ती हैं, अनावश्यक घटनाओं की आयोजना करनी पड़ती है, और सबसे बड़ी कठिनाई यह है कि उसे उपदेशक का स्थान ग्रहण करना पड़ता है; मगर रसिक-समाज किसी से उपदेश लेना नहीं चाहता। उसे उपदेशों से अरुचि है, और उपदेशकों से घृणा। वह केवल मनोरंजन और मनोदर्शन चाहता है। पर इसके साथ ही यह भी मानना पड़ेगा कि गत शताब्दी में पाश्चात्य देशों में जितने सुधार हुए हैं, उनमें अधिकांश का बीजारोपण उपन्यासों ही द्वारा किया गया था। डिकिंस के प्रायः सभी उपन्यास, टालस्टाय के कई उत्तम उपन्यास, मैक्सिम गोरकी, टर्जनीफ़, बालज़क, ह्यूगो, मेरी कॉरेली, ज़ोला आदि प्रधान उपन्यासकारों ने सुधारों ही के उद्देश्य से अपने ग्रंथ रचे हैं। हाँ, कुशल लेखक का यह कर्तव्य होना चाहिए कि वह सुधार के जोश में कथा की रोचकता को कम न होने दे। वह उपन्यास और अपने चरित्रों को उन्हीं परिस्थितियों में रक्खे, जिनको वह सुधारना चाहता है। यह भी परमावश्यक है कि वह सुधार के विषय को खूब सोच ले, और अत्युक्ति से काम न ले, नहीं तो उसका प्रयास कभी सफल न हो सकेगा। लेखक-वृंद प्रायः अपने काल के विधाता होते हैं। उनमें अपने देश को, अपने समाज को, दुःख, अन्याय तथा मिथ्यावाद से मुक्त करने की प्रबल आकांक्षा होती है। ऐसी दशा में असंभव है कि वह समाज को अपने मनमाने मार्ग पर चलने दे, और स्वयं खड़ा हाथ-पर-हाथ रक्खे देखता रहे। वह अगर और कुछ नहीं कर सकता, तो क़लम तो चला ही सकता है। शेक्सपियर और कालिदास के समय में सुधार की आवश्यकता आज से कम न थी; लेकिन उस समय राजनीतिक ज्ञान का इतना प्रसार न था। रईस लोग भोग-विलास करते थे, कवि और लेखक उनकी विलास-वृत्तियों को और उत्तेजित करते थे। प्रजा पर क्या गुज़रती है, इधर किसी का ध्यान न था। यह समय जीवन-संग्राम का है। आज हम, जो शिक्षित कहलाते हैं, तटस्थ होकर अन्याय होते नहीं देख सकते।

प्लॉट का महत्त्व जानने के बाद अब हम यह जानना चाहेंगे कि अच्छे प्लॉट में कौन-कौन-सी बातें होनी चाहिए। समालोचकों के मतानुसार वे ये हैं—सरलता, मौलिकता, रोचकता।

प्लॉट सरल होना चाहिए। बहुत उलझा हुआ, पेचीदा, शैतान की आँत, पढ़ते-पढ़ते जी उकता जाय, ऐसे उपन्यास को पाठक ऊबकर छोड़ देता है। एक प्रसंग अभी पूरा नहीं होने पाया कि दूसरा आ गया; वह अभी अधूरा ही था कि तीसरा प्रसंग शुरू हो गया; इसमें पाठक का चित्त चकरा जाता है। पेचीदा प्लॉट की कल्पना इतनी मुशकिल नहीं है, जितनी किसी सरल प्लॉट की। सरल प्लॉट में बहुत-से चरित्रों की कल्पना नहीं करनी पड़ती, इसलिये लेखक को अल्प-संख्यक चरित्रों के भाव, विचार, गुण, दोष, आहार, व्यवहार को सूक्ष्म-रूप से दिखाने का अवसर मिल जाता है; इससे उसके चरित्रों में सजीवता आ जाती है, और वह पाठक के हृदय पर अपना अच्छा या बुरा असर छोड़ जाते हैं। यह बात बहु-संख्यक चरित्रों के साथ नहीं प्राप्त हो सकती। प्लॉट में मौलिकता का होना भी ज़रूरी है। जिस बात या विषय को अन्य लेखकों ने लिख डाला हो, उसे कुछ हेर-फेर करके अपना प्लॉट बनाने की चेष्टा करना अनुपयुक्त है। प्रेम, वियोग आदि विषय इतनी बार लिखे जा चुके हैं कि उनमें कोई नवीनता नहीं बाक़ी रही। अब तो पाठक कहानियों में नए भावों का, नए विचारों का, नए चरित्रों का दिग्दर्शन चाहते हैं। अब शुक-बहत्तरी से पाठकों को तस्कीन नहीं होती। प्लॉट में कुछ-न-कुछ ताज़गी, कुछ-न-कुछ अनोखापन, अवश्य होना चाहिए। रही रोचकता, वह मौलिकता की सहगामिनी है। मौलिक प्लॉट है, तो वह रोचक भी ज़रूर ही होगा। लेकिन कहानी की रोचकता किसी एक बात पर निर्भर नहीं है। प्लॉट की सुंदरता, चरित्रों का चित्रण, घटना का वैचित्र्य, सभी सम्मिश्रित हो जाते हैं, तो रोचकता

आप-ही-आप आ जाती है । हाँ, उपन्यासकार यह कभी नहीं भूल सकता कि उसका प्रधान कर्तव्य पाठकों का ग़म ग़लत करना, उनका मनोरंजन करना, है । और सभी बातें इसके अधीन हैं । जब पाठक का जी ही कहानी में न लगा, तो वह क्या लेखक के भावों को समझेगा ? क्या उसके अनुभवों से लाभ उठाएगा ? वह घृणा के साथ किताब को पटक देगा, और सदा के लिये उपन्यासों का निंदक हो जायगा । आज भी कितने ही ऐसे व्यक्ति मिलते हैं, जिन्हें उपन्यासों से चिढ़ है । उन्होंने व्रत कर लिया है कि उपन्यास कदापि न पढ़ेंगे । कारण यही है कि हिंदी के वर्तमान उपन्यासों ने उन्हें निराश कर दिया है । नए उपन्यास-लेखकों का कर्तव्य है कि वे उपन्यास-साहित्य के मुख को उज्ज्वल करें, इस बदनामी के दाग़ को मिटा दें ।

प्रेमचंद

मानिनि राधे !

[एक मानिनी के हाथ में राधिका का चित्र देखकर]

थीं मेरा आदर्श बालपन से तुम मानिनि राधे,
तुम-सी बन जाने को मैंने व्रत-नियमादिक साधे ।
अपनेको माना करती थी मैं वृषभानु-किशोरी ;
भाव-गगन के कृष्णचंद्र की थी मैं चतुर चकोरी ।
था छोटा-सा गाँव हमारा, छोटी-छोटी गलियाँ ;
गोकुल उसे समझती थी मैं, गोपी सँग की अलियाँ ।
कुटियों में रहती थी, पर मैं उन्हें मानती कुंजें ;
माधव का संदेश समझती सुन मधुकर की गुंजें ।
बचपन गया, नया रँग आया, और मिला वह प्यारा ;
मैं राधा बन गई, न था वह कृष्णचंद्र से न्यारा ।
किंतु कृष्ण यह कभी किसी पर ज़रा प्रेम दिखलाता,
नख-शिख से तो जल जाती हूँ, खान-पान नहिं भाता ।
ख़ूनी भाव उठें उसके प्रति, जो हो प्रिय का प्यारा ;
उसके लिये हृदय यह मेरा बन जाता हत्यारा ।
मुझे बता दो, मानिनि राधे, प्रीति-रीति वह न्यारी ;
क्योंकर थी उस मन-मोहन पर निश्चल भक्ति तुम्हारी ?
तुम्हें छोड़कर बन बैठे जो मथुरा-नगर-निवासी,
कितने ही कर ब्याह हुए जो सुख-सौभाग्य-विलासी,
सुनतीं उनके गुण-गण को ही, उनको ही गाती थीं ;
उन्हें यादकर सब कुछ भूलीं, उन पर बलि जाती थीं ।
नयनों के मृदु फूल चढ़ातीं मानस की मूरत पर ;
रहीं ठगी-सी जीवन-भर उस क्रूर श्याम सूरत पर ।
'श्यामा' कहलाकर हो बैठीं बिना दाम की चेरी ;
मृदुल उमंगों की तानें थीं, 'तू मेरा—मैं तेरी' ।
जीवन का न्योछावर, हा-हा ! तुच्छ उन्होंने लेखा ;
गए, सदा के लिये गए, फिर कभी न मुड़कर देखा ।
अटल प्रेम फिर भी कैसे था, कह दो राधा-रानी ?
कह दो मुझे, जली जाती हूँ, छोड़ो शीतल पानी ।
ले आदर्श तुम्हारा मन को रह-रह समझाती हूँ ।
किंतु बदलते भाव न मेरे, शांति नहीं पाती हूँ ॥

सुभद्राकुमारी चौहान

भारत के प्राचीन विद्या-पीठ

दिक काल में यज्ञ कराने के लिये होता, उद्गाता और अध्वर्यु का काम पड़ता था । पहले तो एक व्यक्ति इन तीनों का कार्य संपादित कर देता था ; परंतु जब पीछे से ऋग्वेद, सामवेद और यजुर्वेद का संग्रह हुआ, तब एक व्यक्ति के लिये इन तीनों कृत्यों का कराना असंभव-सा हो गया । अतः ब्राह्मण लोग साधारणतः किसी एक ही वेद का अध्ययन करने लगे । जो प्रतिभाशाली होते थे, वे ही सब वेदों का अध्ययन करते थे । पहले ऐसा नियम था कि पिता अपने पुत्र को शिक्षा देता था । पीछे से जब कई विषयों की शिक्षा का प्रबंध करना पड़ा, तब 'चरणों' की स्थापना हुई । इन 'चरणों' में वेद और वेदांग की शिक्षा दी जाती थी । उपनिषत्-काल में अध्यात्म-विद्या की अधिक चर्चा थी—जिज्ञासु लोग दूर-दूर जाकर प्रसिद्ध आचार्यों से ब्रह्म-विद्या सीखते थे । ब्रह्मचारी गुरु के समीप

हाथ में समिधा (समित्-पाणि)[1] लेकर जाता था; इसका यह आशय होता था कि वह अंतेवासी (निकट रहनेवाला) होना चाहता है। गुरु उपनयन के पूर्व नाम, गोत्र और कुल का अनुसंधान करता था। छांदोग्योपनिषत् के चतुर्थ प्रपाठक में सत्यकाम जाबाल की कथा आती है। जब वह गौतम के पास गया, और अंतेवासी होने की इच्छा प्रकट की, तब गौतम ने पूछा—तुम्हारा क्या गोत्र है ? प्रायः १२ वर्ष तक ब्रह्मचारी रहना पड़ता था। जो चारों वेद पढ़ना चाहता था, उसको ४८ वर्ष तक ब्रह्मचर्य-व्रत का पालन करना पड़ता था[2]। मिगास्थिनीज़ (३०० वर्ष ईसा के पूर्व) कहता है कि यहाँ के विद्यार्थी ३७ वर्ष तक शिक्षा पाते थे; ब्रह्मचारी को अध्ययन के अतिरिक्त गुरु-सुश्रूषा भी करनी पड़ती थी; यज्ञ के लिये वन से लकड़ी लाना[3], आचार्य की गउएँ चराना[4], भिक्षा माँग लाना[5] और अग्नि-परिचर्या[6] ये उसके विशेष रूप से कर्तव्य थे।

किन-किन विषयों का पठन-पाठन उपनिषत्-काल में था, इसका पता छांदोग्योपनिषत् के नारद-सनत्कुमार-संवाद (छांदोग्य० ७। १। १-४) से चलता है। चारों वेद, इतिहास, पुराण, पितृ-यज्ञ-संबंधी शास्त्र, अंक-शास्त्र, निमित्त-शास्त्र, काल-शास्त्र, तर्क-शास्त्र, नीति-शास्त्र, शिक्षा, कल्प, छंद, क्षत्र-विद्या, नक्षत्र-विद्या सर्प-देवजन-विद्या आदि सब विद्याओं की शिक्षा दी जाती थी। दिव्यावदान (पृष्ठ ६३०) में भी विद्याओं की एक बृहत् सूची मिलती है। उनमें से बहुतों का ठीक अर्थ नहीं मालूम है।

शिक्षा समाप्त होने पर समावर्तन-संस्कार होता था। वेद का अध्ययन समाप्त होने पर गुरु उपदेश देता था कि सच बोलो; धर्म का आचरण करो; माता-पिता और आचार्य को देव-तुल्य समझो; शुभ-कर्म करो और पाप-कर्मों को छोड़ो। जिस प्रकार आजकल विश्व-विद्यालयों में बी० ए०, एम्० ए० इत्यादि की उपाधि देते समय वाइस चैंसलर उपदेश देता है कि 'जो शिक्षा तुमको दी गई है, उसके योग्य अपनेको प्रमाणित करो,' उसी प्रकार प्राचीन काल में आचार्य शिष्य की शिक्षा समाप्त होने पर उसे उपदेश देता था। उनका उल्लेख तैत्तिरीयोपनिषत् के शिक्षाध्याय में है[1]।

समावर्तन के पूर्व आचार्य को दक्षिणा नहीं देनी पड़ती थी; समावर्तन के समय दक्षिणा देने का नियम था। दक्षिणा में भूमि, गऊ, घोड़ा, छत्र,

---

१. एते ब्रह्मपरा ब्रह्मनिष्ठाः परं ब्रह्मान्वेष्यमाणा एष ह वै तत्सर्वं वक्ष्यतीति ते ह समित्पाणयो भगवंतं पिप्पलाद-मुपसन्नाः।

(प्रश्नोपनिषत्। प्रश्न १।१)

२. उपेतस्याचार्यकुले ब्रह्मचारिवासः। अष्टाचत्वारिंशद्वर्षाणि। पादोनम्। अर्धेन। त्रिभिर्वा।

(आपस्तंब० प्र० १। २। १२—१५)

३. समिधं आहर उपत्वानेष्ये (छांदोग्य० ४। ४। ५)

४. तमुपनीय कृशानामबलानां चतुःशता गा निराकृत्योवाचेमाः सौम्यानुसंव्रजेति (छांदोग्य० ४। ४। ५)

५. ब्रह्मचारी विभिक्षे, (छांदोग्य० ४। ३। ५)

६. उपकोसलो ह वै कामलायनः सत्यकामे जाबाले ब्रह्मचर्यं उवास, तस्य ह द्वादशवर्षाण्यग्नीन् परिचचार

(छांदोग्य० ४। १०। १)

१. वेदमनूच्याचार्योऽतेवासिनमनुशास्ति। सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। ...सत्यान्न प्रमदितव्यम्। धर्मान्न प्रमदितव्यम्। कुशलान्न प्रमदितव्यम्। भूत्यै न प्रमदितव्यम्। ...मातृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव। यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेव्यानि, नो इतराणि। एष आदेशः। एष उपदेशः। एषा वेदोपनिषत्। एतदनुशासनम्।

(तैत्तिरीयोपनिषत्—शिक्षाध्यायः, प्रथम वल्ली, ११ अनुवाक)

जूता या अन्न यथा-सामर्थ्य दिया जाता था। (मनु० २। २४५-२४६)

प्राचीन काल में नैतिक शिक्षा पर अधिक ज़ोर दिया जाता था। इसीलिये बालक को प्रारंभ से ही आचार की शिक्षा दी जाती थी। मनु ने सदाचार को धर्म का मूल बताया है (मनु० ४।१५५)। मनु ने यह भी कहा है कि आचार-द्वारा दीर्घायु, अक्षय धन और मनोवांछित संतान की प्राप्ति होती है। इसके विपरीत जो दुराचारी है, वह संसार में निंदित, दुःखभागी, व्याधि-ग्रस्त और अल्पायु होता है (मनु० ४। १५७)।

गुरु के लिये भी आचार-परायण होने का आदेश है। गुरु ब्रह्मचारी को आचार की शिक्षा देता है, इसीलिये उसको आचार्य कहते हैं। 'आचार्य'-शब्द का निर्वचन यास्क इस प्रकार करते हैं—"आचार्य आचारं ग्राहयति" (निरुक्त। १। २। २); अर्थात् आचार का ग्रहण कराने से ही 'आचार्य' संज्ञा पड़ी। नीचे के श्लोक से भी यही भाव प्रकट होता है—

आचिनोति च शास्त्रार्थमाचारे स्थापयत्यपि।
स्वयमाचरते यस्मादाचार्यस्तेन चोच्यते॥

अर्थात् शास्त्र का अर्थ समझाने, आचार की शिक्षा देने और स्वयं आचार-परायण होने के कारण गुरु को आचार्य कहते हैं। इस प्रकार 'आचार्य'-शब्द के निर्वचन से ही स्पष्ट है कि गुरु का मुख्य कर्तव्य ब्रह्मचारी को आचार की शिक्षा देना था। इसीलिये मनु ने विधान किया है कि उपनीत बालक को आचार्य पहले शौच, आचार, अग्नि-कार्य और संध्योपासन की शिक्षा देना आरंभ करे (मनु० २। ६९)। अथर्व-वेद-संहिता से ज्ञात होता है कि जो आचार्य स्वयं ब्रह्मचर्य के नियमों का पालन करता था, उसके पास बहुत-से लोग शिक्षा प्राप्त करने जाते थे। यथा—

आचार्यो ब्रह्मचर्येण ब्रह्मचारिणमिच्छते।
(अथर्व-वेद-संहिता ११। ७। १७)

यद्यपि गुरु के अधीन रहना ब्रह्मचारी का कर्तव्य होता था, तथापि ऐसा विधान था कि यदि आचार्य अधर्माचरण की आज्ञा दे, तो ब्रह्मचारी को उस आज्ञा का पालन नहीं करना चाहिए। गोभिल-गृह्यसूत्र (३। १। १५) में कहा भी है—

आचार्याधीनो भवान्यत्राधर्माचरणात्।

इसीलिये समावर्तन के समय आचार्य ब्रह्मचारी से कहता है—

यान्यस्माकं सुचरितानि तानि त्वयोपास्यानि नो इतराणि।

अर्थात् जो हमारे सत्कर्म हैं, उन्हीं का तुम अनुष्ठान करो, और जो अशुभ हैं, उनका अनुष्ठान न करो, चाहे वे हमारे ही कर्म क्यों न हों।

प्रारंभिक शिक्षा के संबंध में कौटिल्य के अर्थ-शास्त्र से पता चलता है कि चौल-कर्म के अनंतर लिपि और हिसाब-किताब की शिक्षा दी जाती थी[1]। महावग्ग (१। ४९) से ज्ञात होता है कि लेख, गणना और रूप (=सिक्का) की शिक्षा बालकों को दी जाती थी। ललित-विस्तर ग्रंथ में, भगवान् बुद्ध के संबंध में, लिखा है कि उनको लेख-शाला में पहले लिपि और अक्षरों की शिक्षा दी गई थी। कलिंग देश के राजा खारवेल के 'हाथीगुंफा'-लेख[2] से मालूम होता है, बाल्यावस्था में उसको लेख, गणना और रूप की शिक्षा दी गई थी। कटाह-जातक (संख्या १२५) से भी

१. वृत्तचौलकर्मा लिपिं संख्यानं चोपयुंजति।
(अर्थ-शास्त्र, पृ० १०)

२. कटक के पास उदयगिरि में हाथीगुंफा नाम की एक गुफा है। इसमें कलिंग के राजा खारवेल का एक लेख [illegible] है। यह लेख ईसा से १५७ वर्ष पूर्व का है।

पाया जाता है कि प्राचीन काल में लेख-शालाएँ होती थीं, और वहाँ फलक (तख़्ती) और वर्णक (क़लम) का व्यवहार किया जाता था।[1]

उच्च कोटि की शिक्षा के संबंध में यह अनुमान किया जाता है कि प्रत्येक आचार्य अपनी योग्यता के अनुसार १० से ५०० विद्यार्थियों तक को शिक्षा देता था। विविध विषयों का निर्णय करने के लिये परिषद् भी हुआ करती थीं[1]। पीछे से वर्तमान काल के सदृश विद्या-पीठों का भी संगठन हुआ; जहाँ बहुत-से आचार्य मिलकर विविध विषयों की शिक्षा दिया करते थे। सबसे प्राचीन विद्या-पीठ काशी और तक्षशिला के हैं। काशी संस्कृत-शिक्षा का अब तक एक प्रसिद्ध केंद्र है। परंतु तक्षशिला का वह प्राचीन गौरव लुप्त हो गया है।

काशी के सांदीपिनि मुनि ही ने बलराम और कृष्ण को शिक्षा दी थी। पाणिनीय शिक्षा के रचयिता प्रसिद्ध अन्नंभट्ट यहीं हुए थे। प्रसिद्ध ज्योतिषी कमलाकर भट्ट ने यहीं अपने ग्रंथ लिखे थे।

जन-श्रुति है कि तक्षशिला के विद्या-पीठ में पाणिनि और चाणक्य ने शिक्षा पाई थी। तक्षशिला का उल्लेख कई जातक-कथाओं में मिलता है, और उनसे ज्ञात होता है कि वहाँ तीनों वेद, १८ विद्या-स्थान और नाना प्रकार के शिल्प सिखलाए जाते थे[2]। काशी से भी सेठों के लड़के शिक्षा प्राप्त करने के लिये तक्षशिला जाया करते थे। इन जातक-कथाओं से यह भी मालूम होता है कि तक्षशिला के आचार्य की दक्षिणा १००० मुद्रा थी। आयुर्वेद की शिक्षा के लिये इसने विशेष-रूप से प्रसिद्धि पाई थी। राजा अजातशत्रु के प्रसिद्ध वैद्य कुमार भृत्यजीवक ने यहीं शिक्षा पाई थी। नागार्जुन, आर्य-देव और अश्वघोष के समसामयिक कुमारलब्ध ने भी यहीं शिक्षा पाई थी। कुमारलब्ध सौत्रांतिक-संप्रदाय का प्रतिष्ठापक था[1]।

राजशेखर[2] की काव्यमीमांसा से ज्ञात होता है कि उज्जयिनी और पाटलिपुत्र भी शिक्षा के प्रसिद्ध केंद्र थे—

श्रूयते च उज्जयिन्यां काव्यकार-परीक्षा।

× × ×

श्रूयते च पाटलिपुत्रे शास्त्रकार-परीक्षा।

"अत्रोपवर्षवर्षाविह पाणिनिपिंगलाविहव्याडिः।

वररुचिपतंजली इह परीक्षिताः ख्यातिमुपजग्मुः॥"

(पृष्ठ ५५)

अर्थात् उज्जयिनी में काव्यकार-परीक्षा और पाटलिपुत्र में शास्त्रकार-परीक्षा होती थी। काव्यमीमांसा में जिस जन-श्रुति का उल्लेख है, उसके अनुसार उपवर्ष, वर्ष, पाणिनि इत्यादि प्रसिद्ध वैयाकरणों ने पाटलिपुत्र में शास्त्रकार-परीक्षा दी थी।

ह्यून-सांग (Hiuen T siang) और इत्सिंग (I-T sing) के ग्रंथों में नालंद-विद्या-पीठ का विवरण पाया जाता है। ह्यून-सांग एक चीनी यात्री था, जो महाराज हर्षवर्द्धन के समय में भारतवर्ष आया था। ह्यून-सांग (६२९-६४५ ई०) के समय में नालंद एक प्रसिद्ध विद्या-पीठ था। फ़ा-हियान

१. बृहदारण्यक, ६ । २; मनु० १२ । १०८-११३ । बौद्धायन-धर्म-सूत्र । प्रथम प्रश्न । अ० १ । ७-१० ।

२. तित्तिर-जातक; दुम्मेध-जातक, पंचावुध-जातक इत्यादि।

१. देखिए कर्न-कृत *Manual of Buddhism*. (पृष्ठ १२७)

२. राजशेखर का समय नवीं शताब्दी (ईसा के पश्चात्) है।

(३६६-४१४ ई०) नालंद गया था ; परंतु उस समय कदाचित् वहाँ कोई विहार न था। नालंद का विद्या-पीठ सन् ४५० ई० के लगभग स्थापित हुआ होगा। नालंद पटने से ३४ मील दक्षिण, और राजगृह (राजगीर) से १० मील उत्तर, है। आजकल जहाँ पर बड़गाँव है, वहीं पहले नालंद था।[1]

ह्यून-सांग[2] कहता है, यदि दूर-दूर के देशों से आए हुए विद्वान् विद्या-पीठ के भवन में प्रवेश चाहते हैं, तो द्वारपाल उनसे कुछ कठिन प्रश्न पूछता है। बहुत-से उन प्रश्नों का उत्तर नहीं दे सकते, और लौट जाते हैं। इससे ज्ञात होता है कि वहाँ के द्वारपाल भी अच्छी शिक्षा पाए हुए होते थे। ह्यून-सांग के समय में नालंद के संघाराम में बहुत-से भिक्षु निवास करते थे। वह ६ प्रसिद्ध विद्वानों का नाम भी देता है ; जिन्होंने बहुत-से ग्रंथों की रचना की थी। ह्यून-सांग कहता है, नालंद की इतनी प्रतिष्ठा थी कि कुछ लोग अपने को नालंद का विद्यार्थी बताकर समाज में आदर पाते थे। इत्सिंग नालंद के विहार में दस वर्ष (६७५-६८५ ई०) रहा[3]।

उस समय वहाँ भिक्षुओं की संख्या ३००० से अधिक थी। २०० से अधिक गाँव लगे हुए थे[4]। भिक्षुओं के अतिरिक्त दो प्रकार के और विद्यार्थी होते थे। एक तो बौद्ध-उपासक, जो बौद्ध-धर्म के ग्रंथ पढ़ने आते थे, और जिनका विचार एक-न-एक दिन बौद्ध-भिक्षु बनने का था। दूसरे वे थे, जो केवल व्यावहारिक शिक्षा के लिये आते थे। इन दोनों प्रकार के विद्यार्थियों को अपनी जीविका का स्वयं प्रबंध करना पड़ता था। परंतु यदि ये कुछ संघाराम का कार्य करते थे, तो विहार की ओर से इनको भोजन मिलता था[1]। उसके समय में ८ बड़े और ३०० छोटे कमरे (hall) थे। उसने शिक्षा के प्रकार के संबंध में भी कुछ कहा है[2]। वह कहता है, सबसे पहले शब्द-विद्या की शिक्षा दी जाती थी। इस शास्त्र के पाँच ग्रंथ पढ़ने की चाल थी। ६ वर्ष की अवस्था के बालक का विद्यारंभ होता था। सबसे पहले 'सिद्धिरस्तु' (या 'सिद्धवस्तु') पढ़ाया जाता था। यह ६ मास में समाप्त होता था। इसके पश्चात् 'सूत्र-ग्रंथ' पढ़ाया जाता था।

इत्सिंग कहता है, इसमें १००० श्लोक हैं, और यह ग्रंथ पाणिनि का रचा हुआ है। ८ वर्ष के बालक को यह ग्रंथ पढ़ाया जाता था, और ८ महीने में इस ग्रंथ को बालक कंठस्थ कर लेते थे। तदनंतर धातु-पाठ और तीन खिल अर्थात् अष्ट-धातु, मंड या मुंड और उणादि-सूत्र की शिक्षा दी जाती थी। तीन वर्ष के निरंतर परिश्रम के उपरांत विद्यार्थी तीन खिलों को समझ सकते थे। इसके पीछे विद्यार्थी को काशिका-वृत्ति पढ़ाई जाती थी। १५ वर्ष की अवस्था के बालक इस ग्रंथ को पढ़ते और ५ वर्ष में इसके समझने की योग्यता प्राप्त करते हैं। शब्द-विद्या के अतिरिक्त हेतु-विद्या और अभिधर्म-कोष (metaphysics) की भी शिक्षा दी जाती थी। नालंद-विहार

---

१. *Cunningham: Ancient Geography* (पृ० ४६८)

२. *Buddhist Records of the Western World by Beal*, भाग २, (पृ० १६७-१७१)।

३. *A Record of the Buddhist Religion by I T.Sing* (भूमिका पृ० ३३)

४. (,, पृ० ६५)

१. वही (भूमिका पृ० १०५-१०६)

२. वही (भूमिका पृ० १६९)

में शास्त्रार्थ-सभा भी हुआ करती थी, जहाँ विविध विषयों पर वाद-विवाद होता था।

डॉक्टर सतीशचंद्र विद्याभूषण ने अपने 'mædieval school of Indian Logic' नामक ग्रंथ में नालंद के अतिरिक्त ५ और बौद्ध विद्या-पीठों का उल्लेख किया है। उनके नाम नीचे लिखे जाते हैं—विक्रमशिला, ओदंतपुरी, श्रीधन्यकटक, कांचीपुर और काश्मीर।

विक्रमशिला का विद्या-पीठ बिहार-प्रदेश में था। ८ वीं शताब्दी में धर्मपाल महाराज ने इसकी स्थापना की थी। यहाँ १०४ पंडित कार्य करते थे। 'पंडित' की उपाधि राजा की ओर से दी जाती थी, और जो विद्या में विशेष निपुण होते थे, उनके चित्र भित्तियों पर खींचे जाते थे। काव्य-मीमांसा से ज्ञात होता है कि किसी समय काव्यकार-परीक्षा और शास्त्रकार-परीक्षा में उत्तीर्ण होनेवाले सज्जन ब्रह्मरथ पर चढ़ाए जाते थे, और उनके हाथ में पट्ट बाँध देते थे। विक्रमशिला में 'पंडित' की उपाधि देने की ही प्रथा थी। बख़्तियार ख़िलजी ने सन् १२०३ ई० के लगभग इसको नष्ट-भ्रष्ट कर दिया।

ओदंतपुरी का विद्या-पीठ पाल-राजों के समय में प्रसिद्ध हुआ। यह भी ८ वीं शताब्दी का एक विद्या-पीठ था। गोपाल राजा इसके संस्थापक थे। हीनयान के १००० और महायान के ५००० भिक्षु यहाँ निवास करते थे। यहाँ एक बड़ा पुस्तकालय भी था। वह सन् १२०२ ई० में, मुसलमानों-द्वारा, नष्ट किया गया।

श्रीधन्यकटक का विद्या-पीठ विदर्भ-देश (मिथिला) में कृष्णा-नदी के तट पर था। इसने सिद्धनागार्जुन के समय में प्रसिद्धि पाई। नागार्जुन आयुर्वेद और रसायन-शास्त्र के पंडित थे। इतिहास के कथनानुसार नागार्जुन सन् ४०० ई० से पहले के हैं। यहाँ संस्कृत और पाली दोनों भाषाओं की शिक्षा दी जाती थी। तिब्बत का विद्या-पीठ (Dapung) इसी के ढंग पर बना था।

इनके अतिरिक्त कांचीपुर और काश्मीर में भी विद्या-पीठ थे।

भारत के प्राचीन विद्या-पीठों का जो संक्षिप्त विवरण ऊपर दिया गया है, उससे पाठकों को विदित हो गया होगा कि हमारे पूर्वजों ने शिक्षा का समुचित प्रबंध किया था। उस समय के राजा लोग विद्वानों का आदर करते थे, और उनको उपाधि आदि देकर उनका उत्साह बढ़ाते थे। हमने यह भी देखा कि कुछ विद्या-पीठ राजों ही के द्वारा स्थापित हुए थे। इस प्रकार शिक्षा के प्रचार में राजा लोग बहुत कुछ सहायक होते थे।

नरेंद्रदेव एम्० ए०

प्रेमाश्रम

(समालोचना)
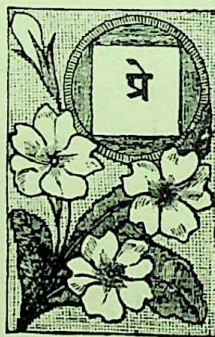
प्रेमचंदजी से तो हम निराश हो चुके थे। 'सेवा-सदन' के पश्चात् 'वरदान' के दर्शन होने पर हमें बहुत शोक हुआ था। 'वरदान' क्या था, रुपए की आवश्यकता थी, समय का अभाव था, और बे-मन का काम था। फिर हमने सुना, वह किसी स्कूल के हेड-मास्टर हो गए; उसे भी छोड़कर किसी पत्रिका के संपादक हो गए। हमने आशा छोड़ दी। देश में साहित्य-रत्न के इतने कम जौहरी हैं कि वह मुदर्रिसी या संपादकीय प्रूफ़-रीडिंग किया करें! किसी और देश में 'सेवा-सदन' के लेखक को साहित्य-संसार ने जन्म-भर के लिये स्वतंत्र

कर दिया होता, परंतु यहाँ साहित्य-सेवा आप शौक़िया ही कर सकते हैं। पेट के लिये कोई और धंधा अवश्य चाहिए। अस्तु।

वरदान के बाद 'प्रेमाश्रम' के दर्शन हुए। फिर वे ही आशाएँ अंकुरित हुईं। हिंदी-साहित्य के सौभाग्य से प्रेमचंदजी की लेखनी में कोई भी शिथिलता नहीं आई। संसार दूसरा है; समय भी दूसरा है। 'सेवा-सदन' में चित्र कम हैं; पर साफ़ हैं। 'प्रेमाश्रम' में चित्र बहुत हैं, और उनमें से कुछ दुर्बोध भी हैं, परंतु चित्रण-कला में कहीं भी शिथिलता नहीं आने पाई है। 'सेवा-सदन' का उद्देश्य सामाजिक है, और प्रेमाश्रम का राजनीतिक। परंतु दोनों देश-प्रेम के सूत्र में बँधे हैं। हिंदी-संसार के उपन्यास-साहित्य में 'प्रेमाश्रम' 'सेवा-सदन' से कम नहीं है। और, यदि किसी पुस्तक के प्रभाव से उसके पद का निरीक्षण हो, तो शायद 'प्रेमाश्रम' आधुनिक भारतीय उपन्यास-साहित्य में सर्व-श्रेष्ठ ठहरे।

'प्रेमाश्रम' की समालोचना करने के लिये किस पद्धति का प्रयोग करें? बंकिमचंद्रजी के उपन्यासों को देखकर अँगरेज़ी-साहित्य से परिचित समालोचक तुरंत कह सकते हैं कि ये स्कॉट के ढर्रे के ऐतिहासिक उपन्यास हैं। रवींद्रनाथजी के उपन्यासों को आप सामाजिक कह सकते हैं। आपको अँगरेज़ी-साहित्य में इनकी जोड़ के बहुत-से उपन्यास-लेखक मिलेंगे। जॉर्ज इलियट, थैकरे या डिकेंस, इनके तथा रवींद्रनाथजी के उपन्यास-क्षेत्र में कोई भारी भेद नहीं है। परंतु प्रेमचंदजी के उपन्यास इन श्रेणियों में से किसी में नहीं आ सकते। इन उपन्यासकारों का काम यह है कि किसी समय के समाज का चित्र खींच दिया, और पात्रों से सहानुभूति दिखाकर, उनकी हँसी उड़ाकर, या उन्हें नीचा दिखाकर, पाठकों के चरित्र सुधारने का प्रयत्न किया। परंतु इनमें भविष्य का चित्र नहीं है। कला में शायद ये प्रेमचंदजी से अधिक निपुण हों; परंतु इनमें वह उत्तेजना-शक्ति नहीं, इतना कल्पना का विकास नहीं। वे समाज के सामने एक आईना रख सकते हैं, जिसे देखकर वह हँसे या कुढ़े; परंतु उस आईने के पीछे कोई चित्र नहीं, जिसकी सुंदरता तक पहुँचने के लिये उसके हृदय में उत्तेजना हो।

प्रेमाश्रम के उपन्यास-पट पर सामने तो १९२१ के भारतीय समाज का स्पष्ट चित्र है, और पीछे किसी भावी भारत की छाया है। ऐसे चित्र का क्या नामकरण हो? क्या 'प्रेमाश्रम' दार्शनिक उपन्यासों की श्रेणी में रक्खा जाय?

श्रेणी-बद्ध करना समालोचक के काम को सरल करना है। परंतु हम उसे ऐसा करने में असमर्थ हैं। अस्तु। चाहे जो कुछ कठिनता हो, हम बिना नामकरण किए ही इसका अवलोकन प्रारंभ करते हैं।

उपन्यास की भूमिका प्रायः यों होती है—कोई पहाड़ी दृश्य है, प्रकृति का कोई विलक्षण आभास है। पात्रों के दर्शन हुए। कोई राजकुमार है, तो कोई उसका सखा है, या वैरी है। दैवयोग से किसी नवयौवना से भेंट हो जाती है। वह भी कोई राजकुमारी है। पर उसका पिता विवाह के लिये राज़ी नहीं होता। बहुत-सी कठिनाइयों के बाद—जिनमें और भी उसी मेल के पात्र अपना दर्शन देते हैं—मिलन या प्राणांत का विवरण देकर कहानी समाप्त होती है।

यहाँ सुक्खू चौधरी, बलराज, रबी की फ़सल, नौकरी और साम्यवाद को कौन पूछता है। बड़े-बड़े राज-मंदिरों, क़िलों और उनके तिलिस्मों के मुक़ाबले में बेचारे लखनपुर या हाजीपुर के झोपड़ों को कौन देखता है? सेवा-सदन का प्रसंग तो शायद प्रचलित उपन्यासों के पाठक समझ सकें। प्रेमाश्रम में क्या है? भला दुखरन भगत, मनोहर, बेगार, ग़ौस ख़ाँ और क़ादिर मियाँ के दिहाती झगड़ों में क्या मनोरंजन?

यह प्रेमचंदजी का ही काम था कि दिहाती जीवन का करुणा-जनक दृश्य दिखाने में वह सफल हुए हैं। यों तो राय कमलानंद, गायत्री, विद्या, ज्ञानशंकर, ज्वालासिंह, डॉ० इर्फ़ानअली के राग-रंग नगर-निवासियों के हैं; परंतु उनका अस्तित्व दिहात ही से है। और, सुक्खू, बिलासी, मनोहर, बलराज, क़ादिर मियाँ—ये तो पूरे दिहाती ही हैं।

चरित्र-चित्रण-कला को जाने दीजिए। शायद किसी और समय दिहात और बेगार, मुक़द्दमेबाज़ी और नौकरी के प्रश्न इतने रुचिकर न होते, पर यह उपन्यास सन् १९२१ का लिखा हुआ है। और, उस वर्ष के अंदर जितना आंदोलन और राजनीतिक ज्ञान दिहातों में पहुँच गया, उतना शायद ही साधारणतः ५० वर्ष में पहुँचता। अस्तु।

प्रेमाश्रम हाजीपुर का दूसरा नाम है, परंतु उपन्यास की नींव में लखनपुर है। वह बनारस के पास हो, या

कलकत्ते के—इससे कोई प्रयोजन नहीं। सुक्खू चौधरी के-से पंचों के खँड़हर, क़ादिर मियाँ के-से नरम दिहाती नेता, मनोहर के-से अक्खड़ किसान, बलराज के-से उदार-हृदय, बलिष्ठ, नवयुवक भारतवर्ष के प्रत्येक अच्छे गाँव में देख सकते हो। यों तो ये बहुत समय से अज्ञानावस्था का सुख भोगते चले आ रहे थे। उनके प्रभाशंकर के-से ज़िमींदार थे; जिनके अभी तक पाश्चात्य सभ्यता की हवा नहीं लगी थी, जो अभ्यागतों के सम्मान में अपनी इज़्ज़त समझते थे, जिनकी अपने असामियों के प्रति सहानुभूति थी, जिन्हें अदालत जाते डर लगता था। ऐसे समय ज़िमींदार भी सुखी थे और उनके किसान भी।

परंतु इधर पश्चिमी सभ्यता का आगमन हुआ। चीज़ों का निर्ख़ बढ़ा, सो तो ठीक ही था। मालिकों की आवश्यकताएँ भी बढ़ीं। जिन ज़िमींदारों के पुरखे बहेली पर सवार होते थे, घुटनों के ऊपर तक धोती और चार आने की सिलाई का अँगरखा या मिर्ज़ई पहनते थे, उनकी संतानों के लिये मोटर की सवारी, लंबी रेशमी किनारे की धोती और साहबी ठाट चाहिए। दिहात की उन्नति कौन करता है? इज़ाफ़ा और बे-दख़ली का अत्याचार होना आवश्यक था।

अभी तक लखनपुर पर सिर्फ़ उन्हीं जंतु-रूप मनुष्यों का अत्याचार है, जो वर्षा-ऋतु के बाद गाँवों पर धावा करते हैं। अभी ज्ञानशंकर ने ज़िमींदारी पर हाथ नहीं लगाया। इसलिये अभी मनोहर के साथियों का यही विचार है कि अँगरेज़ हाकिम अच्छे होते हैं। परंतु इधर प्रभाशंकर का बुढ़ापा, ज़िमींदारी की आमदनी से ज़्यादा ख़र्च, और उधर ज्ञानशंकर पर पश्चिमी शिक्षा का प्रभाव और यौवन की उमंग! ज्ञानशंकर ने हर तरफ़ हाथ बढ़ाना शुरू कर दिया। बस, इनके पदार्पण से उपन्यास का प्रादुर्भाव होता है।

यहाँ यह प्रश्न होता है कि उपन्यास में कोई नायक तथा नायिका भी हैं या नहीं? यदि हैं, तो कौन हैं, और नहीं हैं, तो क्यों नहीं?

यह तो मान ही नहीं सकते कि इस उपन्यास में नायक और नायिका हैं ही नहीं। यदि चरित्र की उज्ज्वलता पर ही ध्यान दिया जाय, तो एक ओर प्रेमशंकर और दूसरी ओर विद्या, ये ही पात्र लेखक के आदर्श मालूम होते हैं। लखनपुर में क़ादिर मियाँ और शहर में राय कमलानंद, इन पात्रों की ओर भी लेखक का आदर-भाव है। परंतु हमारा विचार है कि चरित्र की उज्ज्वलता ही की कसौटी पर नायक तथा नायिका की परख नहीं कर सकते। देखना यह चाहिए कि किस चरित्र के चित्रण में लेखक ने अधिक परिश्रम किया है, किस पात्र के सहारे कहानी आगे बढ़ती है, और किसके न होने से उसका अंत हो जाता है। बंकिम की 'दुर्गेश-नंदिनी' में जगत्सिंह प्रेमी है, और तिलोत्तमा उसकी प्रेमिका; परंतु आयेशा उपन्यास की नायिका है। 'सेवा-सदन' में उपन्यास को 'सुमन' का सहारा है; यद्यपि चरित्र बिट्ठलदास का ही आदरणीय है। इस उपन्यास में ज्ञानशंकर का चरित्र आदरणीय नहीं है। गायत्री भी विद्या के सामने तुच्छ मालूम पड़ती है। परंतु हैं ये ही उपन्यास के नायक और नायिका। ज्ञानशंकर न होते, तो लखनपुर का कोई नाम ही न सुनता। इतिहास तो विपत्तियों का ही लिखा जाता है। देखिए न, भविष्य के समृद्धिशाली, सुखमय लखनपुर की झलक दिखाने में लेखक ने कितने कम पन्ने रँगे हैं। यदि प्रभाशंकर मालिक बने रहते, तो मनोहर से क्यों झगड़ा उठता? इज़ाफ़े की क्यों तजवीज़ होती? उपन्यास के लिये एक शिक्षित, उत्साही, ऐश्वर्य-लोलुप, परंतु चरित्र-हीन नायक की आवश्यकता थी। ज्ञानशंकर की सृष्टि करना लेखक को अभीष्ट और आवश्यक था।

ज्ञानशंकर का चरित्र बहुत ही जटिल है। एक भारतीय नवयुवक पर पश्चिमी शिक्षा की नई रोशनी का प्राथमिक प्रभाव क्या पड़ता है, यह बहुत ही ख़ूबी के साथ दिखाया गया है। यह बात नहीं थी कि उक्त शिक्षा ने उसकी भारतीय आत्मा को ही नष्ट कर दिया हो। जब कभी किसी पवित्र आत्मा के सामने उसकी ऐश्वर्य-लोलुपता का परदा हट जाता है, तो हमें उसकी अंतरात्मा के मधुर प्रकाश की झलक देख पड़ती है। परंतु फिर परदा गिर जाता है, और ज्ञानशंकर फिर उसी ऐश्वर्य-छाया की ओर बढ़ता हुआ दिखाई देता है। ज्ञानशंकर नायक होते हुए भी अपने भाग्य का विधाता नहीं है। विधाता समय है। वह समझता है कि अपनी चतुरता के बल पर वह अपना भविष्य आनंदमय बना सकेगा; परंतु समय उसे भी नचाता है। प्रभाशंकर की भलमनसाहत, प्रेमशंकर के त्याग, गायत्री की लालसा, ज्वालासिंह के स्वाभिमान, राय कमलानंद की निष्काम संसार-परता—

सभी से वह लाभ उठाता मालूम होता है । पर किस लिये ? पुत्र मायाशंकर के लिये । क्या यह निश्चय है कि उसकी वृत्ति अपने पिता के पदांक का अनुसरण करेगी ? वह भविष्य, जिसके लिये ज्ञानशंकर ने राय कमलानंद को ज़हर दिया, और गायत्री के फाँसने को प्रेम-जाल रचा, उसके हाथ से निकलकर प्रेमशंकर से मिल गया । राय कमलानंद की भविष्य-वाणी पूर्ण हुई कि "धन-संपत्ति तुम्हारे भाग्य में नहीं है, तुम जो चालें चलोगे, सब उलटी पड़ेंगी ।" There is a destiny that shapes our ends, rough hew them how we will. मनुष्य कितना दीन, कितना परवश है ! और भावी कितनी प्रबल, कितनी कठोर ! ऐश्वर्य-लोलुपता का ऐसा विशाल चित्र हिंदी-साहित्य-भर में शायद ही और हो।

उपन्यास के दो अंग हो सकते हैं । एक सामाजिक, दूसरा राजनीतिक । ज्ञानशंकर दोनों को बाँधे हुए है। परंतु इन दोनों में एक-एक प्रधान पात्र भी है । सामाजिक अंग पर गायत्री का प्रभुत्व है, और राजनीतिक अंग के विधाता प्रेमशंकर हैं ।

गायत्री के चरित्र का गाँव और इज़ाफ़े से कोई संबंध नहीं है। वह एक बड़ी ज़िमींदारी की मालकिन अवश्य है। उसके इंतिज़ाम के लिये वह ज्ञानशंकर को बुलाती है। परंतु इन बातों का उसके चरित्र से विशेष संबंध नहीं है। वह विधवा है । उसमें धर्म-निष्ठा भी है । परंतु साथ ही संसार के सुख-भोग की सामग्री भी उसके पास बहुत है। सुमन सधवा थी, उसका पतन समाज की कुरुचि और उसकी दरिद्रता ने किया। गायत्री का पतन उसमें धर्म-निष्ठा होते हुए भी सांसारिक लालसा से होता है।

'आँख की किरकिरी' में माया (विनोदिनी) का पतन दूसरी तरह होता है। रवींद्रनाथजी ने एक ही भाव को लेकर हर पहलू से उसे दिखाया है। माया का लालसामय प्रेम सामाजिक बंधनों को तोड़कर नग्न-रूप में अपनी कला के बल से हमें चकित अवश्य कर देता है । पर विचार-पूर्वक देखिए, तो यह हिंदू-समाज के लिये स्वाभाविक नहीं है । गायत्री का पतन धर्म-जाल की ओट से होता है । उसे मालूम नहीं होता कि वह किधर जा रही है, और जब अकस्मात् उसके सामने पाप का अंधकारमय गढ़ा दिखाई देता है, तो फिर वह समाज को अपना मुँह नहीं दिखाती । हिंदू-विधवा का पतन यों ही होना स्वाभाविक है ।

जीवित उदाहरणों को किसी तीर्थ में जाकर देखिए। जिस धर्म के नाम पर व्यभिचार होता है, उसका सजीव प्रतिबिंब गायत्री और ज्ञानशंकर के चित्र में है । सुमन का उद्धार करना आवश्यक था; नहीं तो सेवा-सदन का विकास ही न होता । गायत्री के उद्धार की कोई आवश्यकता नहीं थी, इसलिये लेखक ने उसे चार सतरों के अंदर अनंत विस्मृति में विलीन कर देना ही ठीक समझा । ज्ञानशंकर के लिये भी ऐसा ही अंत होना ज़रूरी था।

उपन्यास का वह अंश अधिक करुणामय है, जिसमें लखनपुर की गाथा है। इस अंश के प्रधान पात्र प्रेमशंकर हैं। यदि पश्चिमी शिक्षा का एक फल ज्ञानशंकर की ऐश्वर्य-लोलुपता में है, तो दूसरा फल प्रेमशंकर की निष्काम जाति-सेवा में है। जिस समुद्र में हलाहल विष है, उसमें अमृत भी है। प्रेमशंकर उस शिक्षा के अमृतरूपी फल हैं। कुछ मित्रों का ख़याल है कि प्रेमशंकर में गाँधीजी की छाया है। हम लेखक के मन की थाह लेने का साहस तो नहीं कर सकते, पर हमारा कहना यह है कि रशिया के महर्षि टाल्सटाय से क्यों न तुलना कीजिए।

ज्ञानशंकर चाहते हैं कि प्रेमशंकर को गाँव का आधा हिस्सा न देना पड़े । इसके लिये क्या-क्या जाल रचे, श्रद्धा को कहाँ तक भरा, बिरादरी को कहाँ तक उभाड़ा ! परंतु प्रेमशंकर तो अमेरिका से और ही पाठ सीख आए हैं । उन्हें साम्य वादियों के मतानुसार भारत में भी एक आदर्श कृषक-संस्था तैयार करनी थी । गाँव को तिलांजलि दे दी, और जाति-सेवा में लीन हो गए । श्रद्धा छूट गई ; उसका उन्हें समय-समय पर शोक होता है । भाई से बिगाड़ हो गया ; इसके लिये भी उनकी आत्मा को क्लेश होता है। पर वह अपने कर्तव्य से विचलित नहीं होते । इसीलिये लेखक ने भी भविष्य की बागडोर को उनके हाथ से नहीं जाने दिया।

वह हाजीपुर को एक साम्य-वादी गाँव बना देते हैं, लखनपुर का उद्धार करते हैं, और मायाशंकर को आदर्शज़िमींदार का पद देने में सफल होते हैं । प्रेमशंकर के संसर्ग में जो पात्र आया, उसी को उन्होंने पवित्र कर दिया। उद्दंड मनोहर, स्वार्थी ज्ञानशंकर, और लालसामयी गायत्री इस योग्य नहीं थे ; इसीलिये लेखक ने

इनका अंत ही कर दिया। सुक्खू चौधरी बैरागी हो गया। ज्वालासिंह डिपुटी-कलेक्टरी छोड़कर जाति-सेवा में रत हुए। डॉ० इर्फ़ानअली ने वकालत छोड़ दी, और डॉ० प्रियानाथ एक सर्व-प्रिय डॉक्टर हो गए। यहाँ तक कि पतित दयाशंकर का भी उन्होंने अपनी सुश्रूषा से उद्धार कर दिया। प्रेमशंकर का जीवन एक प्रकार से श्रद्धा के बिना अपूर्ण-सा था; सो श्रद्धा और प्रेम का ज्वाला-द्वारा सम्मिलन भी हो गया।

और भी पात्र हैं। गाँव के अत्याचारी अँगरेज़ नहीं हैं। मनोहर और सुक्खू को ग़ौस ख़ाँ तथा साहबों के अहलकारों से ही शिकायत है। ज्वालासिंह न्याय करने का प्रयत्न करते हैं, परंतु धोखा खाते हैं, और नौकरी से इस्तीफ़ा देना पड़ता है। ग़ौस ख़ाँ का वही अंत हुआ, जो अत्याचारी ज़िलेदारों का हुआ करता है। मनोहर की उद्दंडता का भी फल उसे मिल गया। सुक्खू को मनोहर के खेतों की बड़ी लालसा थी, परंतु गाँव पर विपत्ति आने पर वह उनका नेता हो गया। क़ादिर मियाँ गाँव के सच्चे सेवक बने रहे। दुखरन भगत पर विपत्ति का दूसरा ही असर हुआ। निराशा ने उसके हृदय में जन्म-भर की संचित शालग्राम के प्रति श्रद्धा उखाड़कर फेंक दी। बलराज गाँव के भविष्य का युवक है। उसमें जो स्वतंत्रता है, वह किसी में नहीं; क्योंकि उसके पास जो परचा आता है, उसमें लिखा है कि रूस में किसानों का राज्य है। यदि परिस्थितियाँ प्रतिकूल हुईं, तो वह भविष्य का बोलशेविक होगा। मनोहर की पतिव्रता गृहिणी विलासी इन के झगड़ों को शांत करने का प्रयत्न करती रहती है; पर गाँव में विप्लव उसी के द्वारा होता है। न उस गाँव की द्रौपदी पर ग़ौस ख़ाँ का अत्याचार होता, न विद्वेष की आग इतनी भड़कती! इस विप्लव के शांत होने पर जो बचते हैं, वे उपसंहार में भावी गवर्नर हिज़ एक्सिलेंसी गुरदत्त राय चौधरी और भावी ज़िमींदार मायाशंकर के समय में राम-राज्य का सुख-भोग करते हुए दर्शन देते हैं। उपन्यास-लेखक के साथ हम भी कहते हैं—"तथास्तु"।

कथा-प्रसंग के परे और भी पात्र हैं। राय कमलानंद का चित्र विशेषकर भावमय है। मालूम नहीं, यह उपन्यास-लेखक के मस्तिष्क से निकले हैं, या इनकी जोड़ के इस संसार में कोई हैं भी। इनका जीवन सांसारिक विलास में मग्न है। पर इससे उनके पौरुष में कोई फ़र्क़ नहीं आता। इनकी योग-क्रियाएँ इसीलिये थीं कि वे जीवन की चरम सीमा तक सुख-भोग कर सकें। इनका आत्मबल इतना प्रखर था कि ज्ञानशंकर भी उनके सामने नहीं ठहर सका। परंतु जीवन का आदर्श त्रुटियों से भरा था। ज्ञानशंकर की कुटिलता ने इन्हें भी सच्चा मार्ग दिखा दिया; जिसकी झलक हमें उपन्यास के अंत में देखने को मिलती है।

विद्या और श्रद्धा, इन दोनों के चित्र भी उल्लेख के योग्य हैं। विद्या और श्रद्धा दोनों साधारण हिंदू-रमणियाँ हैं। विद्या के चरित्र में कोई विशेषता नहीं है; क्योंकि उसके सामने कोई जटिल समस्या ही कभी नहीं आई। और, जब उसपर कष्ट पड़ता है, तो लेखक उसे बरदाश्त करने के योग्य न समझकर उसका अंत ही कर देते हैं। कुटिल ज्ञानशंकर की पतिव्रता पत्नी का यही अंत होना था। श्रद्धा के सामने पहले ही से धर्म और प्रेम की समस्या मौजूद है। पर प्रेमशंकर के चरित्र का अंत को उस पर इतना प्रभाव पड़ा कि धर्म की शृंखलाएँ ढीली पड़ गईं। लेखक ने श्रद्धा को प्रेम से मिलाकर दोनों का जीवन सार्थक कर दिया।

पात्रों का अवलोकन तो थोड़ा-बहुत हो चुका। अब लेख-शैली पर विचार कीजिए। प्रेमचंदजी की यह पुरानी आदत है कि भाषा हिंदी ही रहती है, पर शब्दों का रूप पात्रानुसार बदलता रहता है। सेवा-सदन में मुसल्मानों की दलील सलीस उर्दू में है, और अँगरेज़ी पढ़े-लिखे पात्रों की भाषा में अँगरेज़ी की खिचड़ी है। प्रेमाश्रम में दिहाती पात्र भी हैं, इसलिये उनके काम में आनेवाले शब्द भी वैसे ही हैं। रिसबत, सरबस, मुदा, मसक़त, मूरुख, सहूर, अचरज, कागद, ये सब दिहातियों के ही शब्द हैं। भाषा सिर्फ़ करतार की बिगड़ गई है। वह ठेठ गँवार है। और जितने दिहाती हैं, उनकी भाषा में पूर्वोक्त प्रकार के शब्दों के आने से लालित्य बढ़ ही गया है। विशुद्ध भाषा के पक्षपाती चाहे नाक-भौं सिकोड़ें; परंतु हमारी समझ से इसमें कोई हर्ज नहीं, यदि पात्रों की भाषा में शब्द उनके व्यवहार में आनेवाले ही रक्खे जायँ। व्याकरण की टाँग तोड़ने के हम भी विरुद्ध हैं। हम यह नहीं चाहते कि बंगाली पात्र की भाषा में लिंग की ग़लतियाँ की जायँ, और अँगरेज़ की ज़बान से तवर्ग के शब्द ही न निकलें। पर यदि दो-चार शब्दों के पात्रानुसार गढ़

देने से उसका अस्तित्व प्रकट या सजीव किया जा सके, तो कोई हानि नहीं। ऐसी दशा में लेखक भाषा को बिगाड़ने का दोषी नहीं ठहराया जा सकता। इन शब्दों ने दिहातियों के वार्तालाप को स्वाभाविक बना दिया है; उसमें जान डाल दी है। इनसे भाषा को कोई क्षति नहीं पहुँचती।

प्रेमचंदजी ने लेख-शैली में एक बात और स्वाभाविकता की उत्पन्न कर दी है। पुरानी हिंदी में "इनवर्टेड कामाज़" नहीं थे। इधर जब से अँगरेज़ी का हिंदी पर प्रभाव पड़ा, फुलस्टाप को छोड़कर और सभी चिह्नों ने हिंदी पर अपना प्रभुत्व जमा लिया। ये आगंतुक "इनवर्टेड कामाज़" हिंदी में बहुत खलते थे। लेखक ने इनका बहिष्कार ही कर दिया है। वार्तालाप में पात्र का नाम और उसके वाक्य—बस, काम निकल गया। कोई आंतरिक विचार हुए, या कोई लंबी बात-चीत हुई, तो इसकी भी आवश्यकता नहीं। लेखक और पात्र, दोनों एक ही तरंग में एक दूसरे से लड़ते हुए बहते चले जाते हैं।

अब मनोविकार के चित्र तथा विचित्र उपमाएँ देखिए। वे उपन्यास-धारा की तरंगों पर कमल के फूलों या लेखक के अर्पण किए दीपकों की तरह दर्शन देते चले जाते हैं। सेवा-सदन लेखक के ख़ज़ाने को ख़ाली नहीं कर सका। प्रेमाश्रम की उक्तियाँ वैसी ही नवीन और हृदय-ग्राही हैं, जैसी कि पहले उपन्यास की। मनोविकार-चित्रण ने लेखक की बात रख ली है।

"मानव-चरित्र न बिलकुल श्यामल होता है, न श्वेत। उसमें दोनों रंगों का विचित्र संमिश्रण होता है।" प्रेमशंकर को अपनी जाति-सेवा में भ्रातृ-विद्वेष की झलक मालूम पड़ती है। ज्ञानशंकर को, अंत को, अपनी स्वार्थ-परता का अनुभव होता है। राय कमलानंद को भी सांसारिक आनंद में रत रहने का प्रसाद भोगना पड़ता है। सिर्फ़ विद्या और क़ादिर मियाँ के चरित्र निर्मल हैं; और, यह शायद इसलिये कि लेखक ने उनपर अधिक प्रकाश नहीं डाला। इस चित्रण-कौशल का ही यह फल है कि किसी पात्र से हम घृणा नहीं करते, और कोई आदर्श भय भी नहीं। धर्म और अर्थ में हर जगह क्लेश है।

जहाँ इतने गुण दिखाए गए, वहाँ दोष भी दिखाना आवश्यक है। उपन्यास इतना बड़ा है, परंतु कोई सूची नहीं। अध्यायों के सिर्फ़ नंबर दिए हुए हैं। यदि हेडिंग भी होते, तो पाठकों को अधिक सुबीता रहता। क्लिष्ट उर्दू के अर्थ तथा दिहाती हिंदी-शब्दों के शुद्ध रूप भी दे देना अच्छा होता। प्रूफ़-रीडिंग में बहुत कुछ असावधानी से काम लिया गया है। और, विशेष कमी यह है कि, आज-कल की रीति के अनुसार, इतने बड़े उपन्यास के लिये एक चित्रकार की सहायता भी परम आवश्यक थी।

हमारे यहाँ अनुवादित उपन्यासों का बाज़ार गर्म है। हम अँगरेज़ी, बँगला, मराठी इत्यादि भाषाओं का बहुत-कुछ उधार खाए बैठे हैं। क्या यह संभव नहीं कि यह उपन्यास हिंदी-संसार की तरफ़ से इन भाषाओं को भी भेंट किया जाय?

कालिदास कपूर एम० ए०

अमेरिका की वर्तमान अवस्था

(१)

रहन-सहन
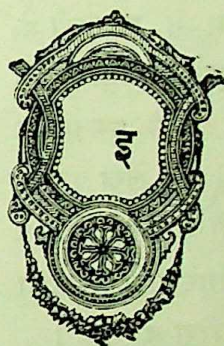
इस समय भारत-वर्ष उन्नति के मार्ग में लगा हुआ है। इस कारण इस बात की आवश्यकता है कि हम संसार के अन्य सुधरे हुए देशों के हालात से परिचित हों कि वहाँ क्या हो रहा है। संसार के अन्य सुधरे हुए देशों का हाल जानने के लिये हमारे पास दो मार्ग हैं। पहला मार्ग है, वहाँ के निवासियों द्वारा लिखा हुआ हाल, और दूसरा मार्ग है, भारत-वर्ष से गए हुए लोगों में से किसी का लिखा हुआ वृत्तांत। परंतु पहले मार्ग से प्राप्त हुए समाचार, हमारे लिये, इस कारण उपयोगी नहीं हैं कि वे या तो प्रशंसा से भरे रहते हैं, और या देश के दूषणों की निंदा से। दूसरे मार्ग से प्राप्त हुए वृत्तांतों को पढ़ने से, उनमें यह त्रुटि दृष्टि-गोचर होती है कि उनके लेखक, एकाएक वहाँ पहुँचकर, उन देशों की दशा देख,

चका-चौंध में पड़कर, अपने देश की हर बात में निंदा करते हैं; अपने देश के प्रत्येक कार्य में उन्हें दूषण-ही-दूषण दिखाई पड़ते हैं। अतएव आवश्यकता इस बात की है कि विदेशों का वृत्तांत लिखा तो हमारे देश-वासियों द्वारा हो, पर वह व्यक्ति होना ऐसा चाहिए, जिसने कुछ समय तक, उस देश में रहकर, उस देश का अच्छा ज्ञान प्राप्त किया हो। वह अपने देश की स्थिति को भी अच्छी तरह जानता हो। हम आज संयुक्त-राज्य अमेरिका का जो वृत्तांत माधुरी के पाठकों के सामने उपस्थित कर रहे हैं, वह डॉक्टर सुबोधचंद्र वसु का लिखा हुआ है; जिन्होंने अपना बहुत-सा समय उसी देश में व्यतीत किया है। आप अमेरिका के एक विश्व-विद्यालय में प्रोफ़ेसर हैं। आपने वहीं शिक्षा भी प्राप्त की है, और अपने ही अनुभव से एक पुस्तक "अमेरिका में पंद्रह वर्ष" लिखी है। यह लेख उसी पुस्तक के आधार पर लिखा जा रहा है। यह लेख पढ़कर पाठकों को अमेरिका की बहुत-सी बातों का परिचय प्राप्त हो जायगा। हम अपने अँगरेज़ी-पढ़े पाठकों से मूल-पुस्तक पढ़ने की सिफ़ारिश करते हैं।

डॉक्टर वसु का कथन है कि मुझे अमेरिका-निवासियों के रहन-सहन का बहुत कुछ ज्ञान हो गया है, और मैं उनके बहुत-से व्यवहारों को अच्छा भी समझता हूँ; परंतु तो भी कुछ अप्रिय बातें कहूँगा। क्योंकि उन अप्रिय बातों का परिचय कराए बिना असल बात का पता नहीं चलेगा। परंतु जो त्रुटियाँ मुझे जान पड़ी हैं, उनका वर्णन भी मैं प्रेम-पूर्वक करूँगा। डॉक्टर वसु के उपर्युक्त वाक्य से ही हमारे पाठक जान लेंगे कि डॉक्टर महोदय ने किस निष्पक्ष भाव से, अमेरिका का वृत्तांत लिखा है।

अमेरिका में बहुत-सी जातियाँ अन्य देशों से आकर बसी हैं, और यह बात कहने में किसी प्रकार की हानि नहीं कि दुनिया-भर की कम-से-कम आधी जातियों का रक्त वहाँ जाकर एकत्र हो गया है। योरप के महाभारत से पहले, दूर-दूर से आकर संयुक्त-राज्य अमेरिका में बसनेवाले लोगों की संख्या प्रति-वर्ष दस लाख से अधिक थी। इस समय ६५ प्रकार की जातियाँ, जो ७३ भिन्न-भिन्न भाषाएँ बोलती हैं, संयुक्त-राज्य अमेरिका में जाकर बसी हैं। अमेरिका के एक शिकागो नगर में ४० भाषाएँ बोली जाती हैं। जो लोग अन्य देशों से आकर वहाँ बसते हैं, उनके दिलों में इस नई दुनिया से बहुत जल्द प्रेम हो जाता है; वे अपने देश को शीघ्र भूल जाते हैं, और वहीं के निवासियों से हिल मिल जाते हैं, वहाँ के निवासियों में परस्पर बड़ा मेलजोल रहता है। वहाँ की गवर्नमेंट की रचना इस ढंग से हुई है कि वह सब जातियों को समान दृष्टि से देखती है। बे-मेलजोल के आदमियों का वहाँ रहना कठिन है। नया आदमी जो विचार अपने देश से अपने साथ लाता है, उनको उसे धीरे-धीरे छोड़ना पड़ता है; और वहाँ की नवीन बातें उसे ग्रहण करनी पड़ती हैं। वहाँ के सब लोग समान हैं। जाति-पाँति का कोई भेद-भाव नहीं है। उस देश में संपत्ति बहुत है। वहाँ के कुछ निवासी करोड़-पती नहीं, बल्कि शंख-पती हैं। वहाँ के निवासियों ने यह सब संपत्ति अपने परिश्रम और बुद्धि-बल से पैदा की है। वहाँ के निवासियों को शीघ्र धनवान् हो जाने की इच्छा रहती है, और रात-दिन वे इसी धुन में लगे रहते हैं। परंतु इतना होने पर भी वहाँ भूखों और नंगों की कमी नहीं है। वहाँ के सब

निवासियों के लिये वह देश स्वर्ग-भूमि नहीं है, और न वहाँ के निवासी ऋषि-मुनि हैं । दुनिया की भली-बुरी इच्छाएँ वहाँ के निवासियों में भी पाई जाती हैं। धनवान् पुरुषों के हृदय में करुणा का भाव ज़रूर है ; परंतु उनका प्रभाव जनता पर कुछ विशेष नहीं पड़ता। ग़रीब लोग धनिकों को अच्छी निगाह से नहीं देखते। इसी कारण संयुक्त-राज्य अमेरिका का प्रेसीडेंट कोई बड़ा धनवान् नहीं चुना जाता । इतना होने पर भी वहाँ के धनवान् बहुधा अपनी संपत्ति को अच्छे कामों में ही ख़र्च करते हैं, जिससे उनके देश की उन्नति हो। विद्या की उन्नति और अनेक प्रकार के कष्ट-निवारणार्थ वे अपना धन ख़र्च करते हैं। अमेरिका में बहुत-से अस्पताल, कॉलेज, महाविद्यालय, डॉक्टरी के मदरसे, दवाओं की परीक्षा करने-वाली सभाएँ, चित्र-शालाएँ और पुस्तकालय वग़ैरह इन्हीं लोगों की कृपा और सहायता से स्थापित हुए और चलते हैं।

यह कहना सहज नहीं कि अमेरिका-निवासियों के मन में किस-किस प्रकार की भावनाएँ उत्पन्न हुआ करती हैं; परंतु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि वहाँ के मनुष्य प्रजा-तंत्र शासन को अधिक पसंद करते हैं। वहाँ पर राजा और प्रजा, दोनों के समान अधिकार हैं। वहाँ प्रत्येक नागरिक अपने को राजा से कम नहीं समझता। बाप-दादे की अथवा कुल की मर्यादा का कुछ अधिक सम्मान नहीं है । कोई कार्य वहाँ ऊँचा या नीचा नहीं समझा जाता। मनुष्य एक व्यवसाय को छोड़कर दूसरा व्यवसाय, जब चाहे तभी, करने लगता है। शासकों का अधिक मान नहीं है। कोई किसी को हुज़ूर या अन्न-दाता नहीं कहता।

उस देश में धनी और कंगाल, सबके लिये उन्नति के समान साधन हैं। प्रत्येक मनुष्य अपने परिश्रम और योग्यता का फल, बिना किसी रुकावट के, प्राप्त कर सकता है। वहाँ पर मनुष्य का सबसे बड़ा शत्रु सुस्ती और काहिली समझी जाती है। ज्ञान-ध्यान का तो वहाँ पता भी नहीं है। प्रत्येक मनुष्य, चाहे वह स्त्री हो चाहे पुरुष, किसी-न-किसी व्यवसाय में लगा ही रहता है। वहाँ पर संन्यासी अथवा योगी दृष्टि-गोचर नहीं होते। वहाँ प्रत्येक मनुष्य का यह विचार है कि जो कार्य पहले समय में लोग कर गए हैं, उन्हें हम भी कर सकते हैं; इतना ही नहीं, उनसे बढ़-कर भी कर सकते हैं। वहाँ यह बात कोई नहीं कहता कि सत्ययुग की अच्छी बातें, इस युग में— जिसे हम कलियुग कहते हैं—नहीं हो सकतीं। प्रत्येक मनुष्य इसी चिंता में चूर रहता है कि मैं पिछले समय के लोगों से भी अधिक योग्य बन जाऊँ। अपनी वर्तमान स्थिति से कोई भी मनुष्य वहाँ संतुष्ट नहीं है । प्रत्येक मनुष्य को अपना जीवन सफल बनाने के लिये अच्छी-से-अच्छी बातों की खोज रहती है। वहाँ के निवासी अपना एक क्षण भी व्यर्थ खोना पसंद नहीं करते। अमेरिकन एक पल भी बिना काम के नहीं रहते। छुट्टियों अथवा तातीलों का होना उन्हें अच्छा नहीं मालूम होता । सप्ताह में एक दिन वहाँ भी छुट्टी रहती है ; परंतु उस दिन भी अमेरिकन कुछ-न-कुछ महत्त्व-पूर्ण कार्य करने का प्रयत्न अवश्य करते हैं । जो मनुष्य दिन-भर में जितना अधिक काम करता है, वह उतना ही अधिक प्रसन्न रहता है। परिश्रम ही उनकी प्रसन्नता का कारण है। परंतु यह कहा जाय, तो अधिक ठीक होगा कि अमेरिका-निवासी परिश्रम-देवी के पुजारी

हैं। कभी-कभी तो देखनेवालों की समझ में ही यह बात नहीं आती कि अमुक मनुष्य क्यों परिश्रम कर रहा है! कहा जाता है, एक अमेरिकन से, जिसके पास संसार की सब सुख-भोग की सामग्री मौजूद थी, जब यह पूछा गया कि तुम क्यों परिश्रम करते हो, तो उसने उत्तर दिया—"मुझे स्वयं नहीं मालूम कि मैं क्यों परिश्रम करता हूँ। क्या करूँ, मुझसे ख़ाली बैठे रहा नहीं जाता। जब तक साँस चलती है, तब तक कुछ-न-कुछ काम करते ही रहना चाहिए।"

संसार की प्रत्येक जाति में कोई-न-कोई ख़ास गुण अवश्य पाया जाता है। अमेरिकन लोगों में यह गुण "जल्दी काम करना" है। वहाँ के लोग प्रत्येक काम को जल्दी-से-जल्दी समाप्त करना पसंद करते हैं। रूस के एक कवि का यह वाक्य बहुत ठीक है कि—"अमेरिकन लोग प्रसन्नता से अधिक शीघ्रता-पूर्वक काम करना अच्छा समझते हैं।" उनका विश्वास है कि काम करना प्रेम से भी बढ़कर है। उन लोगों की दृढ़ धारणा है कि यदि कोई मनुष्य संसार में सफलता प्राप्त करना चाहे, तो वह फुर्ती अथवा शीघ्रता करे। एक अमेरिकन धनाढ्य के घर में, प्रत्येक कमरे में, टेलीफ़ोन लगा था। यहाँ तक कि उसके नहाने के कमरे में भी था। प्रत्येक कमरे में टेलीफ़ोन लगवाने का कारण केवल यही था कि जिस बात की सूचना देनी हो, तुरंत शीघ्रता से दी जाय। एक कमरे से दूसरे कमरे में जाने में जो समय लगता है, उसे बचाने के लिये ही यह व्यवस्था की गई थी। एक फ्रेंच विद्वान् का कथन है कि—"अमेरिका-निवासी शीघ्र जन्म लेते हैं, शीघ्र काम करते हैं, शीघ्र धनवान् बनते हैं, और शीघ्र मर भी जाते हैं।" अमेरिकन लोग जब अपने दूध पीनेवाले बच्चों को बोलना सिखलाते हैं, तब वे कहते हैं—"जल्दी करो; शीघ्रता करो।" दफ़्तरों में काम करनेवाले लोग, अपनी मेज़ पर, बड़े-बड़े अक्षरों में, ये वाक्य लिखकर सामने रख लेते हैं कि—"आज अधिक काम करना है", "समय ही धन है", "शीघ्रता करो।" समय बचाने के लिये, अमेरिकन लोग, टेढ़ी सड़कों को सीधी करने में, बहुत धन ख़र्च कर देते हैं। समय बचाने के लिये प्राण देना भी वे उचित समझते हैं। इस जल्दबाज़ी के कारण ही वहाँ प्रति-वर्ष रेल-दुर्घटना से दस हज़ार मनुष्य काल के गाल में चले जाते हैं; और कल-कारख़ानों में पचीस हज़ार जूझ जाते हैं।

बड़े-बड़े काम-काजी शहरों में, स्थान-स्थान पर, साइन-बोर्डस—तख़्ते—लगे हुए हैं; जिनपर यह वाक्य लिखा रहता है—"तुम क्या करना चाहते हो? राह चलते-समय, यदि तुम्हारे पास और कुछ काम नहीं, तो चमार तुम्हारा जूता गाँठने को, स्याहीवाला बूट को स्याही से चमकाने को, दर्ज़ी तुम्हारे कपड़ों पर इस्त्री करने को और टोपीवाला टोपी साफ़ करने को तैयार है।" अमेरिकन लोग इतनी जल्दी भोजन करते हैं कि मानो कई दिनों से अन्न नहीं मिला। अमेरिका-निवासियों ने जिस प्रकार 'शीघ्र लेखन-प्रणाली' का आविष्कार किया है, उसी प्रकार, यदि उनका वश चला तो, वे विचारों को शीघ्र जान लेने की किसी नवीन युक्ति का आविष्कार अवश्य करेंगे।

अमेरिकन लोग परस्पर मिलने के समय, बात-चीत करने में, व्यर्थ आडंबर रचकर, समय को व्यर्थ नष्ट नहीं होने देते। अमेरिका में बड़े-से-बड़े मनुष्य से सहज में मुलाक़ात की जा सकती है।

वहाँ मुलाक़ात कराने के लिये, परिचय कराने को, मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं पड़ती। योरप के मुक़ाबले में अमेरिका में मेहमानदारी—आतिथ्य-सत्कार—बहुत है। मेहमानदारी में वहाँ के लोग अपना धन प्रसन्नता-पूर्वक ख़र्च करते हैं। हाँ, यह बात ज़रूर है कि मेहमानदारी तीन दिन से अधिक नहीं होती। जो मेहमान तीन दिन से अधिक ठहरना चाहे, तो उसे अपना ख़र्च आप करना पड़ता है। जब कोई किसी की मुलाक़ात को जाता है, तब मुलाक़ात में तीस मिनिट से अधिक समय नहीं लगाता। भारत-वर्ष की भाँति, वहाँ यह भी नियम नहीं है कि निमंत्रण करने में किसी को बहुत मनाना पड़े। मेहमानदारी वहाँ एक ही ओर से नहीं होती। यदि किसी का निमंत्रण स्वीकार कर लिया, तो आगे के लिये निमंत्रण का निश्चय किया जाता है।

अमेरिकन लोगों को अपने देश की बड़ी भक्ति है। हमारे देश में जैसी भक्ति लोग देवी-देवतों की करते हैं, उससे कहीं अधिक भक्ति उन्हें अपने देश के प्रति है। किसी दशा में भी वे अपनी देश-भक्ति को भुलाना नहीं चाहते। यदि वे भुलाना चाहें, तो भी वह नहीं भूलती। वहाँ पर प्रत्येक मनुष्य को अपने जीवन-सुधार की चिंता लगी रहती है। अमेरिका में एक कहावत है—"जब तक दुःख आकर उपस्थित न हो, तब तक उस-की चिंता मत करो।"

सूर्यकुमार वर्मा

मौन

नव प्रकृति निस्तब्धता की गोद में
श्याम चादर ओढ़कर है सो रही;
निंब-द्रुम की अवलियाँ हैं निश्चला,
हों अचल ज्यों पर्वतों की श्रेणियाँ॥ १॥

मेघ के दल घेरकर आकाश को
शांत हैं; मानों किसी की सैन्य यह,
शत्रुओं का नाश करके, शांति से
गाड़ ख़ीमे, कर रही विश्राम है॥ २॥

झिलमिलाती तारकाओं की लड़ी
इस प्रकार विलुप्त होकर रह गई,
ज्यों किसी के नैन-तारे खेल में,
आँख-ओझल जा छिपे हों मोद से॥ ३॥

मौन-सागर की सुषुप्त लहरियाँ
गा रही हैं मूर्च्छना की लोरियाँ;
थपकियाँ देकर, जगत के नेत्र को
फूँककर, निंदिया बुलाती शीघ्र हैं॥ ४॥

नींद के ये फूल, जादू के भरे,
आज बिखरे, विश्व-अंचल में पड़े;
वायु भी रस-मधुर, मंद सुगंध से
यथा मूर्च्छित हो रहा आकाश में॥ ५॥

विगत-वैभव वायु के सुस्पर्श का
दुःख-मय अनुभव सुनाकर, मूक हो,
गगन-चुंबी हिम-अचल के ये शिखर
स्नान करते हैं सुधा की धार में॥ ६॥

मौन के इस शांति-मय साम्राज्य में
दीन-दुखिया का हृदय भी मौन है;
हाँ, अभी स्पंदन ज़रा-सा शेष है,
हृदय-गति है? या कि दुख का नाच है? ७॥

वेदना के आँसुओं की वह झड़ी,
हिचकियों की सिसक का आलाप वह,
बंद हैं दोनों हृदय के द्वार ये;
नैन उड़ते नील नभ की ओर को॥ ८॥

बेकली की स्वच्छ, मस्त सुवास से
कंपित जो वाक्य-कलिका पूर्ण थी,
वह कली इस नैश उष्णोच्छ्वास में
प्रस्फुटित होती नहीं है चाव से॥ ९॥

कामना की ये तरंगें उठ रहीं,
जा रहीं अभिसारिका के रूप में
खोजने उस शुभ दिवस का क्षण वही—
मस्त, अलबेला वही क्षण प्रेम-मय॥ १०॥

वह अभीष्ट क्षण, अनूठा द्वार वह;
भूत, भावी के मिलन की वह घड़ी;

वह झरोखा, जिससे हो करके सदा
अंत के मौनांक से बहती हवा ! ११ ॥

× × ×

जी तड़प जाय, और आह न हो ;
दिल को गुल-शोर की य' चाह न हो;
मुसकिराहट न आँख में आँसू;
मौन के राज्य में गुनाह न हो ॥ १२ ॥

नवीन

कबीर और विहारी

हिंदी-काव्योपवन को समय-समय पर सुचतुर सुकवि-मालियों ने खूब ही सजाया है—अनोखे ढंग से अलंकृत किया है। नव रस से ऐसा सींचा है कि अब वह सदा के लिये हरा-भरा हो गया है; उसके मुरझाने का डर नहीं है। एक बार इस वाटिका में सैर के लिये घुसिए, फिर तो वहाँ से निकलने को जी ही नहीं चाहता। भिन्न-भिन्न रुचि की भिन्न-भिन्न क्यारियों पर मन-मधुकर सुमन-सुगंधि से आकृष्ट होकर इधर-से-उधर मँडलाता फिरता है। कैसी अपूर्व शोभा है ! प्रत्येक क्यारी का ठाट-बाट ही निराला है। पूर्ववर्ती मालियों की कारीगरी की रक्षा करते हुए भी अपनी कारीगरी की नवीनता दिखलाने का जो स्तुत्य प्रयत्न परवर्ती मालियों ने किया है, उसकी सराहना करनी ही पड़ती है।

वह देखिए, सुचतुर माली विहारीलाल की लगाई दिव्य क्यारी कैसी लहलहा रही है! यद्यपि अधिकांश में वही अनुराग का सुहावना रंग झलक रहा है, तो भी कैसे नाना भाँति के सुमन खिल रहे हैं ! देखिए, चतुर माली ने अपनी कारीगरी तो दिखलाई ही है, किंतु अपने समय से पहले हो चुकनेवाले मालियों की कारीगरी से भी लाभ उठाया है। वह देखिए, उन पौदों की काँट-छाँट पूर्ववर्ती सुचतुर माली सूर, तुलसी, कबीर, दादू, मीरा, रसखान, मुबारक, रहीम, गंग, केशव और सेनापति की काँट-छाँट की याद दिलाती है। निकट से देखने पर साफ़ जान पड़ता है कि इन उस्तादों की करामात को विहारी ने भली भाँति समझ लिया है। वह समझकर चुप नहीं बैठ रहे ; उसे अपनाया भी है। इन पौदों की सजावट में उस अनुकरण की स्पष्ट झलक है।

तो क्या कबीर-जैसे तड़क-भड़क के रंग की परवा न करनेवाले माली की रुचि को भी विहारी ने समझ लिया है ? कबीर के फूलों में तो वैसा मनोहर भड़कीला रंग नहीं है। उनकी क्यारी में रुग्ण आत्मा को नीरोग करनेवाली विविध वनस्पतियाँ तो ज़रूर दिखलाई पड़ती हैं, आत्मा को प्रफुल्लित करनेवाला कोई अनिर्वचनीय आमोद अवश्य मिलता है; पर वह फूलों का मनो-मोहक सुरम्य रंग, वह मन को मस्त करनेवाली अनुपम सुगंधि, वह पौदों की तरो-ताज़गी, वह लहलहाहट कबीर की क्यारी में कहाँ है? यह सब ठीक है, पर विहारी ने उस्ताद कबीर से भी बहुत कुछ सीखा है; उनकी भी शागिर्दी की है। उन्होंने अपने से पूर्व होनेवाले सभी उस्तादों से कुछ-न-कुछ प्राप्त किया है, सभी का सत्कार किया है, और सभी के आशीर्वाद से स्वयं अपने समय के एक बड़े ही चतुर माली बन गए हैं।

कबीर और विहारी की सजावट का ढंग साधारणतः नहीं मिलता, इसलिये आपको विश्वास

नहीं होता। पर लीजिए, आपके सामने दोनों की क्यारियों से पाँच-पाँच फूल तोड़कर रक्खे जाते हैं। इनको सूँघिए, और रूप-रंग भी मिलाइए। यदि आवश्यकता हुई, तो ऐसे ही सौ-डेढ़ सौ फूल और भी आपकी भेंट किए जायँगे। तब आपको विश्वास हो जायगा कि अपने पूर्ववर्ती मालियों के कौशल से इस सुचतुर माली ने कितना लाभ उठाया है। पर इससे विहारी का महत्त्व कम नहीं होने का। परवर्ती मालियों का यह कर्तव्य ही है। अच्छा देखिए—

(१) नमक गल गया, उसमें पानी मिल गया। अब वह दुबारा गौनों में नहीं भरा जा सकता। इसी प्रकार सुरत-शब्द से मेल हो चुकने के बाद बेचारे काल को मौन ही रह जाना पड़ता है। सुरत-शब्द से परिचित व्यक्ति अजर-अमर हो जाता है। उस पर काल का प्रभाव नहीं पड़ता—

नौंन गला, पानी मिला, बहुरि न भरिहै गौन ;
सुरत-शब्द मेला भया, काल रहा गहि मौन।

कबीर

इसी भाव को और भी स्पष्ट-रूप से व्यक्त करते हुए एक दूसरे कवि का कथन है—"जब मन राम में संलग्न हो गया, तो वह अन्यत्र कैसे जा सकता है? राम में तो वह इस प्रकार से लीन या तन्मय हो जाता है, जैसे पानी में नमक घुल-मिल जाता है।"

जब मन लागे राम सौं, (तब) अनत काहे को जाय ;
दादू पाणी लूण ज्यूँ, ऐसो रहै समाय।

दादू

कबीर और दादू के उपर्युक्त दोहों से पूरा लाभ उठाकर कविवर विहारीलाल ने अपने एक दोहे में कवित्व-शक्ति का अनूठा परिचय दिया है। उनका मन मोहन के रूप में ऐसा मिल गया है कि करोड़ों उपाय करने पर भी उस रूप-राशि से उसी प्रकार पृथक् नहीं किया जा सकता, जैसे जल में घुला हुआ लवण। कैसी अनोखी संलग्नता है?

कीन्हे हूँ कोटिक जतन अब कहि काढ़ै कौन ?
भो मन मोहन-रूप मिलि पानी में को लौन।

विहारी

परवर्ती कवि पूर्ववर्ती कवि के भाव को सफलता-पूर्वक किस प्रकार अपना सकते हैं, यह बात विहारीलाल के दोहे से स्पष्ट प्रकट है। कबीर का यह कहना कि गोनों का नमक गल गया, अब वह दुबारा गोनों में भरने के योग्य नहीं हो सकता, ठीक ही है। गोनों का नमक पानी में मिलकर इधर-उधर बह गया; अब उसे कौन एकत्र करने का प्रयत्न करेगा? सो इन गोनों में उसी बहे हुए नमक के फिर से भरने की संभावना वास्तव में बहुत कम है। दादू पानी-लोन की व्यापकता-मात्र का निर्देश ठीक ही करते हैं। पर विहारीलाल यह कैसे कह सकते हैं कि पानी में मिला नमक करोड़ों उपाय करने पर भी अब कौन निकाल सकता है? क्या पानी को भाप के रूप में सहज ही उड़ाकर हमें उसी नमक के फिर निकाल लेने में कोई कठिनता पड़ेगी? पर ये कवियों की बातें हैं; इनमें वैज्ञानिक नाप-जोख की आवश्यकता नहीं है।

ईश्वर में मन की संलग्नता का वर्णन कबीर ने और भी अनोखे ढंग से किया है। उन्होंने मन और ईश्वर के सम्मिलन को वैसा ही कर दिया, जैसे पिघला हुआ तुषार का जल। दोनों एक ही थे। एक के रूप में कुछ विकार हो गया था। अब जो पिघला, तो

फिर ज्यों का त्यों । हरि-जन भी इसी प्रकार हरि में मिल जाते हैं; उनमें कोई अंतर नहीं रह जाता—

जब दिल मिला दयाल सों, तब कछु अंतर नाहिं ;
पाला गलि पानी भया, यों हरि-जन हरि माँहिं ।

कबीर

(२) यदि मन किसी में लग गया है, तो अगर शरीर-द्वारा उससे वियोग हो भी, तो उससे क्या होता है ? दूर होने से नेत्रों द्वारा उसके दर्शन सुलभ नहीं हैं, फिर भी प्राण तो उसके पास ही रहते हैं—

कहा भयो तन बीछुरे, दूरि बसे जे बास ;
नैना ही अंतर परा, प्रान तुम्हारे पास ।

कबीर

पतंग आसमान में उड़ रही है; वह बहुत दूर निकल गई है । कदाचित् आँखों से दिखलाई भी नहीं पड़ती । पर इससे क्या, वह है तो उड़ानेवाले के हाथ में ही । जब वह डोरी खींच लेगा, सामने आ जायगी । इसी प्रकार यदि ऊपरी वियोग हो गया, तो क्या पर्वा । दोनों (प्रणयि-युग्म) के मन तो साथ-ही-साथ हैं—

कहा भयो जो बीछुरे, तो मन मो मन साथ ;
उड़ी जाहु कितहू गुड़ी, तऊ उड़ायक हाथ ।

विहारी

परवर्ती कवि ने गुड़ी (पतंग) और उड़ायक (उड़ानेवाले) का संबंध विशेष रूप से दिखलाया है । पर हमारी राय में नैनों के अंतर की जो बात पूर्ववर्ती कवि ने कही है, वह विशेष मर्म-स्पर्शिनी है ।

(३) भला वैद्यराजजी, आप इस वेदना की चिकित्सा क्या कीजिएगा ? इस मामले में आपका किया कुछ भी नहीं हो सकता । इसे अच्छा करने की शक्ति उसी में है, जिसके द्वारा यह कष्ट पैदा हुआ है । इसलिये आप कृपाकर अपने घर जाइए—

जाहु बैद घर आपने, तेरा किया न होय ;
जिन या बेदन निर्मई, भला करेगा सोय ।

कबीर

परवर्ती कवि इस भाव पर ऐसी अच्छी पालिश करता है कि वह एकदम चमचमा उठता है; एकदम नई बात समझ पड़ती है । देखिए—

करि राख्यो निरधार यह, मैं लखि नारी-ज्ञान ;
वहै बैद, औषधि वहै, वहै जु रोग निदान ।

विहारी

नारी-ज्ञान में पटु कवि ने कैसा अच्छा रोग का निदान किया है । बस वही वैद्य बुलाया जाय; उसी औषधि का प्रयोग किया जाय । औरों से काम न चलेगा । कैसी रसीली इशारेबाज़ी है । नारी-ज्ञान का श्लेष भी कितना अच्छा है ? दोहे में 'स्त्री-ज्ञान' और 'नाड़िका-ज्ञान' दोनों का ही कैसा अच्छा समावेश है ?

(४) जिस व्यक्ति में प्रेम का प्रादुर्भाव होता है, तो फिर क्या वह किसी के छिपाए छिप सकता है ? मुख से स्वीकार न किया गया, तो आँखें तो हृदयावेग को रो-रोकर बतला ही देती हैं—

प्रेम छिपाया ना छिपे, जा घट परघट होय ;
जो पै मुख बोलै नहीं, नैन देत हैं रोय ।

कबीर

पूर्ववर्ती कवि ने आँखों को रुलाकर प्रेम का पता पा लिया, पर परवर्ती कवि को इतना क्रूर व्यवहार सह्य नहीं है । उसे आँखों की रुखाई को देखते ही चित्त की चिकनाहट का ज्ञान हो जाता है । क्या कहा, रूखे नेत्र चित्त की चिकनाहट को प्रकट करते हैं ? यह कैसे हो सकता है ?

हाँ साहब, प्रेम के संसार में ऐसा ही होता है। यहाँ गंगा की धारा उलटकर बहने लगती है। इस विषमता के मर्म को विहारी-जैसे सुकवि ही समझ सकते हैं —

कोटि जतन करिए, तऊ नागरि-नेह दुरै न ;
कहे देत चित चीकनो नई रुखाई नैन।

विहारी

(५) ईश्वर ऊपरी भक्ति से उतना संतुष्ट नहीं होते, जितना भीतरी भक्ति से। इसलिये यदि मन कच्चा है, 'तैं मैं' का विकार बना हुआ है, तो बाहरी भक्ति बिलकुल व्यर्थ है। जिसकी दृष्टि निर्मल है, उसी को राम सँचे हैं —

साधो भजन-भेद है न्यारा।
का माला-मुद्रा के पहने ? चंदन घसे लिलारा ?
मूड़ मुड़ाए, जटा रखाए, अंग लगाए छारा ?

× × ×

निर्मल दृष्टि, आतमा जाकी, साहब-नाम अधारा,
कहत कबीर वही आवै, जो 'तैं-मैं' तजै विकारा ॥

कबीर

जप-माला, छापा, तिलक, सरै न एकौ काम ;
मन काँचै नाचै वृथा, साँचै साँचै राम।

विहारी

पूर्ववर्ती कवि का भाव कितनी अच्छी सफ़ाई से सानुप्रास और श्रुति-मधुर भाषा में परवर्ती कवि ने वर्णन किया है ? कहिए, फूल हैं न एक ही जाति के ? हाँ साहब, फूल वे ही हैं, सिर्फ़ ज़मीन और खाद का भेद है।

कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०

पाश्चात्य नगरों की सजावट

यो रप और अमेरिका की सभी बातें निराली होती हैं। वहाँ के निवासी अपने शहरों का सौंदर्य और उत्कर्ष बढ़ाने के लिये सदा सचेष्ट रहते हैं। जैसे एक तरफ़ उन्हें यह ख़याल रहता है कि देश-देशांतर के पर्यटकों को हमारा ही शहर सर्व-श्रेष्ठ जँचे, वैसे ही दूसरी तरफ़ इस पर भी उनका विशेष लक्ष्य रहता है कि इस तरह शहर की उन्नति की जाय कि उससे वहाँ के निवासियों का सुख और सुविधा बढ़े; बटोहियों को आराम मिले। वे लोग शहर की सफ़ाई और जल-वायु के रोग-कीटाणु-रहित रखने पर भी विशेष ध्यान रखते हैं। वे कला-कल्पित कृत्रिम सौंदर्य से प्राकृतिक सौंदर्य को और भी प्रस्फुटित करते हैं ; शहर में प्रकाश, पवन और पानी का पूर्ण प्रबंध रखते हैं। इस तत्परता में अमेरिका का नंबर और देशों से भी बढ़ा हुआ है।

अमेरिका के दक्षिण डाकोटा-प्रदेश में 'ईप्सविच' नाम
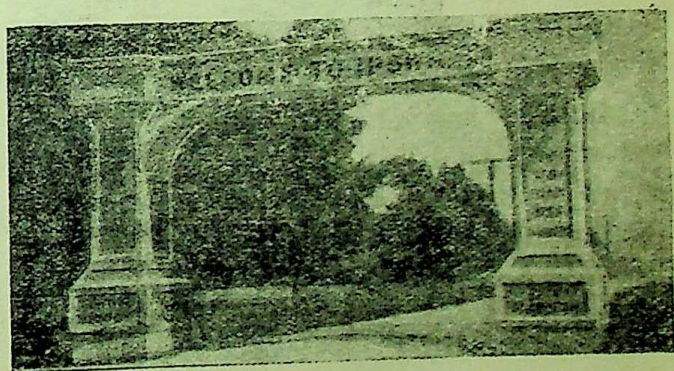
ईप्सविच-शहर का फाटक

का एक शहर है। उसमें प्रवेश करने के लिये शहर की सरहद पर एक भारी फाटक बनाया गया है। इस फाटक को नाँघने पर दर्शक जिस सड़क पर पहुँचता है, उसका नाम है 'पुखराज-पथ'। इस सड़क पर आदि से अंत तक ज़र्द रंग के पत्थर जड़े हैं। फाटक के ऊपर लिखा है 'स्वागत — ईप्सविच-नगरी में पधारिए'। फाटक के बगल-बगल के खंभों पर उन शहरों के नाम खुदे हुए हैं

जो कि ईप्सविच के निकटवर्ती हैं । केवल नाम ही नहीं लिखे हैं, यह भी लिखा है कि वे शहर कितने फ़ासले पर हैं, उनकी विशेषताएँ क्या हैं, और किन मार्गों से जाकर वहाँ शीघ्र पहुँचा जा सकता है।

केलीफ़ोर्निया के मार्शेड शहर का भी सौंदर्य दर्शनीय है। उस शहर के भीतर विदेशी अभ्यागतों और यात्रियों के लिये अनेक होटल ऐसे सुंदर बने हैं कि दर्शक एकटक उन्हें देखता ही रह जाता है। सरकारी दफ़्तरों और कचहरियों की इमारतें तक ऐसी सुडौल और सुदृश्य हैं कि उनसे शहर की शोभा सौगुनी बढ़ गई है।

अमेरिका और योरप के हरएक शहर में सर्व-साधारण के टहलने और विश्राम करने के लिये बड़े-बड़े बाग़ हैं । उनमें फूलों की क्यारियों का, पेड़ों का, सब्ज़ी का ऐसा सुंदर समावेश है—उनकी ऐसी सजावट है—कि दर्शक दंग रह जाता है । उन्हें देखकर इंद्र के नंदन-वन का भ्रम हो जाता है । चतुर मालियों ने कहीं फूल-पत्तियों की काट-छाँट से सुंदर घड़ी बना रक्खी है, कहीं छाता बना रक्खा है। ओहियो के सिनसिनाटी-शहर में, एक पार्क के भीतर, ऐसी ही एक फूलों की घड़ी है। उसके काँटे और अंक बहुत ही स्पष्ट हैं; दूर से ही साफ़ देख पड़ते हैं। सबसे ऊपर का चित्र उसी घड़ी का है। वहाँ इसी प्रकार के प्रत्येक उद्यान में प्रतिदिन तीसरे पहर मधुर बैंड-बाजा बजाया जाता है । उद्यान में विचरनेवाले
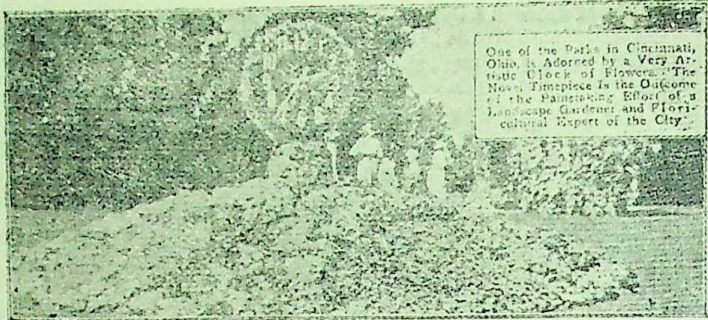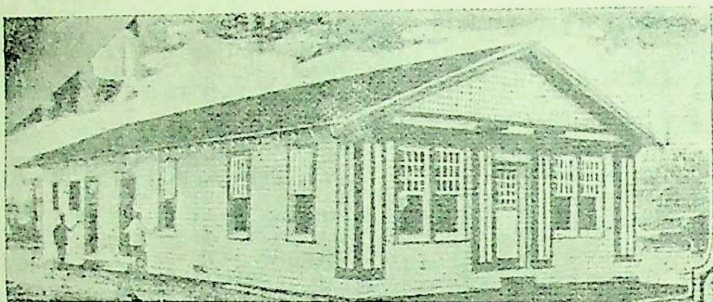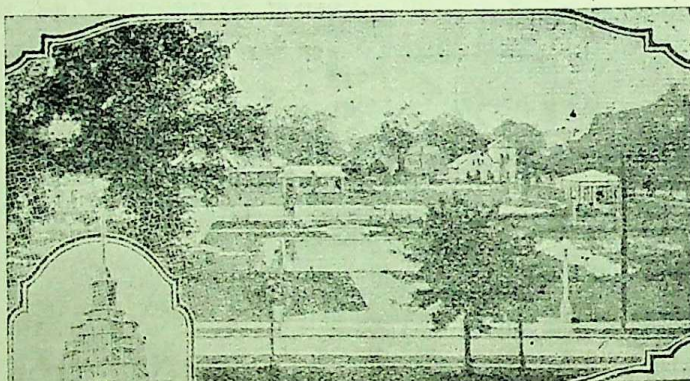
फूल-पत्ती की घड़ी

क्लब-घर

कंपनी-बाग़ और चिड़ियों का घोंसला

दर्शक और पुरवासी उस बैंड की धुन में मस्त हो उठते हैं। बैंड बजाने के लिये हरएक बाग़ में ही बढ़िया बैंड-स्टैंड बने हुए हैं। उन स्टैंडों का रचना-कौशल अपूर्व और मनोहर होता है। वहाँ के लोगों की मुस्तैदी और अक़्लमंदी का एक और नमूना देखिए। बाग़ों में वृक्षों पर घोंसले बनाकर पक्षी गंदगी न फैलावें, इसलिये बाग़ों में खूब ऊँचे खंभे खड़े करके उन पर ऐसे कृत्रिम घोंसले बना दिए जाते हैं कि जिनमें से हरएक में ८० जोड़े चिड़ियों के रह सकते हैं। बाग़ों में खेल-कूद और मनोरंजन के लिये एक-एक क्लब-घर भी है। उनमें भी मनोरंजकता की मात्रा यथेष्ट देख पड़ती है।

नदियों के किनारे जो शहर हैं, उनकी बहार और भी देखने के लायक़ है। नदी में बढ़िया आने पर शहर के भीतर न पानी भर जाय, इसलिये नदियों के तटों पर भारी-भारी 'बाँध' बाँध दिए गए हैं। किसी-किसी नदी के किनारे डबल बाँध बाँधे गए हैं।

डबल बाँध

हमारे यहाँ बड़े-बड़े शहरों में जो सरकारी बाग़ हैं, उनमें कहीं-कहीं २-४ बेंचें लोगों के बैठने के लिये पड़ी रहती हैं। बस। कंपनी-बाग़ों के सिवा शहरों में और कहीं कोई ऐसी व्यवस्था नहीं है कि पथिक बैठकर विश्राम करें। लेकिन पाश्चात्य देशों के अधिकांश शहरों में इसकी व्यवस्था सबसे पहले की जाती है। हरएक सड़क पर, फ़ुटपाथ के किनारे, ऊँची बैठकें पड़ी रहती हैं, उन पर बैठकर पथिक विश्राम करते हैं। रात को वहीं बैठकर, विश्राम के समय, किताबें और अख़बार पढ़े जा सकने के लिये उन स्थानों पर बिजली की सुहावनी रोशनी का भी इंतिज़ाम है। हमारे यहाँ रोशनी के खंभे एक ही ढंग-ढाचे के हुआ करते हैं; किंतु वहाँ खंभे, लंप और उनकी रोशनी तरह-तरह की बहारदार होती है। वहाँ नियम है कि कूड़ा-कर्कट पहले तो सीमेंट के बने पक्के चौबच्चों में जमा किया जाता है, फिर जला डाला जाता है। यह काम
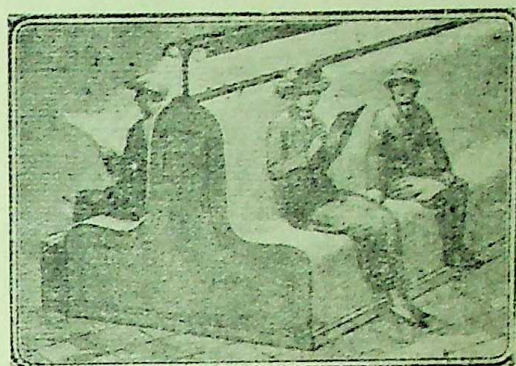
सड़क के चौराहे पर बैठकर रात को पुस्तक आदि पढ़ने का दृश्य
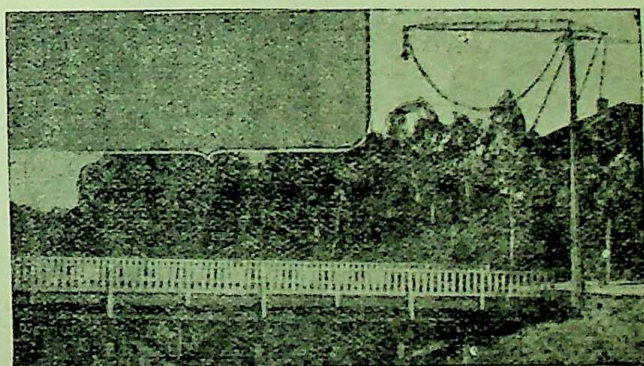
बिजली की रोशनी का खंभा

उस जगह के निवासियों को ही करना पड़ता है। म्यूनिसि-पलिटी का आदमी आकर केवल राख बटोरकर सफ़ाई
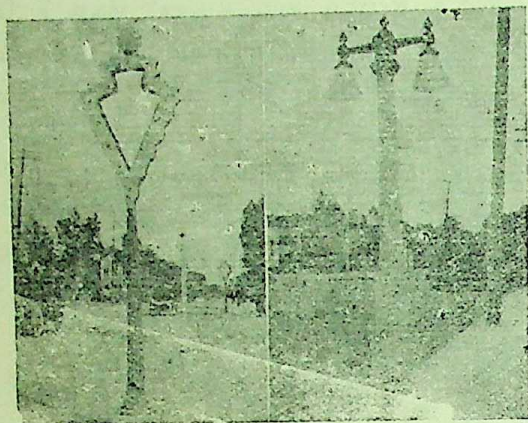
रास्ते में नए ढंग की बहारदार रोशनी

कर जाता है। किसी-किसी सड़क के किनारे कूड़ा-कर्कट रखने के लिये गहरे गढ़े खुदे रहते हैं। उनका मुख लोहे के जालदार घेरे से बंद रहता है। मतलब यही है कि कूड़ा-कर्कट पथिकों की आँखों के आगे न पड़े।

अमेरिका के शहरों में मोटर-दुर्घटनाएँ इतनी होती हैं कि उन्हें रोकने के लिये तरह-तरह की तरकीबें सोची और काम में लाई जा रही हैं। एक तरकीब तो यही की गई है कि सड़क के हरएक मोड़ पर पुलीस खड़ी रहती है। पुलीस का आदमी मुँह से कुछ नहीं कहता; केवल इशारे से गाड़ियों की गति को रोकता या घुमाता है। अमेरिकावालों ने पुलीस का ख़र्च बचाने की ग़रज़

गाड़ी की गति बतानेवाला विज्ञापन

से सड़क के हर चौराहे पर पथ-निर्देशक-यंत्र रखना शुरू कर दिया है। ये यंत्र आप ही कल के बल से घूमकर शोफ़रको यह सूचना दे देते हैं कि किस जगह किस गतिसे जाना चाहिए। गाड़ी की चाल कहाँ पर धीमी करनी होगी, यह जताने के लिये सड़क के किनारे-किनारे बड़े-बड़े सचित्र नोटिस टँगे रहते हैं। इसके सिवा एक और उपाय किया गया है। किसी छोटी गली में घुसते समय गाड़ी सावधानी से चलाई जाय, यह बात गाड़ी चलानेवाले को स्मरण करा देने के लिये गलियों के सिरों पर एक-एक लकड़ी गड़ी रहती है। उसके ऊपर बड़े-बड़े अक्षरों में 'विपत्ति'-शब्द लिखा रहता है। फिर, गली के भीतर कोई मोटर या गाड़ी घुस रही है कि नहीं, यह पथिकों को जताने के लिये उसी लकड़ी में एक बड़ा आइना
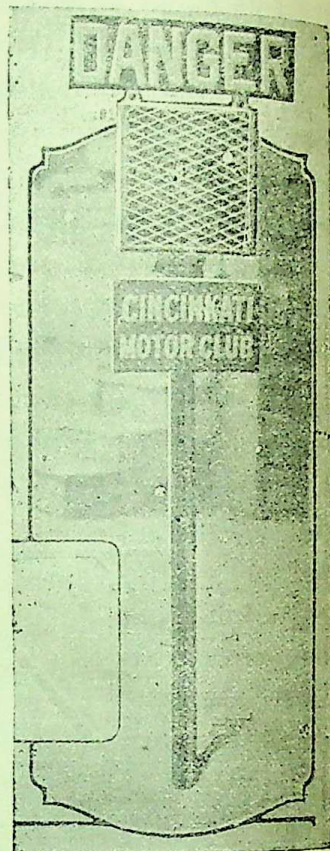
गली के मोड़ में विपत्ति-सूचक गड़ी लकड़ी और उसमें जड़ा आइना
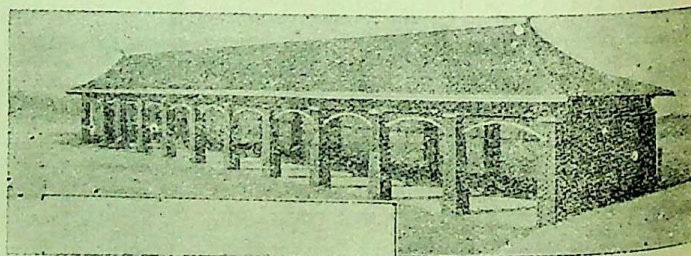
किराए की गाड़ी और मोटर खड़े होने का अड्डा

जड़ा रहता है। पथिक दूर से ही उस आइने में आनेवाली गाड़ी का प्रतिबिंब देखकर सावधान हो सकता है। आइनों को इस ढंग से लगाया है कि सामने से कोई अक्स पड़ने पर वह पीछे की ओर भी देख पड़ता है। किराए की गाड़ी और मोटर

वग़ैरह के खड़े होने के लिये शहर में जगह-जगह खूब बड़े और पटे हुए अड्डे भी हैं। वहाँ हमारे यहाँ के गाड़ी-अड्डों की तरह गाड़ीवान और घोड़ों को घाम में तपना या वर्षा में भीगना नहीं पड़ता।

किसी शहर के आसपास अगर किसी जगह कोई देखने की ख़ास चीज़ है, जैसे कोई जल-प्रपात अथवा
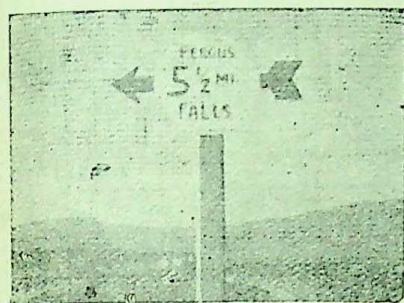
दूरी और दिशा बतानेवाला चिह्न

पहाड़ी कुंड इत्यादि, तो विदेशी दर्शक की सुविधा के लिये सड़क पर, ४-४ फ़र्लांग पर, एक-एक खूँटा गड़ा है, जिसमें लिखा है—वह स्थान स्टेशन से कितनी दूर है, और किधर से वहाँ जाना सीधा या सहज पड़ेगा। उसी खूँटे में एक तख़्ती लगी रहती है, जिसमें उस विशेष स्थान का नाम, और वहाँ से जितनी दूर वह

शहर के बाहर पुलीस की चौकी

स्थान है, उस दूरी का परिमाण लिखा रहता है। शहर से बाहर जाने के जितने रास्ते हैं, सब के सिरे पर पुलीस की एक चौकी रहती है। शहर में खून, डकैती या चोरी करके बाहर चटपट निकल जाना ज़रा टेढ़ी खीर है। हरएक चौकी पर सावधान सिपाही खड़ा हुआ दिन-रात पहरा दिया करता है। रास्ते में पानी देने के लिये जो मुख-नल (Hydrant) हैं, वे भी खूबसूरती से ख़ाली नहीं हैं।
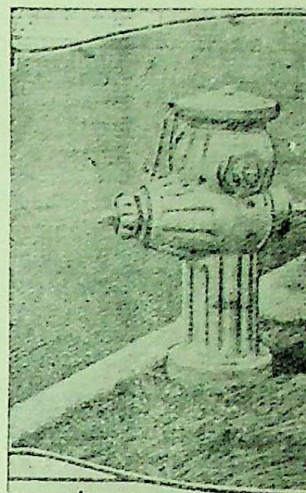
रास्ते में पानी देने का मुख-नल

सड़कों के किनारे घोड़ों को पानी पिलाने के लिये सुंदर फुहारे हैं। कोई-कोई फुहारा राह में ऐसी जगह पर है, जहाँ विपत्ति-वारण-चिह्न (Danger signal) देने की भी ज़रूरत है। इसी से वहाँ फुहारे के ऊपर ही वह चिह्न लगा दिया गया है।
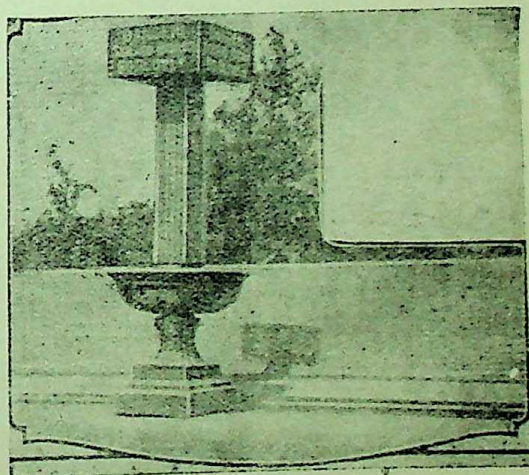
घोड़ों को पानी पिलाने की जगह और फुहारे पर विपत्ति-सूचक चिह्न

प्रायः प्रत्येक शहर में, अनेक गाँवों तक में, मार्गों पर बिजली की रोशनी का प्रबंध है। इसके लिये वहाँ जगह-

जगह छोटे-छोटे बिजली की ताक़त पैदा करनेवाले गृह (Power House) हैं।
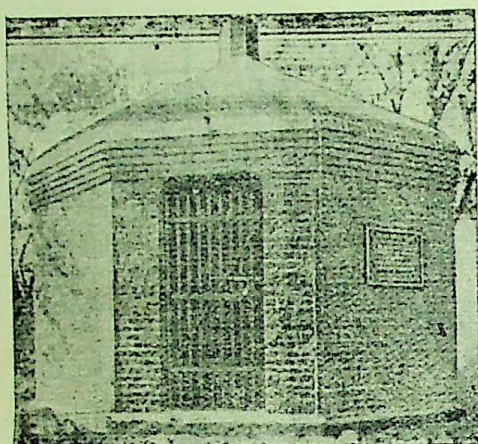
बिजली की ताक़त पैदा करने का घर

इनके सिवा सर्वत्र सुंदर-सुंदर अस्पताल, स्कूल, लाइब्रेरी, थिएटर, होटल, डिस्पेंसरी, क्लब, भजनालय, भोजनालय आदि की अच्छी इमारतें हैं।
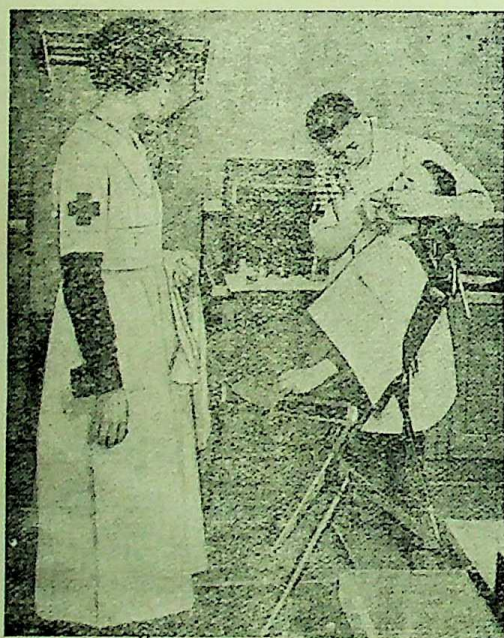
अस्पताल

इन सभी सुदृश्य स्थानों में सौंदर्य और उपयोगिता का एक साथ समावेश है।

इलिनायस-शहर का शत-वार्षिक स्मृति-स्तंभ भी
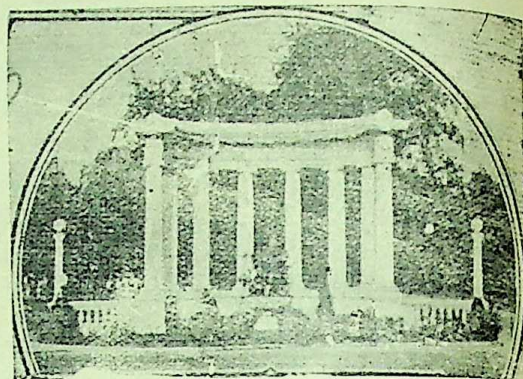
इलिनायस-शहर का शत वार्षिक स्मृति-स्तंभ

दर्शनीय है। यह लेख "पापुलर मेकनिक्स" के एक लेख के आधार पर लिखा गया है।

देवी दुर्गावती

अभी १०० वर्ष पहले तक मध्य-प्रदेश के जबलपुर, मंडला आदि ज़िलों में गोंड़-राजों का राज्य था। एक समय यही राज्य बहुत विस्तीर्ण था, और इसके अंतर्गत ५२ गढ़ या छोटे प्रांत थे। राजा संग्रामशाह ने इस राज्य की बहुत उन्नति की थी। ये गोंड़-राजा कभी गढ़े और कभी मंडले में रहा करते थे। रानी दुर्गावती ने ये दोनों स्थान छोड़ चौरागढ़ में रहना पसंद किया, जो नरसिंहपुर नाम के वर्तमान ज़िले में था।

ये गोंड़-राजा निरे जंगली गोंड़ नहीं थे; बल्कि अन्य हिंदू-राजों के समान बड़े ठाट-बाट से रहते और अपने को राजपूत या राजगोंड़ मानते थे। ये सनातन हिंदू-धर्म के अनुयायी थे, और ब्राह्मणों को बहुत मानते थे। इनके दरबार में मिथिला, बनारस आदि स्थानों से आकर विद्वान् ब्राह्मण रहा करते थे। इनमें से एक राजा ने तो वाजपेय-यज्ञ कराकर एक अपने आश्रित ब्राह्मण-कुटुंब को वाजपेयी बनाया था; जिसके वंशज आज तक मंडले में विद्यमान हैं। मालूम पड़ता है, ये बहुधा शाक्त होते थे; क्योंकि शाक्त मैथिल ब्राह्मणों का आदर इनके दरबार में अधिक था। अब भी कई ओझा-कुटुंब मंडले में रहते
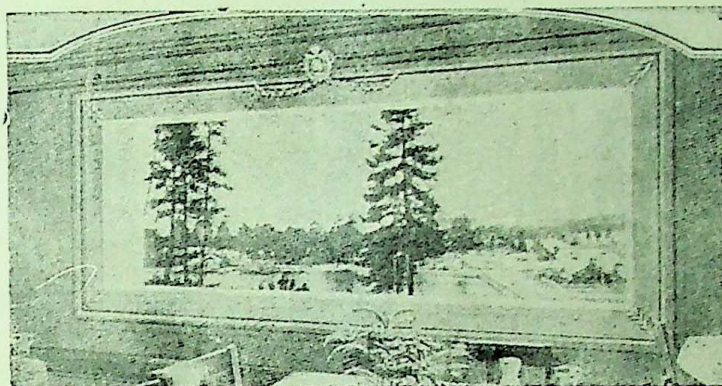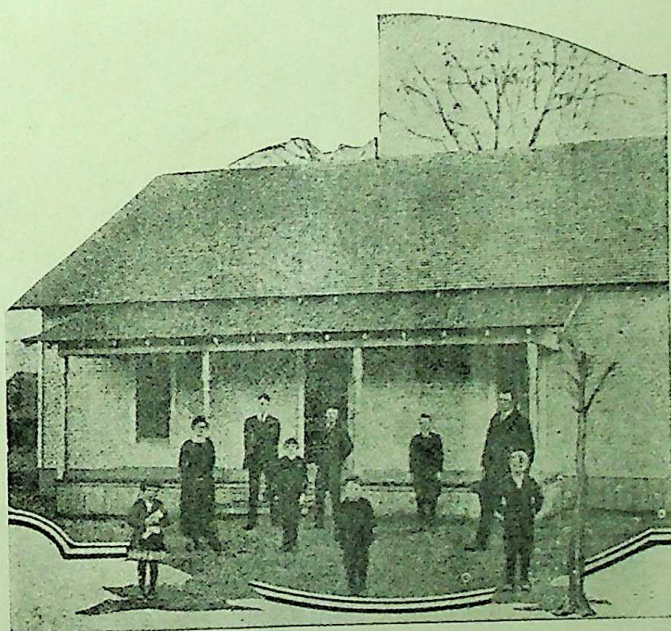
होटल

स्कूल-घर

N. K. Press, Lucknow.

हैं, और समृद्धि-संपन्न हैं। उनके पूर्वज इन्हीं राजों के समय वहाँ आए और सम्मानित हुए थे।

इन गोंड़-राजों का विस्तीर्ण राज्य गढ़ा-मंडला का राज्य कहलाता था, और यही 'आईने-अकबरी' का गोंड़वाना था। इसी राजघराने के अत्यंत पराक्रमी राजा संग्राम-शाह के पोते दलपतिशाह की रानी दुर्गावती थी। यह परम रूपवती वीरांगना चंदेल-राजा शालिवाहन की कन्या थी; अर्थात् एक शुद्ध राजपूत-वंश में इसने जन्म लिया था। जब दलपतिशाह विवाह के योग्य हुआ, तो इसी राज-कन्या के साथ उसके पाणि-ग्रहण की बात-चीत होने लगी। दुर्गावती ने मन-ही-मन उसे अपना वर स्वीकार कर लिया। पीछे से उसके पिता शालिवाहन ने यह विवाह अपने उच्च वंश के विचार से अनुचित समझ उसका विरोध किया। उसने अब यह बहाना किया कि मैं इससे पहले एक दूसरे ही राजकुमार को कन्या-दान का संकल्प कर चुका हूँ।

पिता की यह इच्छा देख सती दुर्गावती बड़े धर्म-संकट में पड़ गई। एक बार वरण करके फिर दूसरे ही पुरुष को पति-रूप से स्वीकृत करना वह सती-धर्म के विरुद्ध समझती थी। निदान उसने माता-पिता आदि सबको त्यागकर अपने धर्म की रक्षा करना ही सर्वोपरि कर्तव्य समझा, और दलपतिशाह को पत्र लिखा कि दूसरे को कन्या-दान का संकल्प करने की पिताजी की बात सत्य नहीं है। वह कुल में कलंक लगने के भय से ही ऐसा बहाना करते हैं। मैं तो तन-मन से आपकी दासी बन चुकी; अब आपको अधिकार है, पाणि-ग्रहण करें या न करें। यदि आप मुझे त्याग भी देंगे, तो मैं अपने सती-धर्म का पालन अवश्य करूँगी। और, यदि आप मुझे अब भी स्वीकार करना चाहते हैं, तो युद्ध करके यहाँ से ले जाइए, और इस तरह मेरे धर्म की रक्षा कीजिए।

दलपतिशाह रूप, साहस, युद्ध-कौशल आदि सभी गुणों में चौहान-वंशावतंस दिल्ली-पति पृथ्वीराज का मानो अवतार था, और दुर्गावती रानी संयोगिता की प्रति-मूर्ति। उसने राज-कन्या का संदेश पाते ही चतुरंगिणी सेना एकत्रकर महोबे पर चढ़ाई कर दी, और चंदेल-राज शालिवाहन को युद्ध में परास्त कर वह रानी दुर्गा-वती को साथ लिए हुए सिंगोलगढ़ नामक अपने निवास-स्थान को लौट आया। घर पहुँचने पर बड़े समारोह के साथ इन दोनों सच्चे प्रेमियों का विवाह हुआ। इसी समय उसने गढ़े से राजधानी उठाकर इस गढ़ में स्थापित की। सिंगोलगढ़ गढ़ा और सागर के मध्यवर्ती प्रांत में, एक ऊँची पहाड़ी पर किसी चंदेलवंशी राजा ने बनवाया था। गोंड़-राजों ने वह प्रांत चंदेलों से जीतकर सिंगोल-गढ़ को अपने अधिकार में कर लिया था।

विवाहोपरांत दंपति अपना समय बड़े सुख से बिताने लगे। पर यह सुख सांसारिक होने के कारण क्षणभंगुर ही था। इसके सिवा ऐसा अलौकिक प्रेम चिरस्थायी होता ही कब है? एक पुत्र-रत्न का सुख देखने के पश्चात् ही, अर्थात् विवाह के चार-पाँच वर्ष बाद ही, दलपतिशाह का परलोक-वास हो गया। तरुण दुर्गावती पर मानो वज्र-पात हुआ; वह कुछ समय के लिये इस असीम शोक से विह्वल हो गई। पर शीघ्र ही अपने पुत्र वीर-नारायण का मुख देखकर उसने धैर्य-धारण किया, और उसके प्रति अपने कर्तव्य को स्मरण कर वह अन्य राजपूत-रमणियों के समान सती नहीं हुई। उसका यह कार्य शास्त्रानुमोदित था। दुर्गावती अपना विदीर्ण हृदय जोड़कर अपने शिशु के लालन-पालन तथा शिक्षा-दीक्षा-रूपी कर्तव्य में संलग्न रहकर काल-क्षेप करने लगी।

जिस कच्ची अवस्था में रानी दुर्गावती को अपने विशाल राज्य की बागडोर हाथ में लेनी पड़ी, उस अवस्था के पुरुष भी यह दुस्तर भार सँभालने में बहुधा असमर्थ हुआ करते हैं। पर धन्य है इस रमणी की बुद्धि, धैर्य, शासन-कौशल, साहस आदि गुणों को, जिनके बल पर उसने अपने प्रिय पुत्र के राज्य को रक्षित ही नहीं रक्खा, बल्कि नया देश जीतकर उसका विस्तार और भी बढ़ा दिया। मालव-पति बाज़बहादुर को परास्त करके उसने उसका देश गोंड़-राज्य में मिला लिया। तभी से भोपाल आदि प्रांत गोंड़-राजों के अधिकार में आ गए। यह नहीं था कि वह युद्ध में अपने सेनापति भेजकर आप आनंद से अपने महलों में रहती हो; वह स्वयं हाथी पर चढ़कर युद्ध में जाती और सेनापति का कार्य बड़े कौशल से सफलता-पूर्वक किया करती थी। वीर पुरुषोचित अस्त्र-शस्त्र-प्रयोग में भी वह पूर्ण-रूप से निपुण थी। क्या शिकार और क्या युद्ध, सभी में उसका निशाना कभी नहीं चूकता था। ऐसी ही वीरांगनाओं के कर्तव्य-

निष्ठ पावन चरित्रों को अन्यान्य सभ्य देशों की जनता कई प्रकार के स्मारकों द्वारा सदा जीवित रखती है। जॉन-ऑफ़-यार्क आदि वीर-नारियों की पाषाण-प्रतिमाएँ स्थापित की गईं, और अब तक सुरक्षित हैं। यही वीर-पूजा तो उन देशों में उच्चादर्शों को कभी गिरने नहीं देती। पर इस देश में दुर्गावती-सदृश आदर्श-नारी का पावन चरित्र कितने लोगों को मालूम है ? इसी जबलपुर में कितने मनुष्य हैं, जो जानते हों कि "दुर्गावती रानी का चबूतरा"-नामक भग्न स्मारक कहाँ और किस अवस्था में है ?—या जबलपुर के समीप का विशाल जलाशय 'रानीताल' इसी दुर्गावती का बनवाया हुआ है ? यदि हम लोगों में सच्चे राष्ट्रीय भाव होते, तो हम अवश्य ही अपने इतिहास-प्रसिद्ध, सच्चरित्र, वीर पुरुषों तथा स्त्रियों के ऐसे स्मारकों का जीर्णोद्धार करते; नए-नए स्मारक खड़े करते; उनके गद्य-पद्यात्मक जीवन-चरित्रों का संकलन करते; उनकी कीर्ति को याद रखने के लिये उनकी जयंतियाँ मनाते !

शासन-कार्य का भार भी उसने स्वयं अपने हाथों में रक्खा था। यद्यपि उसने चुन-चुनकर योग्य-से-योग्य कर्मचारी रक्खे थे, तथापि वह प्रत्येक विभाग का निरीक्षण बड़ी सावधानी से स्वयं करती थी। उसके प्रधान मंत्री का नाम बाबू अधारसिंह था। यह कायस्थ बड़ा ही चतुर था; पर कुरूप भी कुछ कम न था। इसका खुदवाया हुआ तालाब, जबलपुर से कुछ मील की दूरी पर, अब भी 'अधार-ताल' के नाम से प्रसिद्ध है। पर कौन जानता है कि यह एक धुरंधर राजनीतिज्ञ का स्मारक है ? कहते हैं, अकबर ने यह समझकर कि जब तक अधार बाबू दुर्गावती की सहायता में रहेंगे, तब तक मेरी एक न चलेगी, इन्हें दिल्ली बुलवाकर क़ैद कर लेने की ठानी थी। दुर्गावती के बहुत रोकने पर भी वह मुग़ल-दरबार में जाने को तैयार हो गए। जाते ही उन्होंने बादशाह को रेशमी वस्त्र में लिपटी हुई एक वस्तु नज़राने में दी। वह जब खोली गई, तो निकली पका हुआ एक सूखा करेला ! अकबर को बड़ा क्रोध आया; पर अधार ने समझाया कि गोंड़-रानी के पास ऐसी कौन-सी वस्तु थी, जो वह दुनिया के शाहंशाह के पास भेजती ? उसने अपना सारा राज्य ही बादशाह के चरणों पर समर्पण करना चाहा; पर उस राज्य को उठाकर लाना असंभव देखकर उसने यह करेला भेजा है, जो उसके राज्य का ख़ासा नमूना या माडल है। जिस तरह इसके ऊपर लकीरें हैं, उसी तरह गढ़ा-मंडले के राज्य में कई नदियाँ बहती हैं; और इस पर की, ऊँची रेखाएँ वहाँ के पर्वतों का निदर्शन करती हैं। अब बादशाह-सलामत को कोई उत्तर न सूझा, और झख मारकर चुप रह जाना पड़ा। शतरंज के खेल में भी अधार ने अकबर को हराया होता, यदि रात को शाहज़ादी गोटें न बदल देती। कहते हैं, एक तेज़ घोड़े के पैरों में उलटे नाल लगवाकर अधार दिल्ली की नज़र-क़ैद से, पाख़ाने में से, भागकर अपने देश आ गए थे। अस्तु।

जो हो, पर इसमें संदेह नहीं कि दुर्गावती की अपार संपत्ति का वर्णन सुन अकबर ने इस विधवा स्त्री और उसके अनाथ पुत्र को लूटने की ठान ली। उसने यह भी देखा कि बड़े-बड़े राजपूत-नरेशों ने तो मेरा लोहा मान लिया, पर यह गोंड़वाने का राज्य अब भी स्वतंत्र है; जिससे मैं शाहंशाह नहीं कहा जा सकता। इसलिये उसने अपने सेनापति आसफ़ ख़ाँ को कड़ा-मानिकपुर से इस देश पर चढ़ाई करने की आज्ञा दे दी। यहाँ के ख़ज़ाने का हाल सुन-सुनकर आसफ़ ख़ाँ के मुँह में पहले से ही पानी आया करता था; इसलिये बादशाह की आज्ञा उसने ख़ुशी से मान ली, और अंत को सारी लूट हड़प लेने की ठान ली। वह ६ हज़ार सवार * और १० हज़ार सिपाही लेकर गढ़ा-मंडले के राज्य पर चढ़ आया। तबाक़ात-इ-अकबरी में दुर्गावती की सेना का परिमाण ७०० हाथी तथा ४० हज़ार सवार और सिपाही बतलाया गया है।

आसफ़ ख़ाँ की चढ़ाई की ख़बर सुनकर राज्य-भर में बड़ी खलबली मच गई। प्रजा मारे भय के भाग-भागकर जंगलों तथा पहाड़ों की गुफाओं में जा छिपी। पर, इस वीर नारी ने निर्भय होकर शत्रु का सामना करने का निश्चय कर लिया। वह अपनी सेना के सामने हाथी पर चढ़कर, सिर पर मुकुट और हाथ में धनुष और भाला लिए, शत्रु से युद्ध करने को आगे बढ़ी। उसके अलौकिक तेज तथा अनूप रूप को देखकर सिपाहियों को बड़ा

* तबाक़ात-इ-अकबरी (लेखक निज़ामुद्दीन अहमद) में यह संख्या ५० हज़ार सवार और सिपाही, और फ़रिश्ता के इतिहास में १.५ हज़ार हाथी और ८ हज़ार सवार तथा सिपाही, दी हुई है।

उत्साह हुआ; क्योंकि उन्हें विश्वास था कि रानी निरी स्त्री नहीं, साक्षात् देवी है। उसे युद्ध के लिये इस प्रकार अग्रसर देखकर सैनिकों का हृदय वीर-रस से प्लावित होने लगा। साथ ही उसकी भव्य मूर्ति देखकर शत्रु-दल आप-ही-आप निस्तेज हो गया। आसफ़ ख़ाँ ने यह प्रसिद्ध कर रक्खा था कि दुर्गावती निरी गोंड़-अबला है; वह शाही सेना के आगमन का समाचार सुनते ही भाग जायगी, और हम लोग उसके अतुल धन को लूटकर मालामाल हो जायँगे। इस विश्वास से आए हुए मुग़ल-सैनिकों ने जब उस गोंड़-अबला को इस प्रकार सेना-सहित अपना सामना करने को तैयार देखा, तो उनकी सारी आशाओं पर पानी-सा फिर गया, और जॉन यार्क को देखकर अँगरेज़ी सेना की जो दशा फ्रांस में हुई थी, उसी के लगभग आसफ़ ख़ाँ की मुग़ल-सेना की भी दशा हुई। थोड़ी-सी लड़ाई के बाद ही मुग़लों के पैर उखड़ गए; वे भाग निकले। दिन-भर रानी ने उनका पीछा किया। शाम को अपनी सेना को थोड़ी देर तक विश्राम कराकर फिर शत्रु का पीछा करने की आज्ञा दी; जिसमें वह सँभल न सके। पर खेद की बात है कि अनायास ही विजय पा लेने से ये लोग असावधान हो गए, और रानी की आज्ञा का उल्लंघन कर बैठे। बहुत थक जाने से उन्हें आराम करने के सिवा और कुछ न सूझा। रात को रानी ने बहुत जगाया; पर आलस्य ने उन्हें न उठने दिया। इस पर यह वीर रानी थोड़ी-सी सेना लेकर ही आगे बढ़ी। पर इससे भी उन आलसियों को लज्जा न आई। निदान फिर शत्रु का पीछा छोड़ना ही पड़ा; जिससे उसे बड़ा दुःख हुआ, और वह समझ गई कि इस विजय से कुछ लाभ नहीं।

वहाँ आसफ़ ख़ाँ पड़ा-पड़ा यही सोचता था कि शाही दरबार में मैं क्या मुँह दिखाऊँगा? लोग मेरी बड़ी हँसी करेंगे, और कहेंगे कि ख़ाँ साहब एक गोंड़-स्त्री से ऐसे डर गए कि अंत को भागते रास्ता न मिला। वह बहुत रात जाने तक इसी उधेड़बुन में पड़ा था कि उसके गुप्त-चरों ने हिंदुओं के आज्ञा-भंग करने की ख़बर उसे सुनाई; जिसे सुन उसके जी-में-जी आया, और वह निश्चिंत हो-कर सो रहा।

प्रातःकाल होते ही आसफ़ ने अपनी फ़ौज को दुर्गावती पर फिर से चढ़ाई करने की आज्ञा दी, और तोपख़ाने के आ जाने पर उसे सामने लाया। पहली लड़ाई में उसकी तोपें नहीं आई थीं, जो अब आ गईं। निदान जब मुग़ल-सेना हिंदुओं के पड़ाव के बहुत समीप आ गई, तब कहीं हिंदू-सैनिकों की नींद खुली, और वे आँखें मलते हुए शत्रु से भिड़ने की तैयारी करने लगे। वे यही समझते थे कि हम बात-की-बात में मुसलमानों को उसी तरह मार भगावेंगे, जैसे पहले भगाया था। वे नहीं जानते थे कि इस बार हमें तोपों का सामना करना पड़ेगा! फिर इस प्रकार शत्रु के अकस्मात् पहुँच जाने से हिंदू-सेना ही नहीं, बल्कि वीर रानी भी कुछ देर के लिये घबरा-सी गई, और उससे भी कुछ न बन पड़ा। शीघ्र ही रानी ने अपने को सँभालकर अपनी सेना को एक तंग घाटी के पीछे खड़े होने की आज्ञा दी। इस पर मुसलमान लोग आगे बढ़े बिना ही उनपर गोलों की वर्षा करने लगे। रानी ने जब देखा कि यहाँ रहने से कुछ लाभ नहीं है, तो समीप के एक मैदान में अपनी सेना खड़ी की; जहाँ शत्रु पर आक्रमण करना और उसके आक्रमण से बचना कुछ सुगम था। उसने अपने मन का व्यूह (मोर्चा) रचकर शत्रु को युद्ध के लिये ललकारा। यह देख राजकुमार वीरनारायण लड़ाई छोड़ अपनी प्रिय माता के समीप आ गया, और उसे जोखिम से बचाने की इच्छा से स्वयं प्रधान सेनापति का कार्य करने लगा। उसने अपने रण-कौशल से क्या शत्रु, क्या मित्र, सभी को चकित कर दिया। दुर्गावती भी अपने पुत्र की वीरता देखकर गद्गद हो गई। इस वीर ने दो बार मुसलमानों पर आक्रमण कर उन्हें दूर तक भगाया; जिससे आसफ़ ख़ाँ को बड़ी जन-हानि उठानी पड़ी। तीसरी बार फिर वह शत्रु-दल पर ऐसे टूटा, जैसे वनराज केसरी हरिण-समूह पर टूटता है। इस बार मुसलमानों ने चारों ओर से ऐसा घेरा कि उसे अपनी तलवार चलाना भी कठिन हो गया। उस कठिन समय में हिंदुओं को वीर अभिमन्यु का स्मरण आ गया। एक वीर पर सहस्रों का वार करना धर्म-युद्ध नहीं कहा जा सकता। पर भला आसफ़ ख़ाँ से भी धर्म-युद्ध की आशा की जा सकती थी! निदान राजकुमार ऐसी प्रतिकूल दशा में भी लड़ते-लड़ते मर्माहत होकर घोड़े से गिर पड़ा। यह भीषण कांड देखकर हिंदू-सेना निराश और व्याकुल

हो उठी। पर, उस वीर नारी ने अपना धैर्य नहीं छोड़ा। अपने इकलौते पुत्र को इस शोचनीय दशा में देखकर भी वह, क्षण-भर के लिये भी, कर्तव्य-विमुख नहीं हुई; बल्कि पुत्र को चौरागढ़-नामक दुर्ग में भेजकर आप शत्रु से बराबर लड़ती रही। वीरनारायण के जाने पर उसी ने सेनापति का पद ग्रहण किया, और आगे बढ़कर शत्रु-दल पर आक्रमण करना चाहा; पर थोड़े-से इने-गिने सैनिकों के सिवा उसकी अधिकांश सेना ने उसका साथ नहीं दिया। मुग़लों की तोपों की बाढ़ों ने हिंदुओं को बहुत बड़ी हानि पहुँचाई। उनके पास तोपें न होने से वे उनका जवाब नहीं दे सकते थे। अपने अधिकांश साथियों को धराशायी और राजकुमार वीरनारायण को रण-क्षेत्र से घायल हो जाते देखकर बहुत-से हिंदू योद्धा अपने प्राण लेकर भाग गए। जब रानी ने देखा, अब केवल ३०० के लगभग वीर रह गए हैं, और वे भी शत्रु पर आक्रमण करने में साथ नहीं देना चाहते, तो उसने उन्हें उसी तंग घाटी के पीछे जाने की आज्ञा दी; और वह उनके साथ एक ऊँचे टीले पर खड़ी होकर शत्रु की प्रतीक्षा करने लगी। उसे अब भी आशा थी कि जैसे-जैसे थोड़े-थोड़े शत्रु इस घाटी में प्रवेश करेंगे, वैसे-वैसे वे मारे जायँगे, और अब भी विजय होगी। यह कोई असंभव बात नहीं थी; क्योंकि 'थर्मापली' की घाटी में वीर लियोनिडस ने ३०० स्पार्टन वीरों के साथ सहस्रों ईरानियों के दाँत खट्टे किए थे। पर, गढ़ा-मंडले की स्वतंत्रता के दिन अब पूरे हो चुके थे; गोंड़-राजों के दुर्दैव ने इस तेजस्विनी वीर बाला को नष्ट कर देने की ठान ली थी। इसी से ऐसे कठिन समय में उसकी कोमल आँख में, शत्रु-दल से आया हुआ, एक तीर घुस गया। इस दुर्घटना से उसे कैसी असह्य वेदना हुई होगी, सो पाठकगण स्वयं अनुमान कर सकते हैं। मगर फिर भी उसे मूर्च्छा तक नहीं आई, और उसने उस प्राण-घाती तीर को एक मामूली काँटे के समान निकालकर फेंक दिया। दुर्भाग्य-वश उसकी 'अनी' आँख में रह गई। इस घोर कष्ट को सहते हुए भी रानी ने अपने कर्तव्य का पूर्ण पालन किया। उसके सैनिकों ने उसे बहुत समझाया कि "आपके जीवित रहने पर ही इस राज्य की स्वतंत्रता अवलंबित है, इसलिये आप चौरागढ़ जायँ, और हम लोगों को यहाँ लड़ने दें। हम आपकी शपथ खाकर विश्वास दिलाते हैं कि हममें से एक भी जब तक जीता बचेगा, तब तक लड़े बिना न रहेगा।", पर रानी ने यही उत्तर दिया कि शत्रु के सम्मुख से भागना राजपूतों का धर्म नहीं है।

इस वीर नारी की दृढ़ प्रतिज्ञा की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है। शीघ्र ही उसके साथियों को, उसे छोड़कर, भागने का अवसर न रहा। उस पहाड़ी के पीछे जो एक सूखा नाला था, वह कहीं वर्षा होने से जलमय हो गया। उसके अनन्य भक्त महावत ने उसे समझाया कि "अब भी यदि आप आज्ञा दें, तो मैं आपके हाथी को इस नाले के पार ले चलूँ। आपकी प्राण-रक्षा का यही एक उपाय है।" पर रानी अपने संकल्प पर दृढ़ रही। इसी समय उसकी गर्दन में एक दूसरा तीक्ष्ण बाण लगा। शत्रु-दल भी उस घाटी को पार करता हुआ उसी की ओर बढ़ रहा था। अब उसे निश्चय हो गया कि मेरे सैनिक शत्रु को नहीं रोक सकते, और यहाँ ठहरने से व्यर्थ मारे जायँगे। अतएव जितने बचे हैं, उनकी प्राण-रक्षा करना ही मेरा कर्तव्य है। उसने देखा, जब तक मैं जीवित यहाँ खड़ी रहूँगी, तब तक ये लोग मेरा साथ न छोड़ेंगे। अतएव महावत के हाथ से अंकुश छीनकर उसने अपने पेट में मार लिया, और स्वदेश-स्वातंत्र्य की वेदी पर बलि हो गई! धन्य हो दुर्गावती! धन्य है तुम्हारी कर्तव्य-निष्ठा, सहन-शीलता और वीरत्व! यह हतभाग्य भारतवर्ष आज तुम्हारे सदृश पुनीत वीरांगनाओं के उज्ज्वल चरित्रों की स्मृति से ही अपना मस्तक ऊँचा कर सकता है!

दुर्गावती की मृत्यु के समय उसके साथ केवल ६ सैनिक बचे थे। शोक और क्रोध से व्याकुल होकर उन्होंने अपने प्राण महँगे बेंचने का दृढ़ संकल्प कर लिया, और शत्रु-दल पर घोर आक्रमण किया। उन्होंने अनेकों शत्रुओं के सिर मूली की तरह काट-काटकर पवित्र वीर-गति प्राप्त की।

महारानी दुर्गावती का दाह-कर्म उसी पहाड़ी पर किया गया, जहाँ उसने स्वदेश की स्वतंत्रता खो जाने के पूर्व ही आत्मोत्सर्ग किया था। उस स्थान पर एक साधारण चबूतरा आज तक बना है, और केवल यही उसका स्मारक है। इस पहाड़ी पर असंख्य कंकड़ पड़े रहते हैं, जो वहाँ की चट्टानों के भीतर से निकलते और

नमक या मिसरी के समान होते हैं। प्रत्येक पथिक, जो उस मार्ग से जाता है, एक कंकड़ उस पवित्र चबूतरे पर फेंक देता है। पास ही दो बड़ी चट्टानें भी हैं, जो रानी की दुंदुभी के नाम से प्रसिद्ध हैं। आस-पास के ग्रामीणों का कथन है कि मध्य-रात्रि को जब सन्नाटा हो जाता है, तो इन दुंदुभियों के बजने का शब्द सुनाई दिया करता है। इस चबूतरे के समीप और भी कई क़बरें हैं; जिससे स्पष्ट है कि इस युद्ध में दोनों पक्ष के बहुत वीर काम आए होंगे।

इस युद्ध में विजय पाकर आसफ़ ख़ाँ आगे बढ़ा, और चौरागढ़ का मुहासरा किया। वीरनारायण ने बराबर दो मास तक उसकी रक्षा की। जब वीर माता का यह वीर पुत्र भी युद्ध में मारा गया, तो दुर्ग-रक्षकों की हिम्मत टूट गई। उन्होंने प्राचीन राज-प्रथानुसार 'जौहर' कर डाला; अर्थात् मर्द तो केसरिया जामा पहनकर नंगी तलवारें चमकाते हुए बाहर निकल आए, और कुछ शत्रुओं को मारकर स्वयं कट मरे, और औरतों ने अपने बच्चों-सहित अग्नि-देव की शरण ली। ये वीर राजपूत और उनकी स्त्रियाँ शत्रु के वश में पड़कर पराधीन होने की अपेक्षा मर जाना ही उत्तम समझते थे। कहते हैं, चौरागढ़ में केवल दो स्त्रियाँ बच रही थीं; जिनमें से एक तो रानी दुर्गावती की बहन और दूसरी कुमार वीरनारायण की भावी वधू थी। इन अभागिनियों की वही दशा हुई, जो मुसलमान विजेताओं के हाथ में पड़ने से अन्य हिंदू-महिलाओं की हुआ करती थी, और जिसके भय से वे अपने प्राण दे दिया करती थीं; अर्थात् दिल्ली में वे शाही हरम में डाल ली गईं।

गढ़ा-मंडले का राज्य जीतकर आसफ़ ख़ाँ अपार संपत्ति ले गया। उसने १४०० में से १००० हाथी चुन कर ले लिए। अशर्फ़ियों के भी १०० हंडे उसके हाथ लगे। अशर्फ़ियाँ सुलतान अलाउद्दीन ख़िलजी के समय की थीं। इसके सिवा उसे जो जवाहरात, गहने वग़ैरह मिले, उनका कहना ही क्या है।

धन्य है काल की कराल गति, संसार की परिवर्तनशीलता और मानवीय कार्यों की क्षण-भंगुरता! जो राज्य कई शताब्दियों के अटल प्रयत्न से बढ़ते-बढ़ते दलपतिशाह के अटल राजत्व-काल में इतना समृद्धिशाली, उन्नत एवं पूर्ण स्वतंत्र हुआ था, वह अकबर-सदृश उदारचेता सम्राट् के समय में एक तरुण विधवा तथा उसके एक-मात्र युवक पुत्र से एक तरह अन्याय से छिन-सा गया। हाँ, इसके बाद भी गत अठारहवीं शताब्दी के आरंभिक काल तक गोंड़-राजा इस राज्य का शासन करते रहे; पर वे स्वतंत्र कभी नहीं हो सके। एक अबला, सो भी अनाथ विधवा, और उसके अप्राप्त-वयस्क पुत्र पर आक्रमण कर सारी संपत्ति लूटना, और इस तरह उन दोनों के प्राण लेना, न तो धर्मानुमोदित है, और न नीत्यनुमोदित। अकबर की और चाहे जितनी प्रशंसा की जाय, पर उसके ऐसे अधम कार्य अवश्य ही निंद्य हैं।

गोंड़-राज्य में प्रजा जितनी सुखी थी, उतनी सुखी अन्य किसी राज्य में नहीं रही। मुसलमानों के आने पर यह राज्य इसलिये इतने दिन बचा रहा कि उसका मार्ग जंगलों और पहाड़ों के कारण बहुत ही दुर्गम था। साथ ही इस राज-वंश में कितने ही नरेश बड़े वीर और पराक्रमी हुए; जिससे इस प्रांत पर आक्रमण करना कठिन रहा। इन लोगों ने यही बड़ी भूल की, जो अपने पास तोपें नहीं रक्खीं; नहीं तो शायद आसफ़ ख़ाँ भी अनायास ही इस राज्य को कवलित न कर सकता। पहले दिन जब उसकी तोपें उसके पास नहीं पहुँची थीं, तो उसे युद्ध में भागना ही पड़ा था। दूसरी बार तोपों का सामना करने के कारण ही दुर्गावती की सेना इतनी विचलित हुई, जिससे उसकी ऐसी भयंकर पराजय हुई; नहीं तो आश्चर्य ही क्या कि दूसरे दिन के युद्ध में भी मुसलमानों की ही हार होती।

इसमें संदेह नहीं कि हम हिंदुओं ने जो सर्वस्व खोया, वह बहुधा अपनी धर्म-भीरुता के कारण ही। हमारा यही ध्येय रहा है कि चाहे सब कुछ जाय, पर धर्म न जाय। यदि रानी दुर्गावती अपनी हार होती देखकर युद्ध-स्थल से भाग निकलती, तो संभव था कि वह फिर से सेना एकत्रकर शत्रु से लड़ सकती, और कदाचित् परिणाम ही दूसरा होता। पर शत्रु को पीठ दिखाना राजपूत-वीरांगना एक महापाप समझती थी; जिससे वह ऐसा न कर सकी। परलोकवासी अध्यापक मोक्षमूलर ने ठीक ही कहा है कि हिंदू-भारत के ग़ारत होने का यही एक बड़ा प्रबल कारण है कि हिंदू-जाति दूसरों का गला काटने की विद्या में कभी निपुण नहीं रही। यदि यही होता तो उसके इतने वीर होने पर भला उसकी इतनी

दुर्गति क्यों होती ? हिंसकों के सम्मुख अहिंसा-व्रतधारी कहाँ तक ठहर सकता है ?

अंत में हम यही कहेंगे कि हमारी चरित्र-नायिका रानी दुर्गावती भारत की क्या, संसार भर की वीर-नारियों में किसी से कम न थी। उसकी ईश्वर-भक्ति, प्रजा-मनोरंजन, धर्म-निष्ठा, वीरत्व आदि गुण दूसरों के लिये आदर्श थे। अब तक उसकी वीरता की कई कहानियाँ कही जाती हैं; उसके पावन चरित्र के गीत गाए जाते हैं। यदि देश-गौरव के अभिमानी इस प्रांत के केंद्र-स्थानों में उसके स्मारक स्थापित करें, और प्रति-वर्ष उसकी जयंती मनावें, तो अवश्य ही हममें जातीयता के भावों का उत्कर्ष हो, और यह भी सिद्ध हो जाय कि हम निरे वाक्यशूर नहीं हैं; हममें कर्मण्यता भी खूब है।

रघुवरप्रसाद द्विवेदी बी० ए०

इंद्र-धनुष

रत्नच्छायाव्यतिकर इव प्रेक्ष्यमेतत्पुरस्ताद्—
वल्मीकाग्रात्प्रभवति धनुःखंडमाखंडलस्य।
येन श्यामं वपुरतितरां कांतिमापत्स्यते ते
बर्हेणेव स्फुरितरुचिना गोपवेषस्य विष्णोः ॥

—मेघदूत

A ceiling purse
Filled with food for the poet's winged fancy.
—R. Lucifer.

अहा-हा ! सूर्यास्त निकट है। भगवान् अंशुमाली अस्ताचल के शिखर पर विश्राम कर रहे हैं। उनकी किरणों से आकाश के अभ्र-खंड सुवर्ण-वर्ण धारण कर रहे हैं; संपूर्ण नभोमंडल स्वर्ण-खचित हो रहा है। नीलिमा पूर्ण संध्या सुंदरी का साँवला सलोना मुख सूर्य-देव के वियोग में मलिन हो रहा है। ये बूँदें क्या पड़ रही हैं मानों उसी दुःखिता वियोगिनी के बड़े-बड़े आँसू टपक रहे हैं। उधर पूर्व में चंद्र-देव ने उदित होकर उस शोक-संतप्ता सुंदरी के शुभ्र भाल में पीत-वर्ण केसरिया तिलक का काम किया है। कैसा मनोरम दृश्य है ! इस अवसर पर इस इंद्र-धनुष ने प्रकट होकर कैसी अलौकिक छटा दरसाई है। वाह रे इंद्र-धनुष, वाह ! भला क्या कोई इसका रहस्य बतला सकता है ? ऐसे स्वर्गीय सौंदर्य का स्वप्न क्या मनुष्य की प्रतिभा कभी देख सकती है ?

क्या यह इंद्र का वही धनुष है, जिस पर वह अपना बिजली का बाण संधान कर उसे अपने पाताल-निवासी प्रतिद्वंद्वी राजा बलि पर छोड़ते हैं ? अथवा यह वह शक्ति-शाली धनु है, जिस पर से महाबली कामदेव ने अपना सुमन-बाण छोड़कर योगिराज महादेव के क्रोध को जगाया था ? क्या वही धनुष है, जिसके कारण रति-पति भस्म होकर अनंग हो गया था ? अथवा यह शिवजी का वह पिनाक है, जिसने रावण, बाणासुर आदि महावीरों का गरूर चूर कर दिया था ? क्या सचमुच यही वह धनुष है, जिसके दो खंड कर श्रीरामचंद्रजी ने सीता ब्याही थीं ? अथवा यह सुरेश का ही वह धनुष है, जिससे उन्होंने वृत्रासुर का संहार किया था ? अथवा यह माया की प्रलोभन-शृंखला है, जिससे सारा संसार जकड़ा है ? या यह उस पतंगवाले की डोर है, जिससे वह सारे संसार को उड़ा रहा है ? अथवा उस नटवर बाल खिलाड़ी के लट्टू की रस्सी है, जिसमें बाँधकर वह समस्त जगत् को नचाता है ? या उसी त्रिकालज्ञ सकल कला-पारंगत पंडित के गले की सुंदर सुमन माला है ? अथवा नीलांबर रूप-धारी व्रजविहारी नील-वर्ण नंदलाल की विचित्र वनमाला है ? अथवा विराट् रूप-धारी भगवान् नीलकंठ के आकाश-रूपी कंठ में लिपटा हुआ सर्प है ? या

अनंत प्रकृति-देवी का अपरिमित चंद्रहार है, जिसकी चौकी चंद्रमा है ? अथवा तमोरूप घूँघट में मुँह छिपाए हुए वनिता-विभावरी की बाँकी बुलाक है ? या कविता-कामिनी का रत्न-जटित, टूटा हुआ *, कमनीय कंकण है ? अथवा सुरसा सरस्वती की वह लंबी थैली है, जिसमें रसवती, चटपटी कविता के लिये मसाले भरे पड़े हैं ? अथवा यह पूर्व-दिगंगना की मणि-मंडित वंदी † तो नहीं है ? या शृंगार करती हुई प्रकृति-नायिका के श्यामल नभोनयन में लगी हुई काजल की करारी कोर है ? अथवा रजनी-रमणी की रंगीन कंघी का किनारा है, या उसी की हेममयी हँसली ?

अथवा उस साज की कोठरी का गुप्त नेपथ्य-मार्ग है, जहाँ से सज-सजकर, बन-बनकर सब अपना नाट्य दिखलाने यहाँ आते हैं ? अथवा उस नाट्य-शाला को जाने का मार्ग है, जिससे हम, यहाँ से ट्रेनिंग पाकर, वहाँ अपना-अपना पार्ट खेलने जाते हैं ? या सत्पुरुषों के उतरने के लिये संसार और स्वर्ग के बीच माया की सरिता का सेतु है ? या महाराज इंद्र के सभा-मंडप की बहुरंगी झालर है ? या वरुण-देव की शोभामयी फुलवाड़ी का सुसज्जित मार्ग है ? या देवगण के पय:पानार्थ स्वर्ग से क्षीर-सागर तक लगा हुआ परम पुनीत पाइप तो नहीं है ? अथवा यह उस दूर दरबार के द्वार की मनोरम मेहराब है, जहाँ एक दिन सब की हाज़िरी ज़रूरी है ? या उस बुद्धिमान् बज़ाज़ की अजीब अलगनी है, जिस पर वह नित रंग-रंग के कपड़े लटकाकर सबको अपनी दूकान का दर्शनीय दृश्य दिखलाता है ? अथवा उस गैस-बत्तीवाले उदार सौदागर का ललित 'लटकन' है, जिस पर वह दिन-रात अपने सूर्य-चंद्र-से गैस व लालटेनों को लटकाकर हमें मुफ़्त निराला उजियाला पहुँचाता है ? अथवा मोह की कीचड़ में धँसा हुआ अर्ध-दृष्ट प्रकृति का पहिया है ? या मृत्यु-देवी का लंबा पाश है, जिससे वह संसार के प्रत्येक प्राणी को अपनी ओर खींच लेती है ? या काल-रूप मदांध गजेंद्र को बाँधने की यह शृंखला है, जिसके आधे हिस्से को तुड़ाकर वह भागा चला जा रहा है ? या क्रुद्ध कलियुग-करिवर को कोंचने के लिये उस महामहिम महावत का महान् मर्मभेदी अंकुश है ? या समय के घोड़े पर चढ़े हुए उस चतुर घुड़सवार की लगाम या बढ़िया बागडोर है ? या सृष्टि की इस चमत्कार-पूर्ण रंग-भूमि में खड़ी हुई प्रकृति-कन्या की स्वयंवर-माला है, जिसे वह अपने सर्व-श्रेष्ठ वर को पहनावेगी ? या तिरछे ताकती हुई माया-रूप स्त्री की कमान-सी कटीली भौंह है ? अथवा उस बड़े भूगोल-वेत्ता की मेज़ पर रक्खी हुई समस्त सृष्टि के ग्लोब के ऊपर की कमानी है ? या उस बड़े साहब के नित्य प्रति पहनने की पतलून की पवित्र पेटी है ? या उस स्याने शिकारी के छर्रे-बारूद का सिंगरा है ? अथवा आदिगंत-विस्तृत उसके छबीले छाते का एक किनारा है ? अथवा उस बड़े मालदार खज़ांची का वह तोड़ा है, जिसमें सूर्य-चंद्र-तारकादि-ऐसे हीरे-जवाहिर तथा मोती-मानिक भरे हुए हैं ? अथवा उस बड़े कारख़ाने के सतरंगे कपड़ों के नमूने का एक टुकड़ा है, जिसमें सारी सृष्टि बुनी गई है ? अथवा दुष्टों के दंड के लिये धर्मराज का संतप्त कोड़ा है ? या यमराज की उस बही का बेठन है, जिसमें चित्रगुप्त सबके बुरे-भले कर्मों का ब्योरा रखते हैं ? अथवा आकाश-गंगा

* कवियों के ह्रास के कारण ही शायद कविता-कामिनी का कंकण टूट गया है !

† सिर पर पहनने का स्त्रियों का एक आभूषण।

में से कमल काटने के लिये देव-गण के सुनहले हँसिए का फल तो नहीं है ? या सहस्रमुख शेष-नाग की केंचुल है, जो स्वर्ग की ओर उड़ी जा रही है ?

अथवा मनुष्य तथा प्रकृति के बीच होते हुए इस भीषण मैच के उस न्याय-शील 'रफ़री' (Referee) की सृष्टि-रूपी घड़ी की चित-चोर चैन है ? या इस सांसारिक नाट्य-शाला के उस निष्पक्षपात दर्शक के चश्मे की चमकीली कमानी है ? अथवा हमारी संसार-रूपी ट्रेन के गुणी गार्ड की लालटेन का हैंडिल है ? या परिवर्तनशील प्रकृति की रँगीली ओढ़नी है ? अथवा बहु-रूपिए समय का रंगीन दुपट्टा है ? अथवा स्वर्ग-निवासी गंधर्वों का रमणीय रास्ता है ? या अप्सराओं के टहलने का मनोरम मार्ग है ? या देवराज इंद्र के गजराज ऐरावत की सुंदर सूँड़ है ? या वृंदावन-विहारी, गिरिवर-धारी, आनंद-कंद, यशोदानंदन की विचित्र बहुरंगी पगड़ी है, जो सूखने को फैलाई गई थी ? अथवा चपला-सी चंचला राधा प्यारी की चमकीली-चटकीली चूनरी है ? या बाँके विहारी बनवारी की सुंदर, सुरीली बाँसुरी की रेशमी रस्सी है ? या संकट-समयों पर उन्हीं अनंत रूप-धारी, पूतनारि, मुरारि सच्चिदानंद, नंदनंदन कृष्ण के अवतरित होने का आशा-पूर्ण पथ है, जिससे वह शीघ्र एक दिन उतरकर अधोगत, आर्त भारत को ग़ारत होने से बचाकर हमारा उद्धार करेंगे, और अपने इन गीता-गीत वचनों को चरितार्थ करेंगे ?—

"यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥"

श्रीरामाज्ञा द्विवेदी बी० ए० (ऑनर्स)

विज्ञान-वाटिका

१. सत्य और झूठ की परीक्षा

झूठ बोलने के समय मनुष्य की आकृति में कुछ अंतर आ जाता है ; किंतु सर्वदा सभी समय मनुष्य का चेहरा देखकर यह बतलाना कठिन होता है कि वह सच बोल रहा है, या झूठ । जो लोग प्रायः सच बोला करते हैं, झूठ बोलते समय उनके चेहरे की रंगत बदल जाती है, और कोई भी सूक्ष्म निरीक्षक उनकी उस समय की आकृति भी देखकर कह सकता है कि वह झूठ बोल रहा है । किसी-किसी मनुष्य की आवाज़ झूठ बोलते समय थर्राने लगती है । किंतु झूठ बोलना जिन लोगों का पेशा ही है, उनके चेहरे को देखकर सब समय सत्य-झूठ का निर्णय करना कठिन होता है।

मन मनुष्य के किए हुए सभी पापों को जानता है। मनुष्य की बाह्याकृति में झूठ बोलने का कोई चिह्न प्रकट न होने पर भी उसके हृत्पिंड और फुसफुस झूठ को कभी छिपा नहीं सकते । मनुष्य की इस दुर्बलता के सुयोग से लाभ उठाकर बोस्टन शहर के मि० विलियम एम० मार्सटन ने एक यंत्र बनाया है । यह सत्य-मिथ्या-परीक्षक यंत्र है । यह यंत्र अपराधियों का दोष प्रमाणित करते समय विशेष सहायता देता है । अपराधियों के बयान लेते समय इसका प्रयोग किया जाता है ।

यंत्र के तीन भिन्न-भिन्न हिस्से हैं । पहले का काम है—जिरह के समय प्रश्नों का उत्तर देने में अपराधी को जितना समय लगता है, उसे बतलाना । यह यंत्र $\frac{1}{2500}$ सेकिंड तक बता सकता है। जिरह करनेवाला, एक तालिका देखकर, कुछ शब्द पढ़कर असामी को सुनाता है, और असामी से कह देता है कि वह उन शब्दों में से किसी एक शब्द को कहकर प्रश्नों का उत्तर दे । यह कहने की आवश्यकता नहीं कि तालिका में कुछ शब्द फ़िज़ूल होते हैं, और कुछ मामले से संबंध रखते हैं । जो सचमुच अपराधी है, वह एकाएक किसी प्रश्न का उत्तर नहीं दे सकेगा ; उत्तर देने के पहले उसे कुछ सोचने की आवश्यकता पड़ेगी—वह समय चाहे दो-चार मिनट हो, या दो-चार सेकिंड । ख़ासकर जब उसे तालिका के शब्दों को कहकर उत्तर देना है, तब वह कुछ इतस्ततः करके, सतर्कता के

साथ, निर्दोष शब्दों को ही कहने की चेष्टा करेगा, इस लिये उत्तर देने में उसे कुछ समय लगेगा। किंतु जो निर्दोष है, उसे सोच-समझकर कहने की कुछ ज़रूरत ही नहीं। इसलिये सब प्रश्नों का उत्तर देने में उसे प्रायः एक ही समय लगेगा।

दूसरे हिस्से का काम है, श्वास-प्रश्वास की ख़बर रखना। निर्दोष मनुष्य की स्वाभाविक अवस्था में श्वास-प्रश्वास का काम जिस प्रकार होता रहता है, उस प्रकार एक अपराधी का—जब वह अदालत के सामने अपना दोष छिपा रहा है—नहीं होता। हम लोग बाहर से अपराधी के मन की चंचलता, हृत्पिंड की धड़कन, फुसफुस के संकोचन-प्रसारण आदि को नहीं समझ सकते ; किंतु मार्सटन साहब का यह यंत्र अपराधी के डर, शंकित हृदय और फुसफुस के प्रत्येक कामों की सूचना देता है।

तीसरे हिस्से का काम है, अभियुक्त व्यक्ति की धमनियों में रक्त संचालन की गति का निरूपण करना। अपराधी को अदालत में उपस्थित करने के पहले, या कोई प्रश्न करने के पहले, उसके रक्त की गति की एक बार परीक्षा कर ली जाती है। इसके बाद इज़हार या जिरह के समय उसकी पुनः परीक्षा की जाती है। यदि उसके रक्त की गति सहसा तेज़ हो जाय, तो उसके अपराधी होने में ज़रा भी संदेह नहीं रहता। ये यंत्र अदालत में अपराधियों को सच्चा या झूठा साबित करने में बड़े सहायक हुए हैं।

× × ×

२. दाँतों की रक्षा

दाँत एक प्रकार की हड्डी-विशेष है। उसके दो प्रधान पदार्थ नमक और जिलेटिन हैं। जिलेटिन में चूना-जातीय पदार्थ के नहीं रहने से वह यथेष्ट कड़ा नहीं होता। जिन बालकों की हड्डी काफ़ी कड़ी नहीं होती, उनका पैर लड़कपन ही में टेढ़ा हो जाता है। रक्त में चूना-जातीय पदार्थ के कम हो जाने की वजह से उनके दाँत भी मज़बूत नहीं होते। इसलिये गर्भ-कालीन माता के स्वास्थ्य तथा भोजन के ऊपर भ्रूण या भविष्यत् बालक के दाँतों का हिताहित अवलंबित है।

दाँत अच्छे रखने के कई उपाय नीचे दिए जाते हैं—

(१) दाँत को सुस्थ, सबल, सुंदर और दीर्घकाल-स्थायी बनाने के लिये गर्भवती तथा स्तन्यदात्री माता के भोजन पर निगरानी रखनी चाहिए।

(२) मुँह से कभी साँस नहीं लेनी चाहिए।

(३) प्रतिदिन दाँत साफ़ करना उचित है। सोकर उठने के बाद सुबह और सोने के पहले रात को मुँह दातून से साफ़ करना चाहिए। इसके अतिरिक्त, कुछ थोड़ा खाने के बाद ही कुल्ला कर लेना आवश्यक है। पान-सुपारी खाने के बाद भी मुँह अच्छी तरह धो लेना हितकर है। दाँत साफ़ रखने का एक और उपाय ख़ूब चबाकर खाना है।

(४) कभी-कभी मनुष्यों का मुँह खट्टा पड़ जाता है। ऐसा न होने देना चाहिए। आहार का जो हिस्सा मुँह में रहता है, वही सड़कर मुँह में खटास पैदा करता है। यह रस दाँत में लगकर दाँत को हानि पहुँचाता है। पान या मुख-शुद्धि-व्यवहार करने से मुँह से जो यथेष्ट परिमाण में लार निकलती है, उससे मुँह धोने का काम होता है। इसीलिये मुख-शुद्धि का इतना आदर है। किंतु किसी भी मुख-शुद्धि के व्यवहार के बाद भी पानी से मुँह धोना उचित है।

(५) मुँह में बीजाणुओं को न फैलने देना चाहिए। दाँत के मसूढ़ों या दो दाँतों के बीच के स्थान में यदि बीजाणु प्रवेश कर जायँ, तो वे कौन-कौन-सी हानियाँ करते हैं, उसे भी देख लीजिए—

(क) दाँत या मसूढ़ों में पीब पैदा करना, (ख) दो दाँतों के बीच के स्थान में खुजलाहट उत्पन्न करना, (ग) दाँत की जड़ को कमज़ोर बना देना, (घ) जीवाणुजात विष का थोड़ा-थोड़ा करके सारे शरीर में प्रवेश कर जाना।

अतएव इस विषय में हमारे ये कर्तव्य हैं—

(१) दाँत साफ़ रखना, कुछ खाने के बाद ही मुँह धो लेना और पान-ज़रदा-खैनी आदि छोड़ देना।

(२) प्रतिदिन ख़ूब नरम पदार्थ न खाना। चना, मटर आदि कड़े पदार्थों के चबाने का अभ्यास रखना।

(३) मिठाई कम खाना। मिठाई खाने के बाद ख़ूब अच्छी तरह मुँह धोना।

(४) उपयुक्त समय पर सहज, पाच्य, सुस्वादु भोजन करना, नियमित परिश्रम करना और शरीर पालन में यत्नवान् होना।

(५) कभी मुँह खोल साँस न लेना और न छोड़ना।

(६) दाँत में दर्द होने पर उसी समय उसकी दवा

करना। टिंचर आयोडीन या फिटकिरी पानी में मिला-कर कुल्ला करना। जिस जगह दर्द हो वहाँ टिंचर आयो-डीन लगाना, जिससे दाँत का दर्द कम होता है।

छोटे लड़कों को छोटी अवस्था से ही दाँत साफ़ करने का अभ्यास डलवाना उचित है। जिन्हें बहुत मिठाई खाने की आदत हो, उन्हें सोडा-बाई-कारबोनेट मिले हुए जल से कुल्ला करने से लाभ होता है। पान, सिगरेट, ज़रदा, तंबाकू, चुरुट आदि दाँत के बड़े भारी शत्रु हैं।

× × ×

३. टैक्सी बुलाने की कल

कलकत्ते-ऐसे बड़े शहरों में जब कहीं आग लगती है, तो उसे बुझाने के लिये "फ़ायर-ब्रिगेड" (Fire Brigade) बुलाना पड़ता है। ब्रिगेड बुलाने के लिये
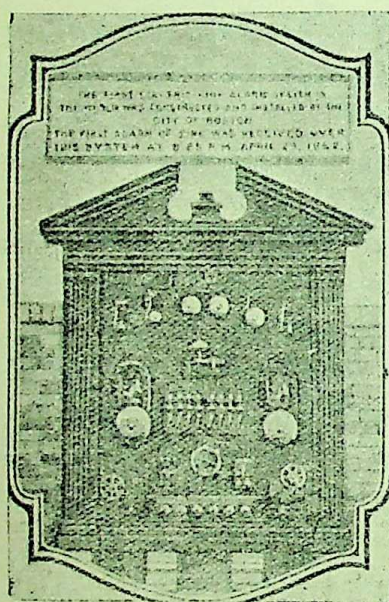
फ़ायर-ब्रिगेड बुलाने के लिये
बिजली का घंटा

स्थान-स्थान पर ऐसी कलें लगी रहती हैं, जिसमें एक हैंडिल रहता है, इस हैंडिल को घुमाते ही कुछ मिनटों में "फ़ायर-ब्रिगेड" आ पहुँचता है। वैसे ही टैक्सी-मोटर-कार बुलाने के लिये भी कलें लग गई हैं। उसमें एकन्नी या दुअन्नी डाल दीजिए, टैक्सी फ़ौरन् आपके पास पहुँच जायगी।

टैक्सी-पुकार-कल

× + ×
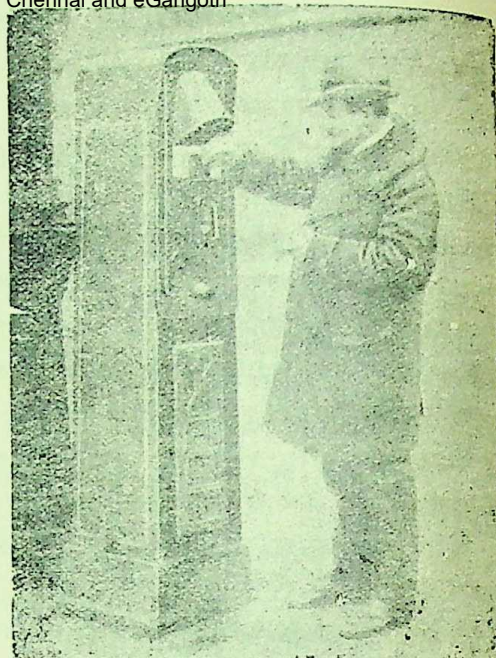
४. वायुयान-संबंधी कुछ बातें

वायुयान की अभी प्रारंभिक अवस्था है। उसके सामने उन्नति का विस्तृत क्षेत्र पड़ा हुआ है! वायुयान-संबंधी जो खोज दिन-दिन होती जा रही है, उसे देखते हुए कहना पड़ता है कि एक दिन वह घर-घर में मोटरों का स्थान ग्रहण कर लेगा।

अब तक वायुयानों के उड़ने और उतरने के लिये बड़े-बड़े मैदानों की आवश्यकता होती आई है; क्योंकि उड़ने के पहले वायुयान ज़मीन पर कुछ दूर दौड़ लगा लेते हैं, तब ऊपर को उठते हैं; उतरने के समय भी उन्हें कुछ दूर चलना पड़ता है, तब ठहरते हैं। इसी लिये स्थान-स्थान पर ऐसे सम-तल मैदान बनाए गए हैं, जहाँ से वायु-यान उड़ या उतर सकें। लड़ाई के समय भी ऐसे सम-तल स्थानों की, वायुयानों के उड़ने तथा उतरने के लिये, आवश्यकता होती थी; किंतु थोड़े समय में ऐसे स्थानों को ठीक करना कितना कठिन होता था, यह वे ही लोग बतला सकते हैं, जो लड़ाई पर गए हुए थे। मगर हाल ही में मि० लुइस ब्रेनन (Louis Brennan) ने एक ऐसा वायुयान बनाया है, जिसके उड़ने या उतरने के लिये ज़मीन पर चलने की आवश्यकता नहीं होती। आपने

उसका नाम रक्खा है—'हेलीकापटर'। यह यान चाहे जहाँ से आकाश में उड़ता और उतरता है। आँधी का भी इस पर कुछ असर नहीं होता, और न इसकी चाल में फ़र्क़ ही पड़ता है। आकाश में आप, जहाँ चाहें, इसे चुपचाप खड़ा रख सकते हैं। इसकी गति प्रति घंटा ६० मील है। इस वायुयान ने, वायुयान-संसार में युगांतर उपस्थित कर दिया है। इससे लड़ाई में अपरिमित लाभ होने की संभावना है।

ऐसे वायुयानों का ज़िक्र पढ़कर कुछ पाठक समझेंगे कि वायुयानों ने अब मैदान मार लिया, और कुछ ही दिनों में उनकी धाक सर्वत्र जम जायगी; किंतु ऐसा सोचना भूल है। वायुयानों को अभी अनेक विघ्न-बाधाओं को पार करना है। जैसे समुद्र या बड़ी-बड़ी नदियों में भँवर होता है, जिसमें जहाज़ या नाव पड़ जाने से चक्कर खाकर डूब जाते हैं, वैसे ही आकाश में भी कुछ ऐसे स्थान हैं, जिनमें वायुयान के पड़ जाने से उसका निस्तार नहीं। कुछ लोगों ने ऐसे स्थानों को वायु-शून्य स्थान बतलाया है; किंतु अभी तक ठीक-ठीक पता नहीं लगा कि ये स्थान हैं क्या? ऐसे स्थानों से यान के संचालक बहुत डरा करते हैं; किंतु उनसे रक्षा पाने का उपाय अभी तक नहीं निकाला जा सका है।

विद्युत्-तरंगों की शक्ति का ज्ञान कुछ दिन पहले लोगों को नहीं था; किंतु अब पता लगा है कि वे बड़े शक्तिशाली होते हैं। वायुयान इनके धक्कों को बरदाश्त नहीं कर सकता; धक्का खाते ही वह चूर-चूर हो जाता है। विद्युत्-तरंगों को उत्पन्न करनेवाला बेतार का तार है। किसने अनुमान किया होगा कि वायुयान तथा बेतार के तार में इस प्रकार की शत्रुता होगी? इस बाधा को पार करने में वायुयान को अभी शायद कुछ दिन लगें।

मेरे एक मित्र ने मुझसे कहा था कि आजकल की लड़ाइयों में वायुयानों से बचने के लिये केवल एक उपाय है। वह यही कि नीचे से गोला चलाकर उन्हें मारना। किंतु इसमें सदा सफलता नहीं मिलती। वायुयानों के उपद्रव से बचने के लिये एक ऐसा अदृश्य जाल बनाने की आवश्यकता है, जिसमें पक्षियों की भाँति वायुयान फँसकर बेकाम हो जाया करें। बात असंभव नहीं जान पड़ती।

× × ×

५. बेतार के तार-द्वारा चिकित्सा

सुना गया है, प्राचीन समय में कुछ ऐसे हकीम-वैद्य हुआ करते थे, जो रोगी के हाथ में तागे का एक सिरा बाँध देते थे, और दूसरे सिरे को अपने हाथ में पकड़कर उसकी नाड़ी की गति को जान सकते थे। असूर्यंपश्या स्त्रियों की नाड़ी की परीक्षा इसी प्रकार हुआ करती थी। अब बेतार के तार-द्वारा लखनऊ के किसी रोगी की चिकित्सा कलकत्ते के डॉक्टर अपने घर में बैठे-बैठे ही कर सकेंगे। रेडियोफ़ोन की सहायता से हज़ारों मील की दूरी से किसी मनुष्य के साथ बात-चीत करना असंभव नहीं है। उसी प्रकार लखनऊ के किसी रोगी की अवस्था जानना कलकत्ते के डॉक्टर के लिये आश्चर्य की बात नहीं। कलकत्ते का डॉक्टर लखनऊ के रोगी की हृदय-परीक्षा भी कर सकता है। हृदय के ऊपर कान रखकर सुनने से जो शब्द सुनाई देता है, उसी को निर्वायु नली (Vacuum tubes) द्वारा उच्चतर कर देने से दूर से भी उसे सुना जा सकता है। वैद्युतिक शक्ति के संस्पर्श से हृत्पिंड का यह मृदु शब्द इतना अधिक किया जाता है कि चिकित्सक के दूर रहने पर भी वह सुनाई देता है। रोगी की छाती पर उक्त गुण-विशिष्ट एक शब्द-प्रेरक यंत्र (Telephone Transmitter) रक्खा जाता है। इसी यंत्र के साथ बहुत-सी निर्वायु नलियाँ हृत्पिंड से प्रेरित मृदु शब्द को बढ़ाकर एक बड़े बेतार के वार्तावह यंत्र में पहुँचा देती हैं। यह बेतार-वार्तावह दौड़कर हज़ार मील दूर पर बैठे हुए डॉक्टर के कान के पास रोगी के हृदय की अवस्था को ठीक-ठीक पहुँचा देता है। डॉक्टर स्वयं रोगी के पास जाकर, स्थेट्सकोप-द्वारा रोगी के हृदय की अवस्था को जितना स्पष्ट नहीं समझ सकता, उससे अधिक स्पष्ट रूप में यह यंत्र हज़ार मील पर बैठे हुए डॉक्टर के पास उसकी अवस्था को पहुँचाता है। हृदय की अवस्था को ठीक-ठीक जान लेने के बाद डॉक्टर दवा की ठीक-ठीक व्यवस्था कर सकता है।

रमेशप्रसाद बी० एस्-सी०

× × ×

६. मांसाहारी वृक्ष

वृक्षों के भोज्य पदार्थों में नाइट्रोज़न भी एक है। इस स्थान पर यह नहीं बताया जा सकता कि नाइट्रोज़न किस प्रकार से वृक्ष के खाद्य में परिवर्तित हो जाता है,

केवल यह कह देना ही काफ़ी होगा कि वृक्ष के खाद्य का यह एक मुख्य अंश है।

मांसाहारी वृक्ष प्रायः उस भूमि में पाए जाते हैं, जिसमें कि नाइट्रोजन के यौगिक पदार्थ नहीं होते, और इस न्यूनता को ये वृक्ष कीट-पतंग आदि खाकर पूर्ण करते हैं।

किस क्रिया से वृक्ष कीट-पतंगों को पचाते हैं, यह निम्न-लिखित दो मांसाहारी वृक्षों के उदाहरण से ज्ञात हो जायगा।

(१) Drosera rotundifolia (ड्रोसेरा रोटंडी फ़ालिया)। यह वृक्ष दलदल में उत्पन्न होता है। इसके पत्तों पर बहुत-सी डंठलदार गाँठें (tent ceues होती हैं। जब कोई कीट या पतंग घूमता-घूमता इन tentacles से छू जाता है, तो ये मुड़ जाते और उस बेचारे कीट को दबा लेते हैं। इनमें से एक रस निकलता है, जो कि अलब्यूमेन * (albumen) और प्रोटीड † (Proteid) को उसी प्रकार घुला और पचा देता है, जिस प्रकार वे मनुष्य के पेट में घुलाए और पचाए जाते हैं। जब पाचन-क्रिया समाप्त हो जाती है, तो tent cles फिर खड़े हो जाते हैं, और कोई दूसरा कीट पकड़ने के लिये प्रस्तुत रहते हैं। ये tentacles किसी भी कड़ी वस्तु (पत्थर इत्यादि) के स्पर्श से मुड़ जाते हैं; परंतु इनमें से पाचक रस तभी निकलता है, जब कोई खाद्य वस्तु मांस, अलब्यूमेन इत्यादि) इनसे छू जाती है।

(२) Nepenthes distillatoria (Pitcher plant) ‡ निपेंथीज़ डिस्टिलेटोरिया। इसका पूरा पत्ता या उसका एक अंश घड़े के आकार का होता है। घड़े के मुँह पर एक ढक्कन होता है, और उसकी तली में पानी; जिसमें एक पाचक रस (pepsin) मिला होता है। कीट-पतंग इस पानी में गिरकर मर और घुल जाते हैं।

घड़े का ढक्कन बड़े भड़कीले रंग का होता है; जिससे कीट आदि तुरंत ही आकर्षित हो जाते हैं। ये ढक्कन बंद नहीं हो सकते; और यदि बंद हो भी जायँ, तो फिर खुल नहीं सकते। घड़े के किनारे पर Honey glands (गाँठ, जिनमें मधु भरा होता है) होती हैं। इनके प्रलोभन से भी पतंग आकर्षित होकर इस अदृश्य मृत्यु के मुख में आते हैं। घड़े के भीतर का भाग अत्यंत चिकना होता है, और उसके नीचे, नीचे की ओर मुड़े हुए, बाल या जटाएँ होती हैं। घड़े की तली में, जैसा कि ऊपर कहा जा चुका है, पानी रहता है। पतंग मधु की खोज में घड़े के ऊपर आते हैं। वहाँ मधु पाकर, और 'लालच बुरी बला' में फँसकर, अधिक मधु पाने की आशा से घड़े के भीतर घुसते चले जाते हैं। घड़े के चिकने भाग में पहुँचकर नीचे गिर पड़ते हैं, और जटाओं के कारण फिर ऊपर नहीं आ सकते। पानी में गिरते ही वे मर-घुल जाते हैं, और इस प्रकार वृक्ष का भोजन बनते हैं।

बहुत-से मांसाहारी वृक्षों में यथेष्ट chlorsphyll (क्लोरोफ़िल) * होता है, जिससे वे अपनी आवश्यकता के अनुसार खाद्य पदार्थ बना सकें। और, वे भली प्रकार जीवित रहते हैं। परंतु जब उन्हें खाने को कीड़े मिलते हैं, तो वे अधिक शक्ति-शाली हो जाते हैं; उनमें अधिक फूल निकलते हैं, और उनके बीज अधिक शक्ति-संपन्न और बहु संख्यक होते हैं।

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस्-सी०, एल्० टी०, विशारद

* Albumen (अलब्यूमेन)=अंडे का श्वेत भाग।

† Proteid (प्रोटीड)=पदार्थ-विशेष, जो मांस में होता है।

‡ ये वृक्ष भारतवर्ष में नहीं पाए जाते; अतएव इनके हिंदी नाम नहीं हैं।

सुमन-संचय

१. भीमदेव के दान-पत्र का समय

'माधुरी' के प्रथम अंक में पंडित गौरीशंकर-हीराचंद ओझाजी ने राजा भीमदेव के दान-पत्र की प्रति-लिपि का कुछ आवश्यक अंश उद्धृत किया है, जो यह है—

"ओं राजावली पूर्ववत् ॥ संवत् ९३ चैत्र शुदि ११ रवौ अद्येह श्रीमदणहिलपाटके समस्तराजावलीविराजितमहा-

* क्लोरोफ़िल—पत्तों में रहनेवाली एक हरी वस्तु। सूर्य की रोशनी में इसकी सहायता से वृक्ष वायु-मंडल से कार्बन द्वि-ओषद् (carbon-di oxide) लेकर अपना खाद्य बनाता है।

राजाधिराजश्रीभीमदेवः स्व (स्व) भुज्यमानकच्छमंडलांतः-पाति समस्तराजपुरुषान् ब्रा (ब्रा) ह्मणोत्तरान् तन्निवाशि (सि) जनपदांश्च बो (बो) धयत्यस्तु वः संविदितं यथा ॥ अद्य संक्रांतिपर्वणि चराचरगुरुं भगवंतं भवानी-पतिमभ्यर्च्य संसारस्यासारतां विचिंत्य प्रसन्नपुरस्थान-विनिर्गतायः (य) वच्छ (त्स) सगोत्राय दामोदरसुत-गोविंदाय सहसचाणाग्रामे वापीपुटके भूमि हलवाहा १ एका शुक्लेन सहा (ह) शासने प्रदत्ता (॥)...... लिखित-मिदं कायस्थकांचनसुतवटेश्वरेण ॥ दूतकोत्र न (म) हा-सांधिविग्रहिक श्रीचंडशर्मणः (र्मा) ॥ श्रीभीमदेवस्य ॥"

ओझाजी महोदय कहते हैं कि अणहिलपाटक वि० सं० ८२१ वैशाख-शुक्ला २ को बसाया गया, और इस पर सोलंकियों (चौलुक्यों) का राज्य लगभग वि० सं० १०१७ से लगभग १३२६ तक रहा। इस सोलंकी-वंश में भीमदेव नाम के दो राजा हुए। पहले भीमदेव ने वि० सं० १०७८ से ११२० तक, और दूसरे भीमदेव ने वि० सं० १२३५ से १२९८ तक, राज्य किया।

डॉक्टर फ़्लीट ने इस दान-पत्र का समय वि० सं० १२६३ ठहराया है; जब कि दूसरा भीमदेव राज्य करता था। परंतु ओझाजी महोदय कहते हैं कि "ई० स० १८७७ में डॉक्टर बूलर ने अणहिलपाटक (अणहिलवाड़े) में राज्य करनेवाले चौलुक्य (सोलंकी) राजों के ११ दान-पत्र इंडियन ऐंटीक्वेरी की छठी जिल्द (पृ० १९१-२१२) में प्रकाशित किए, जिनमें एक भीमदेव पहले का भी है, जो वि० सं० १०८६ कार्त्तिक-सुदी १५ का है। उसका लेखक कायस्थ कांचन का पुत्र बटेश्वर और दूतक महासांधि-विग्रहिक चंडशर्मा है। डॉक्टर फ़्लीटवाले दान-पत्र के लेखक और दूतक भी वे ही दोनों पुरुष हैं। ऐसी दशा में वे दोनों दान-पत्र एक ही राजा, अर्थात् भीमदेव पहले, के हो सकते हैं। डॉक्टर फ़्लीटवाले दान-पत्र का संवत् ९३ सिंह-संवत् नहीं, किंतु वि० सं० १०९३ है; जिसमें शताब्दियों के सूचक अंक छोड़ दिए गए हैं।"

ओझाजी महोदय का यह तर्क कि दोनों दान-पत्र भीमदेव पहले के हैं, ज्योतिष से भी सिद्ध होता है; परंतु संवत् का मेल नहीं मिलता। वि० सं० १०९३ में सूर्य-सिद्धांत के अनुसार मेष की संक्रांति वैशाख-बदी ८, मंगल-वार, को होती है। परंतु दान-पत्र में यह स्पष्ट लिखा है कि दान चैत्र-सुदी ११, रविवार, को संक्रांति-पर्व के समय किया गया। इसलिये इसका संवत् १०९३ वि० नहीं हो सकता। डॉक्टर फ़्लीटवाला १२६३ संवत् भी इस दान-पत्र का संवत् नहीं है; क्योंकि ऊपर उद्धृत अन्य तर्कों के सिवा यह भी ध्यान रखना चाहिए कि संवत् १२६३ वि० में मेष की संक्रांति चैत्र-सुदी १४, शनिवार, को पड़ी थी। ऐसा संयोग दूसरे भीमदेव के राज्य-काल में कभी पड़ा ही नहीं था कि मेष की संक्रांति चैत्र-सुदी ११, रविवार, को हो। इसलिये दूसरे भीमदेव का दान-पत्र यह हो ही नहीं सकता।

अब देखना यह है कि पहले भीमदेव के राज्य-काल में ऐसा संयोग कब पड़ा था। ओझाजी के कथनानुसार इसका राज्य-काल १०७८ वि० से ११२० वि० तक है। इस अवधि में मेष की संक्रांति संवत् १११९ वि० की चैत्र-सुदी ११, शनिवार, की रात को, १२ बजे के पीछे, ४५ मिनट के लगभग पर, लगी थी। इसलिये संक्रांति का पुण्य-काल दूसरे दिन, रविवार को, प्रातःकाल था। सूर्य-सिद्धांत के अनुसार दिन का प्रारंभ १२ बजे रात ही से हो जाता है; इसलिये यह मेष-संक्रांति असल में इतवार को ही पड़ी। चैत्र-सुदी ११, शनिवार की रात को ५५ घड़ी ३० पल, अर्थात् सवाचार बजे प्रातःकाल, तक थी, जब कि रविवार का ब्राह्म-मुहूर्त था (रात्रेश्च पश्चिमे यामे मुहूर्तो ब्राह्म उच्यते)। इसलिये अब इसमें तनिक भी संदेह नहीं रह जाता कि रविवार का ब्राह्म-मुहूर्त संक्रांति और एकादशी के संयोग से दान के लिये बड़ा शुभ समझा गया होगा, और इसी समय भूमि-दान का संकल्प किया गया होगा। दान-पत्र की प्रतिलिपि में "संसारस्यासारतां विचिंत्य" शब्दावली बड़े महत्त्व की है। इससे यह ध्वनि निकलती है कि राजा काफ़ी बूढ़े हो चुके थे, और उन्हें संसार से वैराग्य हो चुका था। इस विचार से भी दान-पत्र का समय १११९ वि० उचित प्रतीत होता है; क्योंकि इसके एक वर्ष बाद ही, ११२० वि० में, राजा का राज्य-काल अथवा राजा स्वयं समाप्त हो जाता है।

रही दान-पत्र में लिखे ९३ संवत् की बात। इसके विषय में तो यह जान पड़ता है कि यह संवत् वहीं का स्थानीय संवत् है। इसका आरंभ शायद इसी वंश की राजगद्दी पूर्ण-रूप से स्थापित होने पर, १०२६ वि० (१११९-९३) में, किया गया हो; क्योंकि अणहिलपाटक में १०१७ वि० तक तो चावड़ों का ही राज्य रहा। उसके पीछे ८-९ वर्ष

सोलंकी-घराने के प्रथम राजा को अपना राज्य दृढ़ करने में लगे होंगे, और राज्य के दृढ़ होने तथा छोटे-छोटे राजों के पूर्णतया अधीन होने के पश्चात् यह संवत् चलाया गया होगा।

इस राज-वंश के ग्यारहो दान-पत्रों के समय का निश्चय ज्योतिष के प्रकाश में किया जाय, तो यह सहज ही जाना जा सकता है कि वे किस संवत् का प्रयोग करते थे। इस बात के लिये दान-पत्र में लिखी समय-संबंधी सभी बातों की—जैसे मास, तिथि, वार, संवत् इत्यादि की—जानकारी आवश्यक है, जो ओझाजी महोदय सहज ही कर सकते हैं। इसलिये उनसे मेरी प्रार्थना है कि इसपर वह फिर विचार करें।

इस लेख के लिखने में दीवान बहादुर एल्० डी० स्वामी बन्नू पिल्ले महोदय की लिखी हुई इंडियन क्रोनोलोजी से बहुत सहायता मिली है; इसलिये लेखक उनका अनुगृहीत है।

महावीरप्रसाद श्रीवास्तव बी० एस्-सी०, एल्० टी०, विशारद

× × ×

२. अन्योक्तियाँ

हाथी

हाथी साथी जूथ के, गए निकरि अगुवाय ;
प्रबल बली मृगराज सों बाढ़यो बैर बनाय।
बाढ़यो बैर बनाय, हाय, तट के तरु जेते,
परसत ही कर उखरि परत हैं जर ते तेते।
'श्रीकवि' लखि हरषायँ भील, कोउ संग न साथी।
पंक-मगन ह्वै लहै कासु अवलंबन हाथी ? १ ॥

बचन कृपन कहि, दीन ह्वै, कत खोवत मरजाद ?
इन मृग, महिष, सियार ढिग यह तुअ बड़ अपवाद !
यह तुअ बड़ अपवाद, बादि गज ! इनहि निहोरै ;
'श्रीकवि' तोहिं उधारि तुच्छ ये सकिहैं थोरै।
पंक-मगन ह्वै सहहु दुसह दुख, भोग जतन सच।
भलो-बुरो विधि लिखित मेटि को सकै, मानु वच ॥ २ ॥

जैहैं कैसेहु बीति दिन, मोहिं न बँधे कर सोच।
सोच न आँकुस कोंचि दुख बहुबिधि देहैं पोच ॥
बहुबिधि देहैं पोच, खोंच काँधे चढ़ि पायन।
सोच न याको नेक, एक पै भूलत घाय न ॥
'श्रीकवि' कलभन आय हाय ! जब सिंह सतैहैं।
तौ वे असरन सरन दीन ह्वै [illegible] ? ३ ॥

रे बारनपति ! दुचित कत, होत कूप-जल देखि ?
अब तौ याही जोगि तू, पी करि आनु बिसेखि।
पी करि मानु बिसेखि, देखि बिधि बाम न सोचै ;
'श्रीकवि' वा सरि सुमिरि आँसु अब नाहक मोचै।
मीन-भीलिनी-पीन कुचन ताड़ित जल मेवा
अँचयो जाको, परी दूर सो प्यारी रेवा ॥ ४ ॥

जा को प्रतिभट जग न कहुँ लख्यो एक गजराज ;
डगर-कगर जाको न कहुँ नाँघि सक्यो मृगराज ;
नाँघि सक्यो मृगराज, राजि नहिं जा के बन की,
सोउ कदर्थना सहत आज करिबर स्यारन की।
'श्रीकवि' होत सहाय, हाय, कोऊ नहिं ता को।
पंक-मगन ह्वै भयो भग्न-पौरुष तन जा को ॥ ५ ॥

करिबर यहिं मरु-देस महँ परयो दैव-बस आय,
तब लगि काहू जतन कहुँ कुसमय देहु बिताय ;
कुसमय देहु बिताय, कछुक अब रह्यो आइकै,
'श्रीकवि' ऐहैं सुदिन फेरि वे समय पाइकै ;
निज-करिनी-कर-कलित ललित रेवासरि-जल-भर
पाय मेटिहौ ताप बहुरि, धीरज धर करिबर ॥ ६ ॥

गल में दृढ़ फँसरी परी, पाँयन लोह-जँजीर,
कंधहु जकर्‍यो, सीस पै अंकुस-पात गँभीर।
अंकुस-पात गँभीर, पीर धँसि कै उपजावत ;
नर काँधे चढ़ि बार-बार पाँयन खुदकावत।
'श्रीकवि' गज तुअ मरन जोगि ऐसेहु कसमल मैं।*
कहि अजहूँ कत परत देखि मद गंड-स्थल मैं ॥ ७ ॥

जो पै या गज के झूलत कानन चामर चारु,
सिर-परिसर † सिंदूर-भर, कंठ मनिन के हारु ॥
कंठ मनिन के हारु, घंट दोऊ दिसि बाजैं ;
नर-बर-बाहन होय बँधे भूषन बहु साजैं।
'श्रीकवि' कै नहिं माननीय वह बन-गज तो पै,
निज-बस भूधर भूरि-धूरि-धूसर-तन जो पै ? ८ ॥

लागत ताप निदाघ के जेहि सर महँ अवगाहि,
खोयो स्रम, खायो भिसन ‡, पियो सीत जल जाहि।
पियो सीत जल जाहि, ताहि जल को करि गदलो,
दलि कमलन को मूल, कूल खनि, तू दै बदलो।
'श्रीकवि' करि असि दसा तासु, मन-ही मन रागत ;
धिक-धिक रे गजराज ! तोहिं सठ ! लाज न लागत ? ९ ॥

* दुःख-विपद में।
† भाल में। ‡ भिस्सा=कमल-कंद।

ना है या तन ऊन कहुँ, ना है बाहन जोग ;
दुहिबे जोग न, उदर बड़ भरिबे हू में रोग।
भरिबे हू में रोग, भोग बहु घास लगैहै ;
याकी ऊँची पीठि, गोनि किमि लादी जैहै ?
'श्रीकवि' गज लखि हँसैं गँवैए; कौन बिसाहै ?
दै कौड़ी हू दाम, काम कौड़ी को ना है ॥ १० ॥

हलको भयो न ताप कछु, नेकहु मिटी न प्यास ;
धुली न तन की धूल कहुँ, कर्‌यो न लघु बिस*ग्रास।
कर्‌यो न लघु बिस-ग्रास, केलि की कहा कहानी ;
नलिनी हू को छुयो नाहिं कर ते करि मानी।
'श्रीकवि' आवत देखि दूरि ही ते गजमल को।
मधुकर करिबे लगे वृथा कत कोलाहल को ? ११ ॥

यह अमंद मकरंद दरदलदरविंदन + त्यागि,
करिबर, मधुकर, तुअ निकट आयो अति अनुरागि।
आयो अति अनुरागि, त्यागि जग के दानिन† को ;
अति उन्नत तोहिं जानि, मानि मानिक मानिन को।
'श्रीकवि' तेरी विदित दान-महिमा, कर तू वह ,
जाते हँसिबे जोग हो, न याको आगम यह ॥ १२ ॥

हथनी

करनी‡ ने जो तप कियो नित पति-जूठन खाइ ,
तासु पियो जल-शेष पी प्रमुदित रही अघाइ।
प्रमुदित रही अघाइ, लाइ चित प्राननाथ मैं।
'श्रीकवि' छाया-सरिस होइ नित रही साथ मैं ॥
ताको यह फल लह्यो, प्रान तजि प्रथमहि घरनी—
जो न बद्ध-पति-दुखित वदन देख्यो वह करनी ॥१३॥

विजयानंद त्रिपाठी "श्रीकवि"

× × ×

३. महर्षि याज्ञवल्क्य

साधारणतः यही कहा जाता है कि वेदांत-दर्शन के प्रतिष्ठापक शंकराचार्यजी थे। कुछ अंशों में यह बात ठीक भी है; परंतु वास्तव में बिलकुल ठीक नहीं है। मेरी सम्मति में ब्रह्म-विद्या के असली प्रतिष्ठापकों में से—यदि प्रधान नहीं, तो कम से-कम—एक महर्षि याज्ञवल्क्य भी थे। इस बात को शंकराचार्य ने भी बृहदारण्यक की अपनी लिखी टीका में अप्रत्यक्ष रीति से स्वीकार किया है।

महर्षि याज्ञवल्क्य पारदर्शी विद्वान् थे। वह अपने समय के उच्च कोटि के दर्शन-शास्त्री समझे जाते थे। इसी से उपनिषदों, पुराणों और स्मृतियों में उन्हें योगेश्वर की पदवी मिली है। पराशर-जैसे महर्षियों तक ने उन्हें इसी पदवी से संबोधित किया है। ऐसी दशा में यह आश्चर्य की बात है कि ऐसे भारी विद्वान् की जीवनी और उत्कृष्ट रचनाएँ अभी तक अंधकार ही में पड़ी रहीं। याज्ञवल्क्य का उल्लेख उपनिषदों में और महाभारत, शतपथ-ब्राह्मण, भागवत, विष्णु, आदित्य, स्कंद तथा दूसरे पुराण आदि ग्रंथों में हुआ है। इस लेख में पूर्वोक्त ग्रंथों के आधार पर ही भारत के इन महान् दार्शनिक तथा धर्म-शास्त्री की जीवनी तथा उनके ग्रंथों का क्रम-पूर्वक संक्षिप्त विवरण लिखने का प्रयत्न किया गया है।

मिथिला-नगर में देवरात् नाम के एक महात्मा ब्राह्मण रहते थे। दानी होने के कारण वह वाजसेनी के नाम से भी प्रसिद्ध थे। उनके कोई पुत्र न था। अतएव उन्होंने अनेक यज्ञ किए। फल-स्वरूप उनके एक पुत्र हुआ। उसका नाम उन्होंने याज्ञवल्क्य रक्खा। उपनयन-संस्कार हो जाने पर याज्ञवल्क्य ने वाष्कल से ऋग्-वेद, जैमिनि से साम और आरुणि से अथर्व-वेद का अध्ययन किया। उन्होंने यजुर्वेद अपने पितृव्य वैशंपायन से पढ़ना आरंभ किया। जब वह अपने पितृव्य से यजुर्वेद का अध्ययन कर रहे थे, उसी समय चचा-भतीजे में किसी बात पर मत-भेद हो गया। उन्होंने अपने चचा से पढ़ना बंद कर दिया, और हिमालय को चले गए। वहाँ वह तप करने लगे। उनकी तपस्या का यह फल हुआ कि सूर्य-देव उनपर प्रसन्न हो गए। उनकी कृपा से वह मंत्र-द्रष्टा ऋषि का पद पा गए, और शुक्ल यजुर्वेद, शतपथ-ब्राह्मण, धर्म-शास्त्र तथा दूसरे दार्शनिक ग्रंथों की रचना करने में समर्थ हुए।

याज्ञवल्क्य के यजुर्वेद में सारे मंत्रों का संकलन क्रम-पूर्वक हुआ है। उसके मंत्र यत्र-तत्र ब्राह्मणों से मिश्रित नहीं हैं; जैसा कि प्राचीन यजुर्वेद का हाल है। इस कारण, तथा अपने उच्च विचारों की गंभीरता से भी, याज्ञवल्क्य का यजुर्वेद 'शुक्ल'-विशेषण से अभिहित हुआ है; क्योंकि तैत्तिरीय 'कृष्ण' कहलाते थे। याज्ञवल्क्य ने अपने यजुर्वेद को पंद्रह शाखाओं में

* बिस=कमल की जड़। + कुछ-कुछ खिलते हुए कमलों को। † दान देनेवाले और दान (मद-जल) झरनेवाले हाथियों को। ‡ करिणी=हथिनी।

बाँट दिया है ; जैसे कण्व, माध्यंदिनि, जाबाल इत्यादि। ये सब वाजसनेय के नाम से प्रसिद्ध हुए।

याज्ञवल्क्य के दो स्त्रियाँ थीं। एक का नाम मैत्रेयी और दूसरी का कात्यायनी था। कात्यायनी के तीन पुत्र हुए। उनके नाम चंद्रकांत, महामेघ और विजय थे। मैत्रेयी उच्च कोटि की शिक्षिता स्त्री थी। जब याज्ञवल्क्य वानप्रस्थ-आश्रम ग्रहण करने को उद्यत हुए, तब मैत्रेयी की विशेष प्रार्थना पर उन्होंने उसे ब्रह्म-विद्या का रहस्य समझाया था। मैत्रेयी, गार्गी और जनक तथा शाकल्य के साथ जो उनका वार्तालाप हुआ था, उससे उनके ब्रह्म-विद्या-संबंधी दार्शनिक ज्ञान का रहस्य प्रकट होता है।

एक बार महाराज जनक ने एक यज्ञ किया। उसमें अनेक विद्वान् ब्राह्मण आमंत्रित हुए। महाराज ने एक हज़ार गउओं का दान उस व्यक्ति को देने की घोषणा कर दी, जो अपने को ब्रह्म-विद्या में सर्व-श्रेष्ठ प्रमाणित कर दे। जब महाराज के प्रस्तावानुसार किसी ब्राह्मण को उक्त दान ग्रहण करने का साहस न हुआ, तब महर्षि याज्ञवल्क्य उठ खड़े हुए, और उन्होंने अपने शिष्यों को उन गउओं को ले जाने का आदेश दे दिया। इसपर उनके पूर्ण ब्रह्मज्ञानी होने के दावे का विरोध अन्य ऋषियों ने किया, जिनके प्रश्नों का समाधान उन्होंने तत्क्षण कर दिया। चिदाकाश और उसके निर्दिष्ट स्थान-संबंधी गार्गी के प्रश्न के उत्तर में उन्होंने कहा—"चिदाकाश इस विश्व के ऊपर और नीचे व्याप्त है ; वह अविनाशी है। न तो वह विशाल है, और न लघु। वह इंद्रियों और जीवधारियों से भिन्न है। वह प्रभाव भी नहीं डालता, और न उसपर प्रभाव पड़ता है। वह आत्मा है, और अंधकार से रहित है। वह ज्ञान-स्वरूप है ; वह परब्रह्म है। उसी की इच्छा से सूर्य और चंद्र आकाश में प्रकाशित होते हैं ; नदियाँ बहती हैं। जो उस ब्रह्म को नहीं जानते, और यज्ञ तथा दूसरे धार्मिक कृत्य करते हैं, उनका सारा उद्योग व्यर्थ हो जाता है, उन्हें कुछ भी फल नहीं मिलता ; क्योंकि ब्रह्म-ज्ञान के विना ये सब नाशवान् हैं। मृत्यु के बाद वे लगातार जन्म लेते रहते हैं। ब्रह्म-ज्ञान के विना वे लोग इन सारे कृत्यों को व्यर्थ ही करते हैं। जो लोग ब्रह्म को जानते हैं, और जिनको उसका साक्षात्कार हो जाता है, वे मोक्ष-पद को प्राप्त करते हैं।"

याज्ञवल्क्य एकेश्वर-वादी थे। वह ईश्वर को ब्रह्म या परब्रह्म कहते थे। कैसे एक ब्रह्म त्रिदेव में परिणत हुआ, और त्रिदेव तेंतीस देवतों में, तथा तेंतीस देवता तीन करोड़ में, इसकी जो व्याख्या उन्होंने शाकल्य से की थी, वह अत्यंत ही मनोरंजक है। वह अपने समय के समाज तथा धर्म के एक बड़े भारी सुधारक थे। वह आत्मा के अमरत्व पर भी विश्वास करते थे। उन्होंने इस बात का उपदेश दिया था कि मानसिक पूजा सर्व-श्रेष्ठ उपासना है, और मूर्ति-पूजा कम बुद्धिवाले लोगों के लिये है।

साधारण रीति से विद्वानों ने इस बात को स्वीकार कर लिया है कि पाणिनि के व्याकरण पर जिन पातंजलि ने महाभाष्य की रचना की है, वह ईसा के पूर्व तीसरी सदी में विद्यमान थे। अतएव यह माना जाता है कि पाणिनि का समय ईसा के पूर्व तीन-चार सदी के इधर नहीं हो सकता। संज्ञा-शब्दों की धातु-मूलक उत्पत्ति से संबंध रखनेवाले शाकटायन तथा यास्क के सिद्धांत पर पाणिनि का संपूर्ण व्याकरण प्रतिष्ठित है। यास्क ने अपने प्रसिद्ध ग्रंथ में बीस पूर्ववर्ती आचार्यों का उल्लेख किया है ; जिनमें शाकटायन और शाकल्य अधिक प्रसिद्ध हैं। हमने पहले ही प्रकट कर दिया है कि शाकल्य याज्ञवल्क्य के समकालीन थे। पाणिनि ने भी पारस्कर का उल्लेख किया है। अपने निरुक्त के अंत में यास्क ने सम्मान-पूर्वक पारस्कर का स्मरण किया है। इससे यह बात स्पष्ट हो जाती है कि पारस्कर पाणिनि और यास्क दोनों से पूर्ववर्ती हैं। कात्यायन का श्रौत-सूत्र और पारस्कर का गृह्य-सूत्र, इन दोनों ग्रंथों का सूक्ष्म दृष्टि से अध्ययन करने पर हम इस परिणाम पर पहुँचते हैं कि ये दोनों आचार्य समकालीन और एक दूसरे के मित्र भी थे।

आस्तिक ब्राह्मणों में यह किंवदंती प्रसिद्ध है कि पारस्कर ने गृह्य-सूत्र और श्रौत-सूत्र की रचना कात्यायन के निरीक्षण में की थी। शुक्ल-यजुर्वेद के प्रातिशाख्य पर टीका करनेवाले ने अपनी रचना के प्रारंभ में कात्यायन की वंदना की है, और उन्हें याज्ञवल्क्य का सबसे अधिक प्रसिद्ध शिष्य लिखा है। इससे स्पष्ट विदित होता है कि कात्यायन याज्ञवल्क्य के शिष्य थे। अतएव

कात्यायन का समय अपने गुरु से पीछे का ही सिद्ध होता है। श्रौत-सूत्र के रचयिता कात्यायन उस कात्यायन से सर्वथा भिन्न हैं, जिसने पाणिनि के सूत्रों पर वार्तिक-रचना की है।

महाराज युधिष्ठिर ने जो राजसूय-यज्ञ किया था, उसका विवरण महाभारत के सभा-पर्व के तीसरे अध्याय में दिया गया है। उससे पता लगता है कि उस यज्ञ में महर्षि व्यास ने ब्रह्मा का, सुसाम ने उद्गाता का, पैल ने होता का और याज्ञवल्क्य ने अध्वर्यु का कार्य किया था। अतएव इससे यह सिद्ध है कि याज्ञवल्क्य व्यास, युधिष्ठिर और पैल के समकालीन थे। हरिवंश के १४२ वें अध्याय में याज्ञवल्क्य के ब्रह्मदत्त-नामक एक शिष्य का उल्लेख हुआ है। वह श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव का कुल-पुरोहित, मित्र और सहपाठी था। वसुदेव ने जो अश्वमेध-यज्ञ किया था, उसमें व्यास, याज्ञवल्क्य, सुमंतु, जैमिनि, ब्रह्मदत्त, जाबाल और देवल शामिल हुए थे। इन सब बातों से यह परिणाम निकलता है कि याज्ञवल्क्य महाभारत के पूर्ववर्ती हैं।

याज्ञवल्क्य के जिन पंद्रह मुख्य शिष्यों के नाम पर शुक्ल-यजुर्वेद की पंद्रह शाखाओं का नामकरण हुआ है, उनमें एक का नाम कण्व था। यह कण्व और कालिदास की शकुंतला के कण्व क्या एक ही व्यक्ति थे, इस का पता निश्चित-रूप से नहीं लग सकता। परंतु यह बात ध्यान देने के योग्य है कि याज्ञवल्क्य के शतपथ-ब्राह्मण में दुष्यंत, भरत और शकुंतला आदि कालिदास की शकुंतला के नायक और नायिकाओं का उल्लेख हुआ है। कालिदास के 'विक्रमोर्वशी'-नाटक की रचना का आधार उर्वशी और पुरूरवा की वह कथा है, जो याज्ञवल्क्य के शतपथ-ब्राह्मण में सर्व-प्रथम विस्तार के साथ वर्णन की गई है। शतपथ-ब्राह्मण वैदिक साहित्य का एक महत्त्व-पूर्ण ग्रंथ है। उसका दर्जा ऋग्वेद के बाद माना गया है।

इस लेख को समाप्त करने के पहले मैं दो-एक महत्त्व-पूर्ण बातों के संबंध में विचार कर लेना उचित समझता हूँ। उनमें से एक यह है कि क्या शुक्ल-यजुर्वेद के प्रणेता याज्ञवल्क्य और याज्ञवल्क्य-स्मृति के याज्ञवल्क्य एक ही व्यक्ति हैं? प्रारंभ में इस प्रश्न का संतोषजनक रीति से निश्चय हो जाना कठिन मालूम पड़ता है; परंतु जो लोग प्राचीन भारत के हिंदुओं की पुरानी रीति-रस्मों तथा उनके धर्मों से पूर्ण-रूप से परिचित हैं, वे अच्छी तरह जानते हैं कि वेद की प्रत्येक शाखा के साथ उसके धर्म-सूत्र भी अलग-अलग थे। यह बात किसी अंश तक सत्य हो सकती है कि यह स्मृति याज्ञवल्क्य की रचना नहीं है, और बाद को इसमें संशोधन और परिवर्तन किए गए हैं, जैसा कि मनु-स्मृति से सिद्ध होता है। परंतु इस बात में मुझे कुछ भी संदेह नहीं कि वर्तमान याज्ञवल्क्य-स्मृति की रचना याज्ञवल्क्य के धर्म-सूत्रों के ही आधार पर हुई है। इस बात का समर्थन स्वयं इस स्मृति से ही हो जाता है। इसके प्रायश्चित्ताध्याय के ११० वें श्लोक में इस बात का स्पष्ट उल्लेख है कि जो लोग और अधिक धार्मिक ज्ञान तथा योग-शास्त्र का परिचय प्राप्त करना चाहते हों, उन्हें उस आरण्यक का अध्ययन करना चाहिए, जिसे मैंने सूर्य-देव की अनुकंपा से प्राप्त किया है, तथा उस ग्रंथ का, जो मैंने योग-शास्त्र पर लिखा है।

दूसरी बात विचार करने की यह है कि अध्यापक मैकडानल साहब ने लिखा है कि जिन जनक का उल्लेख उपनिषदों में हुआ है, वह रामायण की सीता के पिता मालूम पड़ते हैं। पर उनका यह कथन ठीक नहीं है। हम जानते हैं कि बृहदारण्यक के जनक याज्ञवल्क्य के शिष्य थे, और इस बात को हमने पहले ही प्रकट कर दिया है कि वह याज्ञवल्क्य, वसुदेव, कृष्ण, ब्रह्मदत्त तथा महाभारत-काल के दूसरे लोगों के समकालीन थे। महाभारत में दशरथ के पुत्र तथा जनक के जामाता राम का भी उल्लेख हुआ है। परंतु हमें तो स्वयं मैकडानल साहब के ही कथन में उनके विरुद्ध प्रमाण मिलते हैं। उन्होंने अपने संस्कृत-साहित्य के इतिहास में लिखा है—सूत्र के ढंग का एक दूसरा ग्रंथ वैदिक-कालीन वशिष्ठ का धर्म-शास्त्र है। वह अब हस्तलिखित छोटी-छोटी पुस्तकों के रूप में प्राप्त होता है। उसके वर्णित विषयों में धर्मसूत्र-कालीन अनेक बातों के चिह्न मिलते हैं, तथा भिन्न-भिन्न ढंग से प्राचीनता के भाव व्यक्त होते हैं। मनु-स्मृति के मूल-पाठ में वशिष्ठ के इस ग्रंथ के अवतरण उद्धृत किए गए हैं। अतएव वशिष्ठ का ग्रंथ मनु-स्मृति से अधिक प्राचीन मालूम पड़ता है। हम यह जानते हैं कि याज्ञवल्क्य का समय मनु के बाद

है। रामायण से पता लगता है कि राम के गुरु तथा कुल-पुरोहित वशिष्ठ थे। अतएव विदेहराज और याज्ञवल्क्य के शिष्य जनक तथा रामायण की नायिका के पिता एक ही व्यक्ति नहीं हो सकते। *

देवीदत्त शुक्ल
(सहायक सरस्वती-संपादक)

× × ×

४. मौर्य

'माधुरी' के दूसरे अंक में सम्राट् चंद्रगुप्त और उसके राज्य-शासन पर श्रीयुत पंडित बालमुकुंद वाजपेयी का एक उत्तम लेख छपा है। वाजपेयीजी ने स्पष्ट-रूप से यह तो नहीं लिखा कि शिशुनाग-वंश क्षत्रिय था; पर कोशल-देश के राज-कुल और विशाला के लिच्छवि-वंश के साथ उसका संबंध बतलाया है। इससे हम यह अनुमान कर सकते हैं कि चंद्रगुप्त का पिता महापद्मनंद भी क्षत्रिय था; यद्यपि उसकी मा शूद्रा थी। कहा जाता है, महापद्मनंद के ६ पुत्र थे; ८ सजातीय (क्षत्रिय ?) रानी सुनंदा से, और एक, जिसका नाम चंद्रगुप्त था, मुरा नाम की नाइन—अंततः शूद्रा स्त्री—से। यही मुरा माता होने के कारण चंद्रगुप्त मौर्य कहलाता है। हम इस लेख में मौर्य-शब्द पर विचार करेंगे।

पहली विचारने की बात यह है कि क्षत्रिय राजा का लड़का नाइन या चमारिन ही के पेट से क्यों न हो, अपने को क्षत्रिय ही कहता है, और क्षत्रियों में मिलने का प्रयत्न करता है। महापद्मनंद की रानी सुनंदा सजातीय थी, तो क्षत्रिय-कुल की थी, या वैसी ही शूद्रा स्त्री से उत्पन्न थी, जैसा कि उसका पति था? आज तक किसी को नीच जाति की माता का नाम लेते नहीं सुना, और न उसमें कोई अपनी बड़ाई ही समझता है। हमारा देश जाति-प्रधान है, और शुद्ध संतान हो, तथा तिरस्कार करने के अभिप्राय से न कहा जाय, तो कोई चमार अपने को चमार कहने से बुरा नहीं मानता। महानंदिन् की स्त्री शूद्रा थी, तो महापद्मनंद को शास्त्र के अनुसार 'उग्र' होना चाहिए, न कि क्षत्रिय।

यथा—

क्षत्रियः शूद्रकन्यायां क्रूराचारविहारवान्।
क्षत्रशूद्रवपुर्जंतुरुग्रो नाम प्रजायते ॥

मनु० अध्याय १०, श्लोक ९

और पिता यदि 'उग्र' न हुआ, तो पुत्र के 'उग्र'-जातीय होने में तो कोई संदेह नहीं हो सकता।

पर 'मुद्रा-राक्षस' में कौटिल्य चंद्रगुप्त को सदा 'वृषल' कहकर पुकारता है, जिसके सात अर्थ आपटे ने अपनी डिक्शनरी में दिए हैं। यथा—

१ शूद्र, २ घोड़ा, ३ लस्सुन, ४ पापी, अधर्मी, ५ जाति-भ्रष्ट, ६ चंद्रगुप्त का नाम (मुद्रा-राक्षस में), ७ पतित।

मुद्रा-राक्षस में चंद्रगुप्त के इस तिरस्कार का कारण यह लिखा है कि चाणक्य ने नंदों के अपमान से क्रुद्ध होकर उनको जड़ से उखाड़ने और चंद्रगुप्त को राज-सिंहासन पर बिठाने की प्रतिज्ञा की थी। उसका और कोई स्वार्थ न था, और वह राज-मंत्री होने पर भी भिक्षुक की भाँति रहता था। उसके घर का बखान, भारतेंदुजी के अनुवाद में, इस भाँति किया गया है—

कहुँ परे गोमय शुष्क, कहुँ सिल परी शोभा दै रही।
कहुँ तिल, कहूँ जव-रासि लागी, बटत जो भिक्षा लही॥
कहुँ कुश परे, कहुँ समिध सूखत, भार सों ताके नयो।
यह लखौ छप्पर महा जरजर होइ कैसे झुकि गयो॥

यह दशा देखकर कंचुकी कहता है—

"तत्स्थाने खल्वस्य वृषलोऽद्य चंद्रगुप्त इति"

इसी से वह चंद्रगुप्त को 'वृषल' कहकर पुकारता है। कारण, उसको किसी बात की चाह नहीं है।

इससे प्रकट है कि चंद्रगुप्त शूद्र ही था। विष्णुपुराण में लिखा है—

नव चैतान्नंदान् कौटिल्यो ब्राह्मणः समुद्धरिष्यति।
अतः परं शूद्राः पृथिवीं भोक्ष्यंति।

"इन नव नंदों को कौटिल्य ब्राह्मण मारेगा; इसके पीछे शूद्र राजा होंगे।"

इससे चंद्रगुप्त का नंद का बेटा होना संदिग्ध हो जाता है, और उसका शूद्र होना सिद्ध होता है।

मौर्य-शब्द का अर्थ है 'मुरा' अथवा 'मुर' का लड़का। विष्णु भगवान् का एक प्रसिद्ध नाम मुरारि अथवा मुर का वैरी भी है। श्रीमद्भागवत और विष्णु-पुराण में 'मुर' की कथा नहीं है, पर ब्रह्मवैवर्त-पुराण, श्रीकृष्ण-जन्म-

* पूना की पहली ओरियंटल कानफ़्रेंस में रायबहादुर पी० बी० जोशी द्वारा पढ़े गए 'योगीश्वर याज्ञवल्क्य' शीर्षक लेख का सारांश।—लेखक

खंड, में 'मुर' कश्यप का पुत्र लिखा है। उसने अपनी कठिन तपस्या से ब्रह्मा को प्रसन्न किया, और यह वरदान पाया कि वह जिसे छू ले, वह मर जाय। विष्णु भगवान् ने उसका वध किया। मधु की भाँति मुर भी इस देश के पुराने रहनेवाले दानवों का राजा था। इस जाति के लोग पीछे आर्यों से हारकर उनकी सेवा-टहल करने लगे, और शूद्र हो गए। इनकी संतान मौर्य कहलाई।

मुद्रा-राक्षस की प्रस्तावना में सूत्रधार चंद्रगुप्त को मौर्येंदु कहता है। इससे भी ध्वनित होता है कि चंद्रगुप्त के अतिरिक्त और भी मौर्य थे।

अंतिम प्रमाण महाभाष्य का है। व्याकरण के ग्रंथ में इतिहास का प्रमाण कैसे मिल सकता है, इसके दिखाने के लिये हम उसी ग्रंथ से ग्रंथकार पतंजलि के चंद्रगुप्त के समकालीन होने का प्रमाण देते हैं। एक सूत्र की टीका में मौर्य शब्द आया है, और दूसरे में चंद्रगुप्त-सभा। किसी-किसी पोथी में 'पुष्पमित्र-सभा' भी है; पर यह हमको ठीक नहीं जँचता। बंबई की छपी पोथी में पुष्पमित्र-सभा नहीं है। चंद्रगुप्त-सभा वही बारहदरी प्रतीत होती है, जिसका वर्णन 'माधुरी' के पृष्ठ ११२ में है। यदि पतंजलि समकालीन न होते, तो उस बारहदरी को चंद्रगुप्त-सभा न लिखते।

अब सूत्रों को देखिए—

अवक्षेपणे कन्। ५। ३। ९५।

किसी को चिढ़ाना हो, तो उसके नाम में कन्-प्रत्यय जोड़ा जाता है; जैसे व्याकरण के ज्ञान से गर्वित को 'व्याकरणक' कहते हैं।

इवे प्रतिकृतौ। ५। ३। ९६।

यह कन्-प्रत्यय ऐसी ही मूर्ति के अर्थ में भी प्रयुक्त होता है, जो वैसी ही हो।

यथा—'अश्वक'—घोड़े की मूर्ति।

जीविकार्थे चापण्ये। ५। ३। ९९।

पर ऐसी मूर्ति में, जो जीविका के लिये हो, बिक्री के लिये नहीं, उसमें 'कन्' गिर जाता है। जैसे अगर कोई शिव की मूर्ति बनावे, और उसे दिखा-दिखाकर पैसा कमाय, तो उस मूर्ति को शिव ही कहेंगे, शिवक नहीं। भट्टोजिदीक्षित कहते हैं कि ऐसी मूर्तियाँ नीच-जाति के ब्राह्मण दिखा-दिखाकर जीविका-निर्वाह करते हैं। जैसा कि आज कल माघ-मेले में राम-जानकी की दुर्गति की जाती है। पर भाष्यकार के समय में यह कार्य मौर्य किया करते थे।

मौर्यैर्हिरण्यार्थिभिरर्चाः प्रकल्पिताः।

सोने के लोभी (माँगनेवाले) मौर्यों ने अर्चाएँ (मूर्तियाँ) बनाई हैं।

एक हमारे मित्र का मत है कि अर्थ-शास्त्र में लड़ाई के लिये प्रजा से धन लेने के वास्ते जो बहुतेरे उपाय लिखे हैं, उनमें से एक यह भी होगा। हम इसको नहीं मानते। उस समय का मौर्य-राजा अकेला चंद्रगुप्त ही था। फिर बहु-वचन का प्रयोग क्यों किया गया? बहु-वचन ही पुकार-कर कह रहा है कि बहुत-से मौर्य थे। फिर सूत्र में 'जीविका'-शब्द स्पष्ट है। मौर्य चंद्रगुप्त को जीविका-निर्वाह के लिये मूर्तियाँ दिखाने की आवश्यकता न थी। इससे हम अनुमान करते हैं कि उस समय मौर्य एक शूद्र-जाति थी, जिसमें एक ऐसा सपूत जन्मा, जो सम्राट् चंद्रगुप्त हो गया। उसके सजातीय लोग मूर्तियाँ दिखा-दिखाकर भीख माँगते फिरते थे।

चतुर ब्राह्मण की सहायता से शूद्र का राजा होना कोई अपूर्व बात नहीं है। मृच्छकटिक के पढ़नेवाले जानते ही हैं कि अहीर आर्यक शर्विलक ब्राह्मण की सहायता से पालक को मारकर उज्जयिनी का राजा बन बैठा।

पुरातत्त्ववेत्ताओं के शिरोमणि रायबहादुर पंडित गौरी-शंकर-हीराचंद ओझाजी अपने सिरोही-राज्य के इतिहास में मौर्य-शब्द की उत्पत्ति "मयूर"-शब्द से बतलाते हैं। अशोक के एक शिला-लेख से विदित होता है कि जब उस धर्मात्मा राजा ने अपनी रसोई के लिये जीवों का वध कम कर दिया, तो यह आज्ञा दी कि दो ही मोर मारे जायँ। इससे रायबहादुर महोदय यह सिद्ध करते हैं कि मोर के मांस को बड़ी रुचि से खाने के कारण चंद्रगुप्त और उसके वंशज मौर्य कहलाए।

मैंने आज तक नहीं सुना कि जिसको मिठाई अच्छी लगती हो, वह अपना नाम 'मियाँ मिट्ठू' रख लेता है, और मिट्ठू कहलाने में अपना गौरव समझता है। हमारे मित्र स्वर्गवासी तंत्र भवान् राजा रम्पालसिंहजी काला-कांकराधिपति को शूकर का मांस बहुत ही प्रिय था, और उन्होंने यहाँ तक लिख डाला कि—

"जिन शूकर न खाया वृथा जन्म को गँवाया है।"

पर उन्हें भी शूकर-भक्षी की पदवी किसी ने न दी; और

मुझे निश्चय है कि राजा साहब ऐसी उपाधि देनेवाले को पुरस्कार क्या, धन्यवाद भी न देते।

मैंने संस्कृत बहुत थोड़ी पढ़ी है, और व्याकरण में व्युत्पत्ति भी बहुत कम है; पर बहुतेरा ढूँढ़ा, कोई सूत्र ऐसा न मिला, जिससे 'मयूरभक्षका मौर्याः' सिद्ध हो जाता। ऐसा कोई सूत्र मिल जाय, तो बकरी का मांस नित्य रुचि से खानेवाले भी बौकर्य बन जायँगे।

श्रीअवधवासी सीताराम बी० ए०

× × ×

५. रामनाथ प्रधान

'विनोद' में इनके तीन ग्रंथों का वर्णन है—रामकलेवा, प्रधान-नीति, और राम-होरी-रहस्य। पहले दो ग्रंथ मिश्र-बंधुओं के देखे हैं। जून १६०४ की नागरी-प्रचारिणी-पत्रिका में पं० भवानीदत्तजी जोशी ने राम-होरी-रहस्य के कुछ अंश उद्धृत किए थे, और रामनाथजी के जीवन की कुछ झलक दिखलाते हुए उनके इन ग्रंथों के भी नाम लिए थे—धनुष-यज्ञ, राजनीति, कलि-प्रपंच, बारहमास-माहात्म्य और फुटकर छंद।

धनुष-यज्ञ के विषय में जोशीजी लिखते हैं—"वैसे इधर-उधर के कवित्त तो इन्होंने बहुत लिखे, पर सबसे प्रथम ग्रंथ जो इन्होंने रचा, वह धनुष-यज्ञ है। अभी तक उसकी प्रति मुझे उपलब्ध नहीं हुई, इससे उसके गुण-दोष के संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता। यह भी नहीं विदित हुआ कि वह कब बना, और कब समाप्त हुआ।"

संवत् १६५५ (सन् १८६८) में जगन्नाथप्रसाद हलवाई, मैनेजर दवाखाना महाराजपुर, ज़िला कानपुर, ने धनुष-यज्ञ-रहस्य को 'अति शुद्ध करि' कानपुर में छपवाया था। आगे-पीछे खूब दवाओं के विज्ञापन हैं। पुस्तक के अंत में लिखा हुआ है:—

यादृशं पुस्तकं दृष्ट्वा (?) तादृशं लिखितं मया।
यदि शुद्धमशुद्धं वा मम दोषो न दीयते॥

प्रत्येक पुस्तक में जगन्नाथप्रसादजी की अँगरेज़ी में मुहर है, और नीचे लिखा है—"जिस पुस्तक में जगन्नाथ-प्रसाद की मुहर न हो, वह हमारी शुद्ध की नहीं है। द० जगन्नाथप्र०।" आरंभ में लिखा है—"जिन हरि-भक्त सज्जनों ने इस ग्रंथ का नाम ही सुना होगा, अवलोकन स्वप्न में भी न था, वे हरि-भक्त भू-मंडल के भागी हुए पढ़ देखो!"

रामनाथजी पुस्तक के अंत में लिखते हैं—

"जिंदा राम-नाम जग-जाहिर वैश्य-वरन जग जाना।
राजद्वार अधिकार पाय मो (मैं?) जाकी छाप प्रधाना॥
ताको जेठ तनय, स्वधर्म-रत, नाम सुगररा माता।
तासु सुअन यह रच्यो धनुष-मख रामनाथ विख्याता॥
संवत रहै अठारह सय को, नौ अरु एक प्रमाना।
कृष्ण पक्ष, वैशाख महीना, गुरौ, अमावसि जाना॥
तेहि दिन भयो चाप-मख पूरन, मंगल-मोद-निधाना।
कहै सुनै तेहिं सकल कामना पुजवैं श्रीहनुमाना॥
चौंतिस बरषहिं बैस गुनि, रामनाथ परधान।
धनुष-यज्ञ रघुनाथ की, भाषा करी बखान॥"

इससे प्रकट हुआ कि चौंतीस वर्ष की अवस्था में, संवत् १८६१ में, यह ग्रंथ लिखा गया; क्योंकि रामकलेवा के अनुसार रामनाथजी का जन्म संवत् १८५७ में हुआ था। ऊपर जिस पंक्ति में धनुष-यज्ञ-रहस्य का संवत् दिया हुआ है, वहाँ या तो 'औ' के स्थान में 'कौ' छप गया है, और या रामनाथजी ने उसी पंक्ति का अर्थ १८६१ लिया है। इस ग्रंथ की कथा रामचरितमानस के आधार पर लिखी गई है, और रामनाथजी पर उसका बहुत कुछ प्रभाव पाया जाता है। पुस्तक की लेखन-शैली प्रौढ़ नहीं हुई, और न रामनाथजी ने अपना अलबेला ढंग ही पक्का किया है। परंतु ग्रंथ आनंद-दायक है।

रामनाथजी के विषय में एक विचित्र बात मिलती है। जोशीजी ने लिखा है—"यह २२ या २३ वर्ष की अवस्था में कविता करने लगे।" इसलिये इसके लगभग ११ वर्ष बाद, ३४ वर्ष की अवस्था में, धनुष-यज्ञ-रहस्य लिखा गया। यह सिद्ध है कि उसके ११ वर्ष बाद, ४५ वर्ष की अवस्था में, रामकलेवा-ग्रंथ रचा गया। यह भी सिद्ध है कि उसके ११ वर्ष बाद, ५६ वर्ष की अवस्था में, उन्होंने राम-होरी-रहस्य लिखा। कारण, उसमें उन्होंने कहा है—

"उनइस सै द्वादश संवत में, प्राग त्रिबेनी पाहीं!
साधु-रजायसु पाय, नाय सिर, रच्यो ग्रंथ मन माहीं॥
माघ-अमावस महँ आरँभ करि राम-जन्म-तिथि काहीं।
मिथिला होरी-रहस राम की (को?) पूरण भो मुद माहीं॥
बय भइ छप्पन बरस की, भोगत विषय सिरान।
बरन्यो होरी-रहस यह, रामनाथ परधान॥"

इस ग्रंथ की जो प्रति मेरे पास है, वह कानपुर में, मार्च सन् १८६२ में, छपी थी; जब मैं ४ वर्ष का था।

अंत में, पुस्तक के विज्ञापन में, लिखा है—"जो पुरुष इस के अधिकारी नहीं होंगे, उनके हाथ हम पुस्तक न बेचेंगे। केवल भगवद्भक्तों को यह ग्रंथ दिया जायगा। जिसको मोल लेना हो, हमारी दूकान से मँगा ले।"

होरी-रहस्य की रचना के चार वर्ष बाद, ६० वर्ष की अवस्था में, रामनाथजी की मृत्यु प्रसिद्ध है। प्रधान-नीति को कानपुर में—"सेवक गौतम भैरवप्रसाद" ने छपवाया था। जोशीजी ने भी अपने लेख के अंत में इसे "राजनीति" के नाम से प्रकाशित किया था। दोनों प्रतियों के आरंभ के ५८ छंद मिलते हैं। भैरवप्रसाद की प्रति में पीछे दो ही छंद हैं; किंतु जोशीजी की प्रति में पाँच हैं। विषय भी भिन्न-भिन्न हैं। संभव है, दोनों विषयों पर रामनाथजी ने लिखा हो। जोशीजी की प्रति का ही प्रामाणिक होना भी संभव-पर है।

शिवाधार पांडेय एम्० ए०, एल्-एल्० बी०

महिला-मनोरंजन

१. जापानी कन्याओं को उनकी माताओं के बारह उपदेश

जापान-देश में यह रीति अनेक शताब्दियों से प्रचलित है कि ब्याह के दूसरे दिन, सबेरे, माता बेटी को निम्न-लिखित १२ अमूल्य उपदेश (The twelve commandments of the Bride) देती है—

१—हे कल्याणी, ब्याह हो जाने की घड़ी से ही तुम मेरी कन्या नहीं रहीं। तुम अब तक जैसे पिता और माता की आज्ञा का पालन करती थीं, वैसे ही अब ससुर और सास की आज्ञाकारिणी होना।

२—तुम्हारे स्वामी आज से तुम्हारे एकमात्र प्रभु हुए; उनके आगे नम्र और विनीत होना। याद रक्खो, स्वामी के अत्यंत अनुगत होना स्त्री का सर्व-श्रेष्ठ गुण है।

३—सास से सदा निष्कपट और उसके अनुगत रहना।

४—स्वामी के चरित्र पर संदेह न करना। कारण, संदेह तुम्हारे प्रति पति के अनुराग को नष्ट करेगा। स्वामी किसी विषय में ग़लती भी करे तो उस पर क्रोध न करना। सहनशीलता धारण करना, और जब वह शांत हो जाय, तब कोमल वचनों से उसे समझाना।

५—कम बोलना। पड़ोसी के विषय में कोई अनुचित बात ज़बान पर न लाना, और कभी झूठ न बोलना।

६—तड़के उठना, और रात को आप सबके पीछे सोने जाना। दिन को सोने की आदत कभी न डालना।

७—जब तक ५० वर्ष की अवस्था न हो, तब तक पब्लिक में जाकर बाहरी किसी काम—सभा-सोसाइटी आदि—में शामिल न होना, और न लोगों की भीड़ के भीतर धँसना।

८—ज्योतिषियों के फंदे में न फँसना।

९—उत्तम पुरखिन (गृहस्थी का संचालन करनेवाली) बनना, और विशेषकर घर के कामों में हाथ सँभालकर कम ख़र्च करना।

१०—यद्यपि तुम्हारा ब्याह जवानी में हुआ है, तथापि युवक-समाज के संसर्ग में बहुत न आना।

११—भड़कीली और गीली पोशाकें न पहनना—सर्वदा साफ़-सुथरा, सुसंयत और साधारण पहनावा पहनना।

१२—पिता के वंश, पद-मर्यादा या धन का (सुसराल में) गर्व न करना। वह अगर धनी हों, तो सुसराल के लोगों के सामने कभी उनके ऐश्वर्य का उल्लेख घमंड के साथ न करना।

ये बारहों उपदेश अमूल्य हैं। हरएक देश की—ख़ासकर भारत की—नववधुओं को इन्हें याद कर लेना चाहिए। इनका पालन करने से उनका जीवन उच्च, पवित्र और सुखमय होगा।

× × ×

२. जापानी स्त्रियों की कुछ बातें

जापानी स्त्रियाँ क्या हैं, यह लिखकर उनकी यथार्थ धारणा करा देना बहुत कठिन है। मेरे भाई जापान हो आए हैं; उनसे मुझे जापानी स्त्रियों के संबंध में जो कुछ मालूम हुआ है, वही लिखती हूँ। हमारे देश में स्वाधीन भाव से घूमते-फिरते अगर कोई स्त्रियाँ देख पड़ती हैं, तो वे या तो अँगरेज़-रमणियाँ होती हैं, या क्रिश्चियन। पारसी-ललनाएँ, ब्रह्म-समाजी बंगालनें और कुछ-कुछ महाराष्ट्र-महिलाएँ भी अधिकांश स्वतंत्र दृष्टि-गोचर होती हैं। किंतु इन्हें सामने आदर्श-रूप से रखकर जापानी स्त्रियों की

कल्पना किसी तरह नहीं की जा सकती। जापानी स्त्रियाँ इन सबसे निराली होती हैं। वे कभी व्यर्थ समय नहीं गँवातीं; ख़ाली ग़पशप या 'परपंच' करते कभी न देख पड़ेंगी। वे सर्वदा किसी-न-किसी काम में लगी ही रहती हैं। बाहर का भाव देखकर जितना अनुमान किया जा सकता है, उससे तो यही धारणा होती है कि उनका चरित्र बहुत ही निर्मल और अंतःकरण खूब सरल है। वे घर में या बाहर कभी उदास या सुस्त नहीं नज़र आतीं; मुख में हँसी और बदन में फुर्ती फूटी पड़ती है। जिससे बोलती हैं, हँसकर ही बोलती हैं। जापान में सभी लड़कियों को स्कूल जाना पड़ता है। वहाँ की औरतें किसी तरह का कोई गहना नहीं पहनतीं—सिर पर, मेमों की तरह, किसी टोपी का व्यवहार नहीं करतीं। वे बालों की बड़ी सेवा करती हैं। सिर के बाल बाँधने का क़ायदा हमारे देश का-जैसा नहीं है। सिर के ऊपर तरह-तरह के उठे हुए जूड़े बाँधे जाते हैं। चोटी बिगड़ न जाय, इसलिये सोते में गर्दन के नीचे बड़े काठ के तकिए रखती हैं। अक्सर सिर तकिए से अलग शून्य में ही रहता है। जापानी स्त्रियाँ फूल बहुत पसंद करती हैं; फूल पाते ही उसे बालों में लगा लेती हैं।

जापानी औरतें उद्योग-धंधों में भी बहुत भाग लेती हैं। अनेक बुनने के कारख़ानों आदि में स्त्रियाँ ही बुनने का काम करती हैं। असल में जापान की स्त्रियाँ जितनी काम में होशियार, उतनी ही परिश्रमी होती हैं। भाई साहब एक दिन एक बड़ी फ़ैक्टरी में गए थे; वहाँ मशीन के सामने बैठी हुई स्त्रियाँ काम कर रही थीं। पैकिंग वग़ैरह सब काम स्त्रियाँ ही कर रही थीं। ८-१० वर्ष की लड़कियों से लेकर सभी अवस्थाओं की औरतें फ़ैक्टरियों में काम करती हैं। हरएक को छः आने से लेकर आठ-दस आने रोज़ तक मिलता है। उनकी फुर्ती देखकर दंग रह जाना पड़ता है। हाथ इतनी तेज़ी से चलते हैं कि जान पड़ता है, वे मशीन से प्रतिद्वंद्विता कर सकती हैं। हरएक स्त्री रोज़ १० घंटे काम करती है। रोज़ाना कौन कितना काम कर सकती है, इसकी औसत मालूम रहने के कारण कारख़ाने के मालिक या मैनेजर को विशेष देख-भाल की ज़रूरत नहीं पड़ती।

जापान की स्त्रियाँ शरीर और मन, दोनों की उन्नति कर रही हैं। केवल विद्योपार्जन ही नहीं, शारीरिक व्यायाम भी करती हैं। जापानी स्त्रियों का स्वभाव साधारणतः बहुत सरल होता है। उनका मुख देखने ही से जान पड़ता है कि उसमें जैसे एक सरल पवित्रता का भाव भरा हुआ है। वहाँ लड़की-लड़के निःसंकोच स्वतंत्रता के साथ इस तरह मिलते-जुलते हैं कि हमारे यहाँ बहन-भाई भी उस तरह नहीं मिल सकते। जापानी स्त्रियाँ अपने बच्चों को गोद में लेकर नहीं चलतीं, पीठ में बाँध लेती हैं।

कृष्णकुमारी

× × ×

२. स्त्रियों की शिक्षा

आजकल हमारे यहाँ सौ में निन्नानबे—बल्कि पूरे सौ-के-सौ—आदमी स्त्री-शिक्षा के पक्षपाती हैं। स्त्रियों को भी पढ़ना-लिखना चाहिए, इस कथन का विरोध करनेवाला बिरला ही भारतवासी निकलेगा। प्रायः सभी प्रांतों के सब शहरों, क़स्बों और गाँवों में भी कन्याओं के लिये स्कूल हैं। किंतु सबसे बड़ी त्रुटि अभी बनी ही है। लड़कों को जो शिक्षा दी जाती है, वही शिक्षा—उसी रूप में—लड़कियों के लिये उपयोगी नहीं हो सकती। दोनों के मार्ग और कर्तव्य भिन्न-भिन्न हैं। यह सच है कि बहुत-से विषय ऐसे हैं, जिनकी शिक्षा लड़की-लड़के दोनों के लिये समान उपयोगी है; किंतु स्त्रियों के कुछ विशेष कर्तव्य ऐसे हैं, जिनके पालन के लिये उन्हें भिन्न प्रणाली की शिक्षा भी मिलनी चाहिए। विलायत की बात जाने दीजिए। वहाँ की स्त्रियाँ मर्दों के सभी काम करती या कर सकती हैं। किंतु हमारे यहाँ की स्थिति दूसरी ही है। यहाँ पुरुषों का कार्य-क्षेत्र बाहर और स्त्रियों का भीतर है। यहाँ पढ़ी-लिखी स्त्रियों में फ़ी-सदी २-४ स्त्रियाँ ही ऐसी होंगी, जिन्हें, निराश्रय होने के कारण, अध्यापकी आदि करके स्वयं जीविका-निर्वाह करने के लिये मजबूर होना पड़ता हो। अन्यथा साधारण नियम यही है कि मर्द कमाकर लाते हैं, और स्त्री घर का प्रबंध करती है। इसलिये मेरी राय में स्त्रियों को निम्न-लिखित विषयों की शिक्षा विशेष-रूप से मिलनी चाहिए। यथा—कपड़े सीना, रसोई करना, रोगी की परिचर्या, गृह-प्रबंध, हिसाब-किताब, कुलाचार, शिष्टाचार, स्वास्थ्य-तत्त्व, संगीत और धर्म-नीति इत्यादि। मैं समझती हूँ, स्त्रियों को

दी जानेवाली शिक्षा के पाँच स्तर हो सकते हैं, और जिस स्त्री की जैसी बुद्धि हो, वह उतनी ही कम या ज़्यादा अग्रसर हो सकती है। वे स्तर ये हैं—

(१) बचपन की शिक्षा

चार वर्ष की अवस्था से आठ वर्ष की अवस्था तक चार साल यह शिक्षा घर में या पाठशाला में दी जाय।

(२) आरंभिक शिक्षा

आठ से बारह वर्ष की अवस्था तक चार साल यह शिक्षा स्कूल में दी जाय।

(३) मध्य-शिक्षा

बारह से सोलह साल की अवस्था तक चार साल यह शिक्षा—अंतःपुर में स्वजनों के द्वारा, घर पर मास्टर के द्वारा, अथवा स्कूल में भेजकर—दिलाई जा सकती है। जिसकी जैसी रुचि और रीति हो, उसी के अनुसार वह अंतःपुर, घर या स्कूल में लड़की को शिक्षा दे।

(४) अंतिम शिक्षा

सोलह से बीस वर्ष की अवस्था तक २-३ साल अंतःपुर या स्कूल में यह शिक्षा दी जाय।

(५) उच्चतर शिक्षा

बीस से बाईस वर्ष की अवस्था तक दो साल अंतःपुर या स्कूल में यह शिक्षा दी जाय।

हमारे यहाँ १२-१३ वर्ष की लड़कियाँ अक्सर क्वाँरी नहीं रहने पातीं; इसलिये मेरी राय है कि मध्य-शिक्षा से लेकर उच्चतर शिक्षा तक उन्हें अंतःपुर ही में क्रमशः भाई, पिता, पति या देवर से ये शिक्षाएँ मिलनी चाहिए। सीना-पिरोना, रसोई बनाना, गृह-प्रबंध, कुलाचार, शिष्टाचार आदि की शिक्षा मायके में माता आदि बड़ी-बूढ़ियाँ, और (अगर मायके में ये शिक्षाएँ नहीं दी गईं) सुसराल में सास, ननद, जिठानी वग़ैरह दिया करें। केवल कुछ दिन पाठशाला में हो आने से बालिकाओं को कोई विशेष लाभ नहीं। मैंने खुद अपनी आँखों से देखा है कि पाठशाला की पढ़ी अधिकांश लड़कियाँ सुसराल की शिकायत की चिट्ठी लिखने और नाविल पढ़ने के सिवा गृहस्थी का कोई धंधा नहीं कर सकतीं, और इसी के लिये उन्हें सुसराल में लांछना और झिड़कियाँ सहनी पड़ती हैं।

जनकदुलारी पांडेय

विविध विषय

१. आश्चर्य-जनक आयु
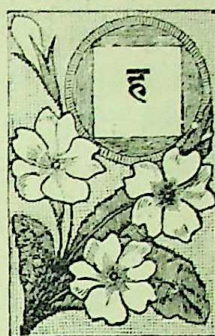
हमारे यहाँ योग-बल की बड़ी महिमा मानी गई है। अनेक आश्चर्य-जनक सिद्धियाँ—पराए शरीर में प्रवेश करना, आकाश में उड़ जाना, हज़ारों कोस के दृश्य देखना और बातें सुनना आदि—योगी के लिये एक खेल हैं। पहले योगाभ्यास से योगी लोग हज़ारों-लाखों वर्ष जीवित रहते या रह सकते थे। पर यह ज़माना प्रत्यक्षवादी है। जो बात प्रत्यक्ष नहीं, उसे आजकल के शिक्षित मानने को तैयार नहीं हैं। हमारे पुराणों की बहुत-सी बातों को लोग आजकल चंडूख़ाने की ग़प से अधिक महत्त्व देना अहमक़पन समझते हैं। हाँ, अगर कभी कोई पाश्चात्य पंडित हमारी किसी प्राचीन योग्यता या शक्ति की दाद देता है, अथवा पाश्चात्य विज्ञान कभी किसी हमारी प्राचीन असाधारणता को सिद्ध कर दिखाता है, तो फिर हम उसके क़ायल हो जाते हैं। अभी हाल में, एक पत्र में, प्रकाशित हुआ है कि हिमालय के वनों में कुछ ऐसे तपस्वी देखे गए हैं, जो महाभारत के ज़माने के हैं। शायद वे उस भीषण रण में सम्मिलित भी हुए थे। कुछ बंगाली पर्यटक, और उनके साथ ही एक अँगरेज़ सज्जन, उन्हें अपनी आँखों से देख आए हैं। तरहटी पार करने पर 'नाम-बाज़ार' के नाम से प्रसिद्ध एक स्थान मिलता है। वह पहाड़ की ऊँची चोटी पर है; जैसे आकाश को छू रहा है। वहाँ पांडवों के समय के कुछ साधु तप करते हैं। उनके कुछ चेले ऐसे हैं, जिनकी आयु हज़ार वर्ष से कम न होगी। उनके पास महाभारत-काल के सिक्के हैं, जिनसे वे हवन-सामग्री आदि ख़रीदते हैं। उनका क़द इतना है कि बैठने पर भी वे तीन-चार हाथ ऊँचे रहते हैं। पलकें फुट-सवा फुट की हैं। वे संस्कृत-भाषा बोलते हैं। मालूम हुआ है, और उँचाई पर उनसे भी अधिक आयु के साधु रहते हैं। वे वेद-पाठी और योगाभ्यासी हैं। सबके मुखिया मुनि का दर्शन करने के पहले पर्यटक लोगों को पंचाग्नि तापकर पवित्र होना पड़ा था। उनमें कुछ

तपस्वी केवल वायु खाकर, कुछ केवल जल पीकर, और कुछ—जो कम अवस्था के हैं—कंद-मूल खाकर रहते हैं। वहाँ इन यात्रियों को एक जड़ खाने को मिली थी, जो शकरकंद-सी थी। उसका स्वाद बहुत मधुर था। उसे खाकर सात-आठ दिन तक भूख नहीं लगती। आज-कल के लोग अवश्य ही अवाक् हो जायँगे; परंतु जो योग-महिमा से अभिज्ञ हैं, उन्हें कुछ आश्चर्य न होगा।

× × ×

२. मुग़ल-बादशाहों के कुछ अधिकार

श्रीयदुनाथ सरकार एक प्रसिद्ध बंगाली विद्वान् हैं। आप ऐतिहासिक लेखक और फ़ार्सी के विशेष ज्ञाता हैं। उन्होंने प्राचीन इतिहास की फ़ार्सी-पुस्तकों से मुग़ल-बादशाहों के कुछ विशेष अधिकारों का हाल लिखा है। पाठकों के मनोरंजनार्थ हम उनके लेख का सार-मात्र यहाँ देते हैं—

(क) बादशाह के दर्शन—सूर्योदय के उपरांत कुछ देर में क़िले के झरोखे या खिड़की पर—जो इसीलिये थी—बादशाह आकर खड़ा होता था। पास ही मैदान में प्रजा एकत्र होती थी। रैयत बादशाह को देखकर सलाम करती थी, और बादशाह उसका जवाब देते थे। सताए गए या दीन-दुखी लोग इसी समय अपनी व्यथा बादशाह के कानों तक पहुँचाते थे।

(ख) कोर्निश—यह एक प्रकार की बंदगी थी, जो केवल बादशाह को की जाती थी। झुककर एक हाथ पीठ पर रखकर दूसरे हाथ से धरती छूनी पड़ती थी; फिर धीरे-धीरे सीधे होकर तीन बार हाथ मस्तक में लगाना पड़ता था।

(ग) पहरा—हरएक रईस को सप्ताह में एक दिन क़िले में शाही-महल की चौकीदारी करनी पड़ती थी। उन्हें उस समय, दिन में तीन बार, शाही-कमरे के सामने खड़े होकर, बड़े अदब से, ज़मीन तक झुककर सलाम करना पड़ता था। यह प्रथा रईसों को बहुत अखरती थी।

(घ) गाना—बादशाह नित्य शयन करने के लिये जाने के पहले, और पिछली रात से प्रातःकाल तक, गाना सुनते थे। और किसी रईस को यह अधिकार नहीं था। बादशाह के यहाँ अनेक गवैए इसी के लिये नौकर थे।

(ङ) दमामा—बादशाह की यात्रा के समय या जब वह कचहरी करते थे, एक बड़ा डंका—जिसे दमामा कहते थे—पीटा जाता था।

(च) उपाधि—बादशाह के सिवा और कोई किसी को कोई उपाधि नहीं दे सकता था। शाहजहाँ के समय में बीजापुर के आदिलशाह ने अपने वज़ीर को ख़ानख़ाना का ख़िताब—जो कि मुग़ल-बादशाह ने प्रसिद्ध बैरमख़ाँ को दे रक्खा था—दिया था। बस, इसी पर शाहजहाँ ने आदिलशाह पर चढ़ाई करनी चाही। ख़बर पाकर आदिलशाह ने माफ़ी माँग ली, और अपनी जान बचाई।

(छ) सवारी—बादशाह जब सवारी पर निकलते थे, तब केवल सबसे बड़े शाहज़ादे के और सब शाही अफ़सर, रईस और शाहज़ादे तक पैदल ही चलते थे। यही क़ायदा था।

(ज) शाही पंजा—सरकारी पत्रों या पर्वानों पर बादशाह अपनी मोहर या पंजा लगाते थे। हथेली में लाल स्याही लगाकर पंजा बना दिया जाता था। बादशाह दस्त-ख़त नहीं करते थे। यह अधिकार और किसी को नहीं था।

(झ) दंड-दान—कोई भी अफ़सर, बादशाह के सिवा, किसी अपराधी को अंधा करने का या उसके हाथ काटने का दंड नहीं दे सकता था।

(ञ) ज़बरदस्ती मुसलमान बनाना—शाही हुक्म के सिवा कोई ज़बरदस्ती मुसलमान नहीं बनाया जा सकता था।

(ट) पशु-युद्ध—बादशाह अक्सर हाथियों को लड़वाते थे। एक बंद हाते में दो हाथी, मय महाबतों के, छोड़ दिए जाते थे। महाबत उन्हें उत्तेजित करके भिड़ा देते थे। दोनों गज गुथ जाते थे। अंत को आतशबाज़ी छुड़ाकर, डराकर, वे अलग किए जाते थे। महाबत प्रायः मर जाते थे। महाबत पहले ही से मृत्यु निश्चित समझ लेते थे। उनकी स्त्रियाँ रोने-पीटने लगती थीं। अगर उनमें कोई भाग्यशाली ज़िंदा बच आता था, तो बड़ी ख़ुशी मनाता था। यह निष्ठुर तमाशा सिवा बादशाह के और कोई नहीं करा सकता था।

× × ×

३. एक ही घर में एक साथ दिन और रात

पाठक हेडिंग देखकर चकित न हों, बात सोलहो आने सच है। पृथ्वी पर सबसे ऊँचे भवन का नाम "वुल्वार्थ-बिल्डिंग" है। यह अमेरिका में है। इसमें ५२ खंड हैं,

और इसकी उँचाई ७९२ फ़ीट १ इंच। शाम को, जब शहर की सड़कों में अंधकार फैल जाता है, और बिजली की रोशनी जगमगा उठती है, उक्त भवन के सबसे ऊपरवाले खंड में, उस समय भी, अस्तगमनोन्मुख सूर्य-देव की किरणें प्रकाश डालती रहती हैं; साथ ही नीचे के खंड में पूरी रात रहती है—रोशनी के बिना कोई काम नहीं हो सकता। इस प्रकार एक ही घर में, एक ही समय, दिन और रात दोनों के दृश्य देख पड़ते हैं। शाम को ही नहीं, प्रातःकाल सूर्योदय के साथ ही उक्त भवन का सबसे ऊपर का खंड दिन के प्रकाश से जग-मगा उठता है; किंतु नीचे के खंड में उस समय भी रात रहती है। इस प्रकार इलवार्थ-बिल्डिंग के सबसे ऊपरवाले खंड में रहनेवाले लोग नित्य सुबह-शाम एक घंटा सबसे अधिक दिन के प्रकाश का उपभोग करते हैं।

× × ×

४. साहित्यिक चोरी

पराया माल चुराना हर हालत में घृणित, नीच काम है। वह माल चाहे धन-दौलत हो, और चाहे किसी के परिश्रम और यश की कृति हो। अनेक बार अनेक पत्रों में हिंदी-साहित्य-संसार के चोरों की पोल खोली जा चुकी है; वे मय सुबूत के पकड़े जा चुके हैं। परंतु कुछ हज़रत पराया माल हड़पने से बाज़ नहीं आते! अन्य भाषाओं के लेखकों में भी ऐसे चोर मौजूद हैं, जो अन्य लेखक की रचना को अपनी कहकर दूसरी पोशाक में पाठकों के सामने उपस्थित करने में ज़रा नहीं हिचकते! पर इससे क्या? हमें दूसरों के दोषों का अनुकरण कभी न करना चाहिए। अगर चोर यह कहे कि 'मैं ही अकेला चोर थोड़े ही हूँ, दुनिया का दशांश दस्यु है।', तो इस दलील पर वह दंड से बच नहीं सकता। अनेक महाशय ऐसे हैं कि अन्य भाषा के लेख का अनुवाद करके अपने नाम से संपादक के पास छपने को भेज देते हैं। कुछ ऐसे भी हैं, जो उसमें कुछ रद्दोबदल, काट-छाँट और कमी-बेशी करने का कुछ कष्ट उठाते हैं। फिर कुछ ऐसे भी ढीठ हैं, जो पुराने मृत हिंदी-पत्रों की फ़ाइलें उठाकर पराए लेख की हूबहू नक़ल कर लेते हैं! अब बताइए, बेचारा संपादक क्या करे? वह कुछ सर्वज्ञ तो है ही नहीं। संपादक छाप देता है, और जब चोरी पकड़ी जाती है, तब—हज़रत चोर तो लज्जित होने से रहे—संपादक का ही सिर नीचा होना है! हमें एक मित्र ने माधुरी में प्रकाशित एक लेख के संबंध में ऐसी ही सूचना दी है कि वह मौलिक नहीं, अनुवाद है। हमने उक्त लेख के भेजनेवाले सज्जन को सूचना दे दी है। फ़िलहाल उनका नाम प्रकाशित करना कई कारणों से उचित नहीं प्रतीत हुआ। हम अपने सभी दयालु लेखकों से नम्रता-पूर्वक निवेदन करते हैं कि आप अगर अनुवाद करके भेजें, तो उसकी स्पष्ट सूचना दे दें। अनुवाद करना बुरा नहीं है, कम-से-कम हम उसे बुरा नहीं समझते। पर शर्त यह है कि विषय उपयोगी हो। मौलिक लेखक होने के यश की लचर लालसा छोड़कर अपने परिश्रम के माफ़िक़ कीर्ति की कामना करना ही अच्छा और धर्म-संगत है। अपने को, साथ ही हमको भी, लज्जित कराने में कोई लाभ नहीं। आशा है, हमारी इस प्रार्थना पर यथेष्ट ध्यान दिया जायगा।

हाँ, यही हाल पुस्तकों का भी है। कुछ पुस्तकें हमने देखी हैं, जो मौलिक के नाम से प्रसिद्ध हैं। परंतु हमने ध्यान-पूर्वक उन्हें पढ़ा, तो उनमें अनुवाद की स्पष्ट झलक नज़र आती है। हमें जब तक पक्का प्रमाण नहीं मिलता, तब तक हम उनका नामोल्लेख नहीं करेंगे। किंतु यह कहे बिना नहीं रहा जाता कि यह चोरी हिंदी की प्रगति के लिये बड़ी ही घातक है। ऐसे लेखकों को अपनी इस बुरी आदत से बाज़ आना चाहिए। इसके सिवा और क्या कहें!

× × ×

५. आधुनिक कविता

आज कल कवियों की इतनी अधिकता देख पड़ती है कि दंग रह जाना पड़ता है। अधिकांश विद्यार्थी कविता के पीछे हाथ धोकर पड़े हैं। इस समय के कवियों में आपको सौ में नब्बे बिना मूछों के नवयुवक ही मिलेंगे। हमारे पास भी कविताओं के ढेर लग गए हैं। साथ ही तक़ाज़ों के मारे जी भारी हो गया है। अगर लिख देते हैं कि—"आप अभी और भी अभ्यास करें, तब कविता प्रकाशित कराने की चेष्टा करें," अथवा उन्हें रद्दी में डाल देते हैं, तो वे ही कवि उग्र-रूप धारण कर लेते हैं! कोई लिखते हैं—"आप अगर हमारी कविता न छापेंगे, तो हमारा उत्साह भंग हो जायगा; नवीन लेखकों को उत्साहित करना आपका कर्तव्य है।" हाँ साहब, मान लिया, हमारा कर्तव्य है; मगर किसे

उत्साहित करना कर्तव्य है ? उसे, जिसमें प्रतिभा है, जिसके हृदय में कवित्व का बीज निहित है, जिस पर 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' की कहावत चरितार्थ होती है । जो कविता की ख़ूबियों के पास भी नहीं फटका, जिसकी शब्द-योजना शिथिल, जिसकी कल्पना असार, और जिसका कविता-संबंधी ज्ञान 'नहीं' के बराबर है, वह त्रिकाल में भी कवि नहीं हो सकता, हम क्या—साक्षात् सरस्वती भी चाहे उसे उत्साहित करें । जो रचना थोड़ी-सी काट-छाँट में ठीक हो सकती है, उसे ठीक करके प्रकाशित किया जा सकता है । किंतु जिसका संपादन-संशोधन नई रचना करने से भी अधिक कठिन है, जिसका वज़न ठीक नहीं, जिसका छंद यति-भंग-दोष से लँगड़ाता है, जिसके शब्द या अर्थ में कोई चमत्कार नहीं—कुछ अनूठापन नहीं—उस 'कविता' के कवि को उत्साहित करने में हम लाचार हैं । हम ऐसे उत्साही नवयुवक कवियों से स्पष्ट कह देना चाहते हैं कि वे या तो इस हौसले को छोड़कर गद्य-रचना में प्रवृत्त हों, और या पहले कविता के दसों अंगों का अध्ययन करें, प्राचीन और नवीन सत्कवियों की रचनाओं को पढ़ें, और फिर पद्य-रचना करें । पद्य बनाते ही छपाने के लिये न दौड़ें, पहले अपने गुरु या किसी अच्छे कवि को दिखाकर उसका संशोधन करा लें । अगर उनमें कुछ प्रतिभा और कवित्व-शक्ति है, तो ऐसा करने से ही शायद वे कवि हो सकेंगे ।

× × ×

६. महान् शक्ति-केंद्र

अमेरिका का नायेग्रा-जल-प्रपात बहुत बड़ा है । उस में जो बिजली की शक्ति (Electric-Power) है, उससे लाभ उठाने की चेष्टा चल रही है । इस बृहत्तम जल-प्रपात के प्रचंड वेग में, इंजीनियरों के हिसाब से, ७० लाख घोड़ों की ताक़त (Horse-Power) * मौजूद है । सारे अटलांटिक महासागर के पूर्व-तट में जो नगर, कारख़ाने, खानें और रेल आदि हैं, उनमें प्रकाश, उत्ताप और शक्ति पहुँचाने के लिये इस विराट् शक्ति की सहायता से एक बहुत बड़ा शक्ति-केंद्र स्थापित होगा । मगर उसके लिये लगभग एक करोड़ सत्तर लाख घोड़ों की ताक़त दरकार होगी । इसी कारण, देश में और-और जो बिजली की ताक़त पैदा करनेवाले कारख़ाने हैं, उनकी चेष्टा को भी इस नायेग्रा-जल-प्रपात के नए कारख़ाने से संयुक्त करके उक्त बृहत्तम कारख़ाने को ही महाशक्ति-केंद्र का रूप दिया जायगा । इस नए कारख़ाने से इतनी बिजली मिलेगी कि प्रति-वर्ष अमेरिका के १० करोड़ रुपए और ३ करोड़ टन कोयला बच जायगा ! ७० लाख अश्व-शक्ति के वेग को लेकर नायेग्रा-प्रपात जल से उत्पन्न जिस प्रकांड बिजली (Hydro-Electric) को पैदा करेगा, उसके साथ अमेरिका के अन्यान्य असंख्य शक्ति-केंद्रों से उत्पन्न तड़ित्-प्रवाह मिलकर बोष्टन से वाशिंग्टन शहर तक एक प्रधान धारा-प्रवाह की बड़ी लाइन बना देगा । उसी बड़ी लाइन से अनेक छोटी-बड़ी विभिन्न शाखाएँ निकलेंगी ; जिनके द्वारा खानों के भीतर, कारख़ानों में, रेलवे-लाइनों में, हर शहर में, हर घर में यह प्रकृति-प्रदत्त तड़ित्-शक्ति पहुँचाई जायगी । धन्य है अमेरिकावालों का उद्योग, साहस और बुद्धि !

× × ×

७. दौड़ने की अद्भुत शक्ति

मदरास के एक युवक, जिनका नाम बरदाराजुलू नायडू है, दौड़ने की अद्भुत शक्ति रखते हैं । इनकी अवस्था अभी केवल २२ वर्ष की है ; किंतु तैरने में, हाई जंप में, बोझ उठाने में और दौड़ में इनकी बराबरी करनेवाला दूसरा नहीं देख पड़ता । बँगलोर और मैसोर में 'यंग-मैन्स क्रिश्चियन एसोसिएशन' के तरह-तरह के खेलों में यह कई बार सर्व-प्रथम हो चुके हैं । किंतु इनका सबसे अधिक नाम दौड़ की प्रतियोगिता में जीतने के कारण ही हुआ है । सन् १९२१ के दिसंबर महीने में, बँगलोर में, एक अखिल भारत-वर्षीय व्यायाम-प्रतियोगिता हुई थी । इसमें यह कई दौड़ों में फ़र्स्ट हुए । पहले १ मील की दौड़ ४ मिनट २० सेकिंड में जीतकर इन्होंने पहला इनाम पाया । दुबारा २ मील की दौड़ २५ मिनट में

* एक घोड़े की ताक़त का अर्थ है, एक घोड़ा जितनी ताक़त ख़र्च कर सकता है, उतनी, या ठीक उसी के बराबर ताक़त । जैसे, ३३००० पाउंड वज़न की कोई चीज़ ज़मीन से एक फ़ुट ऊपर उठाने में जितनी ताक़त ख़र्च होती है, वह एक घोड़े की ताक़त शुमार की जाती है । एंजिनों की शक्ति में जो *Horse-Power* का शुमार किया जाता है, उसका परिमाण यही है ।

जीतकर पहला पुरस्कार प्राप्त किया। तिबारा २२ मील की दौड़ १ घंटा ५२ सेकिंड में जीतकर फिर पहला पुरस्कार लिया। तीसरी दौड़ में कुछ लोग साइकिलों पर चढ़कर साथ गए थे; मगर इनके बराबर नहीं चल सके! इस दौड़ में मैसोर के युवराज भी उपस्थित थे। उन्होंने उक्त युवक को इँगलैंड की माराथन-रेस में भेजने की इच्छा प्रकट की है। यह युवक निरामिष भोजन करनेवाले और सचमुच भारत के गौरव और गर्व की चीज़ हैं। ईश्वर इन्हें चिरजीवी और इससे भी अधिक यशस्वी करें।

× × ×

८. बालक-संपादक

अमेरिका की सभी बातें विचित्र होती हैं। वहाँ के एक प्रदेश में, रिजफ़ील्ड-नामक स्थान में, एक जातीय समिति है। उसके सभ्यों में अधिकांश स्कूल-कॉलेजों के छात्र और कुछ सयाने प्रौढ़ पुरुष भी हैं। सभ्यों की संख्या चार-पाँच सौ के लगभग है। उनका एक पत्र भी है। पत्र पाक्षिक है। इस पत्र के पहले जो संपादक रह चुके हैं, उनमें कोई २५ वर्ष से कम अवस्था का नहीं था। किंतु उसका वर्तमान संपादक एक १४ वर्ष का बालक है। उसका नाम जॉन मिल्टन हिन्स है। पत्र के लिये लेखों का चुनाव, उनका संशोधन और नामकरण तथा प्रूफ़-रीडिंग आदि सब काम वही बालक करता है। इसके सिवा उसने प्रेस के प्रबंध का सब काम सीखकर अपना प्रेस भी खोल रक्खा है। उधर संपादकीय विभाग के सब लेख और नोट्स भी जॉन ही लिखता है! इतनी कम अवस्था में ही वह उक्त समिति का उप-सभापति भी है। १२ वर्ष की अवस्था से ही उसने पत्र चलाने की, पत्र-संपादन की, कला सीखना शुरू कर दिया था! हमारे यहाँ इतनी कम अवस्था के बालक खेल-कूद में ही अधिकतर लिप्त रहते हैं।

× × ×

९. विश्व-भारती

बंगाल के कवींद्र श्रीरवींद्रनाथ ठाकुर एक महाकवि ही नहीं; बल्कि अद्भुत प्रतिभाशाली पुरुष-रत्न या महापुरुष हैं। आपकी साहित्यिक रचनाओं में जैसे उच्च कोटि की क्षमता देख पड़ती है, वैसे ही आपके अन्य कार्य भी आदर्श और उच्च होते हैं। आप जैसे कवि हैं, वैसे ही भक्त भी हैं। देश-हितैषी भी आप प्रथम श्रेणी के हैं। आपकी देश-हितैषणा और ही ढंग की है। आप विद्या, और उससे उत्पन्न होनेवाले सार्व-जनिक सार्व-देशिक प्रेम, को ही देश के कल्याण और त्राण का एक-मात्र उपाय समझते हैं। बोलपुर में आपने जो शांति-निकेतन, गुरुकुल के ढंग का, स्थापित कर रक्खा है, उसने देश के भविष्य का निर्माण करनेवाले अनेक नव-युवक तैयार कर दिए हैं। अब आपने 'विश्व-भारती' नाम से एक संस्था स्थापित की है, और उसके लिये धन एकत्र करने को देश में दौरा कर रहे हैं। आपके साथ भारत-हितैषी मिस्टर एंड्रूज़ भी हैं। आज कल आप मदरास में हैं, और शीघ्र ही सीलोन भी जायँगे। उक्त संस्था के नियम ये हैं—

(१) विश्व-भारती उच्च शिक्षा देगी। उसमें वे ही प्रवेश करें, जिन्होंने जन्म-भर विद्योपार्जन करते रहने का ही दृढ़ संकल्प कर लिया हो।

(२) विश्व-भारती में न तो कोई परीक्षा ली जायगी, और न कोई उपाधि ही दी जायगी।

(३) विद्यार्थियों को मुख्य-रूप से अपने परिश्रम का ही भरोसा रखना होगा। हाँ, अध्यापक लोग उन्हें सहायता और उपदेश सदा देते रहेंगे।

(४) छात्र किसी एक ख़ास विषय को पढ़ने के लिये उत्साहित किए जायँगे। वे अपनी शक्ति के अनुसार एक-साथ दो या और अधिक विषय भी ले सकेंगे।

(५) शिक्षा का माध्यम बंग-भाषा होगी। साथ में अँगरेज़ी की सहायता से योरप की और भाषाएँ भी सिखलाई जायँगी।

(६) भर्ती होनेवाले छात्र में कम-से-कम मैट्रीक्यूलेशन की योग्यता होना अनिवार्य होगा।

(७) इस समय पढ़ाई के पाँच विभाग हैं—भाषा तथा साहित्य, दर्शन-शास्त्र, इतिहास, कलाएँ (Arts) और संगीत।

(८) अभी संस्कृत, पाली, प्राकृत, बँगला, हिंदी, गुजराती, मराठी, मैथिली, सिंघाली, फ़्रेंच, जर्मन, ग्रीक, लैटिन, तिब्बती, अँगरेज़ी और कनौरी, इतनी भाषाएँ पढ़ाई जाती हैं।

(९) हरएक कोर्स ६ वर्ष में पूरा होगा, और उस के दो भाग होंगे—साधारण और विशेष। हर भाग में तीन साल पढ़ना होगा।

(१०) संस्कृत, पाली, प्राकृत, पुरातन भारतीय इतिवृत्त, संस्कृत-दर्शन व बौद्ध-दर्शन, इन विषयों में 'खोज' करनेवाले छात्रों को विशेष-रूप से उत्साह दिया जायगा।

(११) इसमें एक भारी पुस्तकालय रहेगा। विद्यार्थी बिना किसी फ़ीस या चंदे के उसका उपयोग कर सकेंगे।

(१२) साल में एक दफ़े, जनवरी में, विद्यार्थी भर्ती किए जायँगे।

(१३) स्त्री और पुरुष, दोनों प्रकार के छात्र लिए जायँगे। जाति या संप्रदाय की कोई क़ैद या रुकावट नहीं है। अर्थात् हर जाति और हर संप्रदाय के नर-नारी इसके छात्र हो सकेंगे।

(१४) प्रवेश की फ़ीस २०) है। २५) रु० मासिक-चंदा देना होगा। इसी में भोजन-ख़र्च वग़ैरह भी शामिल है।

कृषि-शिक्षा और आयुर्वेद-शिक्षा का भी प्रबंध हो रहा है। सचमुच यह महापुरुष के योग्य ही महत्तम कार्य है। हमारी ईश्वर से यही प्रार्थना है कि यह विद्या-पीठ नालंद और तक्षशिला के समान यशस्वी हो, और इसमें दूर-दूर के देशों से विद्यार्थी आकर ज्ञान प्राप्त करें।

× × ×

१०. भारत-सरकार का करेंसी-विभाग

भारत-सरकार ने अपने करेंसी-विभाग का, सन् १९२१—२२ का विवरण प्रकाशित किया है। यथा—सन् १९२२ के २१ मार्च तक भारत का ऋण ६१३ करोड़ रुपए का था। इसके अलावा ४ करोड़ के पी० ऑ० कैश-सार्टीफ़िकेट, और ११२ करोड़ के ट्रेज़री-बिल थे। ५८ करोड़ के ट्रेज़री-बिल पेपर-करेंसी-रिज़र्व में और ५४ करोड़ के पब्लिक के पास हैं; किंतु सन् १९१४ के मार्च महीने तक यह ऋण केवल ४११ करोड़ ही था। आठ साल में, इस ऋण में, २ अरब की वृद्धि हुई है। ऋण का सूद भी बढ़ता जाता है। सन् १९१३—१४ में सूद १४ करोड़ देना पड़ता था; किंतु अब, सन् १९२१—२२ में,—ट्रेज़री-बिल वग़ैरह को छोड़कर—वही सूद की रक़म २४६६ करोड़ हो गई है! इस स्थिति पर टीका-टिप्पणी करना व्यर्थ है।

× × ×

११. खद्दर ही की तरह हिंदी का प्रचार भी आवश्यक है

भाषा, भाव और वेष का परस्पर अच्छेद्य संबंध है। हरएक देश की ये तीनों बातें ख़ास अपनी होती हैं। जो लोग अपनी भाषा, अपने भाव और अपना वेष छोड़कर दूसरों की भाषा, भाव और वेष को अपनाते हैं, वे ही यथार्थ में परतंत्र पशुतुल्य पतित हो जाते हैं। हमारे देश की नई पीढ़ी अपनी इन तीनों चीज़ों से नफ़रत करने लगी थी। किंतु अब दिन फिरे हैं। लोग अपने भावों को अपनाते हुए अपने मोटे वेष को भी आदर की दृष्टि से देखने लगे हैं। राष्ट्र-भाषा का पद प्राप्त करके हिंदी भी लोगों का ध्यान अपनी ओर खींचने लगी है। अभी उस दिन 'आंध्र-प्रांतीय परिषद्' की स्वागत-कारिणी समिति के सभापति श्रीरांग स्वामी ऐयंगर महाशय ने अपने भाषण में यही कहा है। उनके कथन का सारांश यही है कि हिंदी ही आंध्र-प्रांत की भी राष्ट्रीय भाषा होनी चाहिए। उन्होंने कृष्णा तथा बेलूर ज़िलों में हिंदी की उत्तरोत्तर अधिक उन्नति पर प्रसन्नता प्रकट करते हुए बताया कि इधर हिंदी-प्रचार की कमी का कारण धन और प्रचारकों का अभाव है। वह प्रांतीय कांग्रेस कमेटी से कहते हैं—खद्दर ही की तरह हिंदी का प्रचार भी आवश्यक है, और कमेटी को इसपर ज़ोर देना चाहिए। हमारी सम्मति है कि ऐयंगर महाशय के इस बहु-मूल्य परामर्श पर ध्यान देना सभी प्रांतों की कांग्रेस-कमेटियों का कर्तव्य है। आंध्र-प्रांत में हिंदी के और भी अधिक प्रचार के लिये हिंदी-साहित्य-सम्मेलन को उद्योग करना चाहिए।

× × ×

१२. बंबई-हाईकोर्ट का एक शानदार फ़ैसला

भारत में जितनी रेल्वे-लाइनें हैं, सबमें तीसरे दर्जे के भारतीय यात्री पशुओं से भी गए-बीते समझे जाते हैं। उन्हें टिकट लेने में, कुली से निपटने में, सवार होने में और ट्रेन के भीतर जिन कष्टों का सामना करना पड़ता है, वे सर्व-साधारण पर प्रकट हैं। रेल्वे के कर्मचारी, रेल्वे-पुलीस और कुली—जो हमारे ही भाई-बंधु हैं—यात्रियों की दुर्दशा पर ज़रा भी तरस नहीं खाते। किसी को हज़ारों धक्के खाकर टिकट नहीं मिलता; किसी का असबाब कुली की कृपा के बिना जल्दी में आधा प्लेट-फ़ार्म पर ही छूट जाता है; कोई ट्रेन पर अपने आदमियों

को किसी तरह चढ़ा पाता है तो खुद नहीं चढ़ पाता, और साथियों से छूट जाता है ; कोई ट्रेन में—दस के स्थान में पचास यात्री भर जाने के कारण—काल-कोठरी का कष्ट पाता है । कहाँ तक कहें, असंख्य बार पत्रों में लेख छप चुके हैं, रेल्वे के बड़े अफ़सरों से कहा जा चुका है, कौंसिलों में प्रश्न तक हो चुके हैं ! मगर कोई सुनवाई नहीं होती । इधर यात्रियों के कष्टों का—असुविधा का—तो यह हाल है, उधर ज़रा भी नियम-विरुद्ध (अर्थात् रेल्वे के ही अपने बनाए नियमों के विरुद्ध) कोई हरकत यात्री से हो गई कि बस, छुटकारा नहीं है । रेल्वे मुक़द्दमा चला देती है । अभी एक ऐसी ही घटना हुई है । ट्रेनों में अक्सर किसी-किसी गाड़ी पर 'सिर्फ़ यूरोपियनों के लिये', 'सिर्फ़ ऐंग्लो-इंडियनों के लिये' लिखे हुए लेबिल चिपकाकर गोरे रंग की महत्ता घोषित की जाती है । उनपर किसी कृष्ण-काय भारतीय का बैठ जाना रेल्वे के न्याय-शास्त्र में अपराध है । हाल में बंबई-हाईकोर्ट में एक ऐसा ही मुक़द्दमा पेश था । ऐसे रिज़र्व डिब्बे में बैठनेवाले एक सज्जन पर अदालत में मुक़द्दमा चला, और ५) रु० जुर्माना भी हो गया । मामला बंबई-हाईकोर्ट में पहुँचा । हाईकोर्ट ने तीसरे दर्जे के डिब्बों का योरपियनों और ऐंग्लो-इंडियनों के लिये रिज़र्व रखना ग़ैर-क़ानूनी बताकर जुर्माने की रक़म रेल्वे से वापस दिलाई ।

× × ×

१३. गूँगे-बहरों की कांग्रेस

योरप में अंधे, गूँगे-बहरे आदि विकलेंद्रिय नर-नारियों का जीवन भी ज्ञानोपार्जन के द्वारा सुखमय बनाने की अनवरत चेष्टा की जाती है । अंधे-गूँगे आदि भी शिक्षा प्राप्त करके देश के सामाजिक, आर्थिक, नैतिक, धार्मिक आदि मामलों में दिलचस्पी लेते हैं । यहाँ के अंधे-गूँगों की तरह उनका जीवन बेकार और भार-स्वरूप नहीं होता । गत सितंबर मास में, इटली में, वहाँ के मूक-बधिर निवासियों की पहली कांग्रेस हुई थी । उसमें ४०००० के लगभग प्रतिनिधि उपस्थित हुए थे । कई बड़ी और बढ़िया वक्तृताएँ भी हुईं ! सभा-स्थल में सन्नाटा छाया था । वक्ताओं ने उँगलियों के इशारे से वक्तृताएँ दी थीं । देश की गूँगी-बहरी जनता को मुफ़्त और अनिवार्य शिक्षा देने का प्रस्ताव भी पास हुआ ।

× × ×

१४. देश की नई कंपनियाँ

अब भारत में भी सम्मिलित मूल-धन के उपयोग की उपकारिता लोगों की समझ में आने लगी है । वास्तव में सहज ही बड़ी पूँजी से भारी कारोबार खोलने का यह सर्वोत्तम उपाय है । इस साल के गत अगस्त मास में ४२ नई ज्वाइंट स्टाक कंपनियों की रजिस्ट्री कराई गई है । इनकी पूँजी सब मिलाकर २ करोड़ १० लाख रुपए की है । गत जुलाई मास में ३६ नई कंपनियों की रजिस्ट्री हुई थी ; जिनकी पूँजी सब मिलाकर १ करोड़ ८३ लाख रुपए थी । सन् १६२१ के अगस्त मास में ८४ नई कंपनियों की रजिस्ट्री हुई थी ; जिनका कैपिटल ४ करोड़ ४६ लाख रुपए था । सब प्रांतों से बंगाल का नंबर बढ़ा रहा । वहाँ ८३ लाख की पूँजी से १२ कंपनियाँ खोली गईं । दिल्ली की ईस्ट इंडिया कार्पेट कंपनी का कैपिटल सबसे अधिक, ५० लाख रुपए, है । किंतु इसी १६२२ के सितंबर में २४ लिमिटेड कंपनियाँ बंद भी हो गईं ; जिनका सरमाया १ करोड़ २४ लाख रुपए का था ।

× × ×

१५. पुलीस का ख़र्च

भारत-सरकार सेना और पुलीस इन दो विभागों में आमदनी का बहुत बड़ा हिस्सा ख़र्च कर डालती है । देश की वर्तमान स्थिति के कारण, बजट में घाटा रहने पर भी, इन विभागों का ख़र्च दिन-दिन बढ़ता ही जा रहा है । अमृत-बाज़ार-पत्रिका ने केवल कलकत्ते की पुलीस पर ख़र्च होनेवाले रुपयों की संख्या दी है ; जिससे अनुमान किया जा सकता है कि पुलीस-विभाग का ख़र्च किस तरह दिन-दिन बढ़ता जा रहा है । हिसाब निम्न-लिखित है—

सन्		रक़म
१६०१—२	...	८१७६२०)
१६०३—४	...	८६५८६३)
१६०६—७	...	१०२२६७४)
१६०६—१०	...	१३००६१६)
१६१२—१३	...	१४४६३७८)
१६१५—१६	...	१७०४४७५)
१६१६—१७	.	१६००७३८)
१६१७—१८	...	१६४६०७५)

१९१८—१९	...	२२८७१९३)
१९१९—२०	...	२०८६८८०)
१९२०—२१	...	२८३१४३०)
१९२१—२२	...	३६२००००)

(बजट में पास)

इस हिसाब से स्पष्ट विदित होता है कि इस समय केवल कलकत्ते की पुलीस का ख़र्च बीस वर्ष पहले के ख़र्च से चौगुना है। देश के अन्यान्य प्रांतों में भी पुलीस और सेना का ख़र्च पहले से कहीं अधिक बढ़ गया है। इस ख़र्च के बढ़ने का एक कारण सब चीज़ों का महँगा होना भी है। किंतु इसमें कोई संदेह नहीं कि सरकार अगर इन मदों का ख़र्च घटाने की चेष्टा नहीं करेगी, तो बजट का घाटा दिन-दिन बढ़ता ही जायगा, और अंत को आमदनी-ख़र्च की विधि मिलाना कठिन ही नहीं, असंभव होगा। भारत-सरकार को यदि आर्थिक संकट की समस्या से अपने को बचाना अभीष्ट है, तो उसे शीघ्र ही पुलीस और सेना का ख़र्च घटाना पड़ेगा !

× × ×

१६. प्रतिभाशाली बालक

बालक की अवस्था ७ वर्ष की और नाम राबर्ट गर्सिया है। उसका पिता ऐलन गर्सिया प्रसिद्ध पाश्चात्य नक़्क़ाल चार्ली चैपलिन के दल का मैनेजर है। इस बालक ने इसी अवस्था में अपनी विलक्षण धारणा-शक्ति और प्रखर प्रतिभा का परिचय देकर प्रौढ़ों को परास्त कर दिया है। यह इसी अवस्था में बेतार के तार में जो ख़बरें भेजी जाती हैं, उनके रिसीवर का काम करता है। यह काम कठिन समझा जाता है। पहले कुछ दिन काम सीखकर परीक्षा देनी होती है। पास होने पर काम मिलता है। राबर्ट इस परीक्षा को सम्मान के साथ पास करके बेतार के तारघर में भर्ती हुआ है। उसने परीक्षा में फ़ी-सदी ९२ नंबर पाए हैं !

राबर्ट ने पहले अपने बाप से ही बेतार के तार का काम सीखना शुरू किया था। वह बीच-बीच में ऐसे सवाल कर बैठता था कि पिता को उनका समाधान करना दुश्वार हो जाता था। पिता लगकर बेतार के तार के उन सूक्ष्म विषयों की आलोचना करते थे, तब कहीं बालक को समझा पाते थे। एक सप्ताह में ही राबर्ट ने बेतार के तार की मशीन और उसके सब कल-पुर्ज़े अच्छी तरह समझ लिए थे। उस मशीनरी को समझना ज़रा कठिन काम है ; किंतु बालक राबर्ट में यह सिफ़त है कि वह एक बार जो देख या समझ लेता है, उसे दुबारा देखने या समझने की उसको ज़रूरत ही नहीं होती। परीक्षा देनेवालों में अनेक अधिक अवस्था के आदमी भी थे ; जो ७ वर्ष के बालक को परीक्षा देते देखकर हँसते थे। परंतु परीक्षा-फल देखकर उन्हें उसी बालक से लज्जित होना पड़ा। दो सज्जनों ने बेतार के तार की मशीनरी राबर्ट को उपहार में दी है। वे उस मशीनरी के बेंचनेवाले व्यापारी हैं। राबर्ट ने विना किसी की सहायता के वह मशीनरी फ़िट कर ली है।

× × ×

१७. दूर-दर्शन या टेली-विसेन यंत्र

हमारे यहाँ योग की सिद्धियों में दूर-दर्शन (हज़ारों कोस दूर की घटना देखना) भी एक सिद्धि है। नए विचार के लोग उसे भी ठग-विद्या कहते या कह सकते थे। किंतु विज्ञान ने इसे प्रत्यक्ष सिद्ध कर दिखाया है। अब तक टेलीफ़ोन की सहायता से लोग दूर की बातें ही सुन सकते थे ; लेकिन अब दूर से बातें करनेवाले का मुख भी देख सकेंगे ! निकोला टेसला नाम के एक प्रसिद्ध वैज्ञानिक पंडित हैं। वह टेली-विसेन यंत्र की रचना समाप्तप्राय कर चुके हैं। इस यंत्र की सहायता से दूर के उस आदमी का मुख भी देख पड़ेगा, जो कि बातें कर रहा होगा। मनुष्य की दर्शनेंद्रिय जिस ढंग की बनी है, उसी रचना-प्रणाली के अनुकरण पर यह अद्भुत यंत्र बना है। टेलीफ़ोन की मशीन के सामने एक काँच का पर्दा रहेगा, उसी के ऊपर दूर के आदमी की परछाहीं—अर्थात् प्रतिबिंब—को लाकर बिजली डालेगी। केवल टेलीफ़ोन की कल में ही यह बात न होगी, बेतार के टेलीफ़ोन में भी दूर का प्रतिबिंब दिखानेवाला काँच का पर्दा लग सकेगा। 'टेली-विसेन' का चलन होने पर मज़े से हम दूर पर बैठे-बैठे अपने इष्ट-मित्रों और संबंधियों के दर्शन पा सकेंगे ; रेल की यात्रा का कष्ट, धन का व्यय और विलंब की व्याकुलता आदि कुछ न होगा।

× × ×

१८. चलता हुआ फ़ुटपाथ

अमेरिका के बड़े-बड़े शहरों में—ख़ासकर न्यूयार्क में—सड़कों पर आदमियों की, मोटरों की और गाड़ी-

घोड़ों की इतनी भीड़ रहती है, जिसका ठिकाना नहीं। जगह थोड़ी, आदमी बहुत—क्यों न भीड़-भड़क्का हो! भीड़ कम करने के लिये वहाँ यह प्रस्ताव चल रहा है कि सड़कें पाटकर दुमंज़िले-तिमंज़िले पर मार्ग बना दिए जायँ। यह भी कल्पना की जाती है कि शहर की बड़ी-बड़ी इमारतों की छतें परस्पर जोड़कर उन पर एरोप्लेन आदि वायु-यानों के उतरने की जगहें क़ायम कर दी जायँ। पहले न्यूयार्क-नगर में शायद शीघ्र ही चलते हुए फ़ुटपाथ बनेंगे; जिनकी चाल घंटे में दो, चार, छः मील तक होगी। सड़क के दोनों किनारों में दो फ़ुटपाथ परस्पर विपरीत-मुख होकर चलेंगे। उलटी ओर के फ़ुटपाथ में कोई इष्ट-मित्र मिल जाने पर दोनों जने स्थिर मार्ग में उतरकर बात-चीत करेंगे। सड़क के दोनों ओर बैठने के लिये बेंचें भी पड़ी रहेंगी। सब दौलत के चोंचले हैं!

× × ×

१९. वज्र की खोपड़ी

एक मनुष्य योरप में है, जिसकी खोपड़ी को अगर वज्र की कहें, तो कुछ अनुचित न होगा। उसका नाम रख भी दिया है लोगों ने 'लौहराज'। उसका असली नाम है सिगमंट ब्रेइटबर्ट। उसकी खोपड़ी बेहद मज़बूत है। एक ३ इंच मोटी लोहे की छड़ उसकी खोपड़ी के बीच में लंबी-लंबी रखकर उसमें २० आदमी लटकते हैं। मगर मिस्टर लौहराज पर कुछ असर नहीं होता; वह न हिलते हैं—न डुलते हैं। उस लौह-दंड के प्रति वर्ग-इंच पर ९२० पाउंड के वज़न का दबाव पड़ता है।

× × ×

२०. बेतार के तार का इतिहास

गुग्लीं एल्मो मार्कोनी नाम के सज्जन ने बेतार के तार का आविष्कार किया है। यह इटली के बोलोना शहर के पास किसी दिहात में पैदा हुए थे। सन् १८७४ के अप्रैल की २५ तारीख़ को इनका जन्म हुआ। मार्कोनी घर के धनी थे। इनके पिता और माता, दोनों का घराना अमीर था। मार्कोनी ने ५ वर्ष की अवस्था में एक जंगली फल के रस से ऐसी स्याही का आविष्कार किया, जिसकी कपड़े पर लिखावट किसी तरह नहीं मिटती। माता ने इन्हें कुछ उत्साह नहीं दिया। इन्होंने भी ११ वर्ष की अवस्था तक किसी आविष्कार की ओर ध्यान नहीं दिया। १६ वर्ष की अवस्था में इन्होंने विना तार की सहायता के विद्युत्प्रवाह को एक जगह से दूसरी जगह भेजने की चेष्टा शुरू की। इनसे कुछ पहले ही अध्यापक हर्ज इसका (विना तार के बिजली का करेंट एक जगह से दूसरी जगह भेजने का) आविष्कार कर चुके थे। मार्कोनी उसकी सहायता से समाचारों के आदान-प्रदान की चेष्टा करने लगे। सन् १८९५ में मार्कोनी ने सर्व-प्रथम अपनी विना तार के ख़बर भेजने की मशीन का पेटेंट रजिस्ट्री कराया। उस समय इस तरह सिर्फ़ २ मील तक ख़बरें आ-जा सकती थीं। कुछ दिन बाद मार्कोनी ने ९ मील तक ख़बर भेजने की बात कही। लोग उन्हें पागल समझने और कहने लगे। अपने स्थान में उत्साह न पाकर मार्कोनी, मय मशीन के, सन् १८९६ में, मई के महीने में, इँगलैंड चले गए। वहाँ के डाक-विभाग के सबसे बड़े आफ़िसर सर डब्लू० एच० पियर्स ने मार्कोनी का बड़ा आदर किया; उन्हें उत्साहित किया। इँगलैंड में पहले टेम्स-नदी के ऊपर विना तार के ख़बर भेजी गई। टेम्स-नदी का पाट सिर्फ़ ७५० फ़ुट चौड़ा है। सन् १८९७ में, जून में, १२ मील तक ख़बर जाने लगी। अगले साल ३२ मील तक ख़बर गई। इसी साल महारानी विक्टोरिया और युवराज एडवर्ड में विना तार के १५० ख़बरों का आदान-प्रदान हुआ। युवराज उस समय समुद्र में एक जहाज़ पर थे। ७०० के लगभग ख़बरें आयरलैंड के डबलिन-शहर में भेजी गईं। २४ वर्ष की अवस्था में मार्कोनी जगत्प्रसिद्ध हो गए। दूर-दूर से उनके पास उत्साह-वर्द्धक प्रशंसा-पत्र आने लगे। किंतु मार्कोनी गर्व के मारे फूल नहीं उठे। वह सदा कम बोलते थे, और हर घड़ी साफ़-सुथरे रहते थे। उनके अध्यवसाय से दिन-दिन बेतार के तार की उन्नति होने लगी। सन् १९०१ के १२ दिसंबर की रात के १२½ बजे का समय ही उक्त आविष्कार के बड़े गौरव की घड़ी थी। अटलांटिक-महासागर के उस पार कर्नवाल के पोल्धू-नामक सुदूरवर्ती स्थान से उस समय मार्कोनी के पास ख़बर आई थी। इस परीक्षा में सफलता पाकर मार्कोनी को बेहद ख़ुशी हुई। सन् १९०८ में व्यापारिक सुविधा के लिये अटलांटिक-सागर के इस पार से उस पार ख़बरें भेजने और मँगाने का प्रबंध किया गया। सन् १९१४ में पृथ्वी की सभी बड़ी जातियों या राष्ट्रों ने जहाज़ों पर बेतार के तार की मशीन रखने का नियम कर दिया। सन् १९१६ में

अमेरिका के वाशिंगटन-शहर और फ्रांस के पेरिस-शहर में बैठे हुए दो व्यक्तियों ने ३७०० मील के फ़ासले से बात-चीत की। फिर कुछ दिन बाद ही वाशिंगटन और हनोलूलू में बैठे हुए दो आदमियों ने ५००० मील के फ़ासले से बात-चीत की। इस समय संसार की फ़ी-सदी पंद्रह ख़बरें बेतार के तार से ही भेजी जाती हैं। बेतार के तार की अद्भुत उन्नति हुई है।

× × ×

२१. पुस्तक बेंचनेवाली मशीन

कुछ वर्ष पहले जब प्रयाग, कानपुर, कलकत्ता इत्यादि बड़े-बड़े स्टेशनों पर प्लेटफ़ार्म-टिकट बेंचनेवाली मशीनें रक्खी गई थीं, तो लोगों को बड़ा आश्चर्य होता था। कुछ दिनों तक उनको देखने के लिये एक ख़ासी भीड़-सी लगी रहती थी। बहुत-से लोग तो आवश्यकता न होने पर भी, कौतूहल-वश, उसमें पैसा डालकर प्लेटफ़ार्म-टिकट ख़रीदते थे। इस प्रकार की मशीन से धन और समय, दोनों ही की बचत होती है। इन टिकटों को बेंचने के लिये एक क्लर्क का वेतन बच जाता है; साथ ही इसके टिकट ख़रीदनेवालों को भी टिकट-घर की खिड़कियों पर घंटों खड़े नहीं रहना पड़ता।

अमेरिका में तो इस प्रकार की मशीनों द्वारा समाचार-पत्र और उपन्यास तक बिकते हैं। हाल ही में इस मशीन में और भी उन्नति की गई है। इसी प्रकार की एक परिवर्द्धित नई मशीन निकली है, जिसमें पुस्तकें बिकती हैं। पुस्तकें शीशों के पीछे सजी रहती हैं। शीशों के कारण अंदर की पुस्तकों के आवरण-पृष्ठ बाहर से दिखाई देते हैं। प्रत्येक पुस्तक के नीचे नंबर लगा रहता है। जिस पुस्तक की आवश्यकता हो, उसके नंबर के सामने पास में लगा हुआ हैंडिल लगा दो और फिर पुस्तक का मूल्य मशीन में डालकर मशीन के नीचे के हिस्से में लगे हुए पावदान को पैर से दबाओ; पुस्तक फ़ौरन् बाहर निकल आएगी। इस प्रकार की मशीनों का उपयोग सार्वजनिक स्थानों में ख़ूब होता है। ये मशीनें अधिकतर होटलों, स्टेशनों तथा बड़ी-बड़ी दूकानों के फाटकों पर रक्खी रहती हैं।

× × ×

२२. नज़ले का इलाज

साधारणतः देखा जाता है कि जहाँ ज़रा-सी सर्दी लगी कि लोगों को नज़ला या ज़ुकाम हो जाता है। यह एक ऐसा रोग है कि मनुष्य की असावधानता से शीघ्र ही हो जाता, और रोगी ही के तनिक प्रयत्न करने पर शीघ्र ही बंद हो जाता है। अक्सर देखा गया है कि नज़ला या ज़ुकाम होने पर किसी डॉक्टर या वैद्य की शरण लेने की अपेक्षा लोग स्वयं ही चिकित्सा कर लेते हैं। नज़ले में ग़ाज़बाँ और बनफ़शा बनाकर पी लेना तो भारत में एक प्रचलित औषधि-सेवन है। इससे परिणाम भी बहुत अच्छा होता है। अब कुछ दिनों से यह भी देखा गया है कि लोग अपने रूमालों में थोड़ा-सा युक्लिप्टस-तेल (Eucalyptus Oil)—जो कि आस्ट्रेलिया में उत्पन्न विशेष प्रकार की मेंहदी की क़िस्म के वृक्षों के गोंद से तैयार होता है—छिड़क लेते हैं, और उसे बार-बार सूँघते हैं। परंतु अब इस तेल के व्यवहार की एक दूसरी युक्ति निकाली गई है। युक्लिप्टस-तेल को सिगरेट पर छिड़ककर और उसके बाद शीघ्र ही उस सिगरेट को पीने से तात्कालिक फल होता है—नज़ले या सर्दी की बेचैनी में फ़ौरन् कमी हो जाती है। इस प्रकार दो-चार बार सिगरेट पीने से ज़ुकाम बिलकुल जाता रहता है। जहाँ सर्दी का ज़ोर हो, वहाँ कभी-कभी ऐसे सिगरेट पीते रहने से ज़ुकाम या नज़ला नहीं होता। इस तेल के कारण सिगरेट के असर या मज़े में भी कोई परिवर्त्तन नहीं होता।

× × ×

२३. सोने से अधिक मूल्य का लोहा

लोहा एक साधारण वस्तु है। प्रत्येक घर में लोहे की न मालूम कितनी चीज़ें बिकती रहती हैं। कोई इनकी पर्वा ही नहीं करता। लोहे को अधिक मूल्यवान् न समझने के कारण लोगों के ध्यान में यह बात भी नहीं आती कि लोहा भी मूल्यवान् हो सकता है।

इँगलैंड के उद्यमशील लोगों ने अपने अकथ परिश्रम और अध्यवसाय से लोहे के मूल्य को इतना बढ़ा दिया है कि लोगों को इसका मूल्य सुनकर स्तंभित हो जाना पड़ता है। वास्तव में लोहे की अनेक वस्तु तय्यार करने, उसमें कारीगरी दिखलाने तथा उसके द्वारा लोहे के मूल्य में वृद्धि करने के कारण आज इँगलैंड शताब्दी से लोहे की कारीगरी में सब देशों से बढ़ा हुआ और संसार-भर में सबसे समृद्धिशाली देश हो रहा है। निःसंदेह अपनी

कारीगरी से इन लोगों ने दिखला दिया कि परिश्रम और उद्योग से साधारण वस्तु को भी इस रूप में परिणत किया जा सकता है कि मूल्यवान् पदार्थों में उसकी गणना हो सके।

एक टन अट्ठाइस मन के बराबर होता है। एक टन (२८ मन) कच्चे लोहे का मूल्य ५ पाउंड से भी कम होता है। (१ पाउंड १५) रुपए के बराबर है, यद्यपि इस समय भारत-सरकार ने विनिमय (Exchange) के लिये पाउंड का मूल्य १०) रु० रक्खा है)। यही कच्चा लोहा फ़ौलाद या इस्पात बन जाने पर द्विगुणित मूल्य का हो जाता है। इस फ़ौलाद से बने हुए पियानो बाजे के १ टन तौल के तार दस हज़ार पाउंड में बिकते हैं। इसी लोहे के बने हुए घड़ी के तार संख्या में २७,०००,०००, तौल में एक टन, १००,००० पाउंड से अधिक मूल्य के होते हैं। चीर-फाड़ के औज़ारों का मूल्य इससे भी अधिक होता है। मुख और जबड़े की रगों को खींचने के लिये दाँतसाज़ जो काँटेदार तार व्यवहार करते हैं, उनका मूल्य ५००,००० पाउंड प्रति टन है। सोने का मूल्य प्रति टन १४७,००० पाउंड होता है। परंतु लोहे के तारों का मूल्य उससे कहीं अधिक है!

पुस्तक-परिचय

संक्षिप्त सूर-सागर—हिंदी-साहित्य-सम्मेलन द्वारा प्रकाशित 'संक्षिप्त सूर-सागर', हिंदी-भाषा के सूरि-सम्राट् भक्त-वर श्रीसूरदासजी के ५०० से ऊपर चुने हुए सुश्रव, सुगेय पदों का एक सलोना संग्रह है। संग्रह-कर्ता सुरसिक साहित्यिक श्रीवियोगी हरि-कृत उक्त सूरि-वर्य का संक्षिप्त जीवन-वृत्त तथा उनकी कविता और पांडित्य का परिचय, अधिकांशतः सरस विवेचना-पूर्ण वाणी में, परिशिष्ट-रूप में दिया हुआ है। ग्रंथ का आरंभ समस्त साहित्य-सेवियों के स्नेह-सम्मान-भाक्, हिंदी भाषा के सुप्रतिष्ठित आचार्य, श्रीमान् पं० राधाचरण गोस्वामीजी-लिखित सुष्ठु प्रस्तावना से पुरःसृत है; उसमें उनका यह कथन कि इस संग्रह में "सूरसागर गागर में भरकर उपस्थित किया गया है", सर्वथा सत्य है। संग्रह-कर्ता की सुरुचि और स्वकार्य-पटुता स्तुत्य है। जीवन-वृत्त में एक स्थल पर खड़ी बोली के संबंध में एक कटाक्ष भी किया हुआ है, जो कि साहित्य-निष्णातों से विशिष्ट और विस्तृत विवेचना की, सूक्ष्म स्वर से, याचना करता प्रतीत होता है।

इस संग्रह में यदि पदों की वर्ण-सूची दे दी जाती, तो पाठकों को बहुत सुविधा होती।

क्या हिंदी-भाषी भारत सूरदासजी के पूरे सवा लाख पदों का सुसंबद्ध संग्रह देखने का समुत्सुक नहीं है? ऐसा संग्रह संसार को किस दिन दर्शन देगा?

श्रीधर पाठक

× × ×

विशाख—लेखक, हिंदी के सुकवि और प्रसिद्ध सु-लेखक श्रीयुत जयशंकर 'प्रसाद'। प्रकाशक, हिंदी-ग्रंथ-भंडार कार्यालय, काशी। आकार २०×३० सोलहपेजी। पृष्ठ-संख्या ८०, और मूल्य ॥।)। काग़ज़ ऐंटिक। छपाई मामूली।

यह एक ऐतिहासिक नाटक है। राजतरंगिणी के आधार पर बौद्ध-युग की एक घटना को लेकर इसकी रचना की गई है। घटना १८०० वर्ष पहले की है। इस नाटक के प्रणेता एक प्रौढ़ लेखक हैं। उनकी विद्वत्ता और सहृदयता से हम अच्छी तरह अभिज्ञ हैं। उन्होंने इधर बौद्ध-युग के कथानकों को लेकर कई नाटक लिखे हैं। एक तो यही है, और दो प्रस्तुतप्राय हैं। इसमें हमें संदेह नहीं कि जयशंकरजी में कविता की तरह नाटक लिखने की भी अच्छी शक्ति है। उनका यह नाटक सब तरह से अच्छा हुआ है। भाषा प्रभाव-पूर्ण है, कविता मनोहर है, चरित्र-चित्रण स्पष्ट और सुंदर है। आरंभ में 'परिचय' भी लेखक के इतिहास-ज्ञान का पूर्ण परिचायक है। हम आशा करते हैं, जयशंकरजी ऐसे ही उत्कृष्ट उपयोगी नाटक लिखकर हिंदी की अच्छी सेवा करेंगे। इस नाटक की विस्तृत आलोचना भी किसी अंक में करने का विचार है। पाँच फ़ार्म की पुस्तक का ॥।) मूल्य बहुत अधिक है!

× × ×

पराक्रमी हाड़ाराव—लेखक और प्रकाशक, हिंदी के उत्कृष्ट लेखक महता लज्जारामजी शर्मा, बूँदी। आकार डिमाई बारहपेजी। पृष्ठ-संख्या ३१६, और मूल्य १।)। काग़ज़ चिकना, छपाई सुंदर और जिल्द भी सुदृश्य। बूँदी-नरेशों के ६ छोटे-छोटे चित्र भी एक ही में दिए हुए हैं।

इसमें बूँदी-नरेश रावराजा श्रीरत्नसिंहजी, राजकुमार श्रीगोपीनाथजी, बूँदी-नरेश रावराजा श्रीशत्रुशल्यजी, भावसिंहजी और अनिरुद्धसिंहजी, इन छः नरेशों के जीवन-चरित्र हैं। इसको संवत् १६१५ से संवत् १७५२ तक का बूँदी का इतिहास भी कह सकते हैं; क्योंकि इसमें इतने काल की बूँदी-राज्य की मुख्य-मुख्य सभी सामयिक घटनाएँ लिख दी गई हैं। महताजी हिंदी के इने-गिने उत्कृष्ट लेखकों में से एक हैं। आपने कुछ दिनों तक श्रीवेंकटेश्वर-समाचार-पत्र का संपादन भी योग्यता के साथ किया है। आपने यह पुस्तक बड़े परिश्रम और खोज से लिखी है। इसके लिखने में १८ पुस्तकों से सहायता ली गई है। पढ़ने में उपन्यास का मज़ा आता है। पुस्तक इतिहास-प्रेमियों के बड़े काम की है। साधारण पाठकों का भी ज्ञान इसके पढ़ने से बढ़ेगा। हरएक पुस्तकालय में इसकी एक-एक प्रति अवश्य रहनी चाहिए। इसका मूल्य भी पुस्तक का आकार देखते—आज-कल के ज़माने में—निस्संदेह कम है।

× × ×

सारनाथ का इतिहास—लेखक, श्रीवृंदावन भट्टाचार्य, एम्० ए०, एम्० आर० एस्०, जी० एस्० (एडिनबरा), प्रोफ़ेसर हिंदू-विश्व-विद्यालय, काशी, और प्रकाशक, ज्ञानमंडल कार्यालय, काशी। आकार २०×३० सोलहपेजी। पृष्ठ-संख्या २००। मूल्य सादी का १।) और जिल्ददार का १॥)। कागज़ हलका ऐंटिक। छपाई सुंदर। जिल्द रंगीन खादी की। इसमें ६ चित्र भी हैं।

यह ज्ञानमंडल-ग्रंथमाला का पंद्रहवाँ पुष्प है। स्वनाम-धन्य बाबू शिवप्रसादजी के अनेक सत्कार्यों में ज्ञानमंडल भी एक और मुख्य है। यह संस्था हिंदी की अच्छी सेवा कर रही है। इसकी ग्रंथमाला में आज तक सभी चुने हुए और उपयोगी ग्रंथ-रत्न निकले हैं। यह पुस्तक भी बड़ा महत्त्व रखती है। काशी-यात्री लोगों में से अधिकांश सज्जन सारनाथ के खँड़हर देखने जाते हैं। वहाँ नीचे धरती खोदने से जो चीज़ें मिली हैं, वहाँ पर जो स्तूप निकले हैं, उनका हाल हिंदी में न होने से, वे लोग, जो अँगरेज़ी नहीं जानते थे, उससे अनभिज्ञ ही रहते थे। ज्ञानमंडल ने इस पुस्तक को प्रकाशित कर एक बड़े अभाव की पूर्ति कर दी है। पुस्तक बड़ी खोज से लिखी गई है। 'सारनाथ' के संबंध में जानने योग्य पुरानी और नई सभी बातों का वर्णन ऐसी सुश्रृंखला के साथ किया गया है कि जी नहीं ऊबता। इस पुस्तक में एक विशेषता यह भी है कि मूल-लेखक, जो एक बंगाली सज्जन हैं, उन्हींने हिंदी-रूपांतर भी किया है। पुस्तक में ७ अध्याय और २ परिशिष्ट हैं। आरंभ में श्रीसतीशचंद्र विद्याभूषण-जी की लिखी २ पृष्ठ की भूमिका और २ पृष्ठ का ग्रंथकार का वक्तव्य भी है। प्रकाशकों ने आरंभ में प्रकाशन का सारा हिसाब दे दिया है, जिसमें कोई मूल्य अधिक होने की शिकायत न करे। पुस्तक सर्वथा उपादेय और संग्रह-योग्य है, इसमें संदेह नहीं।

× + ×

ब्रिटिश भारत का आर्थिक इतिहास—अनुवादक, केशवदेव सहारिया, और प्रकाशक, वही ज्ञानमंडल कार्यालय। आकार २०×३० सोलहपेजी। पृष्ठ-संख्या २४५, और मूल्य सादी का १) तथा जिल्ददार का १।-)। कागज़ हलका ऐंटिक। छपाई सुंदर।

यह स्वर्गीय रमेशचंद्र दत्त की लिखी 'इकॉनॉमिक हिस्ट्री आफ़ ब्रिटिश इंडिया' पुस्तक का संक्षिप्त अनुवाद, और मंडल की ग्रंथमाला का सोलहवाँ पुष्प, है। आरंभ में मूल-लेखक की बृहत् प्रस्तावना पढ़ने ही योग्य है। यह ब्रिटिश-शासित भारत का आर्थिक इतिहास बड़े महत्त्व का है। इसे पढ़ने से भारत की आधुनिक निर्धनता के कारण अच्छी तरह समझ में आ जाते हैं। पुस्तक की उत्तमता और उपयोगिता मूल-लेखक के नाम से ही प्रकट है। अधिक क्या लिखें, इस समय इस पुस्तक का घर-घर प्रचार होना चाहिए। ऐसी उत्तम पुस्तक चुनकर प्रकाशित करने के लिये हम मंडल के संचालकों को धन्यवाद देते हैं।

× × ×

समय-दर्शन—लेखक, ठाकुर कल्याणसिंह शेखावत बी० ए०, और प्रकाशक, हिंदी-ग्रंथ-भंडार कार्यालय, काशी। आकार २०×३० सोलहपेजी। पृष्ठ-संख्या १८० से ऊपर! मूल्य सादी का १≈) और जिल्ददार का १॥≈)। कागज़ और छपाई साधारण।

यह सुलभ-हिंदी-पुस्तकमाला की १५वीं संख्या है। इस पुस्तक में समय का महत्त्व और उचित उपयोग, दिनचर्या, दैनिक कर्तव्य इत्यादि विषय सरल, सुंदर भाषा

में समझाए गए हैं। पुस्तक काम की है—इससे अलस अथवा समय के उचित उपयोग के प्रति उदासीन भारत की भलाई सर्वथा संभव है। इसमें, आरंभ में, पंडित रामप्रतापजी पुरोहित की लिखी भूमिका भी पढ़ने लायक़ है। टाइटिल पेज पर एक रमणी का चित्र भी है, जो शायद केवल ग्राहकों का चित्त आकृष्ट करने के विचार से ही दे दिया गया है।

× × ×

दुखी भारत या भारत-बीती—लेखक, पंडित दीनानाथ कालिया, और प्रकाशक, दीनानाथ-बाबादास, नवजीवन पुस्तकालय, लोहारी-दरवाज़ा लाहौर। आकार २०×३० सोलहपेजी। पृष्ठ-संख्या १२०, और मूल्य ।।)। छपाई और काग़ज़ मामूली।

यह नवजीवन-ग्रंथमाला की चौथी संख्या है। इसमें पंजाब-हत्याकांड की कुछ घटनाओं का, डॉक्टर किचलू, उपेंद्रकुमार आदि के जेल-जीवन का और काले पानी की कहानी का विशद वर्णन है। राजनीति-प्रेमियों के लिये पढ़ने की चीज़ है। टाइटिल पर एक जलियाँवाले बाग़ और पंजाब में वेत्राघात के विकट बीभत्स दृश्य का रंगीन चित्र भी है। मूल्य अत्यधिक है। आजकल पुस्तक-प्रकाशक लागत से तिगुना मूल्य रखना तो शायद धर्म ही समझने लगे हैं। साहित्य की उन्नति के लिये यह आवश्यक है कि उसका खूब प्रचार हो। किंतु यह उचित मूल्य रक्खे विना संभव नहीं।

× × ×

गजरा—लेखक, कई प्रसिद्ध लेखक, और प्रकाशक, हिंदी-ग्रंथ-भंडार, काशी। आकार २०×३० सोलहपेजी। पृष्ठ-संख्या १५२। मूल्य सादी का ।।।≡) तथा जिल्ददार का १।≡)। काग़ज़ और छपाई मामूली। जिल्द, जिसके दाम ।) हैं, उसका हाल मालूम नहीं, कैसी है! कारण, प्रकाशकजी ने हमें अपनी सब पुस्तकें विना जिल्द की ही भेजी हैं!

इसमें ६ भिन्न-भिन्न लेखकों की कहानियाँ हैं। साधारणतः अच्छी भी हैं। आरंभ में फ़ैज़ी बाई का एक चित्र भी है। पढ़कर मन बहलाया जा सकता है। यह हिंदी-पुस्तकमाला की चौदहवीं संख्या है।

× × ×

पतितोद्धार—लेखक, श्रीयुत जंगबहादुर सिंह, और प्रकाशक, हिंदी-ग्रंथ-भंडार कार्यालय, काशी। आकार २०×३० सोलहपेजी। पृष्ठ-संख्या १०२, और मूल्य १≡)। काग़ज़ और छपाई मामूली।

यह एक उपन्यास है, जो पंजाब के हत्याकांड की घटनाओं के आधार पर लिखा गया है। लेखक महाशय एक उत्साही और सुशिक्षित नवयुवक हैं। उनका प्लॉट और लेखन-शैली आशावर्द्धक है। चरित्र-चित्रण संक्षिप्त होने के कारण अस्पष्ट अवश्य रह गया है, लेकिन जितना हुआ है, उतना निर्दोष है। हम आशा करते हैं कि लेखक महाशय अगर इसी तरह मश्क़ करते रहे, तो अवश्य ही वे भविष्य में अच्छे औपन्यासिक लेखक हो सकेंगे। यह हिंदी-पुस्तकमाला की १८वीं संख्या है। टाइटिल पर वही समय-दर्शनवाला रमणी-चित्र है!

× × ×

सप्तर्षि—लेखक, बाबू शिवदास गुप्त (कुसुम), और प्रकाशक, हिंदी-ग्रंथ-भंडार, काशी। आकार २०×३० सोलहपेजी। पृष्ठ-संख्या १२४, और मूल्य सादी का ।।।≡) तथा जिल्ददार का १।-)। काग़ज़ हलका ऐंटिक। छपाई मामूली।

इस पुस्तक में भगवान् तिलक-देव, महात्मा गाँधी, पंजाब-केसरी लाला लाजपतिराय, माननीय मालवीयजी, आत्मत्यागी मोतीलाल नेहरू, वीरवर अलीबंधु और देशबंधु दास महाशय, इन भारत-माता के सात सपूतों का संक्षिप्त जीवन-चरित्र अच्छे ढंग से, सुंदर सरल भाषा में, लिखा गया है। लेखक की भाषा में जानदारी है। उक्त सप्तर्षियों की बड़ी जीवनी मोल लेने के लिये धन और पढ़ने के लिये समय जिनके पास नहीं है, उनके लिये यह संग्रह बड़े काम का है। कारण, इसके पढ़ लेने से उक्त महात्माओं के जीवन की मुख्य और मोटी-मोटी सभी बातें मालूम हो जाती हैं। यह हिंदी-पुस्तकमाला की १२वीं पुस्तक है।

× × ×

प्रबंध-पूर्णिमा—संग्रहकर्ता और प्रकाशक, बाबू अंबिकाप्रसाद गुप्त, हिंदी ग्रंथ-भंडार कार्यालय, काशी। आकार २०×३० सोलहपेजी। पृष्ठ-संख्या १३३ और मूल्य १) रु०। काग़ज़ और छपाई साधारण।

अंबिकाप्रसाद गुप्त ने पहले इंदु नाम का मासिक पत्र निकाला था। वह कुछ दिन तक निकलकर बंद हो गया। पर अपने उतने ही जीवन में वह लोकप्रिय हो

गया था । उसी में निकले हुए विविध विषयों के १५ लेखों का यह संग्रह है। लेख और लेखक सब अच्छे हैं। यह उपर्युक्त पुस्तकमाला की ८वीं संख्या है।

× × +

जंगली रानी—लेखक, कई साहित्य-सेवी । प्रकाशक, हिंदी-ग्रंथ-भंडार, काशी । आकार २०×३० सोलहपेजी और पृष्ठ-संख्या १०८ । मूल्य ॥=) और काग़ज़ तथा छपाई साधारण।

अंबिकाप्रसादजी गुप्त ने इंदु की अस्तावस्था में हिंदी-गल्प-माला नाम की एक गल्पों की मासिक पत्रिका निकालना शुरू किया है; जिसकी संपादिका कोई कौशल्या देवी हैं। साल के अंत में गल्प-माला की ओर से सर्व-श्रेष्ठ गल्प-लेखकों को सोने और चाँदी के पदक दिए जाते हैं। इस पुस्तक में वैसी ही पुरस्कार-प्राप्त ५ गल्पों का संग्रह है। जंगली रानी, लिली, हृदयदान, प्रायश्चित्त और विदीर्ण-हृदया लता, ये ५ गल्पें हैं। गल्पें सब सुंदर हैं। यह पुस्तक हिंदी-पुस्तकमाला की ३ से ६ संख्याओं तक का एकत्र समावेश है !

× × ×

चोट—लेखक, श्रीअनादिधन बंद्योपाध्याय बी० ए० । प्रकाशक, हिंदी-ग्रंथ-भंडार, काशी । आकार २०×३० सोलहपेजी। पृष्ठ-संख्या १०४ । मूल्य ॥=) । काग़ज़ ऐंटिक, छपाई मामूली।

लेखक ने बंगाली होकर भी हिंदी में लिखना शुरू किया है, यह बड़े हर्ष की बात है। गल्पें सब उत्कृष्ट हैं। भाषा भी प्रौढ़ और परिमार्जित है । अनादि बाबू की छोटी कहानियाँ एक ख़ास प्रभाव डालनेवाली होती हैं। हमें विमला की पाठशाला और फ़क़ीर, ये दो गल्पें बहुत अच्छी लगीं । २ चित्र भी हैं। यह हिंदी-पुस्तकमाला की ६वीं संख्या है।

× × ×

कीचक-वध—लेखक, बाबू शिवदास गुप्त (कुसुम), और प्रकाशक, कलकत्ते की आर० एल० बर्मन कंपनी । आकार २०×३० सोलहपेजी । पृष्ठ-संख्या ५५ और मूल्य ॥=) । काग़ज़ बढ़िया ऐंटिक और छपाई-सफ़ाई दर्शनीय । इसमें ३ थ्रीकलर चित्र भी दिए गए हैं।

यह महाभारत के आधार पर लिखा गया एक वीर-रस-पूर्ण खंड-काव्य है । कुसुमजी एक होनहार सत्कवि हैं। उनकी रचना में माधुर्य-पूर्ण ओज रहता है। यह खंड-काव्य भी अच्छा हुआ है। बर्मन-कंपनी सचित्र सुंदर पुस्तकें प्रकाशित करने में प्रसिद्धि पा चुकी है। यह पुस्तक भी उसकी उस प्रसिद्धि का परिचय देनेवाली है।

× × ×

बालचरों को उपदेश—लेखक, पं० श्रीरामजी वाजपेयी, और प्रकाशक, सेवा-समिति बालचर-मंडल, प्रयाग। आकार २०×३० सोलहपेजी । पृष्ठ-संख्या ९६ । मूल्य ।=)। काग़ज़ हल्का ऐंटिक । छपाई-सफ़ाई अच्छी ।

वाजपेयीजी ने इँगलैंड में सेवा-धर्म पर अँगरेज़ी में जो १५ व्याख्यान दिए थे, उन्हींका यह हिंदी-अनुवाद है। आजकल भारत में भी सेवा-धर्म का बहुल विस्तार हो रहा है। प्रायः सभी बड़े स्थानों में सेवा-समितियों की स्थापना हो चुकी है । वे समितियाँ उपयोगी भी सिद्ध हो चुकी हैं। देश में अनेक बड़े मेलों और बढ़िया आदि आपत्तियों के समय उन्होंने बड़ा काम किया है । किंतु अभी उनमें अनेक त्रुटियाँ भी मौजूद हैं। कोई भी काम हो, जबतक उसके संबंध में पूर्ण ज्ञान या अनुभव नहीं होता, तबतक उसमें त्रुटियों का रह जाना अवश्यंभावी है। यह पुस्तक सेवा-धर्म का ज्ञान बढ़ाने में अत्यंत उपयोगी होगी। वक्तृताएँ बड़े मार्के की हैं। हरएक स्वयं-सेवक को यह पुस्तक लेकर पढ़नी चाहिए । बालचरों के लिये अनेक ज्ञातव्य बातें इसमें बतलाई गई हैं। सर्व-साधारण पाठक भी इस पुस्तक से लाभ उठा सकते हैं।

× × ×

शिवराज-शतक—टीकाकार और संपादक, कवि गोविंदगिल्ला भाई और प्रकाशक, बुकसेलर अब्दुलहुसैन आदमजी, भावनगर । आकार डिमाई बारहपेजी। पृष्ठ-संख्या १२८ । मूल्य ॥) । काग़ज़ जर्मनी रफ़ और छपाई रद्दी।

कवि गोविंदगिल्ला भाईजी हिंदी के वयोवृद्ध, सुकवि और हितैषी हैं । आयु में आप बाबू हरिश्चंद्रजी से भी बड़े हैं । आपकी मातृभाषा गुजराती है, फिर भी आप हिंदी के अनन्य भक्त हैं । आपने हिंदी में बहुत-सी कविता की है, और वह उत्कृष्ट-श्रेणी की है। आपने कवि-वर भूषण-कृत वीर-रस की कविता का यह संग्रह छपवाया है। आरंभ में २४ पृष्ठ की भूमिका है, जो गुजराती में लिखी गई है। उसके बाद शिवराज-शतक है। मूल-कवित्त देव-नागराक्षरों में और उसकी टीका गुजराती में दी है। कवित्तों का पाठ प्रायः पुस्तक-भर में अशुद्ध छपा है। यह

बात हमें बहुत खटकी। माननीय कविवर से हमारा अनुरोध है कि इसकी दूसरी आवृत्ति सुंदर और सुदृश्य निकालें। कवित्तों का पाठ भी शुद्ध कर दें। भूषण की कविता के विषय में तो कुछ कहने की ज़रूरत ही नहीं है। उसके गुणों को, उसकी श्रेष्ठता को, तो हिंदी-भाषा-भाषी बच्चे तक जानते हैं!

× × ×

भारत-भावनांजलि—लेखक और प्रकाशक, पं० माता-दीन चतुर्वेदी, होमगंज, औरैया, इटावा। आकार २०×३० सोलहपेजी। पृष्ठ-संख्या १४३ और मूल्य सादी का ॥=) तथा जिल्ददार का ॥।) काग़ज़ और छपाई साधारण।

यह एक काव्य-ग्रंथ है। आदि से अंत तक हरिगीतिका छंदों में भारत-भारती का प्रतिबिंब खींचा गया है। हम तो कवि के कौशल और क़लम की काट-छाँट की करामात देखकर दंग रह गए! सचमुच कवि ने कमाल कर दिखलाया है! बाबू मैथिलीशरण गुप्त की भारत-भारती में जो कुछ है, वह सब इस पुस्तक में है। वे ही अतीत, वर्तमान और भविष्य, ये तीन खंड हैं। वही समर्पण, वही मंगलाचरण, वही उपक्रमणिका, वही विश्राम और वही वरदान! धन्य है चतुर्वेदीजी की इस प्रखर प्रतिभा को! धन्य है उनके साहस को! अधिक क्या लिखें!

× × ×

भारत-गीतांजलि—संग्रहकर्ता, विश्वंभरसहाय प्रेमी। प्रकाशक, विश्व-साहित्य-भंडार, मेरठ। आकार छोटा। पृष्ठ-संख्या ३६ और मूल्य =)। काग़ज़ और छपाई अच्छी।

यह भारत-गीतांजलि का दूसरा भाग है। इसमें राष्ट्रीय कविताओं का संग्रह किया गया है। कोई-कोई कविता बेशक अच्छी है।

× × ×

महाराज नंदकुमार को फाँसी—लेखक, श्री चंडी-चरण सेन। प्रकाशक, प्रताप-पुस्तकालय, कानपुर। आकार २०×३० सोलहपेजी। पृष्ठ-संख्या ५४४। मूल्य सादी का २॥) और जिल्ददार का २॥।)। काग़ज़ चिकना और छपाई-सफ़ाई सुंदर।

यह एक ऐतिहासिक उपन्यास है। बँगला से अनुवाद किया गया है। इसमें लेखक ने बहुत ही करुण भाषा में बंगाल की उस समय की स्थिति का चित्र अंकित किया है, जिस समय वहाँ ईस्ट-इंडिया कंपनी का राज्य था। कंपनी के कर्मचारी और उनके अनुगत देसी लोग ग़रीब जुलाहों और कारीगरों पर कैसा अत्याचार करते थे, वारन हेस्टिंग्ज़ की प्रतियोगिता में महाराज नंदकुमार के प्राण किस तरह अन्याय से, न्याय का नाटक करके, लिए गए—ये सब बातें इस उपन्यास में अच्छी तरह लिखी गई हैं। यह उपन्यास मनोरंजक भी इतना है कि अंत तक पढ़े विना पुस्तक रखने को जी नहीं चाहता। प्रकाशक पंडित शिवनारायणजी मिश्र को हम इसलिये धन्यवाद देते हैं कि उन्होंने पुस्तक का मूल्य बहुत अधिक नहीं रक्खा। आशा है, हिंदी-प्रेमी इस पुस्तक का विशेष आदर करेंगे।

× × ×

बहिष्कृत भारत—लेखक, श्रीयुत चंपालाल जौहरी (सुधाकर), और प्रकाशक, पं० शिवनारायण मिश्र, वैद्य, प्रताप-पुस्तकमाला, कानपुर। आकार २०×३० सोलहपेजी। पृष्ठ-संख्या ४० और मूल्य ।)। काग़ज़ एंटिक। छपाई उत्तम।

यह पुस्तक मराठी मनोरंजन मासिक पत्र के एक लेख के आधार पर लिखी गई है। अस्पृश्य जातियों के उत्थान की ओर देश-वासियों का ध्यान अधिक आकृष्ट करना ही इस पुस्तक का उद्देश्य है। लेखक ने बड़े अच्छे ढंग से १२ परिच्छेदों में अपने विषय का प्रतिपादन किया है। आजकल अछूत जातियों की छूत छुड़ाने का अच्छा आंदोलन चल रहा है। ऐसे समय में इस पुस्तक का प्रचार अवश्य ही उपयोगी होगा। इस आंदोलन के अनुकूल और प्रतिकूल, दोनों पक्ष के लोगों को अवश्य यह पुस्तिका पढ़नी चाहिए।

सूचना

हमारे पास समालोचना के लिये आई हुई पुस्तकों का ढेर लग गया है। हम क्रमशः उनका परिचय देते रहेंगे। विलंब होने से प्रेषकों को घबराना न चाहिए। पत्र-पत्रिकाओं का भी समालोचना के लिये तक़ाज़ा है। हम अगले अंक में कुछ पत्र-पत्रिकाओं का भी परिचय देने की चेष्टा अवश्य करेंगे।

साहित्य-सूचना

इस कॉलम में हम हिंदी-प्रेमियों के सुभीते के लिये प्रतिमास नई-नई उत्तमोत्तम पुस्तकों के नाम देते रहते हैं। गत मास में नीचे-लिखी पुस्तकें अच्छी निकलीं—

(१) जगदीश झा (विमल)-लिखित 'जीवन-ज्योति' उपन्यास । मूल्य १।)

(२) पं० सुदर्शनाचार्य बी० ए० द्वारा संपादित 'मनोहर कहानियाँ' । मूल्य ।≤)

(३) पं० सुदर्शनाचार्य बी० ए० द्वारा संपादित 'नानी की कहानी' । मूल्य ॥~)

(४) श्रीअश्विनीकुमार दत्त लिखित बँगला 'भक्तियोग' का हिंदी-अनुवाद । अनुवाद-कर्ता पं० चंद्रराज भंडारी 'विशारद' । मूल्य १॥)

(५) पं० वासुदेव पांडेय-रचित 'काशी-विश्वनाथ' नाटक । मूल्य ।॥)

(६) बाबू दुर्गाप्रसाद गुप्त-लिखित 'भारतवर्ष', हिंदी में राष्ट्रीय नाटक । मूल्य ॥।)

(७) श्रीयुत 'विश्व'-लिखित 'भीष्म-प्रतिज्ञा' नाटक । मूल्य ।॥)

(८) श्रीयुत रामचंद्र शुक्ल-कृत 'बुद्ध-चरित' । सर एडविन आर्नल्ड के 'लाइट आफ़ एशिया' के आधार पर लिखित । मूल्य २॥)

(९) बाबू गोपालराम गहमर द्वारा संपादित 'सुनहरी टोली या काला चाँद' । मूल्य ३)

(१०) श्रीमान् मार्डन द्वारा संकलित 'He can who thinks he can' का अनुवाद । अनुवादक बाबू मोतीलाल जैन एम्० ए० तथा बाबू चेतनदास बी० ए० । मूल्य ॥≈)

(११) श्रीयुत चेतनदास बी० ए० द्वारा संपादित 'सद्विचार-मुक्तावली' । मूल्य ।≈)

(१२) पंडित नरोत्तम व्यास द्वारा रचित 'गाँधी-गीता' । गाँधीजी के सुंदर चित्रों सहित । मूल्य २)

(१३) अध्यापक जहूरबख़्श-रचित 'मुस्लिम-महिला-रत्न' । वीर, विदुषी बारह मुस्लिम-महिलाओं की सचित्र जीवनियाँ । मूल्य २।)

चित्र-चर्चा

इस संख्या के भी दोनों रंगीन चित्र श्रीमान् विष्णु-नारायणजी भार्गव की चित्रशाला के हैं । पुराने ज़माने के चित्रकारों के बनाए हुए ये चित्र हाथ की सफ़ाई और कारीगरी के अच्छे नमूने हैं । "लैला-मजनूँ" नाम के चित्र में प्रसिद्ध प्रेमी-युगल लैला और मजनूँ का मिलन दिखलाया गया है । रंगों की सफ़ाई और हाथ की बारीकी और खूबी देखते ही बनती है । यह चित्र मुग़ल-दरबार के किसी कुशल कारीगर द्वारा अंकित हुआ है ।

'सद्यःस्नाता'-नामक चित्र में कोई सुंदरी स्नान के अनंतर चौकी पर बैठकर अपने को सुसज्जित कर रही है। इस चित्र में घास, आसमान, बादल, चौकी आदि के रंग दर्शनीय हैं । रंग देने में कारीगर ने कमाल कर दिया है ! पटने के किसी पुराने चित्रकार ने इसका चित्रण किया है ।

अगली संख्याओं के लिये चतुर चित्रकार श्रीयुत रामेश्वरप्रसाद वर्मा ने अपने कई चारु चित्र माधुरी में प्रकाशनार्थ प्रेषित करने की कृपा की है । पाँचवीं संख्या से उनका प्रकाशन आरंभ होगा ।

इस संख्या को देखने से मालूम होगा कि प्रतिमास हम सादे चित्रों की संख्या बढ़ाते जा रहे हैं । अभी हमारी ब्लाक बनानेवाली मशीन अधिक काम नहीं कर रही है; शायद अगले मास से ज़्यादा काम देने लगे । अतएव आगे की संख्याओं में हम सादे चित्रों की संख्या क्रमशः बढ़ाते जायँगे ।

लेखकों से निवेदन

अनेक लेखकों के लेख स्वीकृत होने पर भी अब तक प्रकाशित नहीं किए जा सके । कई लेखक तो इसके लिये हमसे रुष्ट भी हो गए जान पड़ते हैं । इस संबंध में हमारा नम्र निवेदन यह है कि कई लेख कंपोज़ किए पड़े हैं, तो भी स्थानाभाव के कारण उन्हें हम इस अंक में न दे सके । हम स्वीकृत लेखों को प्रकाशित अवश्य करेंगे। देर होने से लेखकों को रुष्ट या हताश न होना चाहिए। **हम शीघ्र ही पृष्ठ-संख्या बढ़ाकर १५०-२०० तक करनेवाले हैं** । तब फिर लेखकों को यह शिकायत नहीं रहेगी । तब तक की विवशता के लिये हम क्षमा-प्रार्थी हैं ।

संपादक

लखनऊ के सुप्रसिद्ध नवलकिशोर प्रेस

की

संस्कृत और हिंदी-भाषा की पुस्तकों का

सूचीपत्र

वेदज्ञ मैक्समूलर

संस्कृत-साहित्य-संसार के स्तंभ और पश्चिम में वेदों के प्रथम प्रचारक मैक्समूलर महोदय उन थोड़े महानुभावों में से एक हैं जिनका जीवनचरित्र जगत्प्राणीमात्र के लिये आदर्श हो सकता है। आपके चरित अध्ययन से दृढ़-संकल्प, अविश्रांत परि-श्रम, जीवनोद्देश्य की पूर्ति में विघ्नबाधाओं के सामना करने की सहनशीलता, धैर्य, उत्साह, प्रेम, उदारता, आदर्श बालक, पति, पिता आदि की शिक्षाएँ मिलती हैं। आप एक निर्धन विद्यार्थी की हैसियत से उन्नति कर प्रीवी कौंसिल के पद तक पहुँचे थे। अतः पंडित और राजसमाज दोनों के सम्मान की वस्तु थे।

आपका जीवनचरित्र हिंदी-संसार के लिये बिलकुल नया है। पुस्तक की भाषा सरल और शुद्ध तथा हृदयग्राही है जिसके विषय में कतिपय प्रसिद्ध कवियों और लेखकों ने अपनी बहुत उत्तम अनुमतियाँ दी हैं। पुस्तक का कलेवर नवीन ढंग से सुसज्जित किया गया है। प्रत्येक विद्यार्थी तथा नवयुवक को एक बार अवश्य अध्ययन करना चाहिए। इसके लेखक हिंदी के होनहार कवि पं० सुरेंद्रनाथ तिवारी हैं। पृष्ठ-संख्या ६३; मू० ।>)

अष्टावक्रगीता

राजा जनक के प्रार्थना करने पर श्रीअष्टावक्र मुनि ने इस गीता को कहा है। आत्मज्ञान कैसे प्राप्त होता है ? संसार-बंधन से कैसे छुटकारा मिल सकता है ? वैराग्य की प्राप्ति किस प्रकार होती है ? आत्मज्ञान के प्राप्त होने पर धनादि संग्रह करने में कुछ दोष है या नहीं ? जो मनुष्य संसार में फँसा हुआ है वह ज्ञानी होने पर भी अज्ञानी के तुल्य है या नहीं ? ईश्वर न्यायी है, तब फिर इस संसार में कोई दरिद्री, कोई धनी, कोई सुखी और कोई दुःखी क्यों है ? इसी प्रकार के सैकड़ों प्रश्नों के उत्तर विस्तारपूर्वक इसमें दिए गए हैं। इसकी टीका बाबू ज़ालिम-सिंह, पोस्टमास्टर जनरल ग्वालियर, ने बड़े परिश्रम से की है। इसमें पहिले मूल, फिर पद-च्छेद, तदनंतर अन्वय और प्रत्येक शब्द का अर्थ और अंत में अति सरल भाषा में भावार्थ दिया गया है। ऐसी अच्छी 'अष्टावक्रगीता' आज तक कहीं नहीं छपी। अक्षर खूब मोटे बंबइया हैं। पृष्ठ-संख्या ५६४; मूल्य १॥-)

भगवद्गीता सटीक

इस गीता के आरम्भ में 'भारतसार' दिया गया है ताकि गीता का प्रयोजन और भरत-वंशी राजर्षियों का चरित्र मालूम हो; क्योंकि पूरे महाभारत को पढ़ना और समझना सर्व-साधारण लोगों के लिये महा कठिन है। जो

लोग संस्कृत जानते हैं, उनके लिये हरएक श्लोक पर अन्वयाङ्क दे दिए गए हैं; गानेवालों के लिये पद्यात्मक (लावनी छंद में) अनुवाद दिया गया है और श्लोकों का अर्थ समझने के लिये वही मूलाङ्क भाषा में दे दिए गए हैं। गीता का भावार्थ श्लोकों के साथ न देकर, स्वतंत्ररूप से पुस्तक के अंत में दिया गया है। इसकी टीका अनेक पुस्तकों के रचयिता प्रसिद्ध विद्वान् पं० सूर्यदीनजी सुकुल ने, अति सरल भाषा में, की है। पुस्तक हरएक मनुष्य के देखने-योग्य है। छपाई-सफ़ाई अति उत्तम। पृष्ठ-संख्या ४००; मू० १।=)

भगवद्गीता सटीक

इसका भाषानुवाद, श्रीस्वामी परमानंदजी की सहायता से, बाबू ज़ालिमसिंह साहब, पोस्टमास्टर जनरल ग्वालियर, ने किया है। इसमें पहिले मूल श्लोक, फिर पदच्छेद, तदनंतर वाम हस्त की ओर संस्कृत अन्वय दिया है और दक्षिण हस्त की ओर शब्दों का अर्थ लिखा है, जिसके पढ़ने से श्लोक का पूरा अर्थ मध्यदेशीय भाषा में मिलेगा। सब से पीछे भावार्थ सविस्तार लिखा है। जो लोग संस्कृत नहीं जानते, उनके लिये यह टीका अति उत्तम और लाभदायक है; क्योंकि इसके पढ़ने से संस्कृत में भी उन्हें अनायास ही ज्ञान प्राप्त हो सकता है। पृष्ठ-संख्या ८७५; सजिल्द, मूल्य ३॥)

बीजक कबीरदास

इस पुस्तक में महात्मा कबीरदासजी की वाणी का संग्रह किया गया है। क्या हिंदू, क्या मुसलमान सभी उक्त महात्माजी को आदर की दृष्टि से देखते थे। इसकी टीका स्वर्गवासी महाराजाधिराज १०८ श्रीविश्वनाथसिंहजी ने की है। भाषा बड़ी सरल और सबके समझने-योग्य है। जो मनुष्य इस पुस्तक को ध्यान लगाकर पढ़ेंगे उन्हें जीवात्मा और परमात्मा के विषय में पूर्ण रीति से सहज ही में ज्ञान प्राप्त हो जायगा और अंत में उन्हें निर्वाण-पद की प्राप्ति भी हो सकती है। श्रीरामचंद्रजी के स्वरूप का ज्ञान और अनन्य भक्ति का निरूपण भी इसमें किया गया है। कागज़, छपाई आदि अति उत्तम। पृष्ठ-संख्या ६६०; मूल्य १॥)

भक्तिसागर

श्रीस्वामी चरणदासजी कृत। इसमें भगवान् कृष्णचंद्रजी की जन्मभूमि—व्रज—की प्रशंसा व चरित्र, अमरलोक अखंडधाम की यथोचित प्रशंसा, धर्म-जहाज़, अष्टांग योग व प्रत्येक आसनों के पृथक् पृथक् नियम, ज्ञान-स्वरोदय, पंच उपनिषद्, भक्ति-पदार्थ-वर्णन, ब्रह्मज्ञान-सागर-वर्णन, शब्द-वर्णन और भक्तिसागर-वर्णन आदि कितने ही विषय हैं। जो लोग इस पुस्तक को ध्यानपूर्वक पढ़ते हैं, उन्हें काम, क्रोध, लोभ, मोह और मदादि की तुच्छता का ज्ञान सहज ही में हो जाता है और प्राणी इस असार संसार के बंधनों से छूटकर, भगवान् में लीन हो, मोक्ष को प्राप्त होता है। पुस्तक का आकार इस बार पहले से बढ़ गया है, क्योंकि इसमें नासकेत आदि कितनी ही लीलाएँ और भी बढ़ा दी गई हैं। कागज़ भी इस बार अति उत्तम लगाया गया है। पृष्ठ-संख्या ६४६; सजिल्द, मूल्य ३)

भक्तमाल

भाषा वार्तिक—राजा प्रतापसिंहजी कृत। इसमें गुरु की महिमा, भगवद्भक्ति का स्वरूप, भगवद्भक्तों की महिमा और भक्तमाल की महिमा का वर्णन तो किया ही गया है। इनके सिवा इसमें चौबीस निष्ठाएँ भी हैं जिनमें राजा

हरिश्चंद्र, दशरथ महाराज, रामानुज स्वामी, वल्लभाचार्य, रामदासजी, तुलसीदासजी, सूरदासजी, राघवदासजी, साखीगोपाल, रामराय, अजामिल, विश्वामित्र, वशिष्ठजी, परशुराम, कृष्णदास, कर्माबाई, कुंती, द्रौपदी, अर्जुन, सुदामा आदि सैकड़ों भक्तों की कथाएँ भगवद्भक्तों के उपकारार्थ विस्तारपूर्वक दी गई हैं। जो मनुष्य इस अपूर्व ग्रंथ को सदैव पढ़ते रहते हैं उनका मन निस्संदेह भगवान् की भक्ति में लीन हो जाता है। जिन्हें अध्यात्म-ज्ञान प्राप्त करने के लिये बड़े-बड़े ग्रंथों के पढ़ने का अवकाश न मिलता हो, उनके लिये यह ग्रंथ अति लाभदायक है। भगवद्भक्तों ने इसे इतना पसंद किया है कि इसकी हज़ारों कापियाँ आज तक बिक चुकी हैं। पृष्ठ-संख्या ४८४; मूल्य २॥)

योगवाशिष्ठ

भाषा वार्तिक—इसमें महर्षि वशिष्ठजी ने, रामचंद्रजी को, लोकोपकारार्थ, वैराग्य, मुमुक्षु, उत्पत्ति, स्थिति, उपशम और निर्वाण नाम छः प्रकरणों में आत्मयोग, ब्रह्मज्ञान समझाकर, उनके अनेक संदेह दूर किए हैं। इन छः प्रकरणों में सैकड़ों विषय हैं, जिनका ज्ञान केवल इस पुस्तक के अवलोकन से ही हो सकता है। जो मनुष्य बड़े-बड़े संस्कृत के ग्रंथ पढ़ नहीं सकते हैं अथवा जो योग-जैसे कठिन विषय को सहज ही में जानना चाहते हैं, उनके लिये यह पुस्तक बड़े काम की है। इस पुस्तक के पढ़ने में, वृद्ध मनुष्यों को कुछ भी कष्ट न हो, इसी मतलब से यह पुस्तक खूब मोटे बंबइया टाइप में बड़ी सुंदरता से छापी गई है। महात्माओं, साधुओं एवं ज्ञानियों को चाहिए कि इसे अवश्य पढ़ें। पृष्ठ-संख्या १२८४; जिल्द बँधी हुई पुस्तक का मूल्य केवल ८) रक्खा गया है।

मनुस्मृति

भाषानुवाद-सहित—धर्मशास्त्रों में यह प्रसिद्ध पुस्तक है। जगत् की उत्पत्ति; संस्कारों की विधि; द्रव्यशुद्धि; गृहस्थ, ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ आदि आश्रमों के धर्म; राजाओं के सम्पूर्ण धर्म; स्त्री पुरुषों के धर्म; वर्णसंकरों की उत्पत्ति; मोक्ष का स्वरूप और पाखंडियों के कर्म आदि का वर्णन भगवान् मनु ने स्वयं इस शास्त्र में कहा है। जो धार्मिक पुरुष हैं अथवा जिन्हें स्थान-स्थान पर 'मनुस्मृति' के श्लोकों का हवाला देना पड़ता है, उनके लिये यह पुस्तक बड़े ही काम की है। नवलकिशोर-विद्यालय के हेड पंडित पं० गिरिजाप्रसादजी द्विवेदी ने बड़े परिश्रम से इसका भाषानुवाद किया है। पृष्ठ-संख्या ६४८; मूल्य २॥)

प्रेमसागर

श्रीलल्लूलालजी कवि कृत। इसमें कृष्णजन्मोत्सव, पूतना-वध, विश्व-दर्शन, बकासुर-अघासुर-वध, चीर-हरण, गोवर्द्धन-पूजन, कंसासुर-वध, रुक्मिणी-हरण और जरासंध-वध आदि अनेक आख्यान हैं। जो भगवान् श्रीकृष्णचंद्र आनंदकंद, व्रजचंद्र वृंदावनविहारी और वृषभानुनंदिनी राधेरानी की संपूर्ण लीलाओं के विषय में जानना चाहते हैं, वे इसे अवश्य पढ़ें। स्थान-स्थान पर लीला-संबंधी सुंदर चित्र भी लगाए गए हैं। पृष्ठ-संख्या ४१२; मूल्य १)

सुखसागर

यह श्रीमद्भागवत के बारहों स्कंध का भाषानुवाद है। इसमें परमेश्वर के चौबीस अवतारों की कथा, शृंगीऋषि का राजा परीक्षित को शाप देना, दक्षप्रजापति के यज्ञ में सती का देह त्यागना, पुनः पार्वती नाम से हिमाचल के

यहाँ जन्म लेकर महादेवजी से विवाह करना, अजामिल नामक ब्राह्मण का बुरे कर्म करने पर भी 'नारायण' के नाम लेने से स्वर्ग प्राप्त करना, नृसिंह अवतार का होना, श्रीकृष्ण भगवान् का चरित्र और तक्षक साँप का राजा परीक्षित को काटना इत्यादि सैकड़ों कथाओं का वर्णन अति मधुर और सरल भाषा में किया गया है। भारतवर्ष में इस पुस्तक का इतना प्रचार हो गया है कि आज यह पुस्तक रामायण की नाईं घर-घर में पाई जाती है। पुस्तक बंबई के अति सुंदर मोटे-मोटे अक्षरों में छापी गई है; अतएव बूढ़े मनुष्य भी, विना चश्मा लगाए ही, बड़े मज़े से पढ़ सकते हैं। काग़ज़ भी अति उत्तम लगाया गया है। बड़े साइज़ के १५०४ पृष्ठों की सुंदर मनमोहिनी विलायती कपड़े की जिल्द बँधी पुस्तक का मूल्य केवल ८) रक्खा गया है।

तुलसीकृत रामायण सटीक

चित्रों-सहित—पं० सूर्यदीनजी शुक्ल ने इस रामायण की टीका बड़ी उत्तम भाषा में की है। टीका इतनी सरल है कि थोड़ी-सी हिंदी जाननेवाला मनुष्य भी रामायण के गूढ़ अर्थों को अनायास ही समझ सकता है। स्थान-स्थान पर कितने ही सुंदर चित्र लगाए गए हैं। हिंदू-मात्र को यह रामायण हमारे यहाँ से मँगाकर अपने गृह की शोभा अवश्य बढ़ानी चाहिए। पृष्ठ-संख्या ६००; मूल्य ५)

कवितावली सटीक

श्रीगोस्वामि तुलसीदासजी कृत। मानपुर-निवासी बाबू बैजनाथजी ने इसका भाषानुवाद अति सरल भाषा में किया है। इसमें भगवान् रामचंद्र का समस्त जीवनचरित्र अर्थात् रामायण के सातों कांडों की कथा अति मनोहर कवित्तों में वर्णन की गई है। जो लोग तुलसीदास कृत 'मूल कवितावली' को न समझ सकते हों उन्हें चाहिए कि इस 'सटीक कवितावली' को अवश्य खरीदें। पृष्ठ-संख्या ४२४; मूल्य १=)

गीतावली सटीक

श्रीगोस्वामि तुलसीदास कृत। भगवान् रामचंद्र का जन्मोत्सव, बाललीला, विश्वामित्र-यज्ञरक्षण, जानकी-स्वयंवर, धनुर्भंग, परशुराम-संवाद, वन-गमन, जानकी-हरण, रावण-वध, भरत-मिलाप और राज्याभिषेक आदि की पवित्र कथाएँ यदि आप अनेक प्रकार की मनोहर राग-रागिनियों में पढ़ना चाहते हैं, तो इस पुस्तक को अवश्य देखिए। इसका भाषानुवाद मानपुर-निवासी बाबू बैजनाथजी ने किया है। पृष्ठ-संख्या ४५८; मूल्य १)

तुलसी-सतसई मूल

इसमें सात सौ दोहे हैं, जिनमें गोस्वामि महात्मा तुलसीदासजी ने, भक्ति, ज्ञान और नीति की सैकड़ों अमूल्य शिक्षाप्रद बातें, कूट-कूटकर भरी हैं। ऐसी उत्तम पुस्तक आज तक कहीं नहीं छपी। जो तुलसीकृत रामायण या विनय-पत्रिका को पढ़ चुके हों, उन्हें तुलसीदासजी के अन्यान्य ग्रंथ भी अवश्य देखने चाहिएँ। पृष्ठ-संख्या १००; मूल्य ≡)

तुलसी-सतसई सटीक

उपरोक्त अलंकारों-सहित। टीकाकार बाबू बैजनाथजी। जिनमें 'मूल' सतसई के समझने की योग्यता न हो, उन्हें चाहिए कि वे इस 'सटीक सतसई' को खरीदें। सर्वसाधारण ने इसे इतना पसंद किया है कि इसकी हज़ारों कापियाँ आज तक बिक चुकी हैं। पृष्ठ-संख्या ४६२; मूल्य १)

तुलसी-हितोपदेश

अनेक पुस्तकों के रचयिता पं० द्वारकाप्रसाद-जी चतुर्वेदी द्वारा संगृहीत । गोस्वामि तुलसी-दासजी ने अनेक पुस्तकें रची हैं; किंतु इन सब में 'रामचरितमानस' सबसे श्रेष्ठ है । इस पुस्तक में जितने भी उपदेश हैं, वे सब तुलसी-दासजी की 'रामचरितमानस' से चुनकर एकत्र किए गए हैं । इसमें जीव और ब्रह्म, कर्म-गति, परोपकार, कुसंगति का फल, दुष्ट मनुष्य, कपटी मित्र, लोभी, संतोष, मोक्ष के साधन, नारी-धर्म, स्त्री-स्वभाव, सेवक और स्वामी, पुत्र का धर्म और पराधीनता आदि सैकड़ों अपूर्व अमूल्य उपदेश हैं । क्या बालक, क्या युवा, क्या वृद्ध सब ही के मतलब की यह पुस्तक है । प्रत्येक दोहा व चौपाई के नीचे उसका अर्थ विशदरूप से समझाया गया है और अँगरेज़ी अनुवाद भी उस-के नीचे दे दिया गया है । हिंदी-साहित्य में यह पुस्तक अपने ढंग की निराली है । पृष्ठ-संख्या १४२; जिल्द बँधी हुई पुस्तक का मूल्य केवल ॥)

विनयपत्रिका

सटीक—गोस्वामि तुलसीदासजी कृत । इसमें गणेशजी, सूर्यनारायण, शिवजी, गंगाजी व हनुमान्जी आदि देवताओं की महिमा का निरूपण तो किया ही गया है; किंतु मुख्य करके परब्रह्म परमात्मा रामचंद्र के प्रति सैकड़ों विनय के पद हैं । रामायण की भाषा सरल है किंतु विनयपत्रिका की भाषा रामायण से कठिन है, अतएव सर्व साधारण इसे समझ नहीं सकते—यही समझकर बाबू बैजनाथजी ने अति सरल भाषा में इसकी टीका विशदरूप से की है । रामा-यण-प्रेमियों को चाहिए कि इसे अवश्य खरीदें । पृष्ठ-संख्या ५१६; मूल्य २॥)

विनयपत्रिका

सटीक—इसमें भी वही विषय हैं जो हम ऊपर लिख चुके हैं । इसकी टीका अनेक पुस्तकों के रचयिता पं० सूर्यदीनजी शुक्ल ने की है । इसमें मूल कविता के थोड़े-थोड़े शब्द खड़ी पंक्ति में देकर, उसके सामने प्रत्येक शब्द का अर्थ दिया गया है । पदच्छेद, शब्दार्थ जान लेने के साथ ही टीका भी क्रम से पढ़ी जा सकती है। इसके सिवा वेदांत व भक्ति के ग्रंथों का आशय लेकर, प्रमाण के साथ, हरएक भजन का तात्पर्य (मतलब) दिया गया है । अब यह पुस्तक, सर्व-साधारण के समझने लायक़, बड़े मतलब की हो गई है । काग़ज़, छपाई-सफ़ाई अति उत्तम । पृष्ठ-संख्या ३०८; मूल्य १॥)

चित्तविलास प्रथम व द्वितीय भाग

लेखक—रायबहादुर बाबू ज़ालिमसिंह, पोस्टमा-स्टर जनरल, ग्वालियर । यह कोई मामूली दिल खुश करनेवाला उपन्यास नहीं है; किंतु यह वह उपन्यास है जिसके पढ़ने और मनन करने से विवेक, वैराग्य, ज्ञान, ब्रह्मतेज आदि अनेकानेक धर्म-संबंधी उपदेशों का ज्ञान प्राप्त होता है । जो धार्मिक पुरुष हैं, जो वाहियात उपन्यास पढ़ अपना अमूल्य समय बिताना नहीं चाहते उन्हें यह उपन्यास अवश्य देखना चाहिए । दोनों भागों का मूल्य ॥)॥

ब्रह्मदर्पण

विषय नाम ही से प्रकट है । इसके पढ़ने से माया और ब्रह्म, स्वामी और सेवक, राजा और प्रजा एवं स्त्री और पुरुष के धर्मों का उपदेश मिलता है । जो मनुष्य इस उपन्यास को पढ़ेंगे, उनके बिगड़े हुए चरित्र सुधर जायँगे । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों

का क्या धर्म है—क्या कर्तव्य है—यह भी इसी के पढ़ने से मालूम होगा। संक्षेप में मतलब यह है कि बड़े-बड़े धर्मशास्त्रों एवं वेदांत के ग्रन्थों का सारांश इसमें ठूस-ठूस कर भरा गया है। हिंदी-संसार में इस ढंग के उपन्यास बहुत ही कम देखने में आते हैं। पृष्ठ-संख्या १५६; मूल्य ॥।)

रामप्रताप

यह कोई तिलस्मी, अय्यारी, ऐतिहासिक या गार्हस्थ्य उपन्यास नहीं है किंतु यह वह उपन्यास है, जिसके पढ़ने से ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति होती है। यद्यपि इस उपन्यास में दो-तीन कथाएँ हैं मगर उनमें इस क़दर उपदेश भर हुए हैं कि कुछ लिख नहीं सकते। इसके पढ़ने से वैराग्य, शुभ कर्म, अनन्य भक्ति, राज-धर्म और प्रजा-धर्म संबंधी अनेकानेक उपदेशों का ज्ञान प्राप्त होता है। जो धार्मिक पुरुष हैं, जो ईश्वर के चरणों में अपना ध्यान लगाकर मोक्ष चाहते हैं, वे इस उपन्यास को अवश्य पढ़ें। रायबहादुर बाबू ज़ालिमसिंहजी पोस्टमास्टर जनरल रियासत ग्वालियर ने इस उपन्यास की रचना की है। मूल्य ॥)

मेघदूत

संस्कृत के प्रसिद्ध कवि कालिदास का रचा हुआ यह प्रसिद्ध संस्कृत-काव्य है। हिमालय शिखरस्थ अलकापुरी के एक यक्ष को, कुबेर के शाप देने के कारण, अपनी प्रिय स्त्री के वियोग में परम दुःख भोगना पड़ा। वहाँ किसी सजीव प्राणी के न मिलने के कारण, उसने मेघ (बादल) को ही अपना दूत मानकर उससे बोलना प्रारंभ किया। उसने रामगिरि से ले अलका पर्यंत मार्ग में आनेवाले पर्वतों और नदी इत्यादि का वर्णन मेघ को सुनाया। यह भाग पूर्वमेघ के नाम से प्रसिद्ध है। उत्तरमेघ में यक्ष ने अपने घर तथा स्त्री का अनेक अलंकारों में वर्णन किया है। यह काव्य विद्यार्थियों, अध्यापकों एवं संस्कृतज्ञ पंडितों के लिये बड़ा ही उत्तम है। यह मल्लिनाथकृत संजीविनी टीका-सहित है और अनेक पुस्तकों के रचयिता पं० गिरिजाप्रसादजी द्विवेदी ने अन्वय-वाच्यांतरादि संवलित (मिला हुआ) हिंदी-भाषानुवाद किया है। पृष्ठ-संख्या २१२; मूल्य ॥≈)

नवीन संग्रह

हफ़ीजुल्लाहख़ाँ संगृहीत। इसमें अनेक कवियों के रचे हुए देवी-देवताओं की स्तुति के कवित्त, वीरता व शूरता के कवित्त, शृंगाररस के कवित्त, फाग व होली समय के कवित्त, गिरिधर की कुंडलियाँ और सुंदर चरपटे कवित्त व सवैए एवं अनेक प्रकार के समयोपयोगी छंदों का संग्रह किया गया है। संग्रह अच्छे होने ही के कारण आज तक इस पुस्तक के अठारह संस्करण हो चुके हैं। जो एक ही पुस्तक द्वारा अनेक रसों का आस्वादन लेना चाहते हैं, उन्हें यह पुस्तक अवश्य संग्रह करनी चाहिए। पृष्ठ-संख्या १२४; मूल्य ।≈)

बिहारी-सतसई सटीक

कवि बिहारीलालजी कृत। सतसई की भाषा विशेषतः ब्रजभाषा और बुँदेलखंडी का मिश्रण है। उक्त कवि ने एक-एक दोहे में इतने अधिक भाव भर दिए हैं कि पढ़नेवालों को बहुधा बड़ा आश्चर्य होता है। प्रकृति-निरीक्षण, भाषा-प्रौढ़ता, भाव-गंभीरता, इबारत-आराई, स्वाभाविक-वर्णन, अतिशयोक्ति की पराकाष्ठता, मानुषी प्रकृति के सच्चे और हृदयग्राही वर्णन इनकी कविता में भरे पड़े

हैं। पुस्तक विद्वानों के देखने-योग्य है। पृष्ठ-संख्या २०० ; मूल्य १)

षट्ऋतुकाव्य-संग्रह

हफ़ीज़ुल्लाहख़ाँ द्वारा संगृहीत। इसमें वसंत, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमंत और शिशिर—इन छहों ऋतुओं से संबंध रखनेवाले अनेक कवित्त व सवैए, शौक़ीन मनुष्यों के लिये, रंगीली व रसीली भाषा में, छाँट-छाँट कर दिए गए हैं। जो सज्जन इस पुस्तक में लिखी हुई कविताओं को पढ़ेंगे वे निस्संदेह बड़े खुश होंगे। पृष्ठ-संख्या १६२; मूल्य ।-)॥

षट्ऋतुहज़ारा

बाबू परमानंद सुहाने कृत। इस पुस्तक में छः ऋतुओं के अंतर्गत १२५३ कवित्त व सवैए हैं, जिनकी रचना कालिदास, केशव, ग्वाल, गंग, तुलसी, पद्माकर व सेनापति इत्यादि प्राचीन व अर्वाचीन दो सौ इक्कीस कवियों द्वारा अति उत्तम सुललित भाषा में की गई है। जो सज्जन काव्यानुरागी हैं, जिन्हें पद्य-रचना करने का शौक़ है, वे एक बार इस अपूर्व काव्य को अवश्य देखें। पृष्ठ-संख्या ४१४ ; मूल्य १)

सूरदास का दृष्टिकूट सटीक

इसमें कविशिरोमणि सूरदासजी के दृष्टिकूट छंदों का समावेश किया गया है। उक्त कवि के बनाए हुए छंद प्रत्येक मनुष्य की समझ में आ नहीं सकते थे, इसीलिये सरदार कवि ने इनकी टीका अति सरल भाषा में कर दी है। कृष्ण-प्रेमियों को अब इन छंदों के समझने में कुछ भी कठिनता न पड़ेगी। पृष्ठ-संख्या १२० ; मूल्य ।-)

हफ़ीज़ुल्लाहख़ाँ का हज़ारा

इसके प्रथम भाग में गणेश, शिव, गंगाजी आदि अनेक देवी-देवताओं की स्तुति के कवित्त और रसिक-शिरोमणि श्रीकृष्णचंद्र व महारानी राधिकाजी के लीला-विषयक नाना प्रकार के चटपटे, चटकीले व रसीले कवित्तों का संग्रह किया गया है। द्वितीय भाग में, विशेष रस के चुहचुहाते हुए कवित्त, विरह-विषय के कवित्त, षट्ऋतु-संबंधी कवित्त व सवैए और इनके सिवा सैकड़ों तरह के फुटकर कवित्त व सवैए दिए गए हैं। स्थान-स्थान पर भगवान् कृष्ण की लीला-संबंधी सुंदर चित्र भी दिए गए हैं। जो सज्जन एक ही पुस्तक द्वारा अनेक रसों का आस्वादन लेना चाहते हैं, उन्हें उचित है कि लोभ त्यागकर इस पुस्तक को अवश्य खरीदें। हज़ारे के संग्रहकर्ता हैं मुंशी हफ़ीज़ुल्लाहख़ाँ साहब। पृष्ठ-संख्या ५८४; मूल्य १।=)

हारमोनियम-मास्टर

आजकल प्रायः सभी लोग हारमोनियम बाजे को पसंद करते हैं; किंतु आज तक किसीने भी ऐसी पुस्तक नहीं बनाई कि जिससे हारमोनियम के प्रेमियों का उपकार होता। यद्यपि इस विषय की दो-चार पुस्तकें इधर-उधर प्रकाशित हुई हैं किंतु वे सब अधूरी हैं—उनसे पूरी तरह पर ज्ञान प्राप्त हो नहीं सकता। यही समझकर, स्वर्गवासी मुंशी प्रयागनारायणजी ने श्रीयुत राय सोतीकृष्ण साहब क़मर देहलवी (जो कि एक चतुर हारमोनिस्ट हैं) से उर्दू में 'हारमोनियम गाइड' नामक पुस्तक बनवाई। सर्व साधारण ने इसे इतना पसंद किया कि हज़ारों कापियाँ हाथों-हाथ बिक गईं। हिंदी-प्रेमी भी इस पुस्तक से लाभ उठावें—यही सोचकर इसका उल्था पं० शुकदेवप्रसादजी वाजपेयी से कराया गया है। यह पुस्तक पंद्रह भागों में छापी गई है। इसमें कोई बात छिपाकर रक्खी नहीं गई है। थोड़ी-सी हिंदी जाननेवाला बालक भी इसके द्वारा, थोड़े

दिनों में, हारमोनियम बजाना एवं मरम्मत करना सीख सकता है। प्रायः ६७५ सफ़े की पुस्तक का मूल्य केवल ३)

अभिज्ञानशकुंतलानाटक

महाकवि कालिदासकृत मूल और पं० लक्ष्मी-नारायणजीकृत भाषा-टीका सहित। कविशिरोमणि कालिदास के 'शकुंतला' नाटक का नाम किसने नहीं सुना? यह नाटक कालिदास के सब नाटकों से अति उत्तम है। ऋषिआश्रम में, राजा दुष्यंत का शकुंतला से भेंट होना, शकुंतला का काम-पीड़ा से आतुर हो गांधर्व विवाह करना, दुर्वासा ऋषि का शाप, शकुंतला का हस्तिनापुर को बिदा होना, राजा का शाप-वश शकुंतला को न पहिचानना, अँगूठी मिलने पर शकुंतला के वियोग में राजा का व्याकुल होना और फिर पुत्र-सहित शकुंतला से संयोग होना आदि विषय बड़ी उत्तमता से नाटकरूप में वर्णन किए गए हैं। नाटक पढ़ने-योग्य है। पृष्ठ-संख्या २६२; मूल्य ॥)

स्त्री-उपदेश

स्वर्गवासी माधवप्रसाद साहब एक्स्ट्रा असिस्टेंट कमिश्नर लिखित। स्त्रियों के लिये अनेक मनोरंजन शिक्षाप्रद उपदेश इसमें दिए गए हैं। भाषा भी इसकी इतनी सीधी-सादी और शुद्ध है कि साधारण पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ इसे सहज ही में समझ सकती हैं। पुस्तक आर्य-ललनाओं के देखने-योग्य है। पृष्ठ-संख्या १३०; मूल्य ।≠)

स्त्री-दर्पण

स्वर्गवासी माधवप्रसाद साहब लिखित। इसमें विद्यानुरागिनी लड़कियों और स्त्रियों का परमार्थ-साधन; गृह-कार्य की प्रवीणता व निपुणता और अनेक प्रकार की अमूल्य शिक्षाएँ अति सरलतापूर्वक वर्णन की गई हैं। पुस्तक लड़कियों के पढ़ने-योग्य है। पृष्ठ-संख्या १६५; मूल्य ॥)

स्त्री-सुबोधिनी

लेखक, मथुरा-निवासी बाबू सन्नूलाल गुप्त गिर्दावर। इस पुस्तक में पाँच भाग हैं। पहले भाग में गृहस्थ-धर्म, गृहकार्य और व्यय आदि का प्रबंध एवं अनेक अमूल्य शिक्षाएँ हैं। दूसरे भाग में अनेक प्रकार के स्वादिष्ठ भोजन बनाने की विधि, शिल्प-विद्या, चित्रकारी और सीना-पिरोना आदि कितने ही विषय हैं। तीसरे भाग में गर्भ-रक्षा, धात्री-शिक्षा, स्त्री-रोग की अनेक अनुभूत औषधियाँ और स्वास्थ्य-रक्षा-संबंधी अनेक उपदेश हैं। चौथे भाग में बालकों का पोषण, बाल-रोग-चिकित्सा एवं बालक-संबंधी शिक्षाओं का समावेश किया गया है। पाँचवें अर्थात् अंतिम भाग में धर्मोपदेश व अनेक प्रकार की रीति-नीति और व्रत, त्योहारों का वर्णन है। सर्व प्रकार के अलंकारों से विभूषित, स्त्रियों के पढ़ने-योग्य पुस्तक यदि संसार में कोई है, तो यही है। इससे उत्तम पुस्तक आज तक कहीं नहीं छपी। काग़ज़, टाइप, छपाई, सफ़ाई अति उत्तम। पृष्ठ-संख्या ८६२; मूल्य सजिल्द २॥)

अँगरेज़ी राज्य के सुख

पृथ्वी के समस्त राज्यों में केवल अँगरेज़ी राज्य ही ऐसा है कि जिसमें सूर्यनारायण अस्त नहीं होते। परंतु ब्रिटिश राज्य के शासन-मुकुट में सब से प्रकाशमान मणि भारत ही है। आज हम इस राज्य में कितने सुखी हैं, यही इसमें दिखलाया गया है। इसमें डाक, तार, रेलगाड़ी आदि का विवरण; सेना और पुलिस से लाभ तथा न्याय-शासन-प्रणाली; कृषि, बैंक, नहरें, वन-रक्षा, म्युनि-

सिपैल्टी व डिस्ट्रिक्ट बोर्ड और राज्य-भक्ति की आवश्यकता आदि सैकड़ों विषयों का विस्तार-पूर्वक वर्णन है। इसके लेखक हैं, अँगरेज़ी और हिंदी के धुरंधर विद्वान् लाला कन्नोमलजी एम्० ए०। पृष्ठ-संख्या ७२; मूल्य ॥)

विदेश-यात्रा

इस पुस्तक के मूल लेखक हैं स्वर्गीय पं० बिशननारायणजी दर, बैरिस्टर-एट-लॉ और अनुवादक हैं हिंदी-अँगरेज़ी व उर्दू के धुरंधर विद्वान् पं० मुकुटबिहारीलालजी भार्गव, बी० ए०, लेट सुपरिंटेंडेंट, अवध अख़बार, लखनऊ। इसमें दर महाशय की जीवनी भी है। आपने जो कुछ इस पुस्तक में लिखा है वह अपने अनुभव द्वारा बड़ी योग्यता से संग्रह किया है। शिल्प-कला-कौशल की उन्नति कर हम किस प्रकार अपना भोजन विदेशियों के हाथों से बचा सकते हैं, विलायत जाना हमारे लिये क्यों ज़रूरी है, इत्यादि सैकड़ों बातों का उल्लेख इस पुस्तक में किया गया है। जो देश-प्रेमी हैं, जो देश को सोते से जगाना चाहते हैं, उन्हें ऐसी पुस्तकें अवश्य पढ़नी चाहिएँ। पृष्ठ-संख्या ८८; मूल्य ।≈)

विश्व की विचित्रता

लेखक पं० द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी। ईश्वर की माया विचित्र है; उसकी कारीगरी का कोई ठिकाना नहीं। हज़ारों चीज़ें संसार में ऐसी हैं, जिनके विषय में आज तक हमने कभी सुना भी नहीं। उसी परमात्मा की रची हुई कुछ चीज़ों का वर्णन इस पुस्तक में दिया गया है। इसमें मछली-नुमा औरतों का हाल, उड़नेवाली और गानेवाली मछलियों का हाल; सामुद्रिक साँप; बौने आदमी; बड़ी उम्र के मनुष्य, नर-मांस-भोजी मनुष्य, जुड़े हुए बालक, पूँछधारी मनुष्य, डाढ़ी और मूँछ-वाली औरतें, दूध और मक्खन के पेड़ और बाल के खंभे आदि अनेक अद्भुत वस्तुओं का वर्णन दिया गया है, जिन्हें पढ़ आप दंग रह जायँगे। स्थान-स्थान पर सुंदर चित्र भी दिए गए हैं। पृष्ठ-संख्या १५०; मूल्य ॥।)

नारीचरितमाला

संग्रहकर्ता हैं पं० द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी। इसमें सती, गांधारी, सुकन्या और लीलावती आदि पंद्रह पौराणिक काल की और कृष्णाकुमारी, दुर्गावती व जीजाबाई आदि दस ऐतिहासिक काल की उन पतिव्रता स्त्रियों का पवित्र जीवन-चरित्र है, जो आज देवी-रूप मानी जाती हैं। यदि आपको अपने देश की सुचरित्रा, आदर्शस्वरूपा स्त्रियों के चरित्रों से अपनी प्यारी स्त्रियों, बहनों या कन्याओं को उत्तमोत्तम उपदेश देने हों, तो आप इसे अवश्य ख़रीदें। पुस्तक की भाषा अति उत्तम और सरल है। पृष्ठ-संख्या २००; मूल्य ॥≈)

पतिव्रता स्त्रियों का जीवनचरित्र

पेशावर नगर-निवासी स्वामी परमानंदजी द्वारा संगृहीत। इसमें मदालसा, दमयंती, कैकेयी, अहल्या, मीराबाई, देवीभवानी, संयोगिता और तारा आदि कोई तीस पतिव्रता स्त्रियों का पवित्र जीवन-चरित्र है। यदि आप चाहते हैं कि हमारी स्त्रियाँ वीर संतान उत्पन्न करें, यदि आप चाहते हैं कि हमारी बहनें एवं कन्याएँ सुचरित्रा एवं सुशीला बनें, तो एक बार इस अमूल्य पुस्तक को उनके हाथों में अवश्य दीजिए। पृष्ठ-संख्या ३५८, मूल्य १≈)

भार्याहित

अनुवादक, चौबे रघुनाथदास। यह अँगरेज़ी पुस्तक "Advice to a wife" का हिंदी-अनुवाद है। इसमें मासिक रज अर्थात् मासिक धर्म, गर्भाधान, प्रसव-वेदना और बच्चे को दूध पिलाना

इत्यादि अनेक विषय बड़ी उत्तमता से वर्णन किए गए हैं। स्त्रियों की देह-रक्षा के निमित्त, इससे बढ़कर और पुस्तक नहीं है। पृष्ठ-संख्या ३३०; मूल्य १)

मयंकमंजरी नाटक

संपादक, श्रीकिशोरीलाल गोस्वामी। शृंगाररस से भरा हुआ यह अपूर्व नाटक है। इसमें वीरेंद्र का सच्चा प्रेम, मयंकमंजरी का अपने सतीत्व-धर्म की रक्षा करना, दुर्जनबंधु को अपने पाप का फल मिलना, आनंदवल्लभ और अनुरागवल्लभ जैसे सच्चे मित्रों का होना और अंत में वीरेंद्र से मयंक का, आनंदवल्लभ से कामिनी का और अनुरागवल्लभ से सौदामिनी का विवाह होना आदि अनेक मनोहर विषय नाटकरूप में दिए गए हैं। पृष्ठ-संख्या १६०; मूल्य ।=)

गुरु गोविंदसिंहजी का जीवनचरित्र

जिस महात्मा ने मुसल्मानों के साथ युद्ध कर हिंदू-धर्म की रक्षा की थी, जिस महापुरुष ने सनातन धर्म को इस्लाम के जुल्मों से बचाया था, जिस वीर ने खालसा पंथ की नींव डाली थी, उन्हीं गुरु गोविंदसिंहजी का पवित्र जीवन-चरित्र इस पुस्तक में छापा गया है। हिंदू-मात्र को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। पृष्ठ-संख्या ६०; मूल्य =)

महात्माओं का जीवनचरित्र

स्वामी परमानंदजी रचित। इसमें दत्तात्रेयजी, शुकदेवजी, बुद्ध भगवान्, भरथरी, हरिश्चंद्र, गुरु नानक, सुकरात, अफ़लातून और फैलकस आदि तेईस महात्माओं का जीवन-चरित्र है। यह ग्रंथ सर्व-साधारण को तो संग्रह करना ही चाहिए किंतु विशेषकर साधु, महात्माओं, वेदांतियों एवं भगवद्भक्तों के लिये बड़ा ही उपयोगी है। पृष्ठ-संख्या ३२४; मूल्य ॥=)

महात्मा साक्रटीज़

संपादक, चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा। इसमें महात्मा सुकरात की जीवनी के अतिरिक्त उसके प्रसिद्ध शिष्य अफ़लातून (प्लेटो) की लिखी अपॉलोजी, क्रीटो और फ़ीडो नामक तीन पुस्तकों का मर्मानुवाद भी है। पुस्तक के देखने से योरोपीय दर्शन के भीतरी रहस्य विदित होते हैं। वेदांत-ज्ञान से भरी हुई इस जीवनी को एक बार अवश्य पढ़िए। काग़ज़, छपाई, सफ़ाई अति उत्तम। पृष्ठ-संख्या २४६; मूल्य ॥)

शिवाजी का जीवनचरित्र

स्वामी परमानंदजी लिखित। इसमें वीर-शिरोमणि शिवाजी का जीवन-चरित्र है। शिवाजी ने किस प्रकार से दुष्ट औरंगज़ेब के दाँत खट्टे किए थे, किस प्रकार से दक्षिण में हिंदू-धर्म की रक्षा की थी, औरंगज़ेब की लड़की रोशनआरा को शिवाजी किस प्रकार से छीनकर ले गए थे, शाही फ़ौज को किस प्रकार से मारकर भगा दिया था आदि प्रश्नों के उत्तर इस वीर की जीवनी के पढ़ने से मिलेंगे। विद्यार्थियों और युवकों को इसे अवश्य पढ़ना चाहिए। पृष्ठ-संख्या ६४; मूल्य =)

भारतीय चरिताम्बुधि

अँगरेज़ी में इसका नाम है A Dictionary of Indian Classical Characters. इसमें वैदिक-पौराणिक ऋषि, मुनि, राजा, रानी, स्थान तथा ऐतिहासिक पुरुषों एवं कवियों आदि का हिंदी-भाषा में संक्षिप्त विवरण है। हिंदी-संसार में यह एकदम नई चीज़ है। हिंदी-भाषा-भाषियों, लेखकों एवं विद्वानों के लिये यह कोष परम उपयोगी है। संग्रहकर्ता हैं चतुर्वेदी द्वारकाप्रसाद शर्मा। बड़े साइज़ के प्रायः ७२२ पृष्ठों की सुंदर जिल्द बँधी हुई पुस्तक का मूल्य केवल ५॥)

श्रीधरभाषाकोष

इसमें संस्कृत व भाषा के शब्द, शब्दार्थ, अनेकार्थ,

धातु, धात्वर्थ, शब्द-लक्षण और उनके प्रामाणिक उदाहरण सर्व-साधारण के उपकारार्थ दिए गए हैं। यह कोष सब कोषों से बड़ा और अति उत्तम है। इसकी हज़ारों कापियाँ आज तक बिक चुकी हैं। काग़ज़, छपाई आदि अति उत्तम। पृष्ठ-संख्या ७७०; मूल्य २॥); सजिल्द ३)

प्रताप

राय बहादुर बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय के 'चंद्रशेखर' नामक बँगला उपन्यास का हिंदी-अनुवाद। बंकिम बाबू के लिखे हुए उपन्यासों का लोग कितना आदर करते हैं—यह लिखने की हमें आवश्यकता नहीं। प्रताप का डूबना, चंद्रशेखर का शैवलिनी पर मोहित होना और उससे विवाह करना, लारेंस फ़ास्टर नामक एक अँगरेज़ का शैवलिनी को देखकर उस पर मोहित होना, मौक़ा देखकर उस अँगरेज़ का उसे उड़ा ले जाना, प्रताप की बहादुरी से शैवलिनी का छुटकारा पाना, शैवलिनी और प्रताप का गुप्त प्रेम, मुसल्मानों और अँगरेज़ों का घोर युद्ध और शैवलिनी के प्रेम में प्रताप का प्राण त्याग करना आदि कितनी ही अद्भुत चक्कर देनेवाली घटनाओं से पूर्ण यह रोचक उपन्यास है। अनुवादक हैं पं० शुकदेवप्रसादजी वाजपेयी। पृष्ठ-संख्या २३०; मूल्य ॥)

बंगाली दुलहिन

वंगभाषा के सुप्रसिद्ध लेखक बाबू बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय के "देवी चौधरानी" का हिंदी-अनुवाद। प्रफुल्ल की दीन अवस्था, अपने ससुर—हरिवल्लभ—द्वारा प्रफुल्ल का ससुराल से निकाला जाना, यकायक उसके भाग्य का पलटा खाना, डाकू होकर भी भवानी पाठक की ईमानदारी और सचाई, कुछ समय बाद प्रफुल्ल का रानी बनना, अपनी बुद्धिमानी और चतुराई से अपने दुष्ट ससुर की जान बचाना, व्रजेश्वर का अपनी स्त्री—प्रफुल्ल—को रानीरूप में न पहिचानना, बिना खून-ख़राबी के ही अपनी चालाकी से रानी का अँगरेज़ी फ़ौज पर विजय प्राप्त करना और अंत में अनेक गुप्त रहस्यों का प्रकट होना आदि अनेक अद्भुत चकरा देनेवाली घटनाओं से भरा हुआ यह शिक्षाप्रद गार्हस्थ्य उपन्यास है। एक बार आरंभ कर, बिना समाप्त किए छोड़ने को जी नहीं चाहता। अनुवादक हैं पं० शुकदेवप्रसादजी वाजपेयी। पृष्ठ-संख्या १६८; मूल्य ॥)

मृणालिनी

वंगदेश में रायबहादुर बंकिमचंद्र चट्टोपाध्याय सी. आई. ई., एक बड़े मशहूर कवि और उपन्यास-लेखक हो गए हैं। उन्हीं के 'मृणालिनी' नामक ग्रंथ का यह हिंदी-अनुवाद है। बंगाल में इस उपन्यास का बड़ा आदर है और इसकी घटनाएँ बड़ी ही महत्त्व-पूर्ण हैं। हेमचंद्र की वीरता, मृणालिनी का सच्चा प्रेम, वामकेश की दुष्टता, पशुपति का अपने स्वामी—राजा—को धोखा देना व यवन-सेनापति से मिलना, बुरे कर्मों का बुरा परिणाम, पति के दुष्ट होने पर भी मनोरमा का सती होना और अंत में हेमचंद्र और मृणालिनी का मिलाप—ऐसी-ऐसी अनेक चकरा देनेवाली अपूर्व घटनाओं का समावेश इसमें किया गया है। यह उपन्यास इतना रोचक और चित्ताकर्षक है कि जब तक आप इसे आख़िर तक न पढ़ लेंगे तब तक आप खाना-पीना भूल जायँगे। अनुवादक हैं पं० शुकदेवप्रसादजी वाजपेयी। पृष्ठ-संख्या १३०; मूल्य ॥=)

मार आस्तीन

बाबू बंकिमचंद्र चटरजी के मशहूर नाविल 'विषवृक्ष' का हिंदी-अनुवाद। यह गार्हस्थ्य

उपन्यास है। इसके पढ़ने से मालूम होता है कि जो मनुष्य अपनी विवाहिता स्त्री को छोड़ किसी दूसरी स्त्री से प्रेम करने लगता है उसका नतीजा कितना बुरा होता है। नगेंद्र से कुंदन की भेंट, ताराचरण से कुंदन का विवाह होना, दुर्भाग्यवश कुंदन का विधवा होना, नगेंद्र की कुंदन पर नज़र पड़ना और उससे विवाह करना, सूरजमुखी का दुःखी होकर घर छोड़ना, नगेंद्र का उसके विरह में पागल होना और अंत में सूरजमुखी से पुनः मिलाप होना आदि कितनी ही विचित्र घटनाओं का समावेश किया गया है। यह उपन्यास इतना रोचक है कि एक बार आरंभ करने पर छोड़ने को जी नहीं चाहता। पृष्ठ-संख्या ३४५; दोनों भागों का मूल्य १॥)

अयोध्याविंशतिका

पं० उमापतिजी रचित। इसमें उक्त पंडितजी ने भगवान् रामचंद्र की जन्मभूमि—अयोध्या—की स्तुति बीस सुललित श्लोकों में लिखी है। पृष्ठ-संख्या २२; मूल्य)॥।

कथा सरित्सागर भाषा

पं० कालीचरण व पं० क्षमापति द्वारा अनुवादित। मूलग्रंथ संस्कृत में है। हिंदी-भाषा-भाषी भी इस ग्रंथ की कथाओं को पढ़ लाभ उठावें, यही समझकर इसका अनुवाद हिंदी-भाषा में कराया गया है। इसमें जितनी भी कथाएँ हैं उन सब से अनायास ही अपूर्व शिक्षा प्राप्त होती है। यह ग्रंथ बहुत ही सुंदर अक्षरों में हमारे यहाँ छपकर तैयार है। पृष्ठ-संख्या ७४०; मूल्य ३॥)

पद्मावत भाषा

छंदबद्ध। मूल पुस्तक उर्दू में है, जिसे शेरशाह बादशाह के समय में मुहम्मद जायसी ने लिखा था। इसमें प्रसिद्ध कहानी राजा रत्नसेन और पद्मावत की है। यह कहने को कहानी है किंतु इसमें दिखलाया गया है यह संसार असत्य है; केवल परमेश्वर का नाम ही सच्चा है। प्रत्येक पृष्ठ के चरण में कठिन-कठिन शब्दों के अर्थ भी दे दिए गए हैं। सर्व-साधारण ने इस पुस्तक को इतना पसंद किया है कि हाल ही में इसका छठा संस्करण हुआ है। इसका उलथा उर्दू से हिंदी में लाला रघुवरदयालजी ने किया है। पृष्ठ-संख्या ३१४; मूल्य ॥।≈)

सहस्ररजनीचरित्र (अलिफ़लैला)

वैकुंठवासी पं० प्यारेलालजी द्वारा अनुवादित। यह प्रसिद्ध पुस्तक है। इसमें कितने ही अच्छे-अच्छे क़िस्से हैं मगर शहरयार और शाहज़माँ, सिंदवाद जहाज़ी, अलादीन और विचित्र दीपक एवं अलीबाबा और चालीस चोर आदि के क़िस्से बड़े ही मज़ेदार और दिलचस्प हैं। स्थान-स्थान पर सुंदर चित्र भी दिए गए हैं। पृष्ठ-संख्या ६१०; मूल्य ४)

चतुर्वेदी संस्कृत-हिंदी कोष

संग्रहकर्ता हैं हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखक पं० द्वारकाप्रसादजी चतुर्वेदी। इसमें अकारादिक्रम से शब्द लिखे हैं और पुंलिंग, स्त्रीलिंग व नपुंसकलिंग लिखने के बाद हिंदी के कितने ही पर्यायशब्द दिए गए हैं अर्थात् एक-एक संस्कृत शब्द के जितने भी अर्थ होते हैं वे सब हिंदी में दिए हुए हैं। यह कोष संस्कृत की परीक्षा पास करनेवालों, पंडितों, विद्वानों, काव्यानुरागियों एवं लेखकों के लिये बड़ा ही उपयोगी है। सुंदर मनमोहिनी जिल्दवाली पुस्तक का मूल्य केवल ३)

सामुद्रिकशास्त्र सटीक

पं० शक्तिधरजी रचित। भाषाटीका-सहित। भविष्यपुराण, गरुड़पुराण, स्कंदपुराण, वाल्मीकीय रामायण तथा अँगरेज़ी, फ़ारसी, बँगला व

मरहठी आदि भाषाओं की पुस्तकों की सहायता लेकर, यह अपूर्व 'सामुद्रिकशास्त्र' तैयार किया गया है। यह ग्रंथ चार अंकों में विभक्त है। प्रथम अंक में नख से लेकर शिखा पर्यंत नर-नारीगणों के लक्षण, छायाविचार और आयु आदि का विचार सविस्तार वर्णन किया गया है। द्वितीयांक में करतलों के बावन उदाहरण वर्णित हैं। तृतीयांक में भालरेखा के अनेकानेक उदाहरण प्रदर्शित किए गए हैं और चतुर्थांक में स्वप्नाध्याय, मृत्युसूचक शकुनाध्याय और शिवस्वरोदय आदि कितने ही विषय हैं। जो मनुष्य भविष्यत् की बातें जानना चाहते हैं, जो घर बैठे अनायास ही बहुत-सा रुपया पैदा करना चाहते हैं उन्हें चाहिए कि इस अमूल्य, अद्वितीय पुस्तक को अवश्य देखें। पृष्ठ-संख्या ४७८; मूल्य २॥)

अर्कप्रकाश सटीक

रावणाचार्य कृत। भाषाटीका-सहित। इसमें संपूर्ण ओषधियों के अर्क निकालने की विधि और अनुपान के साथ समस्त रोगों पर उनका प्रयोग और धातुओं की मारण-शोधन-विधि आदि कितने ही विषय बड़ी उत्तमता से दिए गए हैं। पृष्ठ-संख्या १७२; मूल्य ।≶)

चरकसंहिता

सचित्र—भाषाटीका-सहित। यह वही चरकसंहिता है जो वैद्यक-ग्रंथों में अतीव प्रसिद्ध है। जो अच्छे वैद्य हैं, उन सब के पास यह प्रसिद्ध ग्रंथ अवश्य पाया जाता है। चरक के आठों स्थान एक से एक उत्तम हैं, किंतु चिकित्सा-स्थान सब से श्रेष्ठ है। इसमें ऐसी-ऐसी उत्तम ओषधियाँ हैं, जिनके सेवन करने से मनुष्य निस्संदेह दुष्ट रोगों से, सहज ही में, छुटकारा पा जाता है। इस ग्रंथ में दो भाग हैं। एक में सूत्रस्थान, निदानस्थान, विमानस्थान, शारीरकस्थान और इंद्रियस्थान और दूसरे में चिकित्सास्थान, कल्पस्थान और सिद्धिस्थान हैं। प्रत्येक भाग के आरंभ में सर्व-साधारण के सुभीते के लिये विषय-सूची भी लगा दी गई है। वैद्यमात्र को यह ग्रंथ अवश्य संग्रह करना चाहिए। बड़े साइज़ के १५२० पृष्ठों की सुंदर जिल्द बँधी हुई पुस्तक का मूल्य, सर्व-साधारण के सुभीते के लिये, केवल ७॥) रक्खा गया है।

नयनानंदबोधिनी सटीक

पं० कालीचरण वैद्य कृत। भाषाटीका-सहित। चरक, सुश्रुत, वाग्भट, हारीत, धन्वंतरि और वैद्यरत्नाकर आदि ग्रंथों का सार लेकर, समस्त प्रकार के आँखों के रोग दूर करने के उपाय और सैकड़ों आज़माए हुए अचूक लटके दिए गए हैं; जिन्हें प्रायः चक्षुरोग होता रहता है, उन्हें चाहिए कि इस अपूर्व पुस्तक को अवश्य देखें और लाभ उठावें। पृष्ठ-संख्या २२२; मूल्य ॥)

भावप्रकाश सटीक

तीन खंडों में। वैद्यवर भावमिश्र संगृहीत तथा पं० कालीचरणजीकृत भाषाटीका-सहित। सृष्टि का क्रम; अन्न, जल, दूध, दही आदि के गुण; पारा, हरताल, मैनसिल आदि शोधने की विधि; शूल, गुल्म, मूत्रकृच्छ्र, पथरी, प्रमेह, गलगंड, वमन, प्यास और मूर्च्छा आदि संपूर्ण रोगों की अति उत्तम ओषधियाँ इसमें छाँट-छाँटकर दी गई हैं। संस्कृतज्ञ विद्वानों एवं सद्वैद्यों को इसे अवश्य संग्रह करना चाहिए। कागज़ भी खूब ही चिकना और उम्दा लगाया गया है। छपाई-सफ़ाई अति उत्तम। बड़े साइज़ के १२२८ पृष्ठों के पोथे का मूल्य केवल ७॥) रक्खा गया है।

भैषज्यरत्नावली भाषा

वैद्यक में यह प्रसिद्ध ग्रंथ है। इसमें ज्वर, पांडुरोग, आमाशयरोग, रक्तपित्त, संग्रहणी, कृमिरोग, राजयक्ष्मा, खाँसी, हिचकी, प्रमेह, कुष्ठ, उन्माद, नेत्ररोग, मुखरोग, स्त्रीरोग, बालरोग और मूत्रकृच्छ्र आदि अनेक रोगों की चिकित्सा एवं अनेक प्रकार के लेप, काढ़े, तैल व घृत आदि बनाने की विधि, अति उत्तमता से विस्तार-पूर्वक सरल भाषा में दी गई हैं। संसार में कोई ऐसा रोग नहीं, जिसकी फलप्रद, अचूक ओषधि इसमें न हो। मनुष्य इस एक ही ग्रंथ के मनन करने से अच्छा वैद्य बन सकता है। सर्व-साधारण ने इसे इतना पसंद किया है कि आज तक इसकी हज़ारों कापियाँ बिक चुकी हैं। पृष्ठ-संख्या ४३२; मूल्य २)

माधवनिदान सटीक

पं० महेशदत्तकृत भाषाटीका-सहित। इसमें ज्वर, कास, श्वास और मूत्रकृच्छ्र आदि समस्त रोगों के लक्षण, कारण, उत्पत्ति व संप्राप्ति इत्यादि का वर्णन भली प्रकार किया गया है। निदान-ग्रंथों में माधवनिदान सर्वश्रेष्ठ ग्रंथ है; अतएव हरएक वैद्य को यह अपूर्व ग्रंथ अवश्य संग्रह करना चाहिए। इस बार इसका नूतन संस्करण छपा है। प्रत्येक विषय अलग-अलग कर दिए हैं और मूल तथा टीका का संशोधन भी किया गया है। मूल्य १।)

वंगसेनसंहिता सटीक

श्रीमद्भिषग्वर्य वंगसेन रचित। वैद्यक-ग्रंथों में यह ग्रंथ सब से श्रेष्ठ है। इस एक ही ग्रंथ के पढ़ने से आप निस्संदेह वैद्यराज बन सकते हैं। इसमें ज्वर, अतिसार, ग्रहणी, बवासीर, अजीर्ण, कृमि, पांडु, रक्तपित्त, मूत्राघात, कुष्ठ, नेत्ररोग, बालरोग और स्त्रीरोग आदि रोगों की चिकित्सा, निदान और लक्षण विस्तार-पूर्वक दिए गए हैं। इसमें एक-एक रोग की कई-कई अचूक ओषधियाँ दी गई हैं। इसके सिवा ऋतु-चर्या; स्वास्थ्य-संबंधी नियम; चौलाई, सरसों, लहसुन व मूली आदि शाकों के गुण; दही, दूध, मट्ठा आदि पानीय द्रव्यों के गुण; कालज्ञान एवं मूत्रपरीक्षा आदि अनेक विषय हैं। पुस्तक प्रत्येक मनुष्य के देखने-योग्य है। कागज़, छपाई, सफ़ाई अति उत्तम। बड़े साइज़ के १००२ पृष्ठोंवाली सुंदर जिल्द बँधी हुई पुस्तक का मूल्य सर्व-साधारण के सुभीते के लिये केवल ६) रक्खा गया है।

बृहत्पाकावली सटीक

राजवैद्य पं० गंगाप्रसादजी द्वारा संगृहीत। इसमें सुपारीपाक, विजयापाक, सौभाग्यशुंठी-पाक, गोक्षुरपाक, सालिमपाक, आम्रपाक, मुसली-पाक और जातीफल आदि अनेक पाकों के बनाने की विधि का विस्तारपूर्वक वर्णन है। कौन-सा पाक किस रोग में खाया जाता है—यह भी इसमें अच्छी तरह बतलाया गया है। जो मनुष्य वैद्यों की खुशामद करना नहीं चाहते, अथवा हृष्ट-पुष्ट और बलिष्ठ होकर संसार में बड़े-बड़े काम कर, धन और यश के भागी होना चाहते हैं, उन्हें चाहिए कि इस पुस्तक को अवश्य खरीदें। पृष्ठ-संख्या ६८; मूल्य केवल ॥)

शार्ङ्गधरसंहिता

श्रीशार्ङ्गधरकृत भाषाटीका-सहित। यह प्रसिद्ध ग्रंथ है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि अनेक वैद्यक-ग्रंथों के मत से सर्व प्रकार के रोगों की उत्पत्ति, लक्षण व प्रतीकार एवं बहुत-से आज़माए हुए नुसखे इसमें लिखे गए हैं। हमारे यहाँ यह ग्रंथ बड़ी शुद्धतापूर्वक छापा गया है; और सर्व-

साधारण के सुभीते के लिये, हमने इसका दाम बहुत ही कम रक्खा है। पृष्ठ-संख्या ३३४; मूल्य ॥।=)

हंसराजनिदान

कविवर हंसराजजी रचित। इसमें ज्वर, संग्रहणी, बवासीर, भगंदर, राजयक्ष्मा, तृष्णा और मूर्च्छा आदि अनेक रोगों के निदान और लक्षण; नाड़ीपरीक्षा एवं साध्यासाध्य का ज्ञान इत्यादि अनेक विषय वर्णित हैं। भाषाटीकाकार हैं माथुर दत्तरामजी। इसका भी संशोधन कराकर नूतन संस्करण प्रकाशित किया गया है। पृष्ठ-संख्या १६०; मूल्य ॥)

अमृतसागर भाषा

स्वर्गवासी जयपुराधीश सवाई प्रतापसिंहजी की आज्ञानुसार चरक, सुश्रुत, वाग्भट, भावप्रकाश आदि अनेक प्रसिद्ध वैद्यक-ग्रंथों का सारांश लेकर, सद्वैद्यों द्वारा यह ग्रंथ रचा गया है। इसमें यंत्र, मंत्र, तंत्र के सिवा, संपूर्ण रोगों की उत्पत्ति, लक्षण और उनके उपाय एवं अनेक प्रकार के रस, चूर्ण, क्वाथ, अवलेह, तैल व घृत आदि के बनाने की विधि दी गई है। छोटे-छोटे गाँवों में जहाँ हकीम डॉक्टर नहीं हैं वहाँ के निवासियों को इसे अवश्य अपने पास रखना चाहिए। सर्व-साधारण ने इसे इतना पसंद किया है कि आज-तक इसकी हज़ारों कापियाँ बिक चुकी हैं। इस बार इसको संशोधन कराकर बहुत ही उपयोगी बना दिया है। छपाई-सफ़ाई अति उत्तम। पृष्ठ-संख्या ७३०; मूल्य २॥); सजिल्द ३)

इलाजुलग़ुरबा भाषा

इसमें यूनानी हिकमत और वैद्यक की रीति से संपूर्ण रोगों के निदान, लक्षण और उपाय सुगम और सरल रीति से वर्णन किए गए हैं। पुस्तक में खासकर ग़रीब आदमियों के लिये वह नुसख़े छाँट-छाँटकर लिखे गए हैं जो कौड़ियों में आवें और रुपयों का काम दें। अनुवादक हैं स्वर्गवासी पं० प्यारेलालजी, जिन्होंने उर्दू से हिंदीभाषा में अनुवाद किया है। पृष्ठ-संख्या ३८६; मूल्य १=)

गदतिमिरभास्कर

आजतक जितने वैद्यक-ग्रंथ नवीन छपे हैं, उन सबमें यह शिरोमणि है। चरक, सुश्रुत, वाग्भट आदि अनेक छोटे-मोटे ग्रंथों को मथकर एवं अनेक यूनानी तथा डॉक्टरी ग्रंथों की सहायता लेकर, पं० गौरीशंकर शर्मा राजवैद्य ने, हिंदी भाषा में, इस अपूर्व ग्रंथ की रचना की है। यदि आप सदैव स्वस्थ रहना चाहते हैं, यदि आप डॉक्टरों, हकीमों और वैद्यों का बारंबार मुँह देखना नहीं चाहते हैं, यदि आप स्वयं एक सद्वैद्य बन-कर अपने पड़ोसियों की प्राण-रक्षा करना चाहते हैं, तो थोड़ा-सा लोभ त्यागकर इस ग्रंथ को अवश्य खरीदें। आयुर्वेद की उत्पत्ति, दिनचर्या, रात्रिचर्या, ऋतुचर्या, पंचकषाय, चूर्ण, गुटी, अव-लेह, घृत, तैल, अरिष्ट, आसव, धातु, उपधातु, विष, उपविष आदि शोधने की विधि एवं मंजन और नेत्रप्रसादनादि कितने ही लेप यह सब प्रथम खंड में हैं। मनुष्य-शरीर में जितने भी रोग होते हैं, उन सब के लक्षण, समयानुसार चिकित्सा, विस्फोटकादिरोग, विषचिकित्सा, रसायन और कल्प आदि दूसरे, तीसरे और चतुर्थ खंड में विस्तारपूर्वक दिए गए हैं। काग़ज़, छपाई आदि अति उत्तम। बड़े साइज़ के ११६६ पृष्ठों के पोथे का मूल्य केवल ६) रक्खा गया है।

माधुरी के नियम

मूल्य

माधुरी का डाक-व्यय-सहित वार्षिक मूल्य ६॥), छः मास का ३॥) और प्रति संख्या का ॥।) है। वी० पी० से मँगाने में ≈) रजिस्ट्री के और देने पड़ेंगे। इसलिये ग्राहकों को मनीआर्डर से ही चंदा भेज देना चाहिए। भारत के बाहर सर्वत्र वार्षिक मूल्य ८), छः महीने का ४॥) और प्रति संख्या का ॥।≈) है। वर्षारंभ श्रावण से होता है। और प्रति मास शुक्ल-पक्ष की सप्तमी को पत्रिका प्रकाशित हो जाती है। लेकिन ग्राहक चाहे जिस संख्या से ग्राहक बन सकते हैं।

अप्राप्य संख्या

अगर कोई संख्या किसी ग्राहक के पास न पहुँचे, तो उसी महीने की पूर्णमासी तक कार्यालय को सूचना मिलनी चाहिए। लेकिन हमें सूचना देने के पहले स्थानीय पोस्ट ऑफ़िस में उसकी जाँच करके डाकख़ाने का दिया हुआ उत्तर सूचना के साथ आना चाहिए। उनको उस संख्या की दूसरी प्रति भेज दी जायगी। लेकिन पूर्णमासी के बाद सूचना मिलने से उस पर ध्यान नहीं दिया जायगा और उस संख्या को ग्राहक ॥।)॥ के टिकट भेजने पर ही पा सकेंगे।

पत्र-व्यवहार

उत्तर के लिये जवाबी कार्ड या टिकट आना चाहिए। अन्यथा पत्र का उत्तर नहीं दिया जा सकेगा। पत्र के साथ ग्राहक-नंबर का भी उल्लेख होना चाहिए। मूल्य या ग्राहक होने की सूचना संचालक गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, लखनऊ या मैनेजर नवलकिशोर प्रेस, लखनऊ के पते से आनी चाहिए।

पता

ग्राहक होते समय अपना नाम और पता बहुत साफ़ अक्षरों में लिखना चाहिए। दो-एक महीने के लिये पता बदलवाना हो, तो उसका प्रबंध डाक-घर से ही कर लेना ठीक होगा। अधिक दिन के लिये बदलवाना हो, तो संख्या निकलने के १ महीने पेश्तर उसकी सूचना देनी चाहिए।

लेख आदि

लेख या कविता स्पष्ट अक्षरों में काग़ज़ की एक ओर, संशोधन के लिये इधर-उधर जगह छोड़कर लिखी होनी चाहिए। क्रमशः प्रकाशित होने लायक़ बड़े लेख संपूर्ण आने चाहिए। किसी लेख अथवा कविता के प्रकाश करने या न करने का, उसे घटाने-बढ़ाने का तथा उसे लौटाने या न लौटाने का सारा अधिकार संपादक को है। जो नापसंद लेख संपादक लौटाना मंजूर करें, वे टिकट भेजने पर ही वापिस किए जा सकते हैं। यदि लेखक लेना स्वीकार करते हैं, तो उपयोगी और उत्तम लेखों पर पुरस्कार भी दिया जाता है। इस पत्रिका में ऐसे राजनीतिक या धर्म-संबंधी लेख न छापे जायँगे, जिनका संबंध वर्तमान काल से होगा। सचित्र लेखों के चित्रों का प्रबंध लेखकों को करना चाहिए। चित्र प्राप्त करने के लिये आवश्यक ख़र्च प्रकाशक देंगे।

लेख, कविता, समालोचना के लिये पुस्तकें और बदले के पत्र इस पते से भेजने चाहिए—

संपादक माधुरी

गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय

३०, अमीनाबाद पार्क, लखनऊ

विज्ञापन

किसी महीने में विज्ञापन बंद कराना या बदलवाना हो तो एक महीने पहले सूचना देनी चाहिए।

अश्लील विज्ञापन नहीं छपते। छपाई पेशगी ली जाती है। विज्ञापन की दर नीचे प्रकाशित है—

१ पृष्ठ या २ कालम की छपाई ... ... १६) प्रति मास
१/२ ,, या १ ,, ,, ,, ... ९) ,, ,,
१/४ ,, या १/२ ,, ,, ,, ... ५) ,, ,,
१/८ ,, या १/४ ,, ,, ,, ... ३) ,, ,,

कम-से-कम आधा कालम विज्ञापन छपानेवालों को माधुरी मुफ़्त मिलती है। साल-भर के विज्ञापनों पर ≈) रुपया कमीशन दे दिया जाता है।

माधुरी में विज्ञापन छपानेवालों को बड़ा लाभ रहता है। कारण, इसका प्रत्येक विज्ञापन कम-से-कम ५० हज़ार पढ़े-लिखे, धनी-मानी और सभ्य स्त्री-पुरुषों की नज़रों से गुज़र जाता है। सब बातों में हिंदी की सर्वश्रेष्ठ पत्रिका होने के कारण इसका प्रचार ख़ूब हो गया है और उत्तरोत्तर बढ़ रहा है। फिर प्रत्येक ग्राहक से माधुरी ले-लेकर पढ़नेवालों की संख्या २०-२० तक पहुँच जाती है।

यह सब होने पर भी विज्ञापन-छपाई की दर अन्य अच्छी पत्रिकाओं से हमने कम ही रक्खी है। कृपया शीघ्र अपना विज्ञापन माधुरी में छपाकर लाभ उठाइए। कम-से-कम एक बार तो परीक्षा लीजिए।

पत्र-व्यवहार का पता—मैनेजर माधुरी, लखनऊ

हिंदी के कुछ प्रसिद्ध लेखकों की सम्मतियाँ

सम्मेलन-पत्रिका—नवीन माधुरी की छवि-छटा देखकर हमें उस समय का स्मरण आ गया है, जब हिंदी भाषा भारतेंदु बाबू हरिश्चंद्र के काल में विकास-माधुर्य का मकरंद पान कर रही थी। यह पत्रिका वर्तमान काल में अपने ढंग की एक ही है। ऐसी पत्रिका की, इस म्रियमाण साहित्यिक क्षेत्र को, बड़ी आवश्यकता थी। इस पत्रिका में हिंदी के धुरंधर प्राचीन और अर्वाचीन लेखकों व कवियों के लेख और कविताएँ प्रकाशित हुई हैं। साहित्य के प्रायः सभी अंगों पर दृष्टि-पात किया गया है।

सूर्य—इसमें कोई संदेह नहीं कि इसकी सज-धज, छपाई, काग़ज़, चित्र एवं हिंदी के सुप्रसिद्ध लेखकों की गवेषणा-पूर्ण लेख-माला को देखते ही चित्त मुग्ध हो जाता है। सुलेखकों का ऐसा अपूर्व संग्रह शायद ही कहीं देखने में आया हो। ऐसे समय में जब कि राज-नीतिक उलझनों के कारण साहित्य की तरफ़ से लोगों का ध्यान हट रहा था, माधुरी ने अपनी मधुर झंकार से साहित्य-प्रेमियों के चित्त में साहित्य-रूपी रस का संचार किया है। ऐसी सर्वांग-पूर्ण पत्रिका के प्रकाशन से गंगा-पुस्तकमाला और नवलकिशोर-प्रेस का नाम भी साहित्य-संसार में स्मरणीय हो जायगा। अब तक साहित्यिक पत्रिकाओं में सरस्वती ने अच्छा नाम पैदा किया था, पर माधुरी की छटा देखकर निःसंकोच भाव से कहना पड़ता है कि इसका स्थान केवल हिंदी-जगत् में ही नहीं, सभी देश-भाषाओं में प्रथम होगा।

श्रीमहावीरसिंह वर्मा, विशारद—अभी तक हिंदी में कोई भी ऐसी मासिक-पत्र या पत्रिका न थी, जो बँगला इत्यादि समुन्नत भाषाओं के मासिकपत्र-पत्रिकाओं की समता कर सकती, परंतु हर्ष का विषय है कि "माधुरी" से इस त्रुटि की पूर्ति हो गई। बँगला में जो गौरव 'भारतवर्ष' और 'प्रवासी' को प्राप्त है, वही स्थान हिंदी में 'माधुरी' ने ग्रहण किया है। माधुरी हिंदी के मासिक साहित्य का भूषण है। जिस उत्तमता से इसका संपादन होता है, वैसी ही अच्छी इसकी छपाई भी होती है। हिंदी की इस सेवा के लिये आप उभय संपादक तथा प्रकाशक श्रीमान् विष्णुनारायणजी भार्गव अवश्य ही धन्यवाद के भाजन हैं।

पं० रामदहिन मिश्र—हिंदी-संसार में हलचल मचाने-वाली मनमोहिनी 'माधुरी' मिली। इसका नाम जैसा मधुमय है, वैसा ही रंग-रूप भी। इसमें जैसा साहित्यिक सौंदर्य है, वैसा ही मनोमुग्धकर माधुर्य। नवरस की 'माधुरी' तो हर जगह उछली पड़ती है। माधुरी अपने ढंग की अपूर्व, अद्वितीय तथा अतुलनीय है। बँगला को 'प्रवासी' से, मराठी को 'मनोरंजन' से और गुजराती को 'बीसवीं सदी' से जो गौरव प्राप्त है, वही गौरव माधुरी से हिंदी को प्राप्त होगा।

पं० गणेशराम मिश्र—माधुरी के मधुर नाम पर पहले ही से मैं मन-ही-मन मुग्ध था, पर अब दर्शन करने पर तृप्त हो गया। माधुरी की मधुर छवि साहित्य-प्रेमियों के हृदय-मंदिर में स्थान पाने-योग्य सज-धज से निकाली गई है। उसके अंतरंग सुभाषित गद्य-पद्य-मय लेख-पुष्पोद्यान में भ्रमण करने से पता चल जाता है कि उच्च कोटि के प्राचीन तथा नवीन साहित्य-सेवी अलि-गण किस प्रकार अपनी कल-कंठ माधुरी से उसे गुंजारित कर रहे हैं। यदि यह माधुरी इसी प्रकार अपनी मधुरता से साहित्य-संसार को मुग्ध करती रहेगी, तो निस्संदेह एक दिन अन्य-भाषा-भाषी अखिल भारत के लाल भी उसके मोहक रूप को देखकर. उसका दुलार करने लगेंगे। इसी मनोकामना से प्रेरित होकर मुरलीधर से प्रार्थना है कि—"हो माधुरी मधुर-महिमा-मयी।"

सरस्वती—अभी तक इसके दो अंक निकले हैं और अच्छे निकले हैं। प्रत्येक अंक में १०० से अधिक पृष्ठ हैं। हिंदी के अच्छे-अच्छे लेखकों के लेख हैं, कविताएँ हैं और कहानियाँ हैं। संपादकीय टिप्पणियाँ भी विद्वत्ता-पूर्ण हैं।

पं० विजयानंद त्रिपाठी "श्रीकवि"—माधुरी यदि ईश्वर की कृपा से ऐसी ही सज-धज से चल निकली, तो

अपने सुंदर-सुंदर पत्रों से फूली अन्यान्य भाषाओं की प्रियतम सहेली बनने का सौभाग्य हिंदी को भी प्राप्त हो जायगा।

श्रीयुत सुदर्शन—हिंदी में आज तक ऐसी पत्रिका न निकली थी। 'भारतवर्ष' तथा 'बीसवीं सदी' देखकर जी तड़पता था। परमात्मा आपको सफलता प्रदान करें और हिंदी का गौरव बना रहे।

श्रीमान् गोविंद गिल्लाभाई—माधुरी अच्छे टाइप, उत्तम काग़ज़, स्वच्छ छपाई, क़द में बड़ी और लेख अच्छे-अच्छे विद्वानों के होने से सर्वांग-सुंदर बनी है। और वामें भी सुंदर चित्रों से बहु शोभा बढ़ी हुई है—यह देखके विद्वानों का मन वामें मोह पाता है; क्योंकि जो माधुरी है, वह सर्वांग माधुरी ही है (अनन्वयालंकार) अर्थात् सर्वस्थल मधुर है।

पं० अक्षयवट मिश्र, संस्कृत-प्रोफ़ेसर—जैसे इसके लेख सुपाठ्य हैं, वैसे ही इसके रूप तथा गुण भी मनोहर हैं। जो विद्या-रसिक इसके ग्राहक बनेंगे, उन्हें दूसरी पत्रिका पढ़ने की आवश्यकता ही नहीं पड़ेगी। कारण यह कि इसमें इतने अधिक लेख हैं कि एक अंक पढ़ते-पढ़ते महीना समाप्ति के समीप आ जाता है—तब तक दूसरी संख्या आ पहुँचती है। इसमें विविध विषय के लेख रहते हैं। इसलिये पढ़ते-पढ़ते मन नहीं ऊबता, बरन् पढ़ने की लालसा बढ़ती जाती है। चित्र की विचित्रता के विषय में इतना ही कह देना उचित है कि ये चित्र, चित्र-कला के अनुपम नमूने हैं। फिर "ज्यों-ज्यों निहारिए नीरे ह्वै नैननि त्यों-त्यों खरी निखरै-सी निकाई।" इसने जन्म लेकर हिंदी का मुख उज्ज्वल कर दिया। अब हिंदी भी बँगला, मराठी, गुजराती आदि अपनी भगिनी-भाषाओं के सम्मुख इसी 'माधुरी' को लेकर गर्व के साथ खड़ी होगी। इस माधुरी को देखकर मैं हिंदी का शुभ भविष्यत् अवलोकन कर रहा हूँ और अब हिंदी थोड़े ही दिनों में राष्ट्र-भाषा बन जायगी, इसमें कुछ संदेह नहीं है। माधुरी को देखकर मैंने यह भी अनुभव कर लिया है कि जो विज्ञापनदाता इसमें विज्ञापन प्रकाशित कराएँगे, उन्हें भी पूरा लाभ होगा। कारण यह कि जब से माधुरी मेरे पास आई है, तब से एक दिन भी मेरे घर नहीं रहने पाती। रोज़ एक नए पाठक इसे पढ़ने के लिये उठा ले जाते हैं। कितने मित्र तो ऐसे भी आते हैं, जो बलात्कार मेरे हाथ से माधुरी को छीनकर पढ़ने के लिये ले जाते हैं। जब मैं उनसे माधुरी माँगता हूँ तो पता लगता है कि कोई दूसरा ही मित्र उन के हाथ से भी छीनकर ले गया। सचमुच जो माधुरी इस 'माधुरी' में है, वह दूध, दधि, घृत, मिसरी, आम, अनार, अंगूर आदि किसी मधुर पदार्थ में नहीं है। स्वर्ग की सुधा या अप्सराओं की अधर-सुधा में भी यह माधुरी दुर्लभ है। मुझे तो इस माधुरी में उस माधुरी का अनुभव हुआ है, जिसे भक्तगण स्वाती की बूँद के समान बड़े चाव से पीते हैं। वह माधुरी क्या है? राधा-कृष्ण के परम पवित्र पद-पंकज का चरणामृत। सो तो इसके आवरण-पृष्ठ का दर्शन करते ही प्राप्त हो जाती है। बलिहारी है उन बुद्धिमान् संपादकों की प्रतिभा की, जिनने इस प्रेममयी युगल जोड़ी की प्रेम-पूर्ण, भाव-भरी मूर्ति को चुनकर माधुरी के मुख-पत्र पर प्रकाशित कराया है। इस चित्र के देखते ही—

> "सघन कुंज, छाया सुखद, शीतल मंद समीर।
> मन ह्वै जात अजौं वहै, वा जमुना के तीर॥"

की प्रत्यक्ष छटा आँखों के सामने आ जाती है।

श्रीकन्हैयालाल जैन—माधुरी की मंजु छटा, मनोहारिता, रूप-माधुरी, संपादन-चातुरी आदि देखते-देखते लगभग एक सप्ताह हो गया, पर नेत्र अघाते ही नहीं। हृदय तृप्त ही नहीं होता। जिस दिन श्रावण तथा भाद्रपद के अंक मुझे मिले, उसी दिन मेरे एक साहित्य-प्रेमी मित्र भी मेरे पास ठहरे हुए थे। अस्तु। अंक पैकट-आवरण से निकाले गए। चार नेत्र और दो हृदय मुग्ध हो गए। फिर तो परस्पर वह छीन-झपट चली कि जिसका नाम! कभी मेरे हाथों से श्रावण का 'चीर-हरण' छिनता है, तो कभी उनके हाथों से भाद्रपद की "केश-रचना"। कभी कविवर श्रीमैथिलीशरण की काव्य-माधुरी से "आह और वाह" की ध्वनि निकलती है, तो कभी कविवर श्री उपाध्याय जी की "'मुदित-मानव-मानस-माधरी' का मंजुल वदन-मंडल मधुरिमामय हो", यह आशीष पढ़ी जाती है। कभी लेख-सूची और कभी लेखकों की नामावली देखते हैं, पर जो देखते हैं, वह नवीन देखते हैं, पूर्ण देखते हैं, सरस

देखते हैं, मनोज्ञ देखते हैं और देखते हैं मधुरिमामय "माधुरी" की सर्वत्र विकीर्ण मधुरता। आपका यह प्रशंसनीय प्रयास परमेश्वर करें पूर्ण-रूप से सफलता प्राप्त करे। हम हिंदी-साहित्य में जिस कोटि की उन्नत, मंजुल, परिमार्जित, सचित्र, सुलेखक-लेखालंकृत, सुकवि-काव्य-प्रतिभा-प्रदीप्त, ललित-ललाम, नयनाभिराम, सौंदर्य-भांडार, साहित्य-वैचित्र्यागार, विस्तृत आकार-प्रकार, उत्तम छपाई-सफ़ाई-वाली पत्रिका देखना चाहते थे, "माधुरी" वैसी ही है। 'माधुरी' को सर्वांग-पूर्ण पत्रिका कहना अत्युक्ति न होगा। भारतवर्ष में यह माधुरी बँगला के 'भारतवर्ष' से भी अधिक सम्मान्य एवं आदर की सामग्री हो जायगी।

पं० बनारसीदास चतुर्वेदी—माधुरी का तृतीय अंक मैंने तीन-चार दिन पहले देखा था। मैं आपकी खुशामद नहीं करना चाहता, और न मैं माधुरी के माधुर्य को मुफ़्त में ही चखने का अभिलाषी हूँ। फिर भी मैं एक तुच्छ लेखक की हैसियत से आपको इस प्रशंसनीय उद्योग के लिये बधाई देता हूँ। मुझे स्वप्न में भी इस बात की आशा नहीं थी कि माधुरी का स्टैंडर्ड इतना ऊँचा होगा। यदि आप इसे इसी स्टैंडर्ड पर चला सकें, तो निस्संदेह आप हिंदी-संसार को अपना चिर-ऋणी बना लेंगे। माधुरी पर मैं मुग्ध हूँ, और हृदय से यही चाहता हूँ कि उसकी दिन दूनी उन्नति हो।

पं० गोविंदनारायण मिश्र—हिंदी की मासिक पत्रिकाओं में सबसे ऊँचा स्थान अधिकार करने में इसे देर न लगेगी।

एक सुप्रसिद्ध साहित्य-सेवी—रूप-रंग, सज-धज, कलेवर और लेखों में यह पत्रिका सब हिंदी-पत्रिकाओं से अच्छी है। इसके लेखों का तो कहना ही क्या! बड़े विचार-पूर्ण, रोचक और गंभीर हैं। अभी तक हिंदी-संसार में ऐसी पत्रिका कोई नहीं निकली थी।

बाबू मैथिलीशरण गुप्त—माधुरी की आलोचना विद्वज्जन करें। मैं तो भगवान् से यही प्रार्थना करता हूँ कि हमारे साहित्य में आपने जिस माधुरी का संचार किया है, वह सर्वदा बनी रहे। आपके आम मीठे भी हैं और बहुत भी हैं।

श्रीमान् शिवनंदनसहाय—वृंदावन-विहारी, शोभाधाम श्रीराधाश्याम की मनोरंजनी छवि से अंकित तथा अन्यान्य चित्रों से चित्रित, विविध श्रेणियों के सर्वमान्य सुप्रसिद्ध प्राचीन और अर्वाचीन सुलेखकों की लेखनियों से प्रसूत एवं भिन्न-भिन्न भावों से भूषित ललित लेखों से लबालब "माधुरी" पाकर और उसमें संचित मधुर-मधुर व्यंजनों का पाठ-द्वारा रसास्वादन कर मन महातृप्त और आमोदित हुआ। जब से हिंदी-साहित्य-संसार में प्रवेश करने का सुअवसर मिला है, अर्थात् लगभग ४० वर्ष पहले से, तब से अनेक पत्र-पत्रिकाएँ देखने में आईं, परंतु यह रस कहाँ? इसकी बड़ी बहनें सरस्वती, लक्ष्मी और कमला आदि भी निश्चय आदरणीया हैं, परंतु माधुरी बाल-काल ही से प्रौढ़ाओं को भी मात करने का रंग दिखा रही है। निस्संदेह यह हिंदी-साहित्य का गौरव बढ़ावेगी। हिंदी-संसार में जो देखने को मन उत्सुक था, वह देखने की आशा अब बँधी है।

श्रीमान् व्रजनंदनसहाय बी० ए०, वकील—अँगरेज़ी, बँगला आदि की सुंदर पत्रिकाओं को देख-देखकर लज्जा होती थी कि हिंदी को राष्ट्रीय भाषा बनाने का दावा रखते हुए भी हम लोग इस भाषा में एक उत्तम पत्रिका प्रकाशित नहीं कर सकते। किंतु श्रावण-शुक्ला सप्तमी को जब डाक के हरकारे ने माधुरी का प्रथम अंक दिया, और आवरण-पत्र हटाकर, अनेक रंगों से रंजित हिंडोले पर श्रीयुगल-माधुरी-मूर्ति का अलौकिक-दर्शन हुआ, तब मन प्रसन्न हो गया। चित्त प्रफुल्लित हो उठा। कितनी देर तक उस चित्र को अतृप्त लोचन से मैं देखता रहा, सो कहना कठिन है। फिर जब लेख-माला और चित्र-सूची पर निगाह डाली, तब मन का मसोस मिट गया और हठात् मुँह से निकल पड़ा कि इस माधुरी ने यथार्थ ही गुणागरी नागरी का मुख उज्ज्वल किया और हम लोगों को औरों के सामने यह कहने का साहस दिया कि हमारे यहाँ भी, हमारी भाषा में भी, एक पत्रिका अब है, जो तुम्हारी पत्रिकाओं के संग एक कक्षा में बैठने की प्रतिष्ठा पा सकती है। यह सर्वांग-सुंदर एवं पूर्ण सर्वोत्कृष्ट लेखों से सुशोभित, नयन-रंजक चित्रों से आभूषित, सर्वोत्तम पत्रिका वर्तमान सभी पत्रिकाओं से बढ़ी-चढ़ी है।

और यदि इसका पूर्ण आदर हिंदी-भाषा-भाषियों में न हो, तो उसमें इसके संचालकों तथा संपादकों का कुछ भी दोष नहीं कहा जा सकता; क्योंकि अपने उद्योग और यत्न से इन लोगों ने उन महानुभावों के भी लेख संग्रह कर लिए हैं, जो साहित्य के मैदान से एक प्रकार प्रस्थान ही कर चुके थे। हमको तो सब प्रकार माधुरी पूर्ण जान पड़ती है। साहित्य-क्षेत्र में इसे सुर-तरु-सा बनाना सब हिंदी-जाननेवालों का उद्देश्य होना चाहिए।

प्रोफ़ेसर जीवनशंकर याज्ञिक एम्० ए०, एल्-एल्० बी०—माधुरी देखकर चित्त प्रसन्न हो गया। आपका उत्साह सर्वथा सराहनीय है। निस्संदेह माधुरी का स्थान हिंदी ही में क्या, भारत की समस्त देशी भाषाओं में बहुत ऊँचा रहेगा। हिंदी के गौरव की रक्षा और श्री-वृद्धि में माधुरी की सेवा चिरस्मरणीय हो, यही कामना है।

श्रीमुरारिशरण मांगलिक बी० ए०, एम्० आर्० ए० एस्० (मुख्य संपादक ललिता)—हिंदी-साहित्य-क्षेत्र में बहुत-सी पत्रिकाओं का जन्म हुआ और हो रहा है; किंतु हमारी भाषा का वास्तविक गौरव बढ़ाने की जो शक्ति मुझे 'माधुरी' में निहित प्रतीत होती है, वह आज तक किसी में नहीं हुई। दीर्घ काल से मेरी यह बलवती इच्छा रही है कि हिंदी में कोई पत्रिका ऐसी अवश्य हो, जो यदि अभी कुछ समय तक अमेरिका, फ्रांस आदि देशों के सामयिक साहित्य से टक्कर न ले सके, तो कम-से-कम बँगला, गुजराती आदि अन्य भारतीय भाषाओं के पत्र-पत्रिकाओं की समता अवश्य कर सके। अपनी इस इच्छा के फलवती होने की पूर्ण आशा मुझे माधुरी से है। मेरी धारणा है कि हिंदी-साहित्य-इतिहास के पृष्ठों में माधुरी का जन्म-दिन भाषा में युगांतर समापन्न कर देनेवाले दिनों की सूची में लिखा जायगा। हिंदी-भाषा के प्रेमी इसे जितना भी अपनावें, थोड़ा है। माधुरी की उन्नति और हिंदी-साहित्य की वास्तविक श्री-वृद्धि एक ही बात है।

रायबहादुर पं० गौरीशंकर हीराचंद ओझा—आपकी माधुरी हिंदी-साहित्य के लिये वास्तव में माधुरी ही है। ऐसे पत्रों से ही हिंदी के साहित्य की श्री-वृद्धि हो सकती है।

पं० कात्यायनीदत्त त्रिवेदी—माधुरी हिंदी-साहित्य के भाग्य की माधुरी है, माधुरी मातृ-भाषा के सौभाग्य की माधुरी है। माधुरी को देखकर बंग-भाषा अपने भाग्य को कोसेगी, मराठी जल जायगी, गुजराती ईर्षा करेगी। ऐसी पत्रिका हिंदी क्या, किसी भी देशी भाषा में अब तक नहीं निकली। माधुरी पर हिंदी-संसार को अभिमान है; माधुरी उर्दू के दुर्ग लखनऊ की शान है। सच तो यह है कि माधुरी ने सरस्वती की सरस्वती फीकी और मर्यादा की मर्यादा संकुचित कर दी। दुलारेलाल की दुलारी, रूपनारायण की सिहारी, साहित्य-रस-रसिकों को प्यारी, रस की धुरी माधुरी सदैव हिंदी की मस्तक-बिंदी बनी रहे।

पं० गिरिधर शर्मा "नवरत्न"—चिरकाल से हृदय में संचित कर रक्खी हुई लालसा को इस तरह पूरी होते देख पुलकित हो उठा।

माधुरी में स्त्रियों के लिये ख़ास विभाग रक्खा है। ख़ूब किया। यदि इस विषय में माधुरी का अनुकरण कर देश के अन्यान्य मासिक पत्र भी पृथक् स्थान रक्खा करें, तो हमारे गृह-संसार के सुधार में बड़ी सहायता मिले; देवियों में नवजीवन का संचार हो।

आप स्वयं सौंदर्यमय हैं और सौंदर्योपासक हैं। प्रति-दिन माधुरी की समुन्नति करने के पूरे प्रयासी हैं। फिर इस समय मुझे इसके सिवा क्या कहना है कि माधुरी से मुझे बड़ा ही संतोष हुआ है।

आलोक्य माधुरीं रम्यां चेतः कस्य सचेतसः।
अमज्जन्न रसाम्भोधौ न मज्जति न मङ्क्ष्यति॥

श्रीयुत ज़हूरबख़्श—माधुरी की माधुरी और महत्ता के सामने सरस्वती की सत्ता, लक्ष्मी का लालित्य, श्रीशारदा की श्री, मर्यादा की मर्यादा, साहित्य की सरलता, विज्ञान का वैभव, गृहलक्ष्मी का गौरव और विद्यार्थी की विशेषताएँ शीघ्र ही फीकी पड़ जायँगी। इसमें सभी पत्रिकाओं का मज़ा भर दिया गया है। मैं उसके ग्राहक बनाने की चेष्टा करूँगा।

ठाकुर जगन्नाथसिंह वर्मा—माधुरी वास्तव में हिंदी के पत्रों में सबसे बाज़ी मार ले गई। अभी हिंदी में बहुत समय तक ऐसी पत्रिका निक-

छने की आशा नहीं थी, लेखकों का ऐसा अच्छा जमघट कभी कहीं एकत्र नहीं हुआ। आशा है, इसके द्वारा हिंदी-साहित्य-संसार को वह माधुरी प्राप्त होगी कि इस माधुरी को पानकर प्रत्येक भ्रमर हिंदी के यशःसौरभ को विकसित करेगा। विशेषकर लखनऊ-ऐसे स्थान में, जिसे पूज्य बाबू श्यामसुंदरदास ने भी हिंदी के लिये अनुर्वरा भूमि कहा था, माधुरी को जन्म देना वास्तव में सच्चे उत्साह और बड़े साहस तथा कमाल का काम है। हिंदी-साहित्य का इसके द्वारा बहुत उपकार होगा।

पं० विश्वंभरनाथ शर्मा "कौशिक"—माधुरी ने इस समय हिंदी-संसार की एक बहुत बड़ी आवश्यकता की पूर्ति की है। माधुरी से हिंदी-प्रेमियों की पिपासा बहुत कुछ शांत होगी। लेखकों की सूची देखकर तथा लेखों को पढ़कर "सरस्वती" का उस समय का चित्र आँखों के सामने आ गया, जब कि "सरस्वती" द्विवेदीजी के संपादकत्व में हिंदी-संसार को गौरवान्वित कर रही थी।

श्रीगोपालराम गहमरी—माधुरी के लेखों का बखान क्या करना! आप पराक्रमी पुरुष दिखाई देते हैं। ऐसे-ऐसे पुराने धुरंधर लेखकों को भी आप माधुरी में बुला लाए हैं, जो अपना क़लम तोड़कर हिंदी-सेवा से संन्यास ले चुके थे। जिन्होंने हिंदी की छीछालेदर और उसके साहित्य में कूड़ा-कर्कटों का ढेर बढ़ते देखकर भी अपनी गाढ़ी नींद से करवट नहीं बदली—जिनकी इस ग़रीबिनी हिंदी के गिरे दिनों में भी कुछ कुनमुनाने की आशा नहीं थी, उनको भी आपने माधुरी के अखाड़े में उतार दिया! धन्य हैं आप, और धन्य आपका सदुद्योग! वस्तुतः माधुरी माधुरी है।

पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा—सम्मति के लिये दूसरी संख्या मिली। हाथ में लेते ही मैं तो उसमें ऐसा चिपका कि ४-५ घंटे लगातार उसे ही पढ़ता रहा। बहुत दिनों से कोई मासिक पत्र पढ़ने के लिये चित्त में इतनी उत्सुकता नहीं उत्पन्न हुई थी। आपका उद्योग सर्वांश में सफल हुआ है। इसके लिये आपको बधाई है। माधुरी ने सचमुच Hindi Journalism के सब Previous records को beat down कर दिया है।

श्रीयुत रसिकेंद्र—

कवि-कविता की जान, कौन कह इसको बुरी!
नव-'सविता' की शान लेकर निकली 'माधुरी'॥
भर रहा जिसमें रसों का सार है,
भारती के कंठ का वर हार है।
मुग्धकारी चित्र मन को मोहते;
हो रहा सर्वत्र प्यार-दुलार है॥
युगल छवि की मूर्ति मंजुल माधुरी;
हृदय-वीणा के बजाती तार है।
सब सजीले भूषणों से है सजी;
'माधुरी' साहित्य का शृंगार है॥

डॉक्टर गंगानाथ झा—I am glad you have added such an excellent journal to the field of Hindi Literature. I only hope you will have enough public support to enable you to maintain the high standard you have rightly set before yourself.

प्रो० अमरनाथ झा एम्० ए०—'माधुरी' की क्या प्रशंसा करूँ? प्राचीन ग्रंथकार का कहना है—"अदोषौ सगुणौ सालंकारौ शब्दार्थौ काव्यम्।" सो 'माधुरी' दोष-शून्या, गुण-पूर्णा, सालंकारा है। हिंदी-साहित्य के लिये यह बड़े गौरव और उल्लास का विषय है कि इस उच्च कोटि की सर्वांग-सुंदरी पत्रिकाएँ प्रकाशित होने लगी हैं।

श्रीरघुनाथसिंहजी बी० ए०, वकील—अब तक जो हिंदी में पत्रिकाएँ थीं, उनमें एक रानी की कमी थी; अच्छा हुआ कि इस अभाव की आपने पूर्ति कर दी।

पं० जगन्नारायणदेव शर्मा—'माधुरी' ने वस्तुतः मन मोह लिया। इसे साहित्य की सर्व-श्रेष्ठ पत्रिका कहने में कुछ भी अत्युक्ति नहीं। इसमे मृत-प्राय कवियों में भी प्राण आ रहे हैं—यह परमानंद की बात है।

धर्माभ्युदय—इस अंक का संपादन पूर्ण योग्यता के साथ हुआ है। इस पत्रिका का स्थान हिंदी की सभी पत्रिकाओं में सबसे उच्च है। प्रत्येक हिंदी-प्रेमी को इसका ग्राहक बनकर प्रकाशक के परिश्रम को सफल कर उन्हें उत्तेजन देना चाहिए। निस्संदेह यह पत्रिका हिंदी में

बँगला के प्रवासी, अँगरेज़ी के मॉडर्न रिव्यू और मराठी के मनोरंजन की तरह उच्च होगी।

पं० श्यामविहारी मिश्र एम्० ए०—इसका स्थान हिंदी-संसार में ही नहीं, वरन् प्रायः सभी भारतीय देश-भाषाओं में प्रथम होगा।

श्रीप्रेमचंद्र—अब इतने दिनों के बाद हिंदी में एक पत्रिका का जन्म हुआ है, जो उसके शान और गौरव को प्रकट करती है। सुलेखकों का ऐसा अपूर्व संग्रह कदाचित् और कहीं देखने में नहीं आ सकता।

पं० शुकदेवविहारी मिश्र बी० ए०—बँगला के भारतवर्ष के टक्कर की हिंदी में यही पत्रिका हुई है।

श्रीयुत जी० पी० श्रीवास्तव बी० ए०, एल्-एल्० बी०—जैसा मासिक पत्र मैं हिंदी में देखना चाहता था, वैसा ही मैंने माधुरी को पाया। यह पत्रिका अनोखी, निराली और ला-जवाब है और बराबर रहेगी।

पं० कामताप्रसाद गुरु—पत्रिका अद्वितीय है।

लाला कन्नोमल एम्० ए०—It is easily the premier Hindi magazine, and I have every hope that it would be the best Vernacular journal in India.

पं० कृष्णविहारी मिश्र बी० ए०, एल्-एल्० बी०—'माधुरी' अनन्वयालंकार का उदाहरण है।

लाला सीताराम बी० ए०—सर्वांग-सुंदरी 'माधुरी' से आपने हिंदी की एक बहुत बड़ी घटी पूरी की।

पं० जगन्नाथप्रसाद चतुर्वेदी—बँगला-साहित्य की शोभा जिस प्रकार भारतवर्ष से है, उसी प्रकार हिंदी की इस 'माधुरी' से।

पं० बालकृष्ण शर्मा—'नम्र निवेदन' में जिस लक्ष्य को सन्निधान में रक्खा गया है, उसकी पूर्ति के लक्षण प्रथमांक में ही दिखाई देते हैं। लेख-संग्रह और संपादन की प्रशंसा करना व्यर्थ है।

गंगा-पुस्तकमाला की पुस्तिकाएँ रोचक और आकर्षक होती हैं, उनका बहिरंग सर्वथा प्रशंसनीय होता है। 'माधुरी' भी उन्हीं हाथों सँभाली गई है, जिन्होंने उक्त 'माला' के फूल पिरोए हैं।

श्रीमान् जगन्नाथप्रसाद 'भानु'—आरंभ से ही इतने पृष्ठों की पत्रिका और वह भी ऊँचे दर्जे की, अनेक चित्रों से शोभित, विख्यातनामा लेखकों की लेखनी से कलेवर रँगा हुआ हिंदी-संसार के लिये गौरव की बात है। संपादकीय कार्य भी भली भाँति निबाहा गया है। ...... इस प्रकार चाहे जिस ओर से, चाहे जिस दृष्टि से देखिए, माधुरी के लिये प्रशंसा के शब्द निकलते हैं, और इसके लिये युगल संपादकों की जितनी प्रशंसा की जाय, थोड़ी है।

लाला संतराम बी० ए०—मुझे आशा न थी कि हिंदी में भी ऐसी सुंदर और इतनी बड़ी पत्रिका कभी निकल सकेगी। माधुरी मेरी आशा से बढ़कर निकली। किसी भी विषय में यह बँगला और मराठी के उच्च कोटि के मासिक पत्रों से कम नहीं। ऐसी उत्तम और सर्वांग-सुंदर पत्रिका निकालकर आपने सचमुच राष्ट्र-भाषा के मस्तक को ऊँचा कर दिया है।

पं० राधाचरण गोस्वामी—पत्रिका बड़ी सज-धज से निकली है। मैं जहाँ तक जानता हूँ, यह माधुरी किसी दिन "जगज्जालंकर्ता कुसुमभरसौरभ्यभरितम्।" संपादक की चातुरी और आतुरी दोनों अपूर्व हैं।

पं० लज्जाराम मेहता—माधुरी में मधुरिमा की पराकाष्ठा हो, तो आश्चर्य ही क्या?

पं० रघुवरप्रसाद द्विवेदी बी० ए०—आवरण-पत्र से लेकर अंत तक यह पत्रिका दर्शनीय है। हिंदी की भूत व वर्तमान मासिक पत्र-पत्रिकाओं की अपेक्षा यह किसी से कम नहीं दीखती। माधुरी में भिन्न-भिन्न प्रकार की रुचि के पाठकों की तृप्ति के लिये प्रचुर सामग्री प्रस्तुत की गई है। यदि जनता में हिंदी-साहित्य का सच्चा प्रेम है, तो वह ऐसी उच्च-कोटि की पत्रिकाओं की अवहेलना नहीं कर सकती।

पं० ईश्वरीप्रसाद शर्मा एम्० ए०, एल्-एल्० बी०—'माधुरी' शीघ्र ही हिंदी की सब पत्रिकाओं में शिरोमणि बन जायगी।

पं० गौरीशंकर शुक्ल बी० ए०, बी० कॉम—यह देशी भाषा के सब पत्रों से बाज़ी मार ले जायगी।

श्रीईश्वरीप्रसाद, प्रोफ़ेसर आर्ट-स्कूल—यह पत्र सर्वश्रेष्ठ हुआ है।

पं० श्रीधर पाठक—"माधुरी" की दूसरी संख्या भी माधुर्य-पूर्ण है और अपने मधुर नाम की सार्थकता

को सिद्ध करती है। लेख एक-से-एक उत्तम हैं। जी चाहता है, मातृ-भाषा की गांभीर्य-सुंदर सवेग प्रगति पर उच्च स्वर से जय बोलें। इस पत्रिका के संचालकों की सुचेष्टा सराहनीय और बधाई-योग्य है।

पं० अयोध्यासिंह उपाध्याय—माधुरी बड़ी सज-धज से निकली। हिंदी-संसार में एक ऐसी सर्वांग-सुंदर मासिक पत्रिका की अत्यंत आवश्यकता थी। इस न्यूनता की पूर्ति के लिये आप लोगों को अनेक धन्यवाद! जैसा इसका आकार-प्रकार मनोमुग्धकर और अपूर्व है, वैसा ही इसमें हिंदी-संसार के धुरंधर और योग्य विद्वानों का संघटन है— ऐसा मणि-कांचन-योग इस पत्रिका का सौभाग्य-सूचक है। आशा है, उत्तरोत्तर समुन्नत होकर यह चिरकाल तक अपने कार्य-क्षेत्र को मधुमय करती रहेगी।

पं० गंगाप्रसाद अग्निहोत्री—माधुरी के गद्य-पद्यात्मक विविध-विषयक, गवेषणा-गर्भित, पांडित्य-पूर्ण एवं ज्ञान-दायक लेखों ने जिस प्रकार हमारी बुद्धि को ज्ञान-दान से उपकृत किया है, ठीक उसी प्रकार उसके मनोहर एवं भाव-पूर्ण चित्रों तथा सुवाच्य अक्षरों ने नेत्रों को तृप्त किया है। सारांश माधुरी की सभी चीज़ें ज्ञान-वर्द्धक एवं मनोमोहक हैं। ईश्वर उसे चिर-जीवन दे, यही उससे हमारी आंतरिक प्रार्थना है। हमारे पड़ोस में धान्य के एक व्यापारी रहा करते हैं। हैं तो वे धान्य के व्यापारी, पर साहित्य तथा मनुष्यत्व के संबंध को वे भली भाँति जानते हैं। वे गुजराती की प्रतिष्ठित 'बीसवीं सदी' नामक पत्रिका को बड़े चाव से पढ़ा करते थे। जब कभी उसका कोई लेख वा चित्र उनके चित्त पर प्रभाव डालता था, तब वे उसे पढ़ने और देखने का हमसे अनुरोध किया करते थे। उस पत्रिका को देखकर हमारे चित्त में यह भाव उत्पन्न होता था कि क्या कभी हमारे जीवन में, ईश्वर ऐसा शुभ दिन लावेगा कि हमें इसकी समकक्षिनी, बृहत्काय, सचित्र पत्रिका हिंदी में देखने को मिलेगी? माधुरी ने हमारी उस चिरोत्थित लालसा को पूर्ण किया है। एतदर्थ हम ईश्वर को धन्यवाद और आप लोगों को बधाई देते हैं।

जिनकी जन्म-भाषा हिंदी है, जिन लोगों ने हिंदी-भाषा द्वारा माँगकर दूध पिया है और उससे हृष्ट-पुष्ट हुए हैं, वे अब अँगरेज़ी के चूड़ांत पंडित बन जाने के कारण कहा करते हैं कि हिंदी की पत्रिकाओं में रहता ही क्या है, जो हम उसे ख़रीदें और पढ़ें। ऐसे मातृ-भाषा-भक्तों तक माधुरी पहुँचाई जाय, तो आशा है कि वे मोह-जाल से छूटकर अपनी मातृ-भाषा के सच्चे सपूत बन सकेंगे। साथ ही उन्हें यह भी ज्ञात हो जायगा कि किसी भाषा की उन्नति तभी हो सकती है, जब उसके अभिमानी पुत्र उसकी निर्व्याज सेवा करते हैं।

श्रीमती चंदाबाई—माधुरी के दो अंक प्राप्त हुए। पत्रिका अति उत्तम है। इसमें स्त्रियों का विषय स्त्रियों से लिखाया जाता है। यह इसकी पूर्णता का सूचक है।

आनंद—पं० दुलारेलालजी भार्गव के अनवरत परिश्रम का ही यह प्रतिफल है कि माधुरी ने इस थोड़े से ही समय में हिंदी-संसार की सर्व-श्रेष्ठ पत्रिका का स्थान प्राप्त कर लिया है और यह आशा होती है कि मातृ-भाषा-प्रेमियों की यथेष्ट सहायता प्राप्त कर माधुरी सभी भारतीय भाषाओं की पत्रिकाओं में सर्वोच्च स्थान ग्रहण करेगी। लखनऊ-निवासियों के लिये यह गौरव की बात है कि उनके नगर से हिंदी-साहित्य की वास्तविक उन्नति के लिये श्लाघनीय प्रयत्न प्रारंभ हुआ है।

वेंकटेश्वर-समाचार—"माधुरी" की माधुरी वास्तव में मुग्ध करनेवाली है। हिंदी-रसिकों से अवश्य यह आदर पाएगी। हमें विश्वास है कि इसके द्वारा हिंदी का बहुत उपकार होगा।

श्रीभगवतीप्रसाद वाजपेयी—माधुरी हिंदी की अद्वितीय मासिकपत्रिका है।

पं० चंद्रमौलि सुकुल एम्० ए०—तृतीय संख्या मिली, धन्यवाद। उसे रुचि से तो पढ़ा ही, परंतु त्रुटियाँ ढूँढ़ने का भाव भी साथ ही था। हर्ष का विषय है कि सब तरह से संतोष ही हुआ और कोई बात ऐसी न मिली कि जिसके बारे में आपसे शिकायत करूँ। पाद-प्रक्षालनवाला चित्र सुंदर तो है ही, अत्यंत स्वाभाविक भी है। पत्रिका वस्तुतः 'माधुरी' नाम के योग्य है।

श्रीव्रजराज एम्० ए०, बी० एस्-सी०, एल्-एल्० बी० (महामंत्री साहित्य-सम्मेलन)—सुपाठ्य लेख देखकर संतोष हुआ।

आपके उद्योग और परिश्रम की सराहना करता हूँ। अपनी मातृ-भाषा में सुंदर और उच्च कोटि की ऐसी पत्रिका को देखकर मुझे अत्यंत हर्ष हुआ। हम लोग हिंदी को राष्ट्र-भाषा के पद पर आसीन करना चाहते हैं। इस सर्वांग-पूर्ण और सुंदर मासिक के प्रकाशन से हम को अब अन्य भारतीय भाषाओं के सामने नीची आँख न करनी पड़ेगी।

बाबू सियारामशरण गुप्त—माधुरी ऐसे रूप-रंग के साथ प्रकाशित हो रही है, जिस पर हम हिंदी-भाषा-भाषी गर्व कर सकते हैं। मुझे विश्वास है कि आपकी पत्रिका हिंदी में एक ख़ास स्थान प्राप्त करेगी।

सद्धर्म-प्रचारक—भारतवर्ष के साहित्य-रत्नाकर में निज सुषमा से सुशोभित तथा अपने विशाल कलेवर के अलौकिक आलोक से लोकांतरालीन, महा-कुलीन समीचीन साहित्य-वल्लभ लोक-मरालों के कमल कोमल हृदय-निलय को आलोकित करती हुई, लब्धवर्ण-शिरोमणियों की ओजस्विनी लेखनी से लिखित लेख-रूपी मुक्ता-फल-पटल के अनंत आनंद से आनंदित करती हुई, कवियों से कीर्तित, कमनीय कांतिवाली, विचित्र चारु चित्रों से चित्रित एवं सच्चरित्रों के पवित्र चरित्रों से चित्रित हुई, प्रति-मास लखनऊ शहर के जगतीतल-विख्यात नवल-किशोर प्रेस से, विशालशील श्रीदुलारेलालजी भार्गव तथा श्रील-ललाम श्रीरूपनारायणजी पांडेय इन संपादक-युगल के संपादकत्व में, जो तत्त्वधारिणी, मनोहारिणी, नयानुसारिणी, शांतकारिणी माधुरी-नाम्नी पत्रिका निकलती है, उसके अवलोकन का विपुल लाभ हमारे लोचन-युगल को उपलब्ध हुआ। अतः परिपूर्णतया प्रसन्नता हुई। पत्रिका-शैली लोक-श्लाघनीय है। अतः इसका अवलोकन करना प्रत्येक कलनीय पुरुष का परम कर्तव्य है। क्योंकि इसमें दो लाभ हैं। एक तो इसमें मतांतर का वैमनस्य नहीं रहता तथा आधुनिक आंदोलन का सम्मेलन भी नहीं, जिससे हर तरह की रुचिवाले मनुष्य इसे पढ़ सकते हैं। किसी को किसी भी तरह की प्रति-बंधकता के निरीक्षणकरण का क्षण प्रणिहित नहीं होगा। एतादृशी आदर्श-पत्रिका के अपनाने में तथा तत्संचालकों के समुत्साह को सुपुष्पित करने में आनाकानी करना श्लाघास्पद नहीं हो सकता।

जैसवाल-जैन—हिंदी का सौभाग्य समझिए। जो अब इसमें भी बँगला, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के समकक्ष साहित्य की सृष्टि हो रही है। अभी हाल ही में 'माधुरी' नाम की एक सचित्र और विचित्र मासिक पत्रिका का जन्म हुआ है। इसमें हिंदी के प्रायः सभी उद्भट विद्वानों के लेख और कविताएँ निकलती हैं। अंतरंग और बहिरंग—सब प्रकार से यह हिंदी की शोभा और सर्वोच्च पत्रिका है।

श्रीरमेशप्रसाद बी० एस-सी०—अँगरेज़ी में 'माडर्न रिव्यू', बँगला में 'भारतवर्ष' और मराठी में 'मनोरंजन' जिस साज-बाज से निकलते हैं, हिंदी में 'माधुरी' भी उसी ढंग से आरंभ से ही निकलने लगी है। इस में लेखों की भर-मार और चित्रों की बहार रहती है। 'माधुरी' के लेख मौलिक तथा भाव-पूर्ण होते हैं; कविताएँ हृदय-ग्राही और चित्र नेत्र-रंजक रहते हैं। एक शब्द में 'माधुरी' मधुरता की खान है।

हिंदी-बंगवासी—सारी पत्रिका हिंदी-साहित्य के मर्मज्ञ लेखकों के लेखों से भरी हुई है। इसमें रंगीन और सादे कोई २० चित्र हैं। कहने का प्रयोजन नहीं कि इस समय माधुरी अपने माधुर्य, सौंदर्य, गांभीर्य तथा उत्कृष्टता में हिंदी-साहित्य में अपना जोड़ नहीं रखती। यह हिंदी-साहित्य और हिंदी-भाषा-भाषियों के लिये परम सौभाग्य की बात है। कारण, अब तक हिंदी-भाषा में इतनी सज-धज से इतनी बड़ी पत्रिका नहीं निकली थी। हम माधुरी का हृदय से स्वागत करते हुए, आशा करते हैं, कि हिंदी-भाषा-प्रेमी माधुरी को अपनाकर अपने साहित्य-प्रेम का अवश्य परिचय देंगे, जिससे माधुरी अपनी अभ्रांत सेवा से राष्ट्रभाषा हिंदी की अविराम सेवा करती रहे।

इन सम्मतियों से ही माधुरी की उत्कृष्टता का आप अंदाज़ा लगा सकते हैं। और अनेकों सम्मतियाँ माधुरी पर आई हैं। वे अगली संख्या में प्रकाशित की जायँगी।

मिलने का पता—
मैनेजर माधुरी, लखनऊ

पढ़ने-योग्य उत्तमोत्तम पुस्तकें

लव-कुश

इस ग्रंथ में मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् रामचंद्र के विश्व-विजयी पुत्र लव और कुश का पूरा वृत्तांत बड़ी ही ओजस्विनी भाषा में लिखा गया है। हिंदी जानने-वालों के लिये यह ग्रंथ एक नया रत्न है। भगवान् रामचंद्र के जन्म से इस ग्रंथ का आरंभ हुआ है। क्रमशः राम-विवाह, राम-वनवास, सीता-हरण, रावण-जटायु-युद्ध, राम-सुग्रीव-मिताई, बाली-सुग्रीव-लड़ाई, बाली-वध, राम-रावण-युद्ध, रामचंद्र का राज्याभिषेक, सीता-परित्याग, लव-कुश-जन्म, लव-कुश को महर्षि वाल्मीकि-द्वारा रामायण-गायन की शिक्षा, बालक लव-कुश का पृथ्वी के अनेक वीरों से घोर युद्ध, महाराज कुश का राज्य-शासन, महाराज कुश का देवराज इंद्र की ओर से राक्षसों के साथ महासंग्राम और जय-लाभ और अंत में लव और कुश का सदेह इंद्रलोक में गमन आदि वृत्तांत बड़े ही अनूठे ढंग से लिखे गए हैं। इस ग्रंथ को पढ़कर मनुष्य-मात्र की रगों में वीरता का खून दौड़ने लगेगा और अपने पूर्वजों की कीर्ति आँखों के सामने नाचने लगेगी। बढ़िया मोटे एंटिक काग़ज़ पर, सुंदर बहु-रंगे १२ चित्रों से सुशोभित छपकर तैयार है। मूल्य १॥।), रंगीन जिल्द २), रेशमी जिल्द २।)

मोती-महल

यह उपन्यास शिक्षा का भंडार और मन-बहलाव का एक बड़ा भारी साधन है। इस पुस्तक में कुसंगति का भीषण परिणाम, सुसंगति का महत्त्व, स्त्रियों की आदर्श पति-भक्ति, कन्याओं की धार्मिक प्रवृत्ति, मित्र की आदर्श मित्रता, बुढ़ापे में विवाह की इच्छा रखनेवालों की दुर्दशा आदि बातें इतनी खूबी के साथ दिखाई गई हैं कि पढ़नेवाले का चित्त फड़क उठता है। दाम ६ भाग का ३॥।)

प्रेम का फल

यह उपन्यास उर्दू की प्यारी बोलचाल में लिखा गया है। बड़ा ही दिलचस्प है। मूल्य ॥=)

गाँधी-सिद्धांत

(लेखक—महात्मा गाँधी)

वर्तमान समय में यह पुस्तक भारत-वासियों के लिये दूसरी "श्रीमद्भगवद्गीता" है। जिस तरह गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अपने प्रिय सखा परम भक्त, किंतु माया-मोह से घिरे हुए, क्षत्रिय धर्म से पथ-भ्रष्ट, सशंकित कुंती-नंदन अर्जुन को कर्म-योग का उपदेश दे उनके सारे संदेहों को दूर करते हुए उन्हें स्वराज्य-प्राप्ति का सच्चा मार्ग बताया था, उसी तरह इस पुस्तक में भी प्रश्नोत्तर-रूप में भारत के वर्तमान कृष्ण महात्मा गाँधी ने स्वराज्या-भिलाषी, किंतु भयभीत तथा सशंकित भारत-वासियों के सारे संदेहों को दूर करते हुए उन्हें असहयोग तथा सत्याग्रह-द्वारा आत्मशुद्धि कर स्वराज्य-प्राप्ति का सच्चा मार्ग बताया है। इस पुस्तक में बताए गए उपाय वर्त-मान युद्ध के योद्धाओं के लिये अमोघ अस्त्र हैं। जिस तरह गीता के उपदेशों-द्वारा कुरुक्षेत्र के मैदान में पांडवों को विजय-श्री लाभ हुई थी, उसी प्रकार इस पुस्तक के उपदेशों-द्वारा भारत-वासी भी विजय प्राप्त कर संसार में गौरवान्वित होंगे। मूल्य केवल ॥), रेशमी जिल्द १)

अँगरेज़ी-शिक्षक

यह पुस्तक बिना मास्टर की सहायता के अँगरेज़ी सिखाती है। स्कूलों में सालों पढ़ने से जितना नहीं आता, वह केवल इस पुस्तक के १५ दिन पढ़ने से हासिल होता है। मूल्य ।॥)

रहस्य-भेद

यह उपन्यास अँगरेज़ औपन्यासिक मिस्टर जॉर्ज विलियम रेनाल्ड्स की अद्भुत लेखनी का नमूना है। अगर आपको अँगरेज़ लेखकों के लिखे उपन्यास पढ़ने का शौक़ हो, तो इस उपन्यास को मँगाकर ज़रूर पढ़िए। यह उपन्यास बड़ा ही दिलचस्प और अपने ढंग का निराला है। दाम तीन भाग का १॥)

गंगा-पुस्तकमाला कार्यालय, २९-३० अमीनाबाद पार्क, लखनऊ

भक्त चंद्रहास

यह एक पौराणिक और राजनीतिक नाटक है। यह नाटक जिस समय रंग-मंच पर खेला जाता है, उस समय दर्शकों का मन अपने बस में नहीं रहता। सब दर्शक मारे खुशी के नाचने लग जाते हैं और उनकी करतल-ध्वनि से थिएटर-हाल गूँज उठता है। इसमें भक्ति की महिमा खूब ही दरशाई गई है। हम ज़ोर देकर कहते हैं कि इस प्रकार का थिएट्रिकल नाटक शायद ही आपने देखा हो। इसे शीघ्र मँगाकर पढ़िए। बिक जाने पर पछताना पड़ेगा। मूल्य १।), रंगीन जिल्द १॥), रेशमी जिल्द १॥।)

आदर्श महिला

यह एक शिक्षाप्रद गार्हस्थ्य उपन्यास है। इसकी घटनाएँ इतनी शिक्षाप्रद और रोचक हैं कि आरंभ करके विना समाप्त किए छोड़ने की इच्छा नहीं होती। मूल्य ॥।) मात्र

हेमलता

ऐयारी और तिलिस्म का इससे अच्छा उपन्यास मिलना कठिन है। विशेष प्रशंसा करनी फ़िज़ूल है। मूल्य दो भागों का १॥), रेशमी जिल्द २)

लॉर्ड किचनर

इस पुस्तक में महायुद्ध के प्रधान सेनापति लॉर्ड किचनर का पूरा जीवन-चरित्र लिखा गया है। पाठक, यह इन्हीं लॉर्ड किचनर की नीति का फल है कि बृटिश सेना अधिक समय तक प्रबल शत्रुओं का सामना कर अंत में विजय प्राप्त कर सकी। दाम १)

फ़िज़ी में भारतीय

"पराधीन सुख सपनेहु नाहीं!" हाय! जो भोले-भाले भारत-वासी आरकटियों के चक्कर में फँसकर तथा रोटियों के पीछे "शर्तबंदी-प्रथा" में बँधकर इस अन्न-पूर्ण देश को छोड़कर फ़िज़ी गए, उनको वहाँ भी वैसे ही दुख सहने पड़े, जैसे कि एक गुलाम जाति सहा करती है। पुस्तक पढ़ते-पढ़ते ऐसी ग्लानि मालूम होती है कि हम भारतीय संसार में या तो नष्ट हो जायँ, या सब के सिरमौर होकर रहें। मूल्य १)

भयानक बदला

यह पुस्तक एक स्वतंत्र जासूसी उपन्यास है। इसमें पार्सी-समाज का अच्छा फ़ोटो खींचा गया है। इसके जोड़ का इतना रोचक और दिलचस्प उपन्यास हिंदी में दूसरा नहीं है। मूल्य भी सर्व-साधारण के सुभीते के ख़याल से केवल ॥।) रक्खा गया है।

जादू का महल

ऐयारी, तिलिस्मी और बहादुरी में यह पुस्तक अपने ढंग की बेजोड़ है। इसकी विशेष प्रशंसा करनी फ़िज़ूल है। पढ़ने से ही जौहर खुल सकता है। मूल्य २ भागों का केवल १।≈)

राष्ट्रीय झनकार

इस पुस्तक में एक-से-एक उत्तम राष्ट्रीय गाने दिए गए हैं। प्रत्येक गाने को पढ़कर मन देश-भक्ति की ओर उमड़ पड़ता है। वर्तमान समय में ये गाने प्रत्येक मनुष्य को पढ़ने और मनन करने चाहिए। इस पुस्तक के पढ़ने से मनुष्य-मात्र का उपकार होगा। मूल्य दो भागों का १)

वैज्ञानिक अद्वैत-वाद

इस पुस्तक को ग्रंथकार ने बड़े ही विचार के साथ लिखा है। विज्ञान का महत्त्व इतने उच्च भावों में वर्णित है कि ग्रंथ पढ़ते-पढ़ते अंत में विज्ञान-रूपी माला अपने हाथों में आ जाती है। उस माला में यह विश्व-ब्रह्मांड नाना प्रकार के रंगों और ढंगों में गुरियों की नाईं जान पड़ता है।

इस विश्व-ब्रह्मांड को जानने के लिये विज्ञान ही एक अति उत्तम मार्ग है। विज्ञान का जाननेवाला ज्ञानी की उपाधि रखता है। ज्ञानी वह है, जो अपने ज्ञान-बल से इस विश्व-ब्रह्मांड के उस तत्त्व को जान ले, जिस तत्त्व में यह विश्व-ब्रह्मांड गुरियों की भाँति पिरोया है। और प्रत्येक गुरिया में भी वह तत्त्व-रूपी डोरा है। तत्त्व-ज्ञान का अनुसंधान कर लेना ही विज्ञान है, जिसको लेखक ने ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय की विज्ञान-नौका कर दिखाया है। मूल्य १॥।≈)

सिक्खों का परिवर्तन

इस पुस्तक में भिन्न-भिन्न विषयों पर १७ अध्याय हैं। पुस्तक पढ़ने-योग्य है। श्रीगुरुनानक का उद्देश्य, गुरु गोविंद-सिंह के युद्ध, उनका देशाटन तथा उनकी मृत्यु। पंजाब में मुसलमानों का शासन आदि विषय पढ़ने ही योग्य हैं। छपाई-सफ़ाई उत्तम। २६४ पन्नों की पुस्तक है। मूल्य १॥)

इटली के विधायक महात्मागण

इस पुस्तक में उन महान् पुरुषों के जीवन-चरित्रों का वर्णन है, जिन्होंने अपने जीवन-काल में इटली देश को आस्ट्रिया आदि बलवान् राष्ट्रों के पंजे से मुक्त किया है। हमारे भारतीय नवयुवकों को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मूल्य २।)

योरप के प्रसिद्ध शिक्षण-सुधारक

इस छोटी-सी पुस्तक में योरप के सात प्रसिद्ध शिक्षण-सुधारकों के संक्षिप्त जीवन-चरित्र और उनकी प्रतिपादन की हुई शिक्षण-पद्धतियों के मुख्य-मुख्य सिद्धांत दिए गए हैं। मूल्य १॥≈)

भीष्म

रंग-मंच पर खेलने योग्य नाटक अपनी मातृ-भाषा हिंदी में बहुत कम हैं। जो कुछ हैं भी, वे हमारे नवीन उत्साही जनों के लिये संतोष-प्रद नहीं हैं। इन सब बातों को सोचकर लेखक ने बड़े परिश्रम से इस नाटक को रचा है, जो रंग-मंच पर माता-बहनों और सभी प्रकार के मनुष्यों के सामने खेला जा सकता है। मूल्य ॥)

चेतसिंह और काशी का विद्रोह

काशी के विद्रोह का सच्चा ऐतिहासिक वृत्तांत, लॉर्ड वारन हेस्टिंग्स के हथकंडों के रहस्य, जिन पर पार्लियामेंट में वर्षों तक मुक़द्दमा चलता रहा, और ईस्ट इंडिया कंपनी की करतूतें तथा उसके अधिकारियों के राजा चेतसिंह पर किए हुए अत्याचारों का खुलासा वृत्तांत है। मूल्य ।≈)

श्रीकृष्ण-चरित्र

योगिराज, आनंद-कंद श्रीकृष्ण भगवान् का चरित्र हिंदी-भाषा में भगवद्भक्तों के लिये छपाया गया है। मूल्य ।≈)

उद्योगी पुरुष

इस पुस्तक में नव महान् उद्योगी पुरुषों के जीवन-चरित्र हैं, जिनकी किशोरावस्था "होनहार बिरवान के होत चीकने पात" की तरह थी। जिस समय कि छिछोरपन के विचारों का सदैव के लिये समावेश हो जाने का नितांत भय रहता है, उस समय के लिये यह पुस्तक अँधेरे में दिनकर-देव की किरणों की भाँति कार्य करती है। मूल्य ।≈)

रूस का राहु

इस पुस्तक में रूस-देश के एक ग्राम-निवासी किसान के लड़के का जीवन-चरित्र है, जो न लिखा न पढ़ा, मिथ्या आडंबरों, झूठे प्रपंचों और सबसे यह कहने-वाला था कि यदि "ईश्वर के दर्शन करना चाहो तो पाप करो"। रूस के सम्राट् और सम्राज्ञी तक उसके वश हुए। बड़े-बड़े धार्मिक पादरी भी चक्कर में आए। पत्र-संपादकों ने भी उसे एक विशेष मनुष्य और ईश्वर-भक्त समझा। कहाँ तक लिखा जाय, इस धूर्तराज का रहस्य पढ़ने ही से जान पड़ेगा, जो कि शराब पिला-कर रात्रि के समय मारा गया और काट-काटकर पुल पर से नदी में फेंक दिया गया। मूल्य ।≈)

साम्यवाद

इस समय सर्वत्र साम्यवाद की ध्वनि गूँज रही है। संसार की अन्य भाषाओं में साम्यवाद के ऊपर सैकड़ों पुस्तकें लिखी गई हैं। हमारी मातृ-भाषा हिंदी में इस विषय की एक भी पुस्तक नहीं है। परंतु आप इस पुस्तक को आद्यो-पांत पढ़कर बहुत कुछ लाभ उठा सकते हैं। इस पुस्तक में यह अच्छी तरह से समझाया गया है कि साम्यवाद क्या है, उसकी उत्पत्ति और उसका विकास कैसे हुआ, इस समय उसका प्रसार कहाँ-कहाँ और कितना है। मूल्य ।≈)

भाग्य-निर्माण

यह पुस्तक आपको नीति-मार्ग, स्वावलंबन और उद्योग-शीलता का पाठ पढ़ावेगी। इसमें स्वदेशी कर्मवीरों के कर्तव्यों का निरूपण इतना बढ़िया किया गया है कि पुस्तक लेकर उसे छोड़ने को जी नहीं चाहता। पौने तीन सौ पृष्ठ की पुस्तक का मूल्य केवल १।≈), सजिल्द का १॥।)

त्रिशूल-तरंग

कविवर त्रिशूल की मनोहर कविताओं का संग्रह है। प्रत्येक कविता मुरझाए हुए मन को खिले हुए पुष्प की भाँति बनानेवाली है। मूल्य ॥=)

प्रबंध-पारिजात

इसमें भाषा और रचना, शिक्षा और नीति, आसक्ति और अभिनिवेश, आलोचना और चर्चा, ज्ञान और परीक्षा आदि २७ विषयों पर उत्तमोत्तम निबंधों का समावेश है। विद्यार्थियों और अध्यापकों के बड़े काम की पुस्तक है। मूल्य ॥-)

हिंदी-कुरान

भारतवर्ष में जबसे मुसलमानों का प्रवेश हुआ तभी से भारत-वासियों को मुसलमानी मज़हब के मुख्य आधार कुरान के देखने की ज़रूरत हो चली थी। बड़े परिश्रम और व्यय से, हिंदी जाननेवालों की अभिलाषा पूर्ण करने के लिये, ऐसी सरल और सुपाठ्य भाषा में अनुवाद किया है कि अपढ़ मनुष्य भी एक बार के सुनने ही से इसका मतलब भली भाँति समझ सकते हैं। मूल्य ३) मात्र है।

हिंदी-कवियों की अनोखी सूझ

इसमें सूर, तुलसी, केशव, बिहारी, देव, मतिराम, हरिश्चंद्र आदि प्राचीन तथा कई एक अर्वाचीन कवियों की सूक्तियाँ बिलकुल अनूठे ढंग से लिखी गई हैं। इसके द्वारा आप गहन हिंदी-साहित्य-वाटिका की सैर सुगमता से कर सकते हैं। इसके लेखक हैं, हिंदी-साहित्य के सुपरिचित कवि पं० श्यामलाल पाठक। एक प्रति का मूल्य ॥)

कंस-वध

यह सामाजिक, राजनीतिक, धार्मिक बातों से परिपूर्ण है। कथा पौराणिक होने पर भी इसमें सामयिकता का अभाव नहीं। पुस्तक अपने ढंग की अद्वितीय है। जहाँ एक बार शुरू की कि पूरी पढ़े बिना मन नहीं मानता। प्रत्येक काव्यानुरागी को यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। मध्य-प्रदेश और बरार के शिक्षा-विभाग-द्वारा यह पुस्तक लाइब्रेरियों तथा पारितोषकके लिये स्वीकृत हो चुकी है। मूल्य।=)

कुरान-आदर्श

इसमें अरब के मज़हबी नगरों का वर्णन, अरब-वालों की मूर्ति-पूजा और नक्षत्र-पूजा, अरबी अक्षरों की उत्पत्ति, अरबी-साहित्य, उसका उत्थान और मुहम्मद के कारण उसका पतन, मुज़दक का स्त्रियों के संबंध में विचित्र और आश्चर्य-जनक उपदेश, मुहम्मद से पहले अरबों की प्रकृति तथा मांस न खाना, मुहम्मद का विधवा खादीजाह के साथ विवाह करना, अपढ़ मुहम्मद के द्वारा कुरान का कहा जाना, दैवी समाचार होने के विरुद्ध भारत-वासियों की दलील, मुसलमानी मत-प्रचार करने में मुहम्मद की युक्तियाँ, कुरान की साहित्य-संबंधी समस्त बातें, मुहम्मद के बाद आयत का लुप्त होना, दीन, ईमान, फ़िरिश्तों, जिन्नों, पैग़ंबरों का पूरा वर्णन, क़यामत, नरक, स्वर्ग, सुन्नत, नमाज़, कुरान के विषय किस-किस मज़हब और किस-किस किताब से लिए गए हैं आदि समस्त बातों का हवाले के साथ वर्णन है। कुरान में एक के विरुद्ध अनेक वाक्य तथा ऐतिहासिक व अन्य भ्रांतियाँ, मुहर्रम आदि महीनों में मुसलमानों को झगड़ा करने की कुरान में सख़्त मनाही, शियों और सुन्नियों के भेद का पूरा वर्णन, मुसलमान, शहीद-शब्द की व्याख्या आदि वर्णित हैं। मूल्य १) मात्र।

आर्थिक सफलता

पैसा पैदा करने की युक्तियाँ इसमें लिखी गई हैं। इसमें बताए हुए मानसिक विचारों-द्वारा ग़रीब और निर्धन भी धनवान् बन सकता है। मूल्य।=)

कर्म-क्षेत्र

कर्म-हीन भारत-वासियों को कर्तव्य-मार्ग पर आरूढ़ करने के लिये अति उपयोगी पुस्तक। बंग-साहित्य में इसका खूब आदर हुआ है। पुस्तक के घर-घर प्रचार होने की आवश्यकता है। मूल्य सादी का ॥=), सजिल्द का १=)

सच्चा सुधार

इसमें समाज की प्रचलित बुराइयों का निदर्शन कर उनके सुधार के उपाय बताए गए हैं। प्रत्येक देश-हितैषी को इसे पढ़ना चाहिए। मूल्य।-)

स्त्रियों का स्वर्ग

हमारी घर-गिरिस्ती में आजकल स्त्रियों की स्थिति कैसी है और कैसी होनी चाहिए ? ईश्वर ने इस संसार में स्त्रियों को कौन-सा दरजा दिया है ? स्त्री-पुरुष का संबंध कैसा होना चाहिए ? स्त्रियों में प्रेम कैसे बढ़ सकता है ? स्त्री-पुरुष की प्रकृति और स्वभाव में क्या अंतर है ? स्त्रियाँ कैसे सुधर सकती हैं ? बहुएँ कैसे पति-प्रिय और परिवार-प्रिय बन सकती हैं ? पति-पत्नी का सच्चा स्नेह कैसा होना चाहिए ? स्त्रियों की अधिक-से-अधिक भलाई कैसे हो सकती है ? स्त्रियों के विषय में पुराने विचार के लोग क्या कहते हैं और नए विचार के विद्वान् क्या कहते हैं ? अज्ञान स्त्रियाँ आपस में कैसी बातें करती हैं ? ब्याह करने से कितना बड़ा लाभ है और ब्याह न करने से कितनी बड़ी हानि है ? ऊँचे दरजे के प्राकृतिक प्रेम में कितना आनंद है और स्त्रियाँ अपने घर में रहकर भी अच्छे काम कैसे कर सकती हैं ? ये सब विषय बहुत सरल भाषा में, नए रूप में, ऊँचे विचार के साथ, प्रभावोत्पादक रीति पर, लिखे गए हैं। गृहिणी का—गृह-लक्ष्मी का—आदर्श खड़ा कर दिया है। मूल्य २)

भाग्य फेरने की कुंजी

इस पुस्तक में विचार के बल से भाग्य सुधारने के उपाय बताए गए हैं। ग़रीबी, रोग, शोक, बुढ़ापा और मृत्यु-नामक संसार के पाँचों महाकष्ट-दायक दुःखों पर विजय पाने का उपाय जानने के लिये यह पुस्तक अवश्य पढ़नी चाहिए। दाम ॥=)

स्वर्ग की सड़क

इस पुस्तक में वर्णित विषयों में से कुछ के नाम ये हैं—हृदय की भक्ति, ईश्वर का नाम-स्मरण करने से लाभ, जन्म की सार्थकता, ईश्वरीय ज्ञान, संसारी भक्तों का सच्चा धर्म, गृहस्थाश्रम की खूबी, मरने के समय का आनंद, हृदय में जमा हुआ पाप निकालने का उपाय, दुःख से लाभ, झगड़ा बचाने का उपाय, भक्ति में हर रोज़ आगे बढ़ने का मार्ग, अनजान में हो जानेवाले पाप, मरते समय बाल-बच्चों की चिंता से छूटने का उपाय, व्यवहार और परमार्थ, हृदय की पवित्रता, कुटुंब-सुख पाने का उपाय इत्यादि। मूल्य १।||)

आदर्श सम्राट्

यह एक अपूर्व पुस्तक है। दाम ।-), और ।=)

बालकों की बातें

बालकों में नई ज्योति फैलाने के लिये कहानी के ढंग पर लिखी गई है। दाम ।=)॥

धर्म-तत्त्व

इसमें गुरु-शिष्य-संवाद के तौर पर इन विषयों का मर्म समझाया है—दुःख क्या है ? सुख क्या है ? धर्म क्या है ? मनुष्यत्व क्या है ? अनुशीलन, सामंजस्य, शारीरिक वृत्तियाँ, ज्ञानार्जनी वृत्तियाँ, मनुष्य पर भक्ति, ईश्वर पर भक्ति, भगवद्गीता, विष्णु-पुराण, भक्ति का साधन, प्रीति, स्वजन-प्रीति, स्वदेश-प्रीति, पशु-प्रीति, दया, चित्तरंजिनी वृत्ति इत्यादि। २०० पृष्ठों में समाप्त। दाम ॥=)

रूस का षड्यंत्र

ज़ार के ज़माने में रूस की प्रजा पर कैसे-कैसे भयानक अत्याचार हुआ करते थे और इन अत्याचारों का अंत करने के लिये वहाँ के निहिलिस्ट किस प्रकार दृढ़ता के साथ कार्य करते थे, इसका रोमांचकारी वर्णन ३५४ पृष्ठों की सुंदर छपी हुई पुस्तक में है। दाम २)

वालेस की जीवनी

वीर-चूड़ामणि वालेस आत्मोत्सर्ग का फड़कता हुआ दृष्टांत है। उसने एक-मात्र स्वदेशोद्धार की चिंता में जीवन समर्पण कर दिया था। अँगरेज़ों के अत्याचार से जन्म-भूमि स्कॉटलैंड का उद्धार करने में ही उसका सब शरीर और मन का बल ख़र्च हुआ था। उसका शारीरिक और मानसिक बल अपरंपार था। वह भीम के समान बली था। एक वस्तु में दो गुण बहुधा नहीं पाए जाते। वालेस आलस्य और भय का नाम नहीं जानता था। उसने जो-जो काम किए हैं, वे आजकल के लोगों को बड़े आश्चर्य में डालनेवाले हैं। वह निष्काम कर्मयोगी था। जन्म-भूमि का उद्धार करने के सिवा उसने अपनी उस अलौकिक वीरता और बुद्धिमानी से और किसी फल की इच्छा नहीं की। उसी प्रातःस्मरणीय महात्मा की जीवनी इसमें है। दाम ॥)

गल्प-पंचदशी

(सचित्र)

वेदांत में जिस तरह पंचदशी प्रामाणिक ग्रंथ है, उसी तरह गल्पों की यह भी एक बढ़िया पुस्तक है।

गल्पें सामाजिक हैं। एक बार हाथ में लेने पर बिना समाप्त किए छोड़ने को जी नहीं चाहता। वेदांत की पंचदशी में जिस तरह ऐहिक और पारलौकिक विषयों के जीव, जगत् और आत्मा के सूक्ष्म तत्त्वों का निरूपण किया गया है, उसी तरह इस गल्प-पंचदशी में मानव-हृदय के भीतरी-से-भीतरी और बारीक-से-बारीक भावों का इतना सूक्ष्म विश्लेषण किया गया है कि देखते ही बनता है। प्रत्येक गल्प से कोई-न-कोई शिक्षा मिलती है। शिक्षा प्राप्त करने का सुख-साध्य तरीक़ा उत्तम गल्प पाठ करने से बढ़कर और कोई नहीं है। जो लोग हिंदी में बढ़िया गल्पें पढ़ना चाहते हैं, उन्हें गल्प-पंचदशी एक बार ज़रूर पढ़नी चाहिए। मूल्य केवल ॥)

जेल के यात्री

असहयोगी नेताओं के जीवन-चरित्र, कारावास-अनुभव और ज़ोरदार संदेश तथा एक दर्जन चित्र हैं। मूल्य १)

ओथेलो

कवि-सम्राट् शेक्सपियर का नाम संसार में किसी से छिपा नहीं। योरप में उनकी वही ख्याति है, जो भारतवर्ष में महाकवि कालिदास की है। शेक्सपियर के काव्यों पर विचार करने के लिये योरप में सभाएँ क़ायम हैं, संस्थाएँ क़ायम हैं। उनके नाटकों में मानव-चरित्र का बड़ा ही बारीक विश्लेषण किया गया है। आज हमें यह बात लिखते हर्ष होता है कि इन्हीं महाकवि के सुप्रसिद्ध नाटक "ओथेलो" का हिंदी-अनुवाद प्रकाशित हो गया है। अनुवाद में मूल पुस्तक का कोई विषय नहीं छूटने पाया है। भाषा सरल, सबके समझने-योग्य है। जो लोग हिंदी में महाकवि शेक्सपियर के ग्रंथ-रत्न को देखना चाहते हैं, उनसे हम इस उत्तम अनुवाद के देखने की नम्र प्रार्थना करते हैं। मूल्य ॥)

गृह-रोग-चिकित्सा

यह पुस्तक अपने ढंग की एक ही है, हिंदी में ऐसी पुस्तकों की बहुत कमी है। इसमें गर्भिणी के स्वास्थ्य-नियम, उसके रोग और उनका इलाज, ज़च्चा और ज़च्चाख़ाने का हाल, बच्चों के रोग और उनको पालने की विधि आदि बहुत ही सीधी-सादी भाषा में वर्णित है। जो स्त्रियाँ हिंदी पढ़ सकती हैं, उनको तो यह पुस्तक अवश्य अपने पास रखनी चाहिए। पुरुष भी इससे अनेक लाभ-दायक बातें सीख सकते हैं। पुस्तक सर्वथा उपादेय है। सुंदर सुनहरी जिल्द बँधी हुई, साइज़ डबल क्राउन १६ पेजी, पृष्ठ-संख्या ४०० के लगभग, टाइप बड़ा, काग़ज़ ग्लेज, तिसपर भी मूल्य केवल १।-)

हमारे शरीर की रचना

स्वास्थ्य की रक्षा करने के लिये शरीर की बनावट और अंग की रचना का जानना परमावश्यक है। इसलिये इसे पढ़िए। इसमें अत्यंत मनोरंजक भाषा में शरीर के अंगों की रचना और धर्म बतलाया है। पढ़ने में उतना ही रोचक है, जितना कोई अच्छा उपन्यास। स्त्रियों को पुरुषों की अपेक्षा अधिक आवश्यक है कि शरीर की रचना जानें। पहले भाग में शरीर के धातुओं की रचना पर अति उत्तम विधि से विचार किया गया है। मूल्य दूसरे भाग का ४), पहला पुनः छप रहा है।

श्रीराम-चरित्र

इसमें सारी वाल्मीकि-रामायण की कथा, हिंदी की बड़ी ही सरल, सरस, सुंदर और सुमधुर भाषा में, उपन्यास के ढंग पर, बड़ी ही मनोरंजकता के साथ, लिखी गई है। इसको एक बार आद्योपांत पढ़ लेने से फिर किसी रामायण के पढ़ने की ज़रूरत नहीं रहती, क्योंकि इसमें भगवान् रामचंद्र का आदि से लेकर अंत तक का जीवन-चरित्र खूब छान-बीन और विस्तार के साथ लिखा गया है। यह हिंदी-गद्य-साहित्य का सर्वोत्तम शृंगार, भक्ति का द्वार, ज्ञान का भांडार और उत्तमोत्तम उपदेशों का आगार है। इसमें काव्य, उपन्यास, नाटक, इतिहास, नीति-शास्त्र और जीवन-चरित्र, सबका आनंद एकसाथ मिलता है। मूल्य ५॥), सुनहरी रेशमी जिल्द का ६) है।

कर्म-क्षेत्र

बंगाल के द्वितीय बंकिमचंद्र स्वनाम-धन्य बाबू दामोदर मुखोपाध्याय के सर्व-श्रेष्ठ सामाजिक उपन्यास बँगला 'कर्म-क्षेत्र' का यह सरल, सुंदर और मनोमुग्धकर हिंदी-अनुवाद है। यह श्रीमद्भगवद्गीता के चुने हुए उच्च आदर्शों पर लिखा गया है, अतः सामाजिक कुरीतियों का सुधार, सेवा-धर्म का प्रचार, गार्हस्थ्य जीवन का चमत्कार, आदर्श चरित्रों का भांडार और उत्तमोत्तम शिक्षाओं का अनुपम आगार है। इसमें कुटिलों की कुटिलता, राजनीति का गूढ़त्व, अदालतों की बुराइयाँ, सरकारी कर्मचारियों की स्वेच्छाचारिता, सूदखोरों की चालबाज़ियाँ आदि का पूरा दिग्दर्शन कराया गया है। इसको एक बार आद्योपांत पढ़ लेने से मनुष्य की अंतरात्मा शुद्ध हो जाती है, और नीच-से-नीच मनुष्य भी उच्चभावापन्न होकर समाज का सच्चा सेवक बन जाता है। दाम ३), सुनहरी रेशमी कपड़े की जिल्द ३॥)

गाँधी-गौरव

इसमें भारत के सर्वमान्य नेता महात्मा गाँधी का विस्तृत जीवन-चरित्र बड़ी खोज के साथ लिखा गया है। गाँधीजी का इतना बड़ा जीवन-चरित्र किसी भाषा में नहीं छपा। इसमें महात्मा गाँधी के जन्म से लेकर आज तक की समस्त घटनाएँ ऐसी सरल, सुंदर और ओजस्विनी भाषा में लिखी गई हैं कि सारा गाँधी-चरित्र हस्तामलक हो जाता है। इसमें महात्मा गाँधी की अलौकिक प्रतिभा, अद्भुत क्षमता, अपूर्व स्वार्थ-त्याग और अटल प्रतिज्ञा का ऐसा सुंदर चित्र खींचा गया है कि आप पढ़कर मुग्ध हो जाइएगा। इसमें दक्षिण ऑफ़्रिका की घटनाएँ, सत्याग्रह का इतिहास, खेड़े का बखेड़ा, चंपारन का उद्धार, पंजाब का हत्या-कांड, ख़िलाफ़त की समस्या, कांग्रेस की विजय और असहयोग की उत्पत्ति आदि विषय खूब विस्तार-पूर्वक लिखे गए हैं। इसमें महात्मा गाँधी से महात्मा लाइकगरस, आत्मवीर मेज़नी, वीरवर वाशिंगटन और लेनिन की तुलना की गई है, जिसमें 'महात्मा गाँधी' ही सर्व-श्रेष्ठ प्रमाणित हुए हैं। इसे पढ़कर आप पूरे गाँधी-भक्त बन जायँगे। मूल्य केवल ३), रेशमी जिल्द का ३॥) है।

प्रेमा

यह उपन्यास मौलिक तथा भाव-मूलक है। यह उपन्यास साहित्यानुरागियों तथा नवयुवकों वा युवतियों को विशेषतः रुचिकर होगा; क्योंकि नए ढंग से, समय पर ध्यान रखकर, लिखा गया है, जिससे उत्साह और सजीवता का संचार होता है और जो उच्च मनोवृत्तियों को प्रसन्न करने की विशेषता रखता है। इसमें जीवन के सर्वोच्च, सर्व-व्यापी वा पवित्रतम भाव—प्रेम—के प्रबल प्रभाव की उत्पत्ति, विकाश वा साफल्य का चित्रांकण किया गया है। मूल्य ॥)

भारत-रत्न

इसमें भारत के पचीस प्रसिद्ध और आदरणीय महापुरुषों के जीवन-चरित और उनके सुंदर हाफ़टोन-चित्र दिए गए हैं। बड़े-बड़े अनुभवी लोगों का कहना है कि महापुरुषों के चरित को आदर्श मानकर चलने से ही मनुष्य के जीवन का उद्देश सफल हो सकता है। अतएव प्रत्येक हिंदी-प्रेमी को भारत-रत्न की एक प्रति ख़रीदकर पढ़नी चाहिए। मूल्य १॥)

गृहिणी-चिकित्सा

(अर्थात् होमियोपैथी-द्वारा औरतों और बच्चों के रोगों का इलाज)

इस पुस्तक में औरतों और बच्चों के हर प्रकार के रोगों का इलाज बड़ी सरलता से दिया है। मिसाल के लिये, जैसे महीना खुल के न होना, महीना बहुत ज़ियादा खुल के होना, महीना घट या बढ़ के होना, महीने के वक़्त पेट में दर्द होना, सफ़ेद पानी जाना, बेहोशी का दौरा आना, वंध्या यानी जिन औरतों के लड़का-बाला न होता हो उनका इलाज, गर्भाधान-विधि इत्यादि-इत्यादि अनेक कष्ट-साध्य और असाध्य रोगों का इलाज दिया है। इसके अलावा, झाड़ने-फूँकने का तरीक़ा, जो हर गृहस्थ को जानना बहुत ज़रूरी है, और रंगों के द्वारा इलाज, जिसमें न हड़ लगती है, न फिटकरी और रंग चोखा आता है। यह पुस्तक बड़ी उपयोगी है। इसे हर गृहस्थ को रखना चाहिए। मूल्य २॥)

राष्ट्रीय सिंहनाद

उत्तमोत्तम कवियों की ज़ोरदार राष्ट्रीय कविताओं का अपूर्व संग्रह । सुंदर एंटिक काग़ज़ पर छपी सुनहरी जिल्दवाली पुस्तक । मूल्य २)

पं० मोतीलाल नेहरू

इस पुस्तक में "पं० मोतीलाल नेहरू" की पूरी जीवनी, कांग्रेस में दिए हुए भाषण, सरकार-द्वारा चले हुए मामले, लाखों रुपए साल की आमदनी और पेरिस से धुले हुए कपड़े को क्यों छोड़ा, पंजाब में अपनी माताओं और बहनों की दर्द-भरी कहानी, अब स्वराज्य कैसे मिलेगा, आदि बातें जानना हो, तो इस पुस्तक को मँगाइए । मूल्य ॥)

अकबर की राज्य-व्यवस्था

इसमें सम्राट् अकबर की राज्य-व्यवस्था का बड़ा ही सुंदर चित्र खींचा गया है । अकबर के राज्य-काल में भारतीय समाज, धर्म, नीति तथा जीवन की क्या अवस्था थी, वर्तमान राज्य-प्रणाली तत्कालीन व्यवस्था के मुक़ाबले में कैसी है, आदि बातों का पता इस पुस्तक से भली भाँति लगता है । इतिहास, राजनीति तथा अर्थ-शास्त्र के विद्यार्थियों के लिये यह बहुत ही लाभ-दायक है । पृष्ठ-संख्या २८०, मूल्य १)

पंजाब की वेदना

लेखक—लाला लाजपतराय

यह पुस्तक पंजाब के हत्या-कांड के संबंध में लिखी गई है । पंजाब की पीड़ित जनता पर अंग्रेज़ों ने कैसे-कैसे भयंकर अत्याचार किए हैं और वहाँ की स्त्रियों, बच्चों और बूढ़ों की अंग्रेज़ सैनिकों ने कैसी दुर्दशा की है, इसे पढ़कर शरीर काँप जाता है और आँखों में आँसू आ जाते हैं । इस पुस्तक में लालाजी ने सरकार की अन्याय-पूर्ण नीति और पंजाब पर किए गए ज़ुल्म के संबंध में सरकार को खूब फटकारा है और यह बतलाया है कि अंग्रेज़ कैसे धोखेबाज़, ज़ालिम और ख़ुदग़रज़ होते हैं । लाला लाजपतराय के चित्र-सहित पुस्तक का मूल्य ॥)

महात्मा गाँधी की गिरफ़्तारी, मुक़द्दमा और जेल-यात्रा

इस पुस्तक में म० गाँधी का संक्षिप्त जीवनी, असहयोग का संक्षिप्त इतिहास, महात्माजी की गिरफ़्तारी का पूरा विवरण, उनका संदेशा, राजद्रोह का मुक़द्दमा और महात्माजी का पूरा बयान, उनके अंतिम लेख और जिन लेखों पर राजद्रोह का मुक़द्दमा चलाया गया है, वे लेख भी इस पुस्तक में दिए गए हैं । इसके अतिरिक्त महात्माजी के संबंध में भारतीय तथा अंग्रेज़ विद्वानों के मत और जेल-यात्रा का पूरा वर्णन इस पुस्तक में किया गया है । इसमें चार चित्र भी हैं १—म० गाँधी का वर्तमान चित्र, २—महात्माजी की गिरफ़्तारी के समय का, ३—अदालत में महात्माजी और ४—जेल में म० गाँधी । मूल्य केवल ॥=)

भारत-गीतांजलि

हिंदी-संसार के सुप्रसिद्ध और राष्ट्रीय कवि पं० माधव शुक्ल-रचित भारत-गीतांजलि को हमारे देश के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध विद्वान् और पत्रों ने बड़ी आदर की दृष्टि से देखा है । इस पुस्तक में वर्त्तमान समय के उठते हुए भावों से रँगे हुए सुंदर गान और देशभक्ति-पूर्ण पद्यों का अपूर्व संग्रह है । मूल्य ।-)

असहयोग पर म० गाँधी

यह पुस्तक कलकत्ता-स्पेशल-कांग्रेस के समय में जब कि देश के सामने असहयोग का प्रस्ताव उपस्थित किया गया था, प्रकाशित हुई थी । म० गाँधी ने भारतवर्ष में असहयोग-आंदोलन कैसे प्रारंभ किया, किस प्रकार सारे देश में यह आंदोलन आग की तरह फैल गया आदि बातों का सविस्तर वर्णन है । इस पुस्तक में म० गाँधी ने बताया है कि भारत की ग़रीबी और ग़ुलामी कैसे दूर होगी, हमें स्वराज्य कैसे मिलेगा तथा पंजाब और ख़िलाफ़त के अन्यायों का बदला लेने के लिये हमें क्या उपाय काम में लाने होंगे । मूल्य ॥)

देश-बंधु चितरंजनदास

अहमदाबाद में होनेवाली ३६वीं नेशनल कांग्रेस के सभापति के लिये देश ने आप ही को चुना था। आपके स्वार्थ-त्याग की महिमा इस समय सारे देश में गाई जा रही है। ५० हज़ार रुपये मासिक आमदनी (इतनी बड़े लाट की आमदनी भी नहीं है) की बैरिस्टरी का त्याग कर और संपूर्ण असहयोगी बनकर आपने म० गाँधी का साथ दिया है। इस छोटी-सी पुस्तक में उनके जीवन की सारी घटनाएँ आ गई हैं। मूल्य ।≈)

स्वतंत्रता का अधिकार

(ले० —देश-बंधु चितरंजनदास)

देश-बंधु चितरंजनदास ने इस पुस्तक में यह दिखलाया है कि हमारा देश कैसे स्वतंत्र होगा। पंजाब और ख़िलाफ़त के अन्याय कैसे दूर होंगे आदि विषयों पर उनके अत्यंत महत्त्व-पूर्ण लेख और व्याख्यानों का यह एक अपूर्व संग्रह है। अहमदाबाद-कांग्रेस के सभापति की हैसियत से आपने जो भाषण कलकत्ता-प्रेसीडेंसी-जेल में तैयार कर कांग्रेस में भेजा था, वह भी सरल, सीधी भाषा में अनुवाद कर इस पुस्तक में दिया गया है।

म० गाँधी ने इस पुस्तक की भूमिका लिखी है और देश-बंधु दास के विचार की अत्यंत प्रशंसा की है। रंगीन चित्र के सहित सजिल्द पुस्तक का मूल्य ।॥)

भारत और इँगलैंड

म० गाँधी और भारत-हितैषी मिस्टर सी० एफ़० ऐंड्रूज़ की राय से यह पुस्तक लिखी गई है। इस पुस्तक में योरप के सर्वश्रेष्ठ इतिहास-लेखक सर जान सीली ने आज से चालीस वर्ष पहले तर्क-द्वारा यह सिद्ध कर दिखाया है कि बिना तलवार उठाए भारत स्वतंत्र हो जायगा और अँगरेज़ों की तोप और बंदूकें कुछ भी काम न आवेंगी। असहयोग-आंदोलन का भविष्य जानने के लिये यह पुस्तक अनूठी है, क्योंकि इस पुस्तक का अक्षर-अक्षर आज सिद्ध होता जा रहा है। मूल्य १॥)

पंजाब का हत्या-कांड

अँग्रेज़-जाति की अन्याय-पूर्ण नीति का जीता-जागता सच्चा इतिहास। पंजाब के निस्सहाय स्त्री पुरुषों, बच्चों और बूढ़ों पर कैसे-कैसे भयंकर अत्याचार किए गए और हमारी माताओं और बहनों की कैसी दुर्दशा की गई, यह जानकर कौन ऐसा भारत-वासी होगा, जिसके आँख में आँसू न आ जाय। देश के प्रत्येक बच्चे-बच्चे के हृदय में पंजाब-हत्या-कांड का सारा इतिहास भर देना चाहिए, ऐसी म० गाँधी की आज्ञा है। इसलिये इस पुस्तक को शीघ्र ही मँगाइए। सचित्र और रंगीन जिल्द की पुस्तक का मूल्य २), सजिल्द का २॥)

पंजाब-हरण

लेखक पं० नंदकुमार देव शर्मा। अँगरेज़ी-राज्य स्थापित होने से पहले भारत की तीन स्वतंत्र जातियों—मुसलमानों, मरहटों और सिक्खों—का कैसे पतन हुआ? यह प्रश्न प्रत्येक भारतवासी के हृदय में उठ रहा है। उन तीन प्रबल जातियों में से सिक्खों के पतन का रहस्यमय हाल आपके सामने है। अँगरेज़-कूट-नीतिज्ञों ने सिक्ख-जाति के साथ कैसा व्यवहार किया, उसके अंतिम महाराजा दलीपसिंह को कैसे विलायत ले गए, उनका वंश क्यों ईसाई हो गया इत्यादि बातों का वर्णन बड़ी मार्मिक भाषा में उदाहरण-सहित किया गया है। सचित्र पुस्तक का मूल्य २)

भारतीय देश-भक्तों की कारावास-कहानी

इसमें भारत के सुप्रसिद्ध २५ देश-भक्तों की कारावास-कथा बड़ी मार्मिक, रोमांचकारी और सरल भाषा में संगृहीत की गई है। पहला संस्करण हाथों-हाथ बिक गया। यह दूसरा संस्करण सुंदर काग़ज़ पर छपकर तैयार है। २० चित्र और ३७५ पृष्ठ की पुस्तक का दाम केवल २॥)

श्रीअरविंद-चरित

इसमें तपोनिष्ठ अरविंद का जीवन-वृत्तांत है। हिंदी-भाषा में उनका ऐसा एक भी जीवन-चरित्र नहीं छपा है। चित्र-संख्या ४, पृष्ठ-संख्या २००, मूल्य १॥) है।

हिमालय-पर्वत की सर्व प्रकार के प्रमेहों पर रामबाण-औषधि

शुद्ध शिलाजीत

इसके सेवन से सर्व प्रकार का प्रमेह, बहुत पेशाब का आना, गठिया, बवासीर, कुष्ठ, मृगी, शरीर का पीला पड़ जाना, श्वास, छर्दि, विक्षिप्तता, रक्त-विकार, सूजन, कफ़-विकार, खाँसी तथा शरीर के समस्त रोग दूर होते हैं। शरीर को हर प्रकार की बीमारियों तथा कमज़ोरियों से बचाकर कांतिमान् तथा हृष्ट-पुष्ट बनाता है। इसके विशेष विवरण तथा सेवन-विधि की पुस्तक शुद्ध शिलाजीत के साथ विना मूल्य दी जाती है।

मूल्य

[illegible] तोला २।) डा० व्य० ।-), १० तोला ४।) डा०व्य०।-)
२० ,, ८) ,, ,, ।-), ४० ,, १५॥) ,, ,, ॥=)

इसका सेवन स्वर को मधुर करता है, स्मरण-शक्ति को बढ़ाता है, पांडु, बवासीर, विष, सूजन, ज्वर को नष्ट करता है, बुद्धि को तीव्र करता है। विद्यार्थियों, वकीलों, बैरिस्टरों, हकीम, वैद्यों तथा जिनको स्मरण-शक्ति का कार्य रहता है उनको इसका सेवन अवश्य करना चाहिए। इसके सेवन से भूला हुआ पाठ तक याद आ जाता है। शरीर में चपलता आती है। वैद्यक-ग्रंथों में इसकी प्रशंसा मुक्त कंठ से की गई है। मूल्य १ डब्बी का १॥), डा० व्य० ।-)। तीन डब्बी लेने से डाक-व्यय माफ़।

कैसा ही नया-पुराना सूज़ाक हो, इसका सात दिन सेवन करने से आराम हो जाता है। दो खूराक दवा लेते ही पेशाब की जलन, कड़क और पीली रंगत जाती रहती है और धार के साथ पेशाब आने लगता है। मवाद और खून बंद हो जाता है। सात दिन सेवन करने से सूज़ाक को आराम हो जाता है। मूल्य १ शीशी का २), डा० व्य० ।-)। आधी शीशी १), डा० व्य० ।-)

शिवोक्त—

❀ बृहत् सावरतंत्र ❀

[विधान तथा भाषा-टीका-सहित]

अनमिल अक्षर अर्थ न जापू, प्रकट प्रभाव महेश-प्रतापू।

पाठकगण जितने मंत्र-जंत्र-तंत्र हैं, समस्त शिवजी महाराज ने कलियुग में कील दिए हैं, इस कारण वे सिद्ध नहीं होते। कलियुग में सिद्ध होनेवाले सावर-मंत्र शिवजी ने ही बनाए हैं, जो तत्काल फल देते हैं। प्रत्यक्ष में देखा जाता है कि बिच्छू, सर्प, सिंह आदि जीव-जंतु सावर-मंत्रों से ही पकड़े जाते हैं, सावर-मंत्रों से ही समस्त रोगों की चिकित्सा होती है। मारण, मोहन, उच्चाटन, वशीकरण आदि षट् कर्म सावर-मंत्रों से ही सिद्ध होते हैं। सावर-मंत्रों द्वारा बंगाले का जादू, टोना, छिप जाना, तोता-बकरा बना लेना, तथा दूर देश की वस्तु मँगा लेना, भूत-प्रेत, डाकिनी-शाकिनी, यक्षिणी को वश कर लेना इत्यादि समस्त इंद्रजाल-विद्या सिद्ध होती हैं। हम आज इस अत्यंत गोप्य सावर-मंत्र को जगत् के कल्याणार्थ प्रकाशित किए देते हैं, जिसको देखकर अविश्वास करनेवालों को भी विश्वास करना पड़ता है। प्रत्येक जिल्द का डाक-व्यय-सहित मूल्य १॥) मात्र है।

हज़ारों मनुष्यों द्वारा प्रशंसित, आश्चर्यकारक खेल सिखानेवाली अद्भुत पुस्तक

❀ कौतुक-रत्नाकर ❀

इस पुस्तक के पढ़ने ही से बाजीगरी के खेल—जैसे मुख से आग निकालना, आँख में कटोरी चढ़ाना, पेट में या गले में छुरी मारना, तत्काल आम का वृक्ष लगाना, डोरा तोड़कर नाक से साबित निकालना, कन्या या पुत्र बताना, अग्नि उड़ाना, बोतल का नहीं टूटना, आग से नहीं जलना, रात्रि में अक्षरों का देखना, बोतल में अर्क उड़ाना, बोतल में से शब्द का होना, दीपक का न बुझना, विना अग्नि ज्वार का भूनना, अनेक प्रकार के स्वप्न दिखाना, चूहों का पकड़ना, वायु पर चित्र बनाना, लाल पुष्प को सफ़ेद करना, बिच्छू का विष दूर करना, अनेक प्रकार की धातु भस्म करना, छाया-पुरुष-साधन, काल-ज्ञान तथा जिस अनुष्ठान के करने से दशरथ के चार पुत्र हुए थे, वह तंत्र आदि—आ जाते हैं। मूल्य प्रत्येक पुस्तक का १), डा० व्य० ।)

मँगाने का पता—हिमालय-डिपो, मुरादाबाद (यू० पी०)

Printed and Published by K. D. Seth, at the Newul Kishore Press, Lucknow.